प्रस्तर पर मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

बलवंत सिंह की श्रेष्ठ कहानियाँ

सम्पादक
गोपीचंद नारंग

उर्दू से अनुवाद
जानकीप्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

सूची

बलवंत सिंह की कला

गोपीचंद नारंग

बलवंत सिंह उर्दू के एक सिद्धहस्त कथाकार थे। उन्होंने लगभग तीस कृतियों की रचना की जिनमें से बीस से अधिक उपन्यास हैं। उनकी कृतियाँ हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुई। सन् 1986 में जब बलवंत सिंह भीषण कष्ट की स्थिति में इस दुनिया से उठ गये तो उनकी अर्थी को कंधा देने वालों में शायद एक भी साहित्यकार न था। उनके निधन की किसी को कानों-कान ख़बर न हुई और जब ख़बर हुई भी सिवाय एकाध लेख के किसी की आँख से आंसू न टपका। उपेन्द्रनाथ अश्क ने अलबत्ता उनकी कहानियों पर भाषण प्रसारित किये। उनका एक लेख भी प्रकाशित हुआ। एक संक्षिप्त अंक 'किताबनुमा' ने निकाला जिसमें ज़्यादातर पुरानी रचनाएं हैं। यह है एक महत्वपूर्ण कलाकार के प्रति हमारी श्रद्धांजलि! इस पर सिवाय इसके क्या कहा जा सकता है—

'अिन्न फ़ी ज़ालिकल अिबरतल्लिअुलिल-अब्सारि।' अर्थात् जो लोग सूझ रखते हैं उनके लिए इन घटनाओं में नसीहत है।

—क़ुर्आन, सूरतु आलि इमरान, आयत 13

पाँच वर्ष पहले जब मैं केन्द्रीय साहित्य अकादेमी में उर्दू सलाहकार बोर्ड का संयोजक था तब मैंने प्रस्ताव रखा था कि साहित्य अकादेमी की ओर से उर्दू के महत्वपूर्ण कहानीकारों के संग्रह विस्तृत एंथोलॉजी के रूप में अंग्रेजी में प्रकाशित किये जायें। मंटो पर पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी । विचार था कि राजिंदर सिंह बेदी, कृश्न चंदर, इस्मत चुग़ताई, क़ुर्रतुल ऐन हैदर और बलवंत सिंह यानी पाँच पुस्तकों का सैट प्रकाशित किया जाये। अनुवाद के लिये मैंने अपने दोस्त जयरतन का सहयोग प्राप्त किया। लेकिन इस दौरान इस्मत चुग़ताई पर पुस्तक 'काली बराय ख़्वातीन' की ओर से प्रकाशित हो गयी। अलबत्ता राजिंदर सिंह बेदी और कृश्न चंदर पर हमारी पुस्तकें 1989 और 1991 ई. में प्रकाशित हुईं। क़ुर्रतुल ऐन हैदर का संग्रह स्वयं उनका चुना हुआ भी प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक इस सिलसिले की चौथी कड़ी है जो बलवंत सिंह और उनकी बेहतरीन कहानियों पर केन्द्रित है। यह अंग्रेज़ी, उर्दू और हिन्दी में साहित्य अकादमी से प्रकाशित हो रही है और बलवंत सिंह की श्रेष्ठ कला

को समझने का एक विनम्र प्रयास है। इस बात की खुशी है कि 'आजकल' और 'सौग़ात' के विशेषांक इन पंक्तियों के लेखक के ध्यान दिलाने पर हाल ही में प्रकाशित हुए।

बलवंत सिंह को अपने जीवन में एक भाववादी या रूमान निगार समझा गया। हालांकि यह बात जितनी सच है, उतनी ग़लत भी है। बलवंत सिंह के जीवनविपयक रेखाचित्र से, जो अलग से दिया जा रहा है, अनुमान होगा कि बलवंत सिंह अत्यधिक स्वाभिमानी और अपनी खाल में मस्त रहने वाला शख़्स था। लाहौर का ज़माना बलवंत सिंह के खिलंडरपन का ज़माना था—कृश्नचंदर, राजिंदर सिंह बेदी और मौलाना सलाह उद्दीन अहमद से उनकी मुलाकात थी। लेकिन उनका उठना-बैठना शायद किसी के साथ नहीं था। वह इस प्रवृत्ति के व्यक्ति ही न थे। दोस्त-अहबाब उन्होंने बनाये ही नहीं। दिल्ली में 'आजकल' की नौकरी के दौरान भी वह अलग-थलग ही रहे। उन्हें इस बात का गहरा खेद रहा कि अर्श मल्सियानी और जगन्नाथ आज़ाद की अपेक्षा अधिक सक्षम और प्रतिभावान होते हुए भी उनका अधिकार उन्हें नहीं मिला। अतएव साज़िशों का शिकार होकर उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा। वह इलाहाबाद चले गये लेकिन बक़ौल उपेन्द्रनाथ अश्क यहाँ भी उन्होंने किसी से मिलना पसन्द नहीं किया और अलग-थलग रहे। वह अत्यन्त सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और ऊँचे-पूरे व्यक्ति थे। ठस्से से रिक्शे पर निकलते तो अल्सेशियन कुत्ता उनके क़दमों में लेटा होता। शायद उन्हें स्वयं पर और अपनी कला पर गर्व रहा होगा। उन्होंने दूसरों से पत्र-व्यवहार भी ज़्यादा नहीं किया अगर किया भी तो वह अभी सबके सामने नहीं आ सका है। शुरू में उनकी पुस्तकें लाहौर से प्रकाशित होती रहीं। बाद में इलाहाबाद उनके जीवन का केन्द्र बन गया।

1975 में उन्हें अंतड़ियों की तकलीफ़ शुरू हुई तो उन्होंने चौक का पैतृक होटल, जो आय का एकमात्र स्रोत था, बेच दिया। फिर आँखों की ज्योति भी जाती रही। सन् 1986 में जब निधन हुआ तो अब तक की जानकारी के अनुसार ग्यारह पुस्तकें उर्दू में जिनमें सात कहानी-संग्रह और चार उपन्यास हैं और तीस पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी थीं। भूमिका के अन्त में पुस्तकों का विवरण दिया हुआ है। इनमें से कुछ पुस्तकें बार-बार प्रकाशित होती रही हैं।

मौलाना सलाह उद्दीन अहमद ने अपनी पत्रिका 'अदबी दुनिया' में बलवंत सिंह का अभिवादन करते हुए लिखा था कि "बलवंत सिंह उर्दू के बहुत ही नौजवान लिखने वाले हैं यानी वह दाढ़ी मुंडवाये होते तो यह मुश्किल से यकीन आता कि ये साहबज़ादे गेंद-बल्ला खेलने के बजाय काग़ज़ पर कलम दौड़ाते हैं और इस ख़ूबी से दौड़ाते हैं कि कई अच्छे-अच्छे शाह सवारों को पीछे छोड़ जाते हैं।" इस ज़माने में कृश्न चंदर ने उनके बारे में लिखा, "बलवंत सिंह उन ख़ुशनसीब लोगों में से हैं जो सिर्फ़ कहानी

लिखकर अमर हो जाते हैं....उनकी कहानी 'सज़ा' उनकी पहली कोशिश है। लेकिन इस क़दर कामयाब, इस क़दर खूबसूरत, इस क़दर भरी-पूरी कि हर्फ़-ए-अव्वल हर्फ़-ए-आख़िर मालूम होता है।'' राजिंदर सिंह बेदी ने भी उनके रचना कौशल की प्रशंसा की। लेकिन खुद बलवंत सिंह के विचार अपने समकालीनों के बारे में कुछ और ही हैं। उनका पहला संग्रह ''जग्गा' लाहौर से सन् 1944 में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में बलवंत सिंह ने एक मज़े का लतीफ़ा लिखा है:

''हमारे यहां पंजाब में चंद शरीफ़ औरतों की कहानी मशहूर है। जो सफर कर रही थीं। गर्मियों के दिन, दोपहर का वक्त, कड़क धूप—रूँ-रूँ करते हुए एक रहट के पास बड़ की घनी छाँव देखकर उन्होंने आराम करने की ठानी। खाना निकाला। जिसमें लुच्चियां और हलवा शामिल था। लुच्ची को मैदे से बनी हुई लिजलिजी-सी सफ़ेद-सफ़ेद पूरी या चपाती समझ लीजिए। बड़ी लज़ीज़ होती है। परे एक थका-मांदा अनघड़ जाट भी सुस्ताने के लिये आ बैठा। उसने भी तन्दूर की पकी हुई भारी-भरकम रोटियां निकालीं और एक बड़ी-सी प्याज तोड़ने ही को था कि उसने सुना, ''आओ बहनों, पहले लुच्चियाँ खायें।'' उसके कान खड़े हो गये। मुँह में पानी भर आया। उसने अपनी रोटियों की तरफ़ देखा जो उसकी नीयत के फ़तूर को भाँपकर उसे यों घूर रही थीं जैसे उसे खा ही जायेंगी मगर उसने परवाह न की और रोटियों को लुच्चियों में फैंकते हुए बोला, ''लो बहनों ! ये दो लुच (लुच्ची का पुल्लिंग) मेरे भी शामिल कर लो।'' कहते हैं इस पर औरतों की लुच्चियां भ्रष्ट हो गयीं और उन्होंने सब कुछ जाट के हवाले कर दिया.....यह कहानी राजिंदर सिंह बेदी को सुनाने के बाद मैं कहता हूं.....''सो मियां हमने तुम्हारी अदबी लुच्चियों में अपने बेअदब लुच्चे जबर्दस्ती ठूंस दिये हैं।'' यह सुनकर बेदी अपनी दाढ़ी को खुजलाने लगता है ''अरे भई यह बात नहीं तू लिखा कर (कुछ असमंजस के बाद) वल्लाह! खूब लिखता है तू..... इस वक्त मैं तहमद बांधे चमारों की पीर-ए-तरीकत की तरह चारपाई पर बैठा होता हूं और बड़ी आसानी से उसकी दिली कैफ़ियत का अंदाज़ा लगा लेता हूं।''

उन्होंने आगे लिखा है कि ''जब चौधरी नज़ीर अहमद (मक्तबा-ए-उर्दू, लाहौर) ने मेरी किताब के लिए मुझसे कहा कि किसी से लेख लिखवा दो, तो मैं स्तब्ध कि क्या करूंगा..... बेचारा बेदी क़रीब था, फाँस लिया मैंने.....वह असील मुर्गे की तरह डटा रहा यानी मैदान छोड़कर भागा नहीं।'' लगता है कृश्न चंदर से भी बलवंत सिंह के सम्बंध कुछ ऐसे ही थे। वह शोख़ी और शरारत से बाज़ न आते होंगे और अपने वरिष्ठ समकालीनों से भी छेड़छाड़ कर दिया करते होंगे। लिखते हैं:

''कुछ दिन हुए कृश्न चंदर की चिट्ठी मिली..... फरमाते हैं!! कि आपसे मिले हुए एक मुद्दत हो गयी है, लेकिन आपकी मुजरिमाना ज़ेहनियत अब भी याद

आती है। लाहौर ने आपको 'सभ्य' तो नहीं बना दिया....." यह है मेरी महानता! यानी अगर कृश्न चंदर मेरे पास बैठे हों तो एक साहित्यकार के सान्निध्य का अहसास करने के बजाय उनका सारा वक़्त अपनी जेबों की ख़बरगीरी में ही गुज़र जाये।.....ऐसे ज़बर्दस्त अदीब की शहादत के बाद अगर एक बात और सुना दूं तो उम्मीद है उसे अप्रिय न समझा जायेगा। मेरे एक पड़ोसी राज़दाराना लहजे में मुझसे बोले, "भई देखो बुरा न मानना माफ़ करना....... तुम सूरत से जरायम पेशा मालूम होते हो......"

बलवंत सिंह लिखते हैं कि "जब स्थिति यहां तक आ पहुंची हो तो भला मैं क्या लिखूं और अगर लिखूं भी तो एतबार कौन करेगा? यह प्रोपेगंडा का ज़माना है। इस वक़्त मैं कुछ भी नहीं। अलबत्ता कुछ बन जाने की जानिब बढ़ रहा हूं।

ज़रूरत इस बात की है कि मैं कुछ लिखूं और मेरा वक़्त कुछ न लिखने में गुज़रा जा रहा है क्योंकि मैं लिख ही नहीं सकता।"

यह अंतिम वाक्य बलवंत सिंह की मनःस्थिति को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। यानी अविश्वासनीय परिस्थितियों में अपनी क्षमताओं पर भरोसा और समकालीनों के मुकाबले में असुरक्षा और अपूर्णता का अहसास भी । बलवंत सिंह की कला के मूल्यांकन की यह कुंजी है। जैसे-जैसे ज़माना बीतता गया और हालात ने उन्हें लाहौर से निकालकर दिल्ली और फिर दिल्ली से इलाहाबाद में फेंक दिया और जितना वह अपने-आप में सिकुड़ते गये उतना ही उनकी लिखने की गति बढ़ती गयी और वह अपनी कल्पना द्वारा सृष्ट संसार में मग्न हो गये।

(1)

बलवंत सिंह के भावबोध द्वारा निर्मित संसार क्या था, इसका रूप-रंग क्या था, जिस अभिव्यक्ति ने इस काल्पनिक सृष्टि को संभव बनाया था, उसमें वस्तुओं और मनुष्य की परिकल्पना क्या थी यानी क्या कोई ऐसा दृष्टिकोण या मनोवृत्ति हो सकती है जिसके आधार पर बलवंत सिंह की अभिव्यंजना को पहचाना जा सके? बलवंत सिंह के मानसिक वातावरण के निर्माण में ऊपर जिन प्रभावों ओर क्रियाओं की चर्चा की गयी है उससे ज़ाहिर है कि कृश्न चंदर और राजिंदर सिंह बेदी जिनकी प्रसिद्धि का सूर्य उदित हो चुका था, बलवंत सिंह इन दोनों के निकट गये लेकिन लगता है जितना वह इनकी ओर आकृष्ट हुए उतना ही उनको स्वयं से दूर करते गये अन्यथा उनको 'शरीफ़ज़ादों' और खुद को 'लुच्चे' (बदमाश) के रूपक से व्यक्त ही क्यों करते! बेदी का रंग हालांकि 'दाना-ओ-दाम' से कायम हो गया था लेकिन तेतालीस-चवालीस के लगभग अभी इतनी ख्याति भी नहीं हुई थी। बलवंत सिंह बहरहाल किसी गिनती में नहीं थे। खुद बेदी ने अब तक बेदी को नहीं पाया था। कृश्नचंदर अलबत्ता उज्ज्वल,

धवल थे उनको आर-पार देख जा सकता है था। उनके जादुई गद्य का जादू अपना प्रभाव दिखा रहा था और प्रगतिशीलता की लहर भी उठ चुकी थी। लेकिन अब तक सर्जनात्मक व्यवहारों पर रोमानियत हावी थी। नौजवान बलवंत सिंह की मनोदशा उस समय ऐसी नाव की थी जो लहरों पर हिचकोले ले रही हो—1944 की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि मेरे लिए यह मुमकिन ही नहीं है कि "जिंदगी के किसी एक पक्ष विशेष पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित करूं। क्या बुरा है, क्या भला यह मेरे बस का रोग नहीं। मेरी ज़हनी आवारगी (रचनात्मक संवेदना) मुझे हर जगह ले जाती है..... मुमकिन है बिलआख़िर कोई रंग पैदा हो जाये।"

यह तो अच्छा हुआ कि अपनी कला के व्यक्तित्व पर बलवंत सिंह ने कोई प्रतिबंध नहीं लगाया। तभी तो बलवंत सिंह, बलवंत सिंह बन सका। वह बलवंत सिंह भी जो सामान्यतया बतौर बलवंत सिंह जाना जाता है और वह बलवंत सिंह भी जो उस बलवंत सिंह से भिन्न है और जिसे हम उसकी कहानियों में तलाश करेंगे। रूमानिगार बलवंत सिंह के लिए अलबत्ता ज़्यादा दूर जाने की ज़रूरत नहीं है वह तो नज़रों के सामने है। बलवंत सिंह की पहचान जिन कहानियों से है या जो कहानियां खुद बलवंत सिंह को पसन्द थी, उदाहरण के लिए–'जग्गा', 'काली तित्तरी', 'दीदार सिंह', 'ग्रंथी', 'बाबा महंगासिंह', 'सजा', 'हिंदोस्तान हमारा', 'तीन बातें', 'रास्ता चलती औरत' आदि। ये सबकी सब रूमानी कहानियां हैं। 'जग्गा' बलवंत सिंह की सबसे मशहूर कहानी है। पूरी कहानी 'जग्गा' डाकू के गिर्द बुनी गयी है। इससे रूमान को अलग कर लें तो बाक़ी कुछ न बचेगा। लेकिन यह रूमान शुद्ध काल्पनिक नहीं, ज़िंदगी की जड़ों से फूटा है और यथार्थ की सतह रखता है। जग्गा एक सांडनी सवार डाकू है। रात को एक गांव से गुज़रते हुए रहट पर प्यास बुझाने के लिये रुकता है तो एक लड़की को देखकर अभिभूत हो जाता है। गुरनाम एक मासूम अल्हड़ लड़की है खुद अपनी अदाओं से बेख़बर। इसके विपरीत बलवंत सिंह ने जग्गा डाकू की जो तस्वीर बनाई वह निहायत डरावनी है। आसपास के इलाके के लोग जग्गा के नाम से कांपते हैं। वह उजड्डपन से क़हक़हा लगाता है तो उसकी भयानक आवाज़ से चमगादड़ तक उड़ जाते हैं। गुरनाम से बातचीत करता हुआ वह उसके साथ-साथ उसके घर पहुँच जाता है। यहां वह निःसंकोच भाव से कहता है कि मैं दूर से आ रहा हूँ आज रात यहीं ठहरूंगा। वह गुरनाम को बातों-बातों में बहुत से ज़ेवरात और मोतियों के हार दिखा देता है और गुरनाम अपने बचकाना भोलेपन से चहकती रहती है। सुबह जब बापू अजनबी को विदा करते हुए उसका नाम पूछता है तो अजनबी कहता है, खबरदार किसी को मत बताना आज रात जग्गा डाकू तुम्हारा मेहमान था। बापू भय से कांप उठता है। जग्गा का नाम सुनकर बड़े-बड़ों के छक्के छूट जाते थे। इस घटना के बाद वह कभी-कभी रात के अंधेरे में गुरनाम से मिलने आता और भोर से पहले वापस चला जाता। फिर

लोगों ने आश्चर्य से सुना कि उसने डाका डालना बंद कर दिया है। वह स्वयं को गुरनाम के योग्य बनाना चाहता है। लेकिन गुरनाम के समक्ष इसे व्यक्त नहीं कर सकता। जब उसको मालूम होता है कि गुरनाम तो दिलीप सिंह को पसंद करती है तो वह एक रात दिलीप सिंह पर हमला कर देता है। सब समझते हैं कि दिलीप सिंह मारा गया लेकिन जब धीरे-धीरे जग्गा को अहसास होता है कि गुरनाम की भावनाएं पवित्र हैं तो वह बदलने लगता है। दिलीप सिंह ज़ख्मी हुआ था मरा नहीं था। अंततः स्वयं जग्गा उसे लाकर बापू और गुरनाम के सामने शादी के लिए पेश करता है और जग्गा एक बार फिर जगत सिंह विर्क बन जाता है, एक खूंखार डाकू!

कहानी का समूचा रचना-विधान रूमानी या भाववादी है। पौरुष, वीरता, साहस, हिंसा, डाकाज़नी, निश्छल प्रेम, गुरनाम का दिव्य सौंदर्य, भोलापन, अल्हड़पन, सांडनी सवार का दुराग्रही, कुरूप और भयानक व्यक्तित्व लेकिन मन की स्वच्छता, वचन पर प्राण देने की निष्ठा और प्रेम के लिए कुछ भी कर गुज़रने की भावना—ग़रज़ यह कि कथानक, पात्र, वातावरण, संवाद सब रूमान में रंगे हुए हैं। कहानी निस्संदेह चरित्र प्रधान है लेकिन चरित्र सिर्फ़ जग्गा और गुरनाम ही नहीं, भीकन का वह दूर चलता हुआ रहट, खेत-खलिहान भी चरित्र हैं। भीकन के कच्चे-पक्के घर, पेड़-पौधे-मवेशी, उपले थापने वाली औरतें, नहर, खूनी पुल ये सब मिलकर अपनी चारित्रिक पहचान क़ायम करते हैं। इस रूमानी रचना में जीता-जागता भीकन भी सक्रिय प्रतीत होता है जिससे दूसरे तत्वों की वातावरण सृष्टि होती है। आस्थाएं, कल्पनाएं, पसंदें और आचरण सिर्फ़ मनुष्यों के ही नहीं, परिवेश के भी होते हैं। यहां डाकाज़नी, पौरुष, वीरता और परोपकार भी एक मूल्य है। आतिथ्य, वचन की निष्ठा, आन पर जान न्यौछावर करने की भावना की तरह जो एक मिथ के रूप में सामने आती है और आश्चर्य चकित कर देती है। इस कहानी का केंद्रीय आकर्षण क्या है? पौरुष और शक्ति का glorification (महिमा मंडन) और मिथसृष्टि बलवंत सिंह किस प्रकार करते हैं, एक अंश दृष्टव्य है:

"इतने में सांडनी सवार एक सिख मर्द पीपल के नीचे आकर रुका। उसने सांडनी को नीचे बिठाना चाहा। सांडनी बलबलाकर मचली और फिर धप से बैठ गयी। पंजाब के देहातों में छः फुट ऊंचा नौजवान कोई असामान्य बात नहीं मगर उस मर्द के कंधे गैरमामूली तौर पर चौड़े थे, हाथों और चेहरे की रगें उभरी हुई, आंखें सुर्ख अंगारा, नाक जैसे उक़ाब की चोंच, रंग स्याह, चौड़े और मजबूत जबड़े, सिर ऐसे दिखाई पड़ता था जैसे गर्दन में से तराश कर बनाया गया हो, जोड़े पर रंग बिरंग की जाली, जिसमें से तीन बड़े-बड़े फुंदने निकल कर उसकी स्याह दाढ़ी के पास लटक रहे थे। कानों में बड़े-बड़े मुंदरे। काले रंग की छोटी सी पगड़ी के

दो-तीन बल सिर पर, गरेबान का तस्मा खुला हुआ, सीने पर के घने बाल नुमायां, हाथ में तेज़ और चमकार छवी।"

यह विशेषता संवादों में भी झलकती है:

"मर्द ने चुभती हुई नजरों से उसकी तरफ़ देखा। अपने चौड़े कंधों को हरकत देकर बोला, "तेरा नाम क्या है।"

लड़की की आंखें नम हो गयीं। बोली, "गुरनाम।"

"तू वहां किसके साथ रहती है?"

"मेरी मां है, बेबे, वीर, चाचा, बापू सब ही रहते हैं।"

"मुझे अपने घर ले चल।" मर्द ने उसके साथ-साथ कदम बढ़ाते हुए कहा।

"मुझे तुझसे डर मालूम होता है ।"

मर्द के माथे पर बहुत सी त्योरियां पड़ गयीं। उसने अपनी दुल्हन की तरह सजी हुई सांडनी की महार पकड़ कर अपनी समझ से जरा नर्म लहजे में पूछा, "क्यों ? क्या तुम लोग सिख नहीं हो क्या?"

लड़की का चेहरा कानों तक सुर्ख हो गया।

लेकिन इस दृश्य-कल्पना का विरोधाभास कोमलांगी, मासूम और अल्हड़ गुरनाम से है जिसकी पवित्रता सांडनी सवार की सापेक्षता में और अधिक पवित्र तथा सांडनी सवार की भयानकता गुरनाम की सापेक्षता में और अधिक भयानक हो गयी है:

"गुरनाम एक गुड़िया की भांति थी। चलती तो इस सुबक रफ़्तारी के साथ कि पीछे छूटे हुए पांव के निशान, सुरमगीं और बदमस्त आंखे ऐसे गुनाह की दावत देती थीं जिससे बेहतर सवाब का तसव्वुर ज़ेहन में न आता था। लेकिन अभी वह मासूम थीं। शबाब की आमद-आमद थी जैसे खामोश और पुरसुकून समय में कहीं दूर से शहनाई की उड़ती हुई आवाज़ सुनाई दे जाये। अभी वह मर्दों के इशारों और कनायों का मतलब न समझती थी। अभी उसमें सुंदरता का अहं नहीं जागा था। इसलिए जो भी शख्स उससे बात कर लेता, यही समझता कि गुरनाम उससे मुहब्बत करती है।"

प्रेम के मर्म और रहस्य से उदासीन इस रूपसी के सामने हत्या और लूटपाट करने वाले जग्गा की घबराहट और बेबसी इस मिथक को कुछ और गहरा कर देती है।

यह निश्चित है कि गुरनाम जग्गा की दृष्टि का केंद्र है लेकिन उसके गुण (जैसे सादगी, भोलापन, निश्छलता और चंचलता आदि) जग्गा की बर्बरता और पाशविकता को और अधिक तीखा व मुखर कर देते हैं। मानो कि इन गुणों की सृष्टि इसीलिए की जा रही है ताकि जग्गा के पौरुष का प्रभाव और अधिक आलोकित हो सके। ग़ौर से देखा जाये तो जग्गा चरित्र भी है और टाइप भी। और यह टाइप अपनी आंतरिक बनावट में उस आर्कीटाइप पर निर्मित किया गया है जो सदियों से विभिन्न लोक-कथाओं

में नायक की हैसियत से भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप धारण करता रहा है। क्या यह आर्कीटाइप बलवंत सिंह के फिक्शन की केंद्रीय प्रवृत्ति नहीं? और क्या बलवंत सिंह की रूमानी दिशा और दृष्टि प्रायः और अधिकांशतया इस प्रवृत्ति से युक्त नहीं? अन्यथा क्या कारण है कि फल-फूल और शिकार पर निर्भर रहने वाली छोटी-छोटी आबादियों, दूर-दूर फैले हुए और कम आबाद खेत-खलिहानों, छोटे-छोटे गांव-देहात और कस्बों में डाका डालने वाले एक बर्बर व्यक्ति की कल्पना बलवंत सिंह के यहां बार-बार उभरती है। सामाजिक परिवेश के अनुरूप इसका रूप बदलता रहता है। बुनियादी मिथक वही है। और रूप इसलिए बदलता रहता है कि बलवंत सिंह हर बार नयी कथन-भंगिमा अपनाते हैं और अपनी कला से हर जगह उसको अलग पहचान देते हैं, यह सब प्रकट में या प्रच्छन्न रूप में इसी मिथक की अभिव्यक्ति है।

बलवंत सिंह के उपन्यास 'दो अकालगढ़' का पहला अध्याय दीदार सिंह है। यह दीदार सिंह 'पंजाब का अलबेला' कहानी के सांडनी सवार जस्सा सिंह या जग्गा का बदला हुआ रूप है। 'पंजाब का अलबेला' संस्मरण के रूप में लिखी गयी कहानी है। केवल 'दो अकाल गढ़' ही नहीं दूसरे उपन्यासों, जैसे 'काले कोस' और 'चक पीरां का जस्सा' के केन्द्रीय पात्र भी यही बहादुर और धाकड़ आदमी हैं। बलवंत सिंह की एक और श्रेष्ठ कहानी 'काली तित्तरी' बहादुर कपूरा सिंह ठठा वाला और ताड़ की तरह लम्बे बग्गा सिंह के आस पास बुनी गयी है (जिसका ज़िक्र आगे आयेगा), 'ग्रंथी' एक बिल्कुल दूसरे ढंग की कहानी है। लेकिन इसमें भी पंजाब की सिचुएशन एक ऐसे व्यक्ति के माध्यम से पैदा की गयी है जो सश्रम कारावास के बाद मुक्त होकर आ रहा है। कहानी के अंत में जब प्रबंधक की ओर से ग्रंथी को गुरुद्वारे से चले जाने का आदेश सुनाया जाता है और वह असहाय और हताश बाड़े के पास दोनों घुटनों पर कुहनियाँ टेक कर बैठा है। ठीक उसी समय बंतासिंह कंधे पर फावड़ा रखे आ निकलता है। बंतासिंह किसी औरत को अगवा करने के अपराध में डेढ़ वर्ष सश्रम कारावास काट कर लौटा है। "जेल की सख्तियों का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। वह बदस्तूर हट्टा-कट्टा है। पूरे इलाके में उसका दबदबा है और लोग उसके नाम से कांपते हैं। जब ग्रंथी बताता है कि उसकी किस्मत का फैसला हो चुका है तो बंता सिंह झल्ला कर उठ खड़ा होता है, "किसकी मज़ाल है, तुमको यहां से निकाले, ग्रंथी जी, तुम इसी जगह पर रहोगे और डंके की चोट पर रहोगे। मैं देखूंगा कौन माई का लाल तुमको यहां से निकालने के लिए आता है।" बंता सिंह की इस ललकार के बाद पूरी हक़ीक़त बदल जाती है।

'रास्ता चलती औरत' और 'तीन बातें' के केंद्रीय पात्रों की संरचना में इसी प्रकार के उद्धत व्यक्ति की कल्पना सक्रिय है। 'रास्ता चलती औरत' में बूटा सिंह अपनी नयी नवेली बीर बहूटी जैसी दुलहन को पहली बार मैके से अपने गांव ले जा रहा है

कि कोट गोरां नाम के गांव के पास जब पेड़ों के एक झुंड के पास खड़े नौजवानों की निगाहें अनायास दुल्हन की ओर उठ जाती हैं और उनमें से एक जब खास अंदाज़ से खंखारता है तो बूटा सिंह बिफर जाता है:

"बूटा सिंह ने अपनी लाठी दुल्हन के हवाले की और फिर उसने आगे से तहमद को समेट कर पूरे पल्लू को दोनों रानों में घुमाकर उसे पीछे की तरफ़ से नीचे पहने हुए कच्छे के नेफ़े तक अच्छी तरह ठूंस लिया। सब लोग एकटक उसकी हर हरकत ग़ौर से देख रहे थे। उसने लाठी को पहले अपनी उंगली पर टिका कर हवा में उठाया। पल भर रुकने के बाद उसने लाठी को हवा में खूब ऊपर तक उछाला। जब लाठी ऊपर से नीचे की तरफ़ गिरी तो उसे दोनों हाथों में दबोच कर दसों उंगलियों पर नचाना शुरू किया। अजब तमाशा था। ऐसा लगता था जैसे लाठी किसी क़िस्म का साज़ है जिसके तारों पर बूटा सिंह की तेज़ी से चलती हुई उंगलियां नाच रही थीं। क्या मजाल जो लाठी उसकी उंगलियों की गिरफ़्त से निकल कर गिर जाये।"

इसके बाद बूटासिंह ललकारता है कि है कोई माई का लाल जो सामने आये:

"लाठी पर अपनी गिरफ़्त के कमाल का प्रदर्शन करने के बाद बूटा सिंह ने उसे दोनों हाथों में थाम कर चारों तरफ घुमाना शुरू कर दिया—वो पैंतरे पर पैंतरे बदलने लगा। सरक लगाता हुआ कभी इधर कभी उधर निकल जाता। उसकी टांगों में गोया बिजली भरी थी। पांव के नीचे से धूल के हलके-हलके बादल बलबला कर हवा में उठने लगे। कुछ लम्हे तो ऐसे आये जब देखने वालों को लाठी नहीं महज़ उसका कौंधता हुआ साया दिखाई दे रहा था। लाठी थी कि बिफरा हुआ नाग, ऐसा लगता था कि न जाने कितने नाग फ़ज़ा में फुंकार रहे हैं। अगर बूटा सिंह हमलावरों से घिरा होता तो इस वक्त उसकी लाठी न मालूम कितनों का खून चाट चुकी होती और न जाने कितनी लाशें जमीन पर बिखर चुकी होतीं है।

आखिर बूटा सिंह ने लाठी रोक दी और उसकी बिरंजी मूठ पर ठोड़ी टेक कर खड़ा हो गया। हर शख्स दम-ब-खुद बैठा या खड़ा था।"

'तीन बातें' का रवेल सिंह जो नौकरी की तलाश में है, डाका डालने से तौबा कर चुका है क्योंकि उसकी प्रेमिका अमर कौर ने कह दिया है कि अगर तुम जेल गये तो मैं कुछ खाकर मर रहूँगी। इस दौरान उसकी भेंट एक पुराने साथी हरनाम सिंह से होती है जो प्रेरित करता है लेकिन अमर कौर का सोचकर रवेल सिंह ऐसा करने से रुक जाता है।

'वेबले 38' के अंत में जब उजड्ड बिसाखा सिंह जुल्म और बेइंसाफी के खिलाफ़ पाखंडी बुध सिंह के सामने तन कर खड़ा हो जाता है। तो जग्गा या बूटा सिंह की याद ताज़ा हो जाती है—

"सामने लम्बा-तड़ंगा बिसाखा सिंह खड़ा था। उसके चौड़े कंधे, मज़बूत टांगें, मछलियों वाले भरपूर बाजू, तनी हुई गर्दन, चौड़े-चकले हाथ......यों मालूम होता था कि उसके बदन में नसों के बजाय फ़ौलाद की तारें खींच दी गयी हैं... मज़बूत मग़रूर, अटल.."

कहानी 'बाबा महंगा सिंह' में महंगा सिंह भी बहादुर मर्द है। ज़मीन की जड़ों से उगने वाली ताकत की इस मिथक के निर्माण में बलवंत सिंह की लेखनी का प्रवाह दर्शनीय है:

"मंहगा सिंह बहैसियत इनसान बहुत दिलचस्प था। उसका राक्षसों की भांति डील-डौल, गैंडे की तरह खाल, मुरब्बे वाली फूली हुई हरड़ की-सी आंखें, घने बालों से ढका हुआ सीना, छाज की तरह कान, कदीमी बाबली बादशाहों की तरह बंटी हुई लम्बी दाढ़ी और मूंछें.....इस वक्त उसकी उम्र तीस के लगभग थी। घूंसा मारकर ईंट तोड़ डालता था। कई मार्के के डाके डाल चुका था..।"

'बाबा महंगा सिंह' अपने हास्यास्पद और भयानक दृश्य के कारण बेहद दिलचस्प कहानी है। जिसमें तीन कम अस्सी बरस का बाबा महंगा सिंह जो इस उम्र में भी दो-चार सेर दूध एक ही सांस में पी जाता है। और जो पहले डाके डालता था अब भक्ति करता है अपनी जवानी का किस्सा सुनाता है कि केला गांव के इर्द-गिर्द का इलाक़ा निहायत ख़तरनाक समझा जाता था। बड़े-बड़े दरख़्तों के झुंड और झाड़ियां कोसों तक चली गई थीं। रात आधी से ज्यादा गुज़र चुकी थी। महंगा सिंह के हाथ में एक लम्बा लठ और कमर से एक डेढ़ फुट की कृपाण लटकी हुई थी। अचानक दूर से एक अजीब दृश्य दिखाई देता है कि क़ब्रिस्तान में तेज़ रोशनी हो रही है या जैसे पास के श्मशान में कोई मुर्दा जलाया जा रहा हो। घनी झाड़ियों में आग के क़रीब कोई चीज़ हिलती हुई दिखाई देती है। पेड़ों की ओट से होता हुआ महंगा सिंह कुछ पास पहुंचता है तो गाय दिखाई देती है। बिल्कुल स्याह :

"वह स्याह गाय वीराने में तनहा खड़ी चुड़ैल का रूप मालूम होती थी। मैं वाह गुरु का नाम लेकर आगे बढ़ा। फिर ठिठक गया। कुछ इस किस्म का शुबह हो रहा था कि वहां कोई और हस्ती भी है। रात मुकम्मल तौर पर तारीक थी। दरख़्तों के वे हिस्से जहां आग की रोशनी नहीं पहुंच रही थी बड़े खोफ़नाक दिखाई दे रहे थे......मैंने जिंदगी बड़े-बड़े वीराने में बसर की है। कई अजायबात देखने में आये लेकिन जो मंज़र वहां देखा वह मरते दम तक न भूलूंगा......गाय के करीब एक कब्र के पास बड़ा-सा चूल्हा बना हुआ था। उसमें आग जल रही थी। कुछ बर्तन पड़े थे, पानी का एक कोरा मटका......इन सब चीज़ों के दरम्यान एक औरत......बीस-इक्कीस बरस की एक औरत, इस क़दर हसीन और पुरशबाब कि

ज़बान बयान नहीं कर सकती। मैं तो उसे देखकर हक्का-बक्का रह गया। सोचा न मालूम यह परी है सचमुच की, या किसी चुड़ैल ने परी का रूप धारा है।

उसने मेरे देखते-देखते चूल्हे में लकड़ियां डालीं आग भभक उठी, फिर उसने सिर से दुपट्टा उतार दिया उसके स्याह बाल दिखाई देने लगे। उसने मेंढों को खोला और फिर सारी चोटी खोलकर बाल बिखरा दिये और रुई की सदरी के बटन खोलने लगी। सदरी के नीचे एक मखमली वास्कट पहन रखी थी। उसके बटन खोलकर उसे भी उतार दिया और जब उसने कमीज़ के बटन भी खोलने शुरू किये तो मेरा दिल धड़कने लगा......वाह गुरु! वाह गुरु!!'

महंगा सिंह पहले तो गाय को छूकर देखता है कि कहीं भूत-प्रेत का मामला तो नहीं फिर हिम्मत करके औरत को पकड़ लेता है। वह वहशियों की तरह काटती है। मुक़ाबला करती है। बिल आखिर हाँपने लगती है। वह बताती है कि कई बरस पहले उसकी शादी एक बड़े साहूकार से हुई थी लेकिन अब तक औलाद के लिए तरस रही थी। किसी बूढ़ी औरत ने जंगल में जाकर यह सब कुछ करने को कहा। महंगा सिंह कहता है कि औलाद हासिल करने का यह तरीका नहीं और उसे अपनी तरफ खींच लेता है।

/यहां रात के गहन अंधकार में बलवंत सिंह ने जंगल और क़ब्रिस्तान का भयानक दृश्य निर्मित करके ऐसी घटना-स्थितियों का संयोजन किया है जो Grotesque की सौंदर्यात्मक अपेक्षाओं के अनुरूप हैं और मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। लेकिन महंगा सिंह केवल क़िस्सागो महंगा सिंह नहीं, बल्कि इसमें मनुष्य की आदिम छवि दिखाई देती है, वह ज़मीन का आदमी है जिसकी समूची संवेदनाएं मिट्टी की जड़ों से फूटती हैं। लम्बा-चौड़ा, कड़ील, शक्तिशाली, पौरुष का प्रतीक, अपनी आदिम मनोवृत्ति से जुड़ा हुआ—औरत जब सदरी उतारकर स्याह बाल खोल देती है तो रात के अंधेरे जंगल की आग में रूप-सौंदर्य का आश्चर्यकारी चमत्कार प्रतीत होती है। वासना की तृप्ति के बाद जब दोनों बिछड़ते हैं तो महंगा सिंह उसका कंठा पकड़ लेता है। वह हैरान होकर पूछती है:

"तुम्हारा मतलब" महंगा सिंह कहता है, "इससे पहले तो मेरा कोई मतलब नहीं था। मेरा असल मतलब यही है।"

"अकेली जानकर मेरे जेवरों पर हाथ मार रहे हो"

"चलो, गांव के जितने आदमियों के सामने कहो तुम्हारा ज़ेवर उतार लूं।"

औरत सारे ज़ेवर उतार कर महंगा सिंह के हवाले कर देती है।

यह बताने की ज़रूरत नहीं कि एक की ज़रूरत संतान यानी ऐंद्रिकता, दूसरे की धनार्जन—दोनों सामाजिक सभ्यता एवं संस्कृति की कृत्रिमता से उन्मुक्त अपने-अपने तत्वों की सच्चाई से उत्पन्न हैं और इस सच्चाई की पूर्णता का मूर्त रूप हैं।

साफ़ ज़ाहिर होता है कि इस प्रकार के उद्धत और सशक्त चरित्रों से जो पौरुष का साक्षात रूप हैं और बलवंत सिंह की कथा-कृतियों में बार-बार उभरते हैं; बलवंत सिंह की किसी आंतरिक या मानसिक अपेक्षा का गहन सम्बंध प्रतीत होता है। यह भी हो सकता है कि इसमें बलवंत सिंह की सक्रिय चेतना का कम हस्तक्षेप हो और उनकी मानसिक बनावट में ही कुछ ऐसे तत्व शामिल हों जो अनायास या निरुद्देश्य रूप से उन्हें इस प्रकार के उद्धत, निर्भीक और बहादुर व्यक्तित्व वाले चरित्रों की ओर आकर्षित कर लेते हों। बलवंत सिंह को मानवीय सभ्यता और समाज की मुक्ति ऐसे चरित्रों द्वारा संभव लगती है या नहीं, लेकिन इतना तो नज़र आता है कि इस प्रकार के चरित्र बलवंत सिंह के प्रिय चरित्र हैं और वह स्वयं उनसे तादात्मय स्थापित करके किसी रहस्यमय और गूढ़ पक्ष को उद्घाटित करते हैं। यह पक्ष कौन-सा है या यह मनोवैज्ञानिक ग्रंथि क्या है? इस पर हम दूसरे भाग में चर्चा करेंगे। यह आदर्शवाद या यथार्थवाद की बड़ी समस्या का हिस्सा भी है। फिर भी यह बात स्पष्ट रहे कि सामने की यह वास्तविकता पूरा यथार्थ नहीं है। इसका दूसरा रुख़ भी है जो पहले रुख़ के आदर्श या रूमान से हटकर भी हो सकता है।

यह बहस बहरहाल इस आलेख के दूसरे भाग के बाद तीसरे भाग में आयेगी।

(2)

जैसे कि हम देख आये हैं कि 'जग्गा' या 'महंगा सिंह' या 'दो अकाल गढ़' के दीदार सिंह, 'पंजाब का अलबेला' के जस्सा सिंह 'रास्ता चलती औरत' के बूटा सिंह 'तीन बातें' के रवेल सिंह या इस प्रकार के बीसियों अन्य चरित्रों का बलवंत सिंह के कथा-साहित्य में हावी होना कोई संयोग की बात नहीं है। ये समस्त चरित्र बलवंत सिंह की कथात्मक सृष्टि हैं, उनकी कला की निर्मिति हैं। खुद बलवंत सिंह लाहौर में रहे हों, दिल्ली या इलाहाबाद में—उनके अवचेतन में एक अलग दुनिया ही आबाद थी। उनका पालन-पोषण एक शहरी मध्यवर्ग के व्यक्ति के रूप में हुआ लेकिन अपनी कथा रचनाओं में वह बार-बार अपने शहरी व्यक्तित्व से बचाव करते हैं। और शक्ति की सामूहिक मिथ से बहादुरी की वह भयानक किंतु नेक मानवीय आकृतियां तराशते हैं जो उनके सर्जनात्मक मानस (psyche) में बसी हुई थीं। यह उनके सामाजिक बोध की वह विशिष्टता है जो उन्हें अपने वर्तमान से जोड़ती है और समूचे सांस्कृतिक एवं नैतिक विमर्श (Discourse) को एक ऐसा अर्थ प्रदान करती है जो अर्थ सर्जनात्मक मानस में बसे आद्य-बिम्ब (आर्की इमेज) उसे देना चाहते हैं। ये लोग मात्र चरित्र नहीं हैं। ये टाइप भी नहीं हैं। बलवंत सिंह पर लिखने वालों ने अक्सर उन्हें व्यक्ति मात्र के रूप में व्याख्यायित किया है। यह दृष्टि-भ्रम है। उनके पीछे सांस्कृतिक एवं नैतिक अर्थ का समूचा संसार तह-दर-तह मौजूद है। वह व्यक्ति जो कहीं-कहीं सांडनी सवार

है। कहीं चक पीरां का रक्षक जस्सा है, कहीं फावड़ा टेक कर ललकारने वाला बंता सिंह है, कहीं क़ब्रिस्तान में औरत को पकड़ने वाला महंगा सिंह, या लाठी को सितारों की तरह नचाने वाला बूटा सिंह—दरअसल एक आत्मिक चिह्न (Psychic imprint) है जोकि बलवंत सिंह के मनोजगत की पहचान है और बलवंत सिंह की कलात्मकता जिसके अभाव में आधी-अधूरी रहती है। यह आद्य-बिम्ब जैसे कि बलवंत सिंह के मनस्पटल पर गहरा खुदा हुआ है या बलवंत सिंह की सोच इस रंग में रंगी हुई है। यहां तक कि भाषा जो सामूहिक अवचेतन और अचेतन में गुंथी हुई होती है और इसी ताने बाने से अर्थ के अंधेरे-उजाले बुनती है। बलवंत सिंह जब-जब क़लम उठाते हैं और अपने सर्जनात्मक अंतस की भाषा में बोलते हैं अर्थात् बलवंत सिंह जब भी अपनी कला की 'मातृभाषा' में बात करते हैं तो यह चिह्न या लक्षण अपने-आप रोशन हो जाता है और कहानी के समूचे वातावरण को अपने रंग में रंग देता है। पौरुष-शक्ति, बहादुरी, बर्बरता, भयानकता, क्रूरता, नेकदिली, मुक्ति दान, कष्ट निवारण, दानशीलता, उदासीनता और उदारता सब इसी के विविध पक्ष हैं जो एक प्रकार से मानवीय सृष्टि के बेनाम प्राक्ऐतिहासिक सम्बन्धों से प्राप्त होने वाली रोशनी के निशान हैं। जो कथात्मक विमर्श (Discourse) में हर्ष और उल्लास का आलोक भरते हैं और कहानी के अर्थ को नयी शक्ति देते हैं और इस शक्ति से जुड़े हुए मानवीय तत्व को आलोकित करते हैं।

इस बातचीत करने के बाद यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि सर्जनात्मक मानस या चित्त (PSYCHE) की यह अपेक्षा एक सौंदर्य मूल्य है (यानी एक कथात्मक मूल्य) जिससे रचना में प्रभावक्षमता उत्पन्न होती है। निसंदेह यह मूल्य एक यथार्थ है, एक आदर्श। इसके रूमानी होने में संदेह नहीं लेकिन ठोस अभिव्यक्ति के कारण यह घने ज़मीनी और सामाजिक रिश्तों में गुंथी हुई है। दूसरे शब्दों में नस्ल या जाति विशेष के मनोविज्ञान की यह अभिव्यक्ति ज़मीनी रिश्तों में रची-बसी है। हालांकि पंजाबियत की किसी प्रकार की धारणा बलवंत सिंह के युग में नहीं थी। यह उर्दू को बलवंत सिंह की देन है। यह कोई निरपेक्ष और निस्संग अवधारणा नहीं बल्कि ये मानसिक और भावनात्मक रवैये, धारणा, आदर्श, उमंगें, आकांक्षाएं, अभिलाषाएं लालसाएं, सुख-दुःख, प्रेम, मुहब्बत, पौरुष और बहादुरी के प्रतिमान तभी अर्थपूर्ण होते हैं जबकि वे सदियों से चली आ रही बस्तियों, घरौंदों, वतन और आबादियों (Habitat) के साथ-साथ आते हैं। इन बस्तियों की बनावट भी दो प्रकार की होती है—एक ज़मीनी और दूसरी पर्यावरण (Ecology) सम्बंधी। यानी गांव, देहात और कस्बों के कच्चे-पक्के घर, गलियां, पगडंडियां, हवेलियां, रहट, बैलों की जोड़ियां, गली, मुंडेरे, लहलहाती फसलें, मेहनतकश किसान, सरकंडों की झोंपड़ियाँ उपले थापती और चूल्हा जलाती औरतें, जुगाली करती गाय-भैंसें, डकराते मवेशी, मुर्गियां, चूजे, पिल्ले, घोड़े-घोड़ियाँ, सीना

फुलाकर मस्तानावार चलती सांडनियां, उजला क्षितिज, फैली धरती, झुका आकाश, निखरती सुबहें, संवलाती शामें, अंधेरी रातें और वह सब कुछ जो बलवंत सिंह के यहां सांस लेता है। इसको गांव, देहात या क़स्बा कहना इसको परिसीमित करना है, सिर्फ़ आबादी या आबादी का जीता-जागता अलबम ही नहीं, धरती और आकाश का पूरा भूगोल, टीले-मैदान, खेत-खलिहान, झाड़-जंगल, सुनसान बयाबान, धूल उड़ाते रास्ते और नदी-नाले और दरिया और पुल और ऊँचे घने पेड़ और वनस्पति—लेकिन सिर्फ़ यह भी बलवंत सिंह का पंजाब नहीं बल्कि ज़मींनी और आसमानी भूगोल के साथ-साथ मानवीय भूगोल भी जो बस्ती (Habitat) को सही अर्थों में बस्ती (Habitat) बनाता है, अर्थात स्त्री-पुरूष, बच्चे-बूढ़े, अल्हड़ नवयुवतियां, कलफ़ लगाये तुर्रा-जमाये साफे, पगड़ियाँ, धारीदार तहमद, चटकीले और रंगारंग लिबास, ओढ़नियां, दुपट्टे, और लहरियां, गोटे और किनारियाँ, मेले-ठेले, तीज-त्योहार, स्वांग, गिद्दे, भंगड़े, हीर की तानें, मिर्ज़ा-साहबान, शबद और काफ़ियाँ, ढोलक, गीतों के बोल, रिश्तेदारियां, रस्मो-रिवाज, तौर-तरीके, पहनावे, सरसों का साग, लस्सी और मक्के और बाजरे की रोटियां, किस्से कहानियां, कथाएं, गाथाएँ जो सब मिलकर इस पच्चीकारी (Mosaic) को रंगारंग दृश्य का रूप देते हैं। जो साइकी का ढांचा भी हैं और उसका भौगोलिक रूप और सामाजिक परिवेश भी; और जिस सबकी समग्र एवं सामूहिक अभिव्यक्ति बलवंत सिंह की कथा-सृष्टि का मूल आधार है। यह बात स्पष्ट रहे कि जिस प्रकार आद्य-बिम्ब एक यथार्थ या मूल्य है, उसी प्रकार पर्यावरण (Ecology) और मानवीय आबादी (Habitat) और उसका सामाजिक रंग-रूप भी बलवंत की कला का एक सौंदर्य-मूल्य है जो न केवल उसे विशिष्ट अर्थवत्ता देती है बल्कि उसकी अपील को बढ़ाती भी है और प्रभाव को गहराती है। दूसरे शब्दों में बलवंतसिंह के चरित्र मनोवैज्ञानिक सृष्टि तो हैं ही इसके साथ ये प्राकृतिक दृश्यावली, ये खेत-खलिहान, कुएं-रहट, और वातावरण भी बलवंत सिंह की कलात्मकता में स्वयं एक चरित्र की भूमिका रखते हैं और आबादी व समाज का दर्जा भी एक चरित्र का ही है, जो बराबर सांस लेता है और जीवन की क्रियाओं में शामिल भी है। ये मनुष्य की भांति संवाद भी करते हैं और कहानी को नये अर्थ से भर देते हैं। यह मूल्य या आदर्श या यथार्थ जितना काल्पनिक है, शिराओं में रक्त की भांति प्रवाहित है उतना ज़मीनी, वास्तविक और वस्तुनिष्ठ भी है। बलवंत सिंह की अभिव्यक्ति इस परिवेश में इस कदर डूबी हुई है कि इसके ताने-बाने से अलग करके देखना संभव नहीं है। ऐसा लगता है जैसे किसी टुकड़े को एक जीते-जागते ज़िंदा बदन से काट कर अलग किया गया है :

"छोटा-सा गांव था। दो-एक हवेलियों को छोड़कर बाकी तमाम मकानात गारे के बने हुए थे। वही जोहड़, वही बबूल, शरीनहा और बेरियों के दरख़्त, वही घने पीपल के तले रूं-रूं करते हुए रहट, वही सुबह के वक्त कुओं पर कुंवारियों के

जमघट, दोपहर को बड़े-बूढ़ों की शतरंज और चौपड़, शाम को नौजवानों की कबड्डी और पुरसुकून रातों में वारिस अली शाह की हीर, हीर और काज़ी के सवाल और जवाब, वही मज़बूत नटखट और चंचल छोकरियां और वही सीधे-सादे ऊंचे-पूरे और गठीले नौजवान......''

बलवंत सिंह के यहां यह पृष्ठभूमि सिर्फ़ पृष्ठभूमि नहीं रहती, कहानी में गुंथकर उसकी कथा-संरचना का ऐसा अंग बन जाती है जिसके अभाव में अर्थ के स्तर पर अभिव्यक्ति अधूरी प्रतीत होती है। यह घर-बार और आबादी जीतू के बिना और खुद जीतू इस घर-बार और आबादी के भरे-पूरेपन के बिना एक चरित्र के रूप में अपनी अस्मिता ही नहीं रखती :

''शाम हो चुकी थी। घर में पकाने के लिए कोई चीज़ न थी। इसलिए जीत कौर पैसे आंचल में बांधकर दाल लेने के लिए घर से बाहर निकली लेकिन चार क़दम चलकर रुक गयी। सामने पीपल के नीचे मुगदर के करीब फम्मन सिंह चारपाई पर बैठा मूंछों को बल दे रहा था।

जीत कौर छोटी-छोटी कांटेदार झाड़ियों से शलवार बचाती हुई चली जा रही थी जामुन के क़रीब बेरों की झाड़ियां थीं। उसने थोड़े से बेर चन्नन के लिए तोड़ लिये फिर आगे बढ़ गयी। उसके चेहरे पर उदासी और ग़ुस्सा उभर आया। आख़िर फम्मन सिंह उसे क्यों तंग करता है? अगर और नहीं तो सुमितरी उससे कम हसीन तो न थी। वह उसे क्यों नहीं छेड़ता? लेकिन सुमितरी के तीन जवान भाई थे। अगर कोई उसकी तरफ उंगली भी उठाये तो वे उसका खून पी जायें। यह खयाल आते ही उसे अपना भाई याद आ गया। उसका भाई गांव भर में सबसे ज़्यादा ऊँचे क़द का था। उसका सीना ऐसा था जैसे किसी बड़ी चक्की का पाट। एक बालिश्त ऊँची और मोरी गर्दन। चौड़े-चकले मजबूत हाथ। कलाई पकड़ने और कबड्डी खेलने में दूर-दूर तक कोई उसकी बराबरी का दावेदार न था। ये बातें याद कर-करके जीत कौर की आंखों में आंसू आ गये। भला आज उसका भाई ज़िन्दा होता तो क्या फम्मन सिंह की हिम्मत पड़ सकती थी कि उससे छेड़खानी करे।'' (सज़ा)

अब उस खेत ही को ही लीजिए जिससे जीत कौर का सामाजिक अस्तित्व प्रकट हो रहा है :

''चलते-चलते वह रुक गयी। सामने गन्ने के खेतों के पास हरा-भरा साग का खेत था। लेकिन वह खेत था तारासिंह का। उसने इधर-उधर देखा। मवेशी बांधने का मकान खाली मालूम होता था। रहट चल रहा था और पास ही बैल बंधा हुआ था।

उसने जब अच्छी तरह से देख लिया कि कोई नहीं है तो जल्दी-जल्दी साग तोड़ने लगी। अनायास एक आवाज़ सुनकर उसने सहम कर सिर ऊपर उठाया।

देखा कि दूर गन्ने के खेतों से तारू हाथ में फावड़ा लिये ऊंची आवाज़ से गालियां देता हुआ चला आता है। उसके जिस्म में सनसनी-सी पैदा हुई और वह साग वहीं फैंककर जल्दी-जल्दी दूसरी तरफ़ को चली गयी। इतने में तारू वहां पहुँचा। उसने तोड़ा हुआ साग हाथ में उठाकर देखा और फिर उसकी तरफ़ लपका। इधर उसके छोटे-छोटे फटे हुए स्लीपर हरी घास पर बार-बार फिसलते थे। यह देखकर तारू उसे पकड़ा ही चाहता है, वह भाग कर खड़ी हुई। तारू भी दौड़ा। थोड़ा ही दौड़ने पर तारू ने उसे जा दबोचा। और उसकी कलाई को मज़बूती से पकड़ कर बोला, "क्यों री जीतू! हमसे ये चालाकियां? हर रोज तू ही साग चुराकर ले जाती थी। आज मैं भी इसी ताक में बैठा था।" (सज़ा)

'हिंदोस्ताँ हमारा' में जगजीत सिंह जो फ़ौज में है और बर्मा के मोर्चे पर जाने वाला है, दो-चार दिन की छुट्टी लेकर घर आया है ताकि मोर्चे पर जाने से पहले अपनी चुलबुली बीवी से मिल ले। लेकिन बीवी घर में नहीं है। वह मेले में गयी हुई है। अब देखिए मेले के वर्णन द्वारा कथाकार जगजीत सिंह और उसकी बीवी के चरित्र को किस प्रकार उभारता है:

"सिखों का जोड़ मेला एक बरस में एक ही मर्तबा लगता था। गुरु अर्जुन देव जी महाराज की याद में बड़े-बड़े दीवान लगते। पंजाब के दूर-दूर के मुक़ामों से लोग झुंड के झुंड आते थे। दो दिन तो इस जगह तिल धरने को जगह न मिलती थी। मर्द, औरतें, बच्चे-बूढ़े सभी जमा होते थे। इतनी भीड़ में भला जगजीत सिंह की बीवी का क्या पता चल सकता था।

बड़े गुरुद्वारे के इर्द-गिर्द दूर तक अलहदा-अलहदा शामियानों के नीचे दीवान लगे हुए थे। इन दीवानों में मर्द भी शामिल थे औरतें भी। उसने सोचा मुमकिन है वह किसी दीवान में ही बैठी हो? वह भागा-भागा एक-एक दीवान में घुस गया। स्टेज पर नई रोशनी का एक सिख जंटलमैन खड़ा हुआ था। वह सिख क़ौम के किसी मसले पर जदीद (आधुनिक) रोशनी में बहस कर रहा था।

एक और बड़े मजमे में बहुत औरतें बैठी दिखाई दीं। वह ख़ुद लम्बे क़द का शख़्स था। लेकिन उसके आगे खड़े हुए तुर्राबाज़ सिख नौजवानों की पगड़ियों के फैले हुए कलगे उसके रास्ते में आड़े आ रहे थे। वह भी मजमे में घुसकर खड़ा हो गया। यहां डढ सारंगी वालों ने समां बांध रखा था। ढड छोटी ढोलक-सी होती है जिसे एक हाथ में पकड़कर दूसरे हाथ की उंगलियों से उसे बजाया जाता है। उसके साथ सितार बजता है। ये दोनों साज़ युद्ध संबंधी और जोशीले गानों के लिए मख़सूस हैं। सबसे ज़्यादा भीड़ इसी जगह थी। औरतों की तादाद भी बहुत ज़्यादा थी। जगजीत सिंह को पूरा यक़ीन था कि उसकी बीवी इस जगह ज़रूर मिल जायेगी।

वे तादाद में तीन थे। तीनों शख़्स खूब पले हुए भैंसों की तरह मोटे-ताज़े थे। रंग तांबे की मानिंद सुर्ख। गर्दन की रगें फूली हुईं। जोश में बिफरे हुए शेरों की तरह दिखाई देते थे। इस वक्त वे मशहूर शाया शाह मुहम्मद की लिखी हुई रज़्मिया नज़्म सुना रहे थे। इस नज़्म में शाह मुहम्मद ने बड़े पुरजोश अंदाज़ में सिखों और अंग्रेज़ों की लड़ाई का हाल बयान किया है। ढड वालों में एक शख़्स कभी कभी नस्र (गद्य) में जंग का नक्शा खींचता और फिर कोई बोल, वे तीनों हमआवाज़ होकर एक साथ पुरजोश अंदाज़ में गाने लगते।

चिट्ठी लिखी फिरंगियां खालसे नूं
तुस्सी कास नूं जंग मचानोवीं ओ
(अंग्रेज़ों ने सिखों को चिट्ठी लिखी कि आप जंग क्यों छेड़ रहे हैं।)
कई लख रुपया ले जाओ साथों
होर दिये जोंस फरमांदे ओ
(हम से लाखों रुपया ले जाओ और इसके अलावा जो कुछ आप तलब करें, देने को तैयार हैं)

इस अंश में हास्य और हल्के से व्यंग्य की जो अंतर्वर्ती लहर है, वह बलवंत सिंह के हंसमुख स्वभाव की ओर भी संकेत करती है कि वह जिस सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण कर रहा है, वहां वह अपनी घात में भी बैठ सकता है। ढड सारंगी वालों की रज़्मिया नज़्म में अंग्रेजों से जंग की जो परछाई हैं, उसका आशय कहानी के अंत में खुलता है। जब जगजीत सिंह को ट्रेन में सवार होते समय अंग्रेज डिब्बे में नहीं घुसने देता और जगजीत सिंह गाड़ी चलते समय उसे घसीटकर प्लेटफार्म पर खड़ा कर देता है और खुद दौड़कर गाड़ी में सवार हो जाता है।

गुरुद्वारे, शबद कीर्तन, धर्मशालाएं और दिनप्रति की गतिविधियां भी बलवंत सिंह की अभिव्यक्ति को एक विशिष्ट पहचान देती हैं:

"रवेल सिंह गुरुद्वारा डेरा साहब के सहन में सोया होता तो उसे मुंह अंधेरे ही जागना पड़ता। चूंकि गुरुद्वारे में सुबह-सुबह ही शबद कीर्तन शुरू हो जाता था और सहन की सफ़ाई के लिए मुसाफ़िरों को जगाना पड़ता था। इसलिए छत पर देर तक सोया रहा। यहाँ तक कि सूरज निकल आया और तेज़ धूप में शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की समाधि का कलश जगमगा उठा।

कीर्तन शुरू हो चुका था और गुरु प्रेम के मतवाले नर व नारी जमा हो रहे थे। रवेलसिंह को अपनी गफ़लत पर बड़ी शर्म मेहसूस हुई। जब वह गांव में था तो कभी इतनी देर से नहीं उठा था। लेकिन जब से वह लाहौर में आया था, दिन भर आवारा गर्दी करने के बाद इस क़दर थक जाता था कि सूरज उगने तक ग़ट रहता था।"

(तीन बातें)

इन अंशों को यदि इन कहानियों के तारतम्य में पढ़ा जाये तो अंदाज़ा होगा कि ये सांस्कृतिक गतिविधियां और क्रियाकलाप इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अभिन्न अंग हैं। यों यह कैफ़ियत बलवंत सिंह की अभिव्यक्ति का विशिष्ट गुण है। ये कहानियां अगर बलवंत सिंह की निहायत कामयाब कहानियां हैं या इनकी गिनती बलवंत सिंह की बेहतरीन कहानियों में की जा सकती है तो इसका बड़ा कारण यह है कि यह नैतिक एवं सांस्कृतिक संरचना है, जिसने थीम का दर्जा प्राप्त कर लिया है। 'ग्रंथी' में ग्रंथी के चरित्र की अर्थवत्ता का सम्बन्ध गुरुद्वारे के आध्यात्मिक वातावरण और गुरुद्वारे की सांस्कृतिक गतिवधियों से है। इस कहानी में ज़िंदगी इसी से सांस लेती है:

> "सतनाम—ये शब्द हमेशा की तरह ग्रंथी जी के मुंह से निकले और उनके क़दम रुक गये, लेकिन उनके कछहरे का लटकता हुआ इज़ारबंद घुटनों के करीब झूलता रहा।"

ग्रंथी पर आरोप है कि उसने गुरूद्वारे में किसी औरत का हाथ पकड़ा है और उससे छेड़छाड़ की है। अतएव फैसला किया जाता है कि कल संक्रांति का काम निमटाकर परसों को चलता कर दिया जाये। ग्रंथी और उसकी बीवी को मालूम है कि जो आरोप लगाया गया है वह बेबुनियाद है लेकिन उनकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करे ? इसी फ़िक्र में ग्रंथी की आंखें लग जाती हैं:

> "जब जागा तो तारे झिलमिला रहे थे। हवा में खुनकी थी। बाड़े में बूढ़ा बैल सींग हिला रहा था और उसके गले में पड़ी हुई घंटियां बज रही थीं। गुरुद्वारे के उसके छोटे से मकान के सेहन में उसकी बीवी दही बिलो रही थी। दही बिलोने की आवाज़ इस बात का यक़ीनी सुबूत थी कि अब सुबह होने वाली थी। एक झाड़न कांधे पर डाले, वह खेतों में से होता हुआ बाड़े में वापस आया और बैल की रस्सी खोलकर रहट की तरफ बढ़ा।
>
> पुरानी तर्ज़ का यह रहट ज़मीन की सतह से बहुत ऊँचा था। ऊँचा गोल चबूतरा जहां से गोबर मिली मिट्टी नीचे गिरती रहती थी। चबूतरे के दोनों तरफ़ गारे की बेडौल-सी टेढ़ी-मेढ़ी दो दीवारें खड़ी थीं। उन पर पेड़ काट कर एक लम्बा लठ टिका दिया गया था। उसके बीचों-बीच चरखड़ी की लकड़ी घुसी हुई थी। पास ही दूसरी चरखड़ी उसमें दांत जमाये खड़ी थी। निचली चरखड़ी के पास लकड़ी का कुत्ता जो उसको पीछे की जानिब घूंसे से रोकता था। जब बैल को जोत दिया गया तो कुआं अजीब सुरों में रूँ-रूँ की आवाज़ निकालने लगा।"

एक अरसे तक ठोकरें खाने के बाद वह उस गुरुद्वारे में ग्रंथी नियुक्त हुआ था। यहां उसे सब प्रकार की निश्‍चिंतता थी। यहां कहानी की केंद्रीय स्थिति ग्रंथी की सत्ता और उसके भविष्य की अनिश्‍चितता है। सारी कहानी इस चिंता और परेशानी के

इर्द-गिर्द घूमती है कि अब उसका क्या होगा? एक के बाद एक कई घटनाएं हैं अर्थात् रोज़मर्रा, गुरुद्वारे की गतिविधियां, दृश्यों और जानवरों और पेड़-पौदों और पक्षियों से संबंधित घटनाएं जो ग्रंथी के जीवन का अभिन्न अंग हैं। कथानक इन्हीं के सहारे आगे बढ़ता है और प्रत्येक क़दम पर ग्रंथी का विविधतापूर्ण चरित्र इस समूचे सांस्कृतिक वातावरण का हिस्सा बनकर उभरता रहता है। उसे अपने बेगुनाही का अहसास तो है, प्रत्येक घटना के बाद उसकी आध्यात्मिक आस्था भी प्रबल होती जाती है कि शायद कोई सूरत पैदा हो :

"आज संक्रांत थी।

सफाई और छिड़काव के बाद टाट फ़र्श पर बिछाया गया। ग्रंथ साहब पर सिल्क के रूमाल डाल दिये गये। चवरी भी साफ़ करके करीब रख दी गयी। फिर वह अंदर से हार्मोनियम, ढोलकी, चिमटा, छैने वगैरह गाने-बजाने के साज़ उठा लाया। उसकी बीवी पास खड़ी दातोन कर रही थी। उन्होंने एक दूसरे की तरफ देखा। दोनों को इस बात का अहसास था कि जब उनको वहां रहना ही नहीं तो उनकी बला से वे काम भी क्यों करें? लेकिन यह गुरुघर का काम था । यह तो गुरूद्वारे की सेवा थी। किसी पर क्या अहसान था। अपनी ही आख़िरत का सवाल था......और दोनों के दिलों में एक हल्का-सा अहसास भी जागा कि मुमकिन है कोई ऐसी सूरत निकल आये कि उनका जाना रद्द हो जाये।"

हाथ में शंख लिये वह गुरुद्वारे की टूटी-फूटी चार दीवारी से बाहर निकल आया :

"दरवाज़े के करीब दरख़्त का एक भारी भरकम तना पानी के गढ़े में धंसा पड़ा था। इर्द-गिर्द गुरुद्वारे के वे खेत थे जिनमें उसने खुद हल चलाया था, बीज बोया था। चांदनी और अंधेरी रातों में पानी से सींचा था। निराई की थी। इन खेतों से उसका कितना गहरा संबंध था। उसका पसीना इन खेतों की भुरभुरी मिट्टी में जज़्ब हो चुका था। अब वह अपनी अमानत किसी सूरत में वापस लेने का हक़दार न था। करीब ही बड़ का एक बूढ़ा दरख़्त था जिसके बारे में एक कहानी मशहूर थी कि गुरुओं के ज़मानें में एक निहायत पाकबाज़ शख़्स इस गुरुद्वारे में सेवा करता था। उसने अपनी उम्र इसी जगह गुरुद्वारे के चरणों में बिता दी। यहां तक कि यह बूढ़ा हो गया......"।

शंख बजाने के वह बाग़ में जाता है, अंगूर की आड़ी-तिरछी बेलों को लकड़ियों के साथ लगा-लगा कर बांधता है। हरे धनिये और मिर्चों की क्यारी को ठीक करता है। अनार के पेड़ खामोश समाधि लगाये दरवेशों की मानिंद नज़र आते हैं। बाग का कितना हिस्सा बेकार पड़ा था। सोचता है झाड़ियों और मदार के अपने-आप उगे पेड़ों को साफ़ कर के सब्ज़ियां लगाये, आदि।

"भट्टी के क़रीब उसने कढ़ाह परशाद का कुल सामान इकट्ठा कर दिया। लकड़ियां और मोटे-मोटे उपले भी एक तरफ़ ढेर कर दिये और शंख लेकर फिर पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। तीसरी मर्तबा शंख पूर कर वह देर तक उसी जगह खड़ा रहा। धूप चिलचिला रही थी। आंखें धूप में तपी हुई हवा की गर्मी को बर्दाश्त न कर सकती थीं। उसने आंखों पर नज़र रखकर गांव पर नजर जमा दी। शायद कोई सूरत नज़र आ जाये।"

आख़िरकार लोग आना शुरू होते है। वह हाथ-पांव धोकर पगड़ी को दुरुस्त करता है। गले में पीले रंग का कपड़ा डाले 'वाह गुरु', 'वाह गुरु' कहता हुआ ग्रंथ साहब के पास जा बैठता है:

"ग्रंथ साहब से रूमाल हटाकर उनको एहतियात से लपेट जिल्द के नीचे दबाते हुए मुतबर्रक किताब को खोला और आंखें मूंदकर चवरी हिलाने लगा।

लम्बे-लम्बे घूंघट निकाले औरतें चार दीवारी के अंदर दाख़िल हुईं। उनमें से बाज़ नई नवेली दुलहनें थीं जिन्होंने कुहनियों तक चूड़ियां पहन रखी थीं। सुर्ख रंग की कमीज़ सलवार में गठड़ी-सी बनी हुई वह बीर बहूटी की मानिंद दिखाई देती थीं। गुरु ग्रंथ के सामने पैसे, बताशे, फूल, थालियों में दालें, चावल, आटा वग़ैरह रख वे माथा टेकतीं और एक तरफ़ बैठ जातीं। लड़कियों में कुछ ने हारमोनियम पकड़ लिया। एक लड़का पिछले तख़्ते को हिला-हिला कर हवा देने लगा। दूसरा अपनी उंगलियों से लकड़ियों के स्याह सफेद सुरों को बेतहाशा दबाने लगा। एक ने ढोलकी बजानी शुरू की। दो लड़के बड़े चिमटे को बजाने लगे। छैने भी छनाछन बोलने लगे। उधर औरतें आपस में तबादला-ए-ख़याल करने लगीं।"

"अब मर्दों की आमद शुरू हुई। मोटे खद्दर के तहबंद बांधे, घुटनों तक लम्बे कुर्ते पहने सिरों पर आठ-आठ दस-दस गज कलफ लगी पगड़ियां लपेटे, हाथों में लोहे और पीतल की शामों वाली मज़बूत लाठियां थामे और अपनी दाढ़ियों को खूब चिकना किये हुए आये और माथा टेक-टेक कर वे इधर-उधर बैठने लगे। उनमें ऊंचे कद के मज़बूत नौजवान भी थे जिनकी तहमद रंगदार थी। तहमद के पिछले हिस्से एड़ियों में घिसटते आते थे। कुछ जो शलवारें पहने हुए थे उनके रंगीन रेशमी इज़ारबंद ख़ास तौर से घुटनों तक लटक रहे थे। पगड़ियों के तुर्रे अकड़े हुए थे। ऐसे छैल-छबीले भी थे जिन्होंने पगड़ी का आखिरी सिरा घुमा फिरा कर पगड़ी के अगले सिरे पर आन ठूंसा था जैसे किसी पले हुए मुर्गे के सिर पर उसकी शानदार कलग़ी।

मर्दों के पहुंच जाने पर कार्रवाई शुरू हुई। चंद नौजवानों ने बढ़कर साज़ संभाले, एक-एक इलायची और लौंग मुंह में डाल कर साज बनाने शुरू किये। हारमोनियम के साथ ताल पर ढोलकी बजने लगी। चिमटे वाले ने झूम-झूम कर

चिमटा बजाना शुरू किया। उधर छैने भी टकराये। हारमोनियम वाले ने मुंह खोलकर एक लम्बी 'हू' की आवाज़ निकालने के बाद गाया—

'एथे बैठ किसे नहीं रहणा मेला दो दिन दा'

इतना कहकर वह लगातार मुंह हिलाने लगा । ढोलकी वाले की गर्दन हिलती थी तो चिमटे वाले का धड़।

जब एक बार कार्रवाई शुरू हो गयी तो मुखिया लोगों ने आपस में काना फूंसी शुरू कर दी। कई मसले बहस के बीच आये।

शबद कीर्तन के बाद श्री गुरुग्रंथ साहब की पवित्र बानी पढ़कर हाज़िरीन को सुनाई गयी। इसके बाद ग्रंथी चौकी पर से उतरा और अरदास (दुआ) के लिए गुरुग्रंथ साहब के सामने हाथ बांधकर खड़ा हो गया। हाज़िरीन ने भी वैसा ही किया। सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ग्रंथी ने आंखें बंद कर लीं और अरदास शुरू की—

प्रथम भगती सुमर के गुरु नानक लई ध्याय

फिर अंगद गुर ते अमरदास रामदास से हो सहाय......."

अरदास के बाद ग्रंथी मन ही मन में कहता है, 'सच्चे पादशाह से दिलों का हाल छुपा नहीं', फिर जो बोले सो निहाल सत सिरी अकाल, कढ़ाह परशाद बंटता है। लोगों के विदा होने के बाद चंद बड़े लोग बैठे रह गये। जो प्रसाद बचा हुआ था वह उनको बांट दिया गया। हिसाब-किताब होता है और ग्रंथी से कहा जाता है कि रुख़सत होने से पहले चाबियां बग्गा सिंह नम्बरदार को दे। ग्रंथी की सब उम्मीदें ख़त्म हो जाती हैं। बीवी सामान बांधना शुरू कर देती है और ग्रंथी विकलता के साथ इधर-उधर टहलने लगता है।

"अपने दोनों हाथ पीठ पर बांधे वह तालाब के करीब खड़ा होकर उसके हरे-भरे पानी को देखने लगा। उसके किनारे टूट-फूट गये थे। एक दो जगहों से सीढ़ियों की ईंटें भी उखड़ गयी थीं। काई जमी हुई थी।

उसके पास पुरानी समाधि थी। जिसकी दीवारों पर जाबजा चूना उखड़ा हुआ था। उसकी दीवारों पर पुराने ज़माने की रंगदार तस्वीरें बनी हुई थीं। पेड़ की छांव तले बाबा नानक बैठे थे। एक तरफ़ भाई बाला और दूसरी तरफ़ भाई मर्दाना। पेड़ की डाली से पिंजड़ा लटक रहा था। जिसमें से एक सुर्ख चोंच वाला तोता साफ़ दिखाई दे रहा था। इसी हुजरे (कमरे) में सातवें गुरु साहब परमात्मा की याद में डूबे रहते थे। तीन चार बरस पहले की बात थी कि एक सिख इसी हुजरे में बैठकर बिला नाग़ा भक्ति किया करता था। एक बार रात के वक्त अचानक हुजरा रोशन हो गया, ज़र्रा-ज़र्रा दिखाई देने लगा। इतने में एक नूरानी सूरत नज़र आयी। लेकिन वह सिख जलवे की ताब न ला सका। वह भाग कर बाहर निकल आया और

फ़िलफ़ोर गूंगा हो गया। इसके बाद किसी ने उसे बोलते नहीं सुना......ग्रंथी ने हुजरे का दरवाज़ा खोल कर उसके नमदार फ़र्श पर अपना नंगा पांव रखा। और चुपचाप खड़ा हो गया। इतने में उसकी बीवी वहां आयी और उसकी अनमनी सूरत देखकर परेशान सी हुई। वह उसको अपने साथ ले गयी।''

आखिरकार सूरज डूब जाता है। अंधेरा बढ़ने लगता है। ग्रंथी बाड़े के पास चारपाई पर बैठा कुहनियां टेके उदास बैठा है कि बंता सिंह कंधे पर फावड़ा रखे दिखाई देता है जो किसी अपराध की सज़ा में सश्रम कारावास काटकर आया है। इसके बाद वह होता है जिसके लिए समूची चरित्र और वातावरण सृष्टि की गयी थी। अर्थात् ग्रंथी की विपदा सुनने के बाद वह गुरूद्वारे के स्वतः नियुक्त चौधरियों को ललकारता है और ग्रंथी से कहता है, ''तुम डंके की चोट यहीं रहोगे। मैं देखूंगा कौन माई का लाल तुम को निकालता है?'' ग़रज़ यह है कि शक्ति के बल पर अपराध की व्याख्या बदल जाती है। अगले दिन सुबह होते ही मशहूर हो जाता है कि ग्रंथी बेचारा तो मासूम है, सारी शरारत लाजो ने खुद की थी। देखा जाये तो सारा कथानक परिवेश है और सारा परिवेश कथानक है। अब अंत में यह स्पष्ट करने की ज़रूरत नहीं रह जाती कि जिस तरह आद्यबिम्ब बलवंत सिंह के कथानक की पहचान हैं, उसी तरह यह परिवेश और सांस्कृतिक भूगोल भी बलवंत सिंह के कथानक में अंतर्ग्रथित हैं और रूमानी भावनाओं का अंग भी हैं।

(3)

जिन विशेषताओं का अब तक हम ज़िक्र कर आये हैं—अर्थात् पौरुष का आद्यबिम्ब या प्रकृति जो आज तक भी विकृत नहीं हुई है, अपने मूलरूप में विद्यमान है या मानवता जो अब भी व्यक्ति की अंतरात्मा में रची-बसी है या वह सामाजिक बोध जो मानवता का सारतत्व (Essence) है— मूल रूप में यह सब विशेषताएं रोमान ही हैं, या उसके विभिन्न तत्व जिन्हें समेटना उन्हें परिमित करने जैसा है क्योंकि रोमान की यह कल्पना कहीं 'आर्की' है, कहीं तात्विक, कहीं ज़मीनी और कहीं जीवन मूल्यों के रूप में मिलती है। इनके तमाम गुणों और विशिष्टताओं को रोमान के अलग-अलग तत्व कहा जा सकता है। यहां तक कि प्राकृतिक सौंदर्य, उसका अछूतापन या समाज का गंदगी से पवित्र होना भी इसी रोमान की परते हैं जहां पेचीदियां सुलझ जाती हैं, मानवीय श्रेष्ठता और सदाचार का वर्चस्व क़ायम होता है और इनसे जीवन में सत्य, शिव एवं सुंदर की प्रतिष्ठा होती है। लेकिन यह बात स्पष्ट रहे कि यह बलवंत सिंह की कला का केवल एक पक्ष है और ज़्यादातर यही पक्ष सामने रहता है। ज़्यादातर लिखने वालों ने इसी पक्ष से सरोकार रखा है। बहुत संभव हो बलवंत सिंह को यही पक्ष अधिक आत्मीय लगता हो और स्वयं उन्होंने भी इसी से सरोकार रखा हो। लेकिन

वास्तविकता यह है कि बलवंतसिंह के यहां जिस प्रकार से रोमानी जीवन मूल्य अपनी अर्थवत्ता रखते हैं, उसी प्रकार रोमान से मुक्त होने की चेष्टा भी दृष्टिगत होती है, इस चेष्टा की भी उतनी अर्थवत्ता है। अलबत्ता यह भाव भी सर्जनात्मक चित्त (Psyche) की गहराइयों से उभरता है और इसके सांस्कृतिक ढांचे का संबंध भी बहुत गहरे में जड़ों से है। लेकिन इस आलेख के भाग एक एवं दो में चर्चित कहानियों में नेकी और सदाचार के गुणों को केंद्रीय स्थिति प्राप्त है, यहां इन कहानियों में उपर्युक्त गुण धूमिल दिखाई पड़ते हैं, वे तार-तार हो जाते हैं। यथार्थ इतना ही कटु होता है, अपेक्षाएं टूटती-बिखरती हैं, मनुष्य स्वयं अपने हाथों अपने आदर्शो का गला घोंटता है। इस आलेख के शेष भाग में अधिकांशतः बलवंत सिंह की अभिव्यकित के इसी पक्ष पर चर्चा की जायेगी।

आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि बलवंत सिंह की कुछ बेहतरीन कहानियां इस श्रेणी में भी आती हैं। ये कहानियां कला-शिल्प एवं सौंदर्यात्मक प्रभाव की दृष्टि से पूर्व चर्चित कहानियों से किसी तरह कम नहीं हैं। बल्कि यथार्थ के रूपांतरण की दृष्टि से कुछ अधिक प्रभावशाली ही हैं—विशेष रूप से 'पहला पत्थर', 'वेबले 38', 'देश भगत' और 'काली तित्तरी' । वैसे तो 'कठिन उगरिया', 'दीमक', समझौता', और 'पेपरवेट' को भी इसी में शामिल करूंगा। लेकिन इन कहानियों की चर्चा इस लेख के भाग चार में की जायेगी। पहला पत्थर, देश भगत और 'वेबले' गांव के वातावरण से शहर की ओर आने वाली कहानियां हैं। और एक सरल-सा निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि यहां रोमान की पराजय का भाव शहरी विकृतियों या गंदगी के कारण उत्पन्न हुआ है। लेकिन यह अपेक्षा 'काली तित्तरी' और इसी प्रवृति की अन्य कहानियों की मौजूदगी से टूट जाती है। ये कहानियां रोमानी अपेक्षाओं को उतना ही पराजित करती हैं जितना जग्गा, जस्सा या दीदार सिंह इन अपेक्षाओं को उभारते हैं और उन्हें पूर्णता देते हैं।

'वेबले 38' शरणार्थियों के पश्चिमी पंजाब से निकल कर जालंधर शहर के एक ग़ैर आबाद इलाके में आ बसने वालों की कहानी है। जहां एक ओर स्थानांतरित होने वाले लोगों के मकानों के खंडहर तबाही और बर्बादी की कहानी कहते हैं। तो दूसरी ओर सिखों और हिन्दुओं के कुछ मकान ठीक-ठाक स्थिति में भी मौजूद हैं। उन्हीं में सरदार बुधसिंह का मकान भी है। सरदार बुधसिंह सुबह-शाम पाठ करते हैं। माला जपते हैं और 'सुख मुनि साहब' पढ़ते थे और दूसरों को भी पढ़ने का उपदेश देते थे। दंगों के बाद जब पांसा पलटा तो उन्होंने भयभीत होकर भागने वालों की जायदादें कोड़ियों के दामों खरीदीं। फिर शरणार्थियों के हाथों ज़्यादा से ज़्यादा दामों पर बेचकर खूब मुनाफ़ा कमाया। इसी के साथ पाठ भी तीव्रता के साथ करने लगे। और सरदार बुध सिंह का मुख ब्रह्मज्ञान की ज्योति से दीप्त हो उठा। यहां आकर बसने वालों में एक ग़रीब खानदान बिसाखा सिंह का भी था। दो लड़के, तीन लड़कियां और जवान

होती हुई छोटी बहनें। मार-धाड़ से बचते-बचाते ये लोग सरदार बुधसिंह के पड़ोस में एक टूटे-फूटे मकान में बस गये। बिसाखा सिंह दिन-रात मेहनत मज़दूरी करता लेकिन कुनबे का पेट भरना मुश्किल था। सरदार बुध सिंह के पूजा-पाठ से वह बहुत प्रभावित था। बिसाखा सिंह की इच्छा थी कि कहीं से दो-चार सौ रुपये मिल जायें तो छोटी-मोटी दुकान ही खोल ले। लेकिन मदद मांगने पर बुध सिंह कहते, "बिसाखा सिंह जी! गुरुद्वारे जाया करो, पाठ किया करो, श्रद्धा रखो— गुरु के घर में क्या नहीं है, जो मांगोगे, मिलेगा।" बिसाखा सिंह के घर में कई बार आटा तक न होता और बच्चे बिलखते लेकिन वह बिलानागा बुध सिंह जी के दर्शन करता। बड़ी श्रद्धा से उनसे ज्ञान-ध्यान की बातें सुनता और वह ध्यान में डूब जाता। लेकिन धीरे-धीरे उसे ये बातें अजीब मालूम होने लगीं। एक शाम :

"दो कमरों में से एक में गुरुग्रंथ साहब का प्रकाश किया गया था। इस कमरे में मौत की-सी खामोशी छाई हुई थी। गुरुग्रंथ साहब ऊंचे चबूतरे पर रंगीन रूमालों में लिपटे हुए थे। उनके आगे दरी पर बिछे हुए रूमाल के दामन में चंद रंगीन फूल दिखाई दे रहे थे। मक्खियां झलने की चवरी के सफेद बाल घोड़े की अयाल की तरह एक ओर लटके हुए थे। दायें-बायें छोटे-छोटे गुलदान और उनमें बासी घास में चंद फूल उड़े दिखाई दे रहे थे। चूंकि बिजली वहां नहीं आयी थी इसलिए एक खूबसूरत लैम्प चौकी पर रखा था। बिसाखा सिंह के लिए वही जाना-पहचाना माहौल था। एक तरफ़ दीवार पर गुरु नानक साहब की बड़ी तसवीर थी। जिसमें वे नाम जपते हुए दिखाई दे रहे थे। आंखें भक्ति रस में डूबी हुई, हाथ में माला—'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रैन।' उन्होंने लोगों की गाढ़ी कमाई का रुपया नहीं खाया था। बल्कि उन्होंने सच्चा सौदा किया था जिस पर बाप ने उन्हें बुरी तरह पीटा था.....

सरदार जी ने गाव-तकिया बगल में दबाया और पास की अलमारी में से हरे रंग की जिल्द वाली एक मोटी किताब निकाली। इसमें अलग-अलग भक्तों की बानियां टीका सहित दी गयी थीं। सरदार जी ने बड़े डूबकर बानी सुनाना शुरू किया"।

प्रोग्राम खत्म होने के बाद सरदार बुध सिंह ने बिसाखा सिंह को बताया कि "आज उन्होंने पिस्तौल खरीदा है, वेबले अड़तीस बोर.....आटोमैटिक.....ज़माना खराब है।" बिसाखा सिंह का मुंह खुला रह गया। वह पिस्तौल को हाथ में लेकर अचंभे के साथ देखता है कि एक तरफ तो एक या दो रुपये का नहीं, चौदह सौ का पिस्तौल, उस पर भी सरदार बुध सिंह के लिए सस्ता और दूसरी तरफ रोटियों के लाले। वह दस्ते को मज़बूती से थाम कर उंगली लबलबी पर रख देता है, "कैसा ज्ञान-ध्यान और कैसी बातें?— अब मज़हब सिर्फ दो रह गये हैं, एक दूसरों का खून चूसने और उन्हें लूटने

वालों का मज़हब और दूसरा लुटने वालों या ज़िंदगी की छोटी-छोटी ज़रूरतों के लिए तरसने वालों का मज़हब......" सरदार बुध सिंह हड़बड़ाकर चारपाई से उठता है तो तिपाई को धक्का लगने से लैम्प गिर जाता है और ग़ालीचे में आग लग जाती है। सीढ़ियों का रास्ता बंद है, सामने बिसाखा सिंह खड़ा है तनी हुई गर्दन, चौड़े कंधे......देखते ही देखते आग फैल जाती है।

एक व्याख्या यह हो सकती है कि बिसाखा सिंह उसी आद्यबिम्ब का ही एक रूप है जिसकी ओर पहले इशारा किया गया और सदाचार, नेकी का साक्षी है लेकिन पहली बात तो यह कि यहां उत्सर्ग और शील के सदाचरण का प्रसंग नहीं है बल्कि पाखंड और उसके विरुद्ध सत्य एवं न्याय की आकांक्षा का प्रसंग है, दूसरे यहां धर्म का वह रूप है जहां अनुचित साधनों से संचित धन के साथ समझौता विद्यमान है अर्थात् यहां धर्म का शोषण मूलक रूप है। जिसका प्रयोग प्रभुत्वशाली वर्ग ढाल के रूप में करता है। बलवंत सिंह ने इसी पहलू की गंभीरता को जिस कौशल के साथ बेनक़ाब किया है इससे बिसाखा सिंह शोषण के विरुद्ध प्रतिशोध की ललकार बन जाता है। ग़रज़ यह है कि बुनियादी समस्या शील की नहीं है बल्कि स्वार्थपरता और तुच्छता की है जो कि शील का विलोम है। लेकिन यह तुच्छता भी शील की ही भांति मानवीय प्रकृति का अंग है।

इसी प्रकार 'पहला पत्थर' भी मानवीय स्वभाव के घृणास्पद और नकारात्मक पहलुओं को उद्घाटित करने की दृष्टि से एक बेमिसाल कहानी है। बलवंत सिंह की कहानियों की कुल जमा पूंजी में ऐसी दूसरी कहानी नहीं है। 'वेबले 38' का अपना महत्व है लेकिन इसमें शायद ही दो राय हो कि 'पहला पत्थर' 'वेबले 38' से बड़ी कहानी है। यहां भी परिवेश की पृष्ठभूमि धर्म और दंगे हैं। लेकिन यहां अर्थ की लिप्सा की समस्या नहीं है बल्कि शारीरिक भोग-विलास की समस्या है जो स्वभावतः पौरुष का अंग है। इससे यह भी खुलता है कि अत्याचार का केवल वर्गीय आधार नहीं होता। अत्याचार के कई चेहरे हैं। उनमें से एक चेहरा पुरुष के वर्चस्व का भी है जो सामाजिक रूप से स्त्री के विरुद्ध अत्याचार को सदैव उचित ठहराते हुए जारी रखता है। धर्म केवल निमित्त है। वही धर्म जिसे दूसरे संप्रदाय की स्त्रियों के शीलभंग और अपमान का साधन बनाया जाता है लेकिन जब स्वयं अपने संप्रदाय में वासना की समस्या आ जाये तो वही धर्म यहां बिल्कुल अर्थहीन हो जाता है और शोषण की स्थिति ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है। 'वेबले 38' में सिर्फ़ दो पात्र हैं जबकि 'पहला पत्थर' में सरदार वधावा सिंह की पुरानी लम्बी-चौड़ी हवेली में एक पूरी दुनिया आबाद है। इसमें मोटे-ताज़े सरदार वधावा सिंह के अलावा उनकी दो भारी-भरकम सरदानियां हैं, फर्नीचर ठोकने और लकड़ी छीलने वाले दिलफैंक कारीगर हैं, लेबल प्रिंटिंग प्रेस के कर्मचारी हैं, पश्चिमी पंजाब से उजड़कर आने वाले कुछ खानदान और उनकी जवान होती हुई

बेटियां हैं, और उनके इर्द मंडाराने वाले दिलफैंक नौजवान हैं। सामाजिक निरीक्षण की बारीकी, सिख समुदाय के जीवन की गहन जानकारी और संवादों की सहजता यहां कमाल पर है। इसके अलावा सिख कारीगरों की बातचीत में जो फक्कड़पन और जीवंतता व चंचलता है उससे समूची कहानी जीवन के स्पर्श से थरथराती रहती थी। कहानी की आंतरिक संवेदना में व्याप्त पीड़ा और अवसाद के साथ कारीगरों की जीवंतता और चंचलता के सामंजस्य से विडम्बना (Irony) भी पैदा हो गयी है। जिससे कहानी की अर्थवत्ता और अधिक बढ़ जाती है और वेदना के बीच से अत्याचार का वह रूप प्रकट हो जाता है जो पुरुष की तुच्छता एवं वासनांधता से उत्पन्न है और जो धर्मों, संप्रदायों और अपनों-परायों सबके आर-पार कारगर है।

'पहला पत्थर' के आरंभ में इंजील की एक कथा पृष्ठभूमि के रूप में दी गयी है जिसमें एक औरत बदकारी करती पकड़ी गई है और सज़ा के रूप में उस पर पत्थर बरसाये जाना हैं। अतएव फ़ैसला किया जाता है कि जिसने कोई पाप न किया हो वह उसको पहला पत्थर मारे। सरदार वधावा सिंह की पुरानी हवेली जिसे मज़ाक में शाही अस्तबल कहा जाता था और जिसके एक हिस्से में फर्नीचर का कारख़ाना और दूसरी तरफ़ लेबल छापने का प्रेस था, इसमें आकर बसने वाले शरणार्थियों में घुक्की का बाप देवीदास भी था। सरदार जी ने हवेली के बगल वाली दुकान और मकान तरस खाकर उसे किराये पर दे दिया था और वह पंसारी की दुकान करने लगा था। उसकी तीन बेटियां थीं। घुक्की सबसे सुन्दर और बांकी थी। मौक़ा पाकर सबसे पहले रंदा चलाने वाले बाजसिंह ने उसकी चुम्मी ले ली थी। इसके बाद दूसरों के लिए भी रास्ता साफ़ हो गया था। सरदार जी के बेटे, उनके बेटों के दोस्त और कारिंदे आदि सब एकाध चुम्मी की ताक में रहते थे। घुक्की से छोटी निक्की थी और सबसे छोटी सांवली जो अंधी थी। बाजसिंह जिसको उसके चेले-चांटे 'बाज' के नाम से पुकराते थे, घुसड़म-घुसाड़ क़िस्म का आदमी था। "सूरत घिनौनी, होंट मोटे, एक आंख में फूला, नथुनों से बाल निकले हुए।" दस वर्ष पहले उसकी पत्नी मर गयी थी। घुक्की की मुखाकृति विलक्षण थी तो निक्की के समानुपातिक और संतुलित अंगों में मर्माहत कर देने वाला सम्मोहन था। सांवली दोनों बहनों से कम गोरी थी। रंग-रूप गोरा लेकिन आयु के साथ-साथ उसके अंगों का आकर्षण बढ़ रहा था। वैसे तो कारीगर छोटी और बड़ी सरदारनी से मजाक़ करने में भी न चूकते, लेकिन ताक में घुक्की और निक्की की रहते। हवेली में छेड़छाड़ और दिल्लगी का वातावरण रहता :

> "कनस्तर नलके के नीचे रखकर बाज ने दस्ती के दो चार हाथ ही चलाये होंगे कि सामने से निक्की जल्द-जल्द क़दम उठाती हुई उसकी जानिब आई और आते ही बोली, "कनस्तर उठाओ तो......"

बाज की खुशी का भला क्या ठिकाना था। दातुन चबाते-चबाते उसका मुंह रुक गया। आंखों के कोने शरारत और हरामजदगी के बायस सिमट गये, " नी कुडिए की गल है?"

"ऐ देख, गल वी कुछ नहीं। कनस्तर हटा झटपट।"

बाज ने दांत पीसकर हाथ फैंका, लेकिन मालूम होता है निक्की पहले ही से तैयार थी। झप से पीछे हटकर बदन चुरा गई और नीम माशूक़ाना अंदाज़ से चिल्लाकर बोली, "हम क्या कह रहे हैं कनस्तर हटा ना!"

बाज ने कनस्तर हटा दिया। "लो जानी पिओ और जियो, जियो और पियो।"

निक्की ने नल के नीचे हाथ रख दिया और कुछ इंतज़ार के बाद इंजन की सीटी की-सी आवाज़ में चिल्लाई, "ऐ है, दस्ती हिलाओ।"

बाज ने सूफ़ियाना ढंग से जवाब दिया, "तुम ही हिलाओ न दस्ती....."

"देखो तंग मत करो।"

"अरी नाम निक्की है तो इसका यह मतलब तो नहीं तू सचमुच नक्की (छोटी) है,"

"छोटी नहीं तो क्या बड़ी हूं।" निक्की ने निचला होंट ढीला छोड़कर शिकायत भरी निगाह उस पर डाली।

अब बाज ने बड़ी उदार-सी हंसी हंस कर दस्ती हिलाना शुरू किया।

पानी पीकर निक्की भागने लगी तो बाज ने फौरन उसकी कलाई दबोच हलका-सा मरोड़ा दे दिया, "उई।"

"क्या है? "

"मेरी कलाई टूट जायेगी।"

"यहां दिल जो टूटा पड़ा है।"

"छोड़ न! कोई देख लेगा।"

सरदार जी के यहां उनके एक हिंदू दोस्त बाल-बच्चों के साथ आकर ठहरे। उनका एक नौजवान लड़का था चमन। घुक्की और वह एक दूसरे पर मरने लगे। निकटता इस हद तक बढ़ी कि घुक्की गर्भवती हो गयी। घुक्की ने जब शादी पर ज़ोर दिया तो वह फौज में भर्ती होने के बहाने गायब हो गया और घुक्की उसे चिट्ठियां लिखती रह गई। राज़ खुला तो बड़े सरदार जी ने देवीदास को फटकारा। तुम्हारी बेटी की ये हिम्मत, फ़ौरन शादी कर दो वरना मकान दुकान दोनों खारिज। ग़रज़ घुक्की को घुन लग गया। वह जो नाज़ुक और नये-नये खिले फूल की तरह थी, हड्डियों का ढांचा रह गयी। निक्की अब हवेली की जान थी। उसका सिलसिला प्रेस में लेबल छापने वाले जल कुकड़ से था, जो शादी शुदा था। फिर अचानक ग़ायब हो गयी। बड़ी बहन का अंजाम वह देख चुकी थी। शायद उसने कुएं में छलांग लगा दी। सबसे छोटी

सांवली पर, जो अंधी थी, कुलदीप मरने लगा, जो इम्तहान देने के लिए आया हुआ था। एक रात सांवली अचानक कारख़ाने में अकेली दाख़िल हुई। बलवंत सिंह ने इस दृश्य का जिस प्रकार चित्रण किया है, वह देखने योग्य है:

"चिराग़ की थरथराती हुई लौ की मद्धम रोशनी में एक लड़की अंदर दाख़िल हुई।

सांवली !!

बाज दो क़दम पीछे हट गया।

उपस्थित लोगों में से सबकी आंखें दरवाज़े पर लगी हुई थीं। सांवली को देखकर वे अपने मुंह से तरह-तरह की आवाज़ें निकालने ही वाले थे लेकिन बाज के इशारे पर वे उसी तरह चुपचाप बैठे रहे।

सांवली और आगे बढ़ी। उसका गोल-गोल चेहरा, उभरती हुई जवानी की आँच से चमचमाते हुए चेहरे की जिल्द (खाल), कुछ मोटे और भरपूर होंट, चिकने गाल......इन सब चीज़ों के हुस्न को पहले किसी ने क़ाबिले तवज्जो नहीं समझा था। इन सब दिल-लेवा खूबियों के साथ-साथ उसके चेहरे पर दूध-पियाल बच्चे का-सा भोलापन था।

लेकिन इतनी गयी रात को वह वहां क्या करने आई थी?

सांवली ने हाथ फैलाकर उस ऊंची और भारी भरकम मेज़ का सहारा लिया जिस पर बाज़ फर्नीचर बनाते वक़्त अलग-अलग हिस्सों पर रंदा किया करता था। लड़की ने मुंह खोला और सरगोशी में बोली, "बाज चाचा!"

"हां" बाज ने दाढ़ी पर हाथ फेरा ।

सांवली गर्दन इधर-उधर घुमाकर कोई और आवाज़ सुनने की नाकाम कोशिश थी। फिर उसने राज़दाराना लहजे में पूछा, "तुम अकेले हो ?"

यह सुन कर सबने गर्दनें आगे को बढ़ाई। उनकी आंखें फैल गयीं।

बाज ने आवाज़ का लहजा बदले बगैर कहा, "हां, सांवली ! मैं अकेला हूं।"

"कहां हो?" यह कहकर वह बाज़ू फैलाकर हाथ हिलाती हुई आगे बढ़ी। फिर उसने उसे छू लिया।

"सांवली तुम इस बख़त यहां क्यों आई हो?"

"क्यों इस बख़त क्या है?"

"इस बख़त रात है।.....तुम जवान हो किरीब किरीब।"

"मेरे लिए रात और दिन दोनों एक बराबर हैं।"

"लेकिन इस बख़त रात के ग्यारह बजे हैं और तुम अकेली हो?"

यह सुन कर सांवली के साफ़-सुथरे चेहरे पर परेशानी उभर आई। वह हैरान होकर बोली,

"पर बाज चाचा भला तुम्हारे पास आने में क्या बुराई हो सकती है। तुम तो देवता हो।"

बाज ठिठक कर पीछे हटा।

"तुम नहीं जानते चाचा", सांवली ने फिर कहना शुरू किया, "जब कभी लाला (बाप) मुझे गुस्से होता है तो मैं सोचती हूं कि कोई बात नहीं मेरा बाज चाचा जो है। वह मुझे लाला से कम प्यार तो नहीं करता.....ठीक है ना !'

बाज बोला "हां सांवली ! यह सच है.....लेकिन.....इस बख़त तुम जाओ।"

"नहीं, चाचा मैं तुमसे बातें करने आई हूं।"

सब स्तब्ध रह गये।

"क्या बातें करना चाहती हो।"

"बाज चाचा!' अब सांवली की आवाज़ बदल गई थी। वह कुछ ठहरी और फिर बोली, "बाज चाचा! कुलदीप बाबू बहुत अच्छे हैं......वे कहते थे मेरी आंखें ठीक हो सकती हैं......मैं जनम की अंधी नहीं हूं ना! इसलिए......और वे......कहते थे कि तुमसे ब्याह करूंगा।"

इस पर बाज ने अपनी दाढ़ी को मज़बूती से मुट्ठी में पकड़ लिया, "कौन कुलदीप?'

"वो जो नये आये थे, वहीं नां।"

"क्या कहता था वह ?'

"वो कहते थे, सांवली तुम मुझे बड़ी प्यारी लगती हो। मैं कहती, मैं अंधी हूं, भला अंधी लड़कियां भी किसी को प्यारी लगती हैं। वो कहते, बावली 'प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है......पर चाचा उनको गये पंद्रह दिन हो चुके हैं। लौट के नहीं आये हैं......और......और......"

यह कहते-कहते सांवली ने अपनी बेनूर आंखों को और फैलाया जैसे कुछ देखने की कोशिश कर रही हो और फिर झेंप कर बोली, "और मेरा पांव भी भारी है।"

बाज ने अचानक खुल जाने वाले अपने मुंह पर हाथ रख लिया।

"लाला बहुत दुखी है। वह कहता है घुक्की और निक्की दोनों खराब हैं। सच बाज चाचा। लाला बेहद दुखी है......वह रात-रात भर रोता रहता है मुझे गले से लगाकर कहता है यह मेरी रानी बेटा है। इसे पाप छूकर भी नहीं गया......लेकिन उसे नहीं मालूम कि मेरा पांव भी......मैं सोचती हूं कि अगर कुलदीप बाबू न आये तो लाला को मालूम हो जायेगा। वह मर जायेगा। एकदम मर जायेगा......लेकिन वो जरूर आयेगें......हैं ना चाचा! वो आयेंगे ना?'

सब लोग दम साधे बैठे रहे। सब सन्नाटे में आ जाते हैं। कई दिन बीत जाते हैं।

"पंजाब बर्बाद हो रहा था......वारिस शाह का पंजाब, गेंहू की सुनहरी बालियों वाला पंजाब, शहद भरे गीतों वाला पंजाब, हीर का पंजाब, कूंजों और हटों वाला पंजाब!! और उसकी एक बेनूर आंखों वाली हकीर बेटी भी बर्बाद हो रही थी।" अचानक एक रात सांवली फिर कारखाने में आ जाती है। रूखे बिखरे हुए बाल, बाजू फैले हुए, शरीर के अंगों में कंपन। "बाज चाचा, बाज चाचा ! वो आ गये, वो आ गये, वो कहते है, सांवली मुझे माफ कर दो। हम कोई अमीर नहीं हैं, लेकिन हम तुम्हें दिल्ली ले जायेंगे.....तुम्हारी आंखें भी ठीक हो जायेंगी।" सब दम साधे रह जाते हैं। थोड़ी देर के बाद जब कारीगरों का टोला बाहर निकलता है तो उन्हें दीवार के पास एक माटियाली मूरत सी दिखाई जाती है, "सांवली तुम अभी घर नहीं गयीं?" "बाज चाचा न जाने मेरे दिल को क्या हो गया है? कुछ सूझता ही नहीं......ऐसी खुशी की बात कैसे हो सकती है। तुम्हें यकीन नहीं आता ना!"

इस मर्मांतक दृश्य के बाद कहानी समाप्त हो जाती है। सांवली की ज्योतिहीन आंखों में कांपते हुए आंसू की तरह एक ऐसा सवाल छोड़कर जिसका जवाब किसी के पास नहीं। नहीं कहा जा सकता कि सांवली का दिमाग़ चल गया या उसने कोई सपना देखा या किसी ने इस बे-मां की बेटी के साथ कोई भयानक मज़ाक़ किया! यहां बलवंत सिंह ने एक अत्यंत कटु एवं मार्मिक स्थिति को बड़े कौशल के साथ रूपायित किया है। एक स्त्री की ऐसी करुण-कथा बलवंत सिंह के समग्र कथा साहित्य में शायद ही अन्यत्र कहीं मिले। वही बाज जो छेड़छाड़ में सबसे आगे था, वही बाज नेत्रहीन लड़की का हमदर्द और दुःख बांटने वाला बनकर उभरता है। जिसके कंधे पर सिर रख कर वह अपना दुखड़ा रोती है। लकड़ी का काम करने वालों के उजड्डपन के वातावरण में यह कहानी पुरुष की कामुकता और स्त्री की निरीहता का ऐसा अलबम है कि बलवंत सिंह की लेखनी के कौशल का क़ायल होना ही पड़ता है। 'पहला पत्थर' के तीनों नाम निहाद आशिक़ मानवीय श्रेष्ठता नहीं बल्कि मानवीय स्वभाव की विकृति और तुच्छता का मूर्त रूप हैं। यह सिक्के का दूसरा पहलू है जहां मनुष्य स्वयं अपनी मानवीय पवित्रता को अपने पाप से दूषित करता है और उसमें हममज़हब और ग़ैर मज़हब (धर्म या विधर्म) की कोई क़ैद नहीं।

अभी इस भाग में दो अन्य कहानियों की चर्चा करना शेष है। ये कहानियां हैं 'देश भगत' और 'काली तित्तरी'। इन कहानियों के बारे में राय तो दो जुमलों में भी दी जा सकती है लेकिन इनके अंतर्वस्तु एवं शिल्प अर्थात् सौंदर्यात्मक आस्वाद के पक्ष पर चर्चा की जाये तो इनके आंतरिक संसार में प्रवेश करना आवश्यक होगा। 'देश भक्त' भी अपने ढंग की अलग कहानी है। जिस प्रकार 'पहला पत्थर' में हास्य की अंतवर्ती धारा थी, 'देश भगत' में व्यंग्य की प्रधानता है। जिसका पूरा रहस्य अंत में जाकर खुलता है। बलवंत सिंह राजनीतिक कथाकार नहीं थे, लेकिन सोच और दृष्टिकोण

जरूर रखते थे। 'वेबले 38' और 'पहला-पत्थर' दोनों ही से उनका दृष्टिकोण प्रकट होता है। यह अभिव्यक्ति 'देशभगत' में और अधिक तीखी है जो उसे किसी हद तक राजनीतिक कहानी का रंग देती है। आइडियोलाजी जो किताबों में लिखी हुई है, वह मात्र आइडियोलाजी है। आइडियोलाजी तो हमारे बोलने, सोचने और क्रियाओं के सारतत्व में भी लिखी होती है। अतएव फ़िक्शन में आइडियोलाजी की जगह उपदेश या भाषण या कथन में नहीं, यह चरित्रों और सिचुएशन तथा चरित्रों के व्यवहार में निहित होती है। ऐसा ही 'देशभक्त' में हुआ है। बलवंत सिंह ने सीधे-सीधे कुछ भी नहीं कहा। इसके कथानक का एक आयाम है गंदी बस्तियों में रहने वालों का सामाजिक मनोविज्ञान और दूसरा आयाम है स्वाधीनता आंदोलन। अर्थात् एक ओर इस कहानी में गिरे पड़े लोगों—जो बिरादरी बाहर (outcast) या हाशिए पर पड़े हुए चरित्र हैं —पर वर्चस्व क़ायम करने की चेष्टाएं दिखाई देती हैं, दूसरी ओर खदद्‌रपोश और टोपीधारी स्वनामधन्य नेताओं को क़ाबू में करने की कारगुज़ारियां देखी जा सकती हैं। यह सारी सिचुएशन गहन सामाजिक निरीक्षण से युक्त अत्यंत प्रभावशाली कथानक में व्यंग्य की अंतर्धारा के साथ जारी रहती है। यहां तक कि अंजाम तक पहुंचते-पहुंचते रहस्योद्‌घाटन हो जाता है और चरित्रों का पाखंड खुलकर सामने आ जाता है। टेकनीक में एक विशेषता यह है कि कथानक में नैरंतर्य नहीं है। अंतिम दृश्य में मानो कि ब्रश की दो-तीन हलकी गहरी लकीरें-सी हैं जिनसे कहानी की प्रभावक्षमता में वृद्धि हो गयी है और व्यंग्य में तीक्ष्णता आ गयी है।

बलवंत सिंह की कहानी-कला 'अनुपस्थित वाचक' की कला है लेकिन 'देशभक्त' 'उपस्थित वाचक' की कहानी है। कहानीकार ने इसका ध्यान रखा है कि वाचक केवल सिचुएशन बयान करता है, टिप्पणी नहीं करता। यह ज़रूरी नहीं कि 'उपस्थित वाचक' स्वयं कथाकार हो लेकिन बलवंत सिंह ने यहां वाचक की जगह अपना प्रतिरूप ही रखा है। केंद्रीय पात्र अधेड़ उम्र के एक सरदार जी हैं जिनको 'चचा' कहा है। "मेरी उनसे कोई रिश्तेदारी न थी, बस हमारे गांव के रहने वाले थे। वालिद से भी कुछ दुआ सलाम थी। मुझ पर मेहरबान थे और कुछ क़दर बेतकल्लुफ़ भी। बीच का क़द, गेहुंआ रंग, खिचड़ी दाढ़ी, दुबले-पतले मगर सख़्त हड्डी के लगभग पैंतालीस वर्षीय बुज़ुर्ग। अपना परिचय यों कराया है, "मेरी उम्र तक़रीबन बाईस वर्ष की थी, क़द ज़रा निकलता हुआ, चौड़ा सीना, सुडौल बाज़ू, मजबूत हाथ-पांव, बावजूद चार मर्तबा कोशिश करने के एफ.ए. पास न कर पाया था।" एक शाम चचा अचानक आये बिना किसी भूमिका के बोले, "आज ज़रा ख़ास काम है। तुमको मेरे साथ लगना होगा।" खास काम के शब्द सुनकर मेरा माथा ठनका। मेरा सिरहाने से सफाजंग (सिखों का एक कुल्हाड़ी नुमा हथियार) और उसे फर्श पर टेक कर खड़ा हुआ। "मुसलमानों का मुहल्ला है......मियां लोगों का......और फिर रुपये का मामला है।" यह चचा का घिसा-पिटा

और पुराना हीला था। वाचक बताना चाहता है कि इस तरह की मुहिम पर चचा अक्सर जाया करते थे।

यहां बलवंत सिंह ने जो दृश्य और वातावरण का निर्माण किया है, उससे आज़ादी से पहले का इलाहाबाद जीता-जागता और सांस लेता मालूम होता है।

"गुबार और धुंध के गहरे कफ़न ने शहर को ढांप रखा था। बाज़ारों में कान पड़ी आवाज न सुनायी देती थी। इक्के वालों की आवाज़ें, उनकी गालियां और क़व्वालियां—दूर धुंधलके में मस्जिद के करीब़, किसी घर की छत पर सफ़ेद-सफ़ेद कबूतरों की टुकड़ियां हवा में परवाज़ करती दिखाई दे रही थीं।

नुक्कड़ पर बादशाह खान पठान की चाय की दुकान थी। इस जगह सूदख़्वार पठानों का इज्तिमा होता था। बैठे चाय पीते और कहकहा उड़ाते।

कुछ दूर जाने के बाद चचा मंहगी पनवाड़ी की दुकान के आगे जाकर रुक गये। महगी की उम्र बत्तीस बरस पार कर चुकी थी। बदन भारी, गोरा रंग, नाज़ो-अदा की कमी न थी, बड़ी-बड़ी आंखों में बेतहाशा काजल, होटों पर मिस्सी की धड़ी।

महगी सिर पर आंचल खींच संभल कर बैठी और पान लगाते हुए कहने लगी, "और वो हमरे लिए चुंदरी लान को कहत रहे।"

चचा सुनी अनसुनी करके उसके लाल-लाल गालों की तरफ़ ललचाई हुई नज़रों से ताकते हुए बोले, "अब लाओ, देवगी भी नहीं।"

महगी कुछ लजा गयी और मलामत भरी नज़रों से चचा की तरफ़ देखने लगी।

कथानक इसी प्रकार आगे बढ़ता रहता है जिससे कहानी का संवेदनागत वातावरण और मूड क़ायम हो जाता है। कई गलियों मुहल्लों से गुज़रने के बाद आखिर चचा एक टूटे-फूटे घर के आगे रुक गये। बावजूद सर्दी के मजीदा एक मैला-कुचैला तहबंद कमर से लपेटे था और जिस्म पर सिर्फ एक चादर थी, "आइए, आइए आका! अंदर चले आइए।" टाट का गला सड़ा-पर्दा हटाकर दोनों अंदर दाखिल हो गये।

मजीदे और चचा में कानाफूंसी होती रही। मजीद कहता है, "कसम अल्लाह पाक की पंजाबी बाबू जिधर हुक्म हो, ले आऊं।" थोड़ी देर में मजीदा लड़की को लेकर आता है। उम्र बमुश्किल तेरह चौदह बरस की, गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी जर्द आंखें बाल सूखे, हाथों और कलाइयों पर मैल, दुबली पतली सहमी हुई एक मैली-सी चादर ओढ़े खड़ी थी। मजीदा बात को खोलकर कहता है, "रोज पूजा करन जात रही......मैं समझाया, पगली पूजा से का मिली? चल पंजाबी संग सादी करा दूंगा। गहना कपड़ा पहन कर मजा उड़ाना......लौंडिया का है, हीरा समझो।" लड़की ने जर्द-जर्द आंखों से मजीदे की तरफ देखा और लम्बी सिसकी भर कर ख़ामोश हो गयी। "अभी झेंपती है।"

चचा एक भोजनालय में ऊपर की मंज़िल पर एक कमरे में रहते थे। तीन-चार दिन के बाद वाचक का इधर से गुज़रना होता है। अंदर से बातों की भनक सुनाई दे रही थी। दराज़ में से झांकता है तो वही लड़की दिखाई देती है। चचा उसके मुंह पर हाथ रखे हुए थे, मजीदा आगे झुककर कह रहा था "देख हरमजदगी करेगी तो काट कर फेंक दूंगा" लड़की बहुत व्याकुल थी।....फिर पंलग पर पटकने की आवाज़ आती है.....

इसके बाद—

"मजीदा निहायत इत्मीनान के साथ गुरु नानक साहब की तस्वीर के पास खड़ा बीड़ी पी रहा था और तस्वीर को सम्मान की नज़रों से देखने में मगन था।" एक-दो दिनों के बाद अंतिम दृश्य है जहां कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है। इतवार की छुट्टी है। वाचक स्टेशन के एक बुक स्टाल से पत्रिका वगैरह खरीदने के लिए निकलता है जो घर के पास है। स्टेशन पर इस कदर भीड़ है कि तिल धरने की जगह नहीं, लोग नारे लगा रहे हैं—"जवाहरलाल की जय—महात्मा गांधी की जय— भारत माता की जय!!!' जब जवाहरलाल जी बुग्गी पर आकर बैठ जाते हैं और श्रद्धालु लोग हाथ जोड़े आगे बढ़ते हैं तो अचानक चचा हाथ में गेंदे का हार लिये भीड़ से नमूदार होता है और बारम्बार प्रणाम करने के बाद हार पंडित जी के गले में डाल देता है। मजीद खां भी खद्दर का कुर्ता पहने कांग्रेसी रज़ाकार की हैसियत से इधर से उधर दौड़ता फिर रहा है। लोग देश प्रेम के जोश में ज़ोर-ज़ोर से गा रहे हैं, "झंडा ऊंचा रहे हमारा।" चचा की आवाज सबसे बुलंद है। जब जलूस मजीदे के मुहल्ले के पास से गुजरता है तो सड़क के किनारे भीड़ में वही मैली-कुचैली लड़की दिखाई देती है। वही धूल सने हुए बाल और सहमी हुई ज़र्द सूरत ! वह फटी-फटी आंखों से झंड़ा ऊंचा रखने वालों को देख रही है।

मानो कि मानवीय तत्व के ह्रास का जो बीज 'वेबले 38' में विद्यमान है, वह 'पहला पत्थर' में वृक्ष का रूप ले लेता है और 'देशभगत' कहानी में वह विस्तृत राजनीतिक फलक पर उभर कर सामने आता है। धार्मिक पाखंड यहां भी है अर्थात् आर्थिक और दैहिक दोनों प्रकार का शोषण है। यह शोषण का चक्र धर्म, संप्रदाय और वर्गों के आर-पार चलता है। इसका घिनौना गठजोड़ धर्म से भी है और राजनीति से भी। धर्म हो कि राजनीति दोनों सशक्त सामाजिक संस्थाएं हैं और चूंकि शक्ति का प्रभुत्व है इसलिए इनकी ओट में कमज़ोर और बेसहारा लोगों के शिकार का खेल जारी रहता है। मैली-कुचैली लड़की और मजीदा दोनों समाज के हाशिए पर पड़े हुए चरित्र है जो पंजाबी बाबू के हाथ में कठपुतली की तरह हैं—"सरकार गुलाम हाजर है। खुदा कसम जसन करा दूंगा, जसन।" यह कहानी आज़ादी से कुछ ही पहले की है। बाद को क्या कुछ नहीं हुआ। कलाकार की पहचान इसी से होती है कि कभी-कभी उसकी आंखें भविष्य के घटना-चक्र की झलक बरसों पहले देख लेती हैं।

'काली तित्तरी' के साथ हम एक बार पुनः पंजाब में प्रवेश करते हैं। वही गांव, क़स्बे और खुले खेत-खलिहान, वही गलियां, मुहल्ले, कच्चे-पक्के मकान, शरीहना की छांव और बहादुर सिख सरदार। बलवंत सिंह के सर्जनात्मक चित्र (Psyche) में पौरुष का यह आद्यबिम्ब जितना गहरा समाया हुआ था, बहुत संभव है कि 'काली तित्तरी' भी रूमान के ढांचे में लिखी गयी हो, लेकिन जैसे कि हम देखेंगे, इससे भिन्न आशय की प्राप्ति होती है। बग्गा सिंह भंभोड़ी और कपूरा सिंह ठठेवाला दोनों बड़े उद्धत और निडर नौजवान हैं। मज़बूत घोड़ों पर सवार जग्गा डाकू के रूमानी हीरो। लेकिन यहां कहानी का आंतरिक परिवेश कुछ बदला हुआ है। माना कि ये पात्र बहादुरी और पौरुष के साक्षात् रूप हैं, लेकिन यहां पौरुष में सदाशयता, परदुःखकातरता का भाव निहित नहीं है। यह पौरुष मात्र पौरुष है—अपना शिकार स्वयं होने वाला पौरुष ! दूसरे शब्दों में रूमानी वातावरण के रहते हुए भी यह कहानी रूमान से मुक्ति की राह तलाश करती है। इसका सौंदर्यात्मक प्रभाव इसकी वातावरण सृष्टि में तो है ही, उस त्रासदी में भी है जिस पर कि ये बुनी गयी है।

'काली तित्तरी' पीरां दा ठठा एक छोटे-से गांव में डाका और डाके डालने की मंसूबाबंदी की कहानी है। डाके से पूर्व घटना घटित होती है जो बड़ी बर्बरतापूर्ण और हिंसात्मक है। पीरां दा ठठा में एक ही बंदूक है। जो यहां के खाते-पीते घराने माहना वालों के पास है। एक साज़िश के तहत डाकू बग्गासिंह भंभोड़ी के आदमी ठठा के मौला से मिलकर रात के अंधेरे में माहना के खेतों में मौला के बैल को हंका कर उसको गोली मार हलाक कर देते हैं। अगले दिन झूठी रपट दर्ज करा दी जाती है कि माहना वालों ने गरीब मौला का बैल मार डाला है। पुलिस गांव आकर राम लाल माहना और उसके बेटे हीरालाल को तलब करती है। जब नौजवान बेटा, जो पढ़ा- लिखा भी है, इस झूठे आरोप पर आपत्ति जताता है तो उलटे उसकी पिटाई की जाती है। उद्देश्य माहना वालों की बंदूक ज़ब्त करवाना था। सो बंदूक तो ज़ब्त कर ही ला जाती है। इससे भी आगे पुलिस माहना के लड़के को भी साथ ले जाती है। लड़के को बचाने के लिए माहना अपना जुर्म कुबूल कर लेता है कि बैल को गोली उसने मारी है। लेकिन पुलिस पर कोई असर नहीं होता। मौला और उसके साथी खुश हैं कि धांय-धांय करने वाली चिड़िया पिंजरे में बंद हो गयी है। और अब डाकाज़नी के लिए मार्ग निष्कंटक है।

कपूरा सिंह ठठेवाला खूंख़ार डाकू था जो अपनी काली घोड़ी के कारण आस-पास के इलाके में काला तित्तर के नाम से मशहूर था। हफ़्ते भर पहले वह चोरी छिपे अपनी बहन से मिलने के लिए आया और यह मालूम करके कि सरदार से लाये हुए ज़ेवरात वह कहां रखती है, रातों-रात लौट गया था। काली घोड़ी पर काला भुजंग कपूरा चट्टान की तरह लगता था। बग्गा सिंह भंभोड़ी, कपूरा सिंह ठठा और उनके साथियों ने मौला

और उसके आदमियों की मदद से डाका डालने का मंसूबा बनाया। संयोग से उस रात बड़ी भारी आंधी आई और पीर के ठठे पर गहरा अंधेरा छा गया। बग्गा ताड़ की तरह लम्बा था, भीतर को धंसी हुई आंखों में हिंस्र पशु की-सी चमक और लालसा। माहना वालों का मकान गांव के बीचों-बीच था। मंसूबा ज़ेवरों पर हाथ साफ़ करने और माहना वालों के आस-पड़ोस के दो-तीन घरों को लूट कर सलामत निकल जाने का था। हर नाके पर साथियों को तैनात कर दिया गया। जियाले छतों पर कूद गये और कार्रवाई शुरू हो गयी। आंधी भी जोरों पर थी। कपूरे ने एक जवान को दुनाली समेत घर के पिछवाड़े के झुंड के पास ताक में रहने के लिए खड़ा किया। बाक़ी लोग अंदर सामान समेट रहे थे कि बाहर से धांय-धांय गोलियां चलने की आवाज़ें आईं। अचानक भगदड़ मच गई। मकान के पिछवाड़े जिस नौजवान की ड्यूटी थी, पेड़ों में खड़खड़ाट होने के कारण घबराकर उसने एक के बाद एक गोलियां दाग़ दीं। पूरा गांव जाग उठा। डाकू भाग खड़े हुए। कुएं तक पहुंचे तो अंधाधुंध लाठियां बरसने लगीं । ठीक उसी समय बिजली चमकी, और कपूरे की काली घोड़ी को पहचान कर किसी ने ज़ोर से कहा, 'काला तित्तर' और घोड़ी की लगाम पर झपट्टा मारा। घोड़ी हिनाहिनाकर पिछले पैरों पर उछली। सवार ने अपनी लम्बी दस्ते वाली कुल्हाड़ी ऊपर उठायी ही थी कि एक छुई चमकी और कपूरे की आतें उधेड़ती हुई निकल गयी । कपूरा बल खाकर औंधे मुंह जमीन पर गिरा। पेट से खून का फव्वारा छूटा और गाढ़ा सुर्ख खून ज़मीन पर बहने लगा।

इसकी एक व्याख्या यह हो सकती है कि विधाता की सृष्टि सदाचार के नियम पर ही टिकी हुई है। सदाचार और पुण्य को ही समाज में श्रेष्ठता प्राप्त है। अतएव कपूरा को बुरे काम का नतीजा भुगतना पड़ता है और यह एक रूमानी प्रवृति है लेकिन कहानी की अतंर्वस्तु के विश्लेषण से इस प्रवृत्ति की काट हो जाती है। कहानी में डाकाज़नी का जो घटनाक्रम है, कपूरा सिंह, बग्गा सिंह, सौदागरा और अन्य डाकुओं की मर्दानगी और बहादुरी का जो बयान है उससे डाका डालने के अपराध का मनोविज्ञान एक प्रकार से पवित्रता के दायरे में आ जाता है, विधि और निषेध का अंतर दूर हो जाता है। यह पौरुष मात्र पौरुष है जिसका संबंध मानवीय शील से नहीं बर्बरता से है जो स्वयं अपने आपको निगल जाता है और अंततः अपने ही हाथों पराजित होता है।

जैसे कि हमने देखा इस भाग की कहानियों में रूमान नहीं रूमान से मुक्ति की चेष्टा दृष्टिगत होती है। आदर्शों के बीच द्वंद्व और तनाव है और उन आदर्शों को रौंदा जाता है। यह मानवीय स्वभाव की वक्रता, तुच्छता, पराजय और बर्बरता की कहानियां हैं जिनमें वेदना, दुःख, विनाश और शोषण का पक्ष मुखर हुआ है। 'वेबले 38' में सरदार बुध सिंह धार्मिक पाखंड की ओट में धनार्जन करता है। 'पहला पत्थर' में

चमन, जल कुक्कड़, कुलदीप सब आधे-अधूरे चरित्र हैं और देह शोषण की मानसिकता से ग्रस्त हैं। 'देश भगत' में चचा भी पाखंडी है, उसमें धार्मिक, वासनात्मक और राजनीतिक सभी प्रकार का पाखंड है। 'काली तित्तरी' में बग्गासिंह, कपूरासिंह, सौदागरा और उनके तमाम साथी मानवीय शील के नहीं, उसके दूसरे पहलू की अभिव्यक्ति हैं। ग़रज़ यह है कि बलवंत सिंह की इस प्रकार की कहानियों में मानवीय स्वभाव का घिनौना पक्ष अधिक मुखर हुआ है। विशेषज्ञता पूर्ण चरित्र-चित्रण, संतुलित संवाद और प्रभावोत्पादक वातावरण सृष्टि के कारण जो कथ्य उभर कर सामने आया है, उसके सौंदर्यात्मक प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

(4)

इस अंतिम अर्थात् चौथे भाग में उन कहानियों को शामिल किया गया है जिनका सम्बंध शहरी जीवन से है। ये आम छोटे-छोटे इनसानों की कहानियां हैं जो बलवंत सिंह की कलात्मकता की एक विशिष्ट दिशा होने के कारण महत्वपूर्ण हैं। इनमें आद्यबिम्ब या अतिमानवीय चरित्रों जैसी कोई बात नहीं है और न ही मूल्यों की प्रतिष्ठा या उनके पतन का दृश्य विद्यमान है। अलबत्ता सीधे-सादे इनसानों में कोई गुण या पहलू ऐसा दिखा दिया गया है कि उनका सामान्य चरित्र विशिष्ट हो उठा है। भाग चार की बहस को दो उप भागों में बांट दिया गया है। पहले उपभाग में उन कहानियों की चर्चा है जिनमें शहरी जीवन के सामने के चरित्र हैं और कुछ न कुछ विशेषता लिये हैं, दूसरे उपभाग में उन कहानियों को लिया गया है जिनका विषय चाहे कुछ हो, किंतु उनके बीच से यह बात खुलती है कि उनकी केंद्रीय और प्रभावी भावना ऐंद्रिकता है। स्पष्ट रहे कि देखने में यह आम इनसानों की कहानियां हैं लेकिन आम कहानियां नहीं। इनमें से कुछ की गणना बलवंत सिंह की बेहतरीन कहानियों में की जा सकती है। इसका कारण इन कहानियों का सशक्त कथ्य है जिसने रोज़मर्रा के चरित्रों में कोई न कोई मानवीय गुण की प्रतिष्ठा अवश्य कर दी है।

'गुमराह' बारह-तेरह वर्ष के लड़के की कहानी है जो अक्सर क्लास से गायब हो जाता है। उसका टीचर बाप से शिंकायत करता है कि तुम्हारा बेटा 'गुमराह' हो रहा है। चिंतित बाप अगले दिन चुपके-चुपके उसका पीछा करता है और देखता है कि बेटा बाजीगरों और नटों का तमाशा देखने के बाद संपेरों का खेल देखता है। फिर पहाड़ी नदी पार करके केकड़ों के खेल का मज़ा लेते हुए चाय के बाग़ों में जा निकलता है जहां से आगे बर्फ से ढंकी हुई चोटियों का नीला-नीला ग़ुबार छाया हुआ है। बाप को महसूस होता है कि दफ़्तरी मालूमात और कारोबारी जिंदगी में घिरे होने की वजह से जिंदगी और उसके जीवंत प्रवाह से वह कट चुका था, जिंदगी की वह हरारत (ताप) बेटे के पोर-पोर में थी। वह सोचता है कि प्रकृति से उदासीन होकर गुमराह वह खुद

है या बेटा? उसके भीतर इच्छा जाग्रत होती है कि काश किसी दिन फिर दफ़्तर से भाग कर सारी दुनिया को ठेंगा दिखाकर वह भी आवारागर्दी करे। ज़िंदगी की रोटीन या एकरसता या कारोबारी भाग-दौड़ में प्रकृति या जीवन के आनंददायक पक्ष से हमारा रिश्ता टूट जाता है या हमारी इंद्रियां हर्ष और उल्लास प्रदान करने वाले दृश्यों के प्रति संवेदनशून्य हो जाती हैं—यह कहानी इस स्थिति की प्रभावशाली व्यंजना करती है। इस कहानी में निहित प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण से कहानी की अर्थवत्ता बढ़ गयी है।

'निहालचंद' भी मज़े की कहानी है जिसमें निहालचंद का मोहक और निश्छल व्यक्तित्व मन को जीत लेता है। उसके स्वभाव की जीवंतता मर्म को छू लेती है। निहाल चंद पचास पचपन वर्ष का एक हंसमुख स्वभाव वाला व्यक्ति है। योगराज बीस-बाईस वर्ष का जवान। जब योगराज की पुरानी किताबों की दुकान नाकाम हो जाती है और कोई दूसरा काम जम नहीं पाता तो वह अपने पुराने परिचित निहालचंद के पास पहुंचता है जिसकी फोटोग्राफी की दुकान थी। निहालचंद मनोविनोद की साक्षात् प्रतिमूर्ति था। लम्बी-लम्बी मूंछें, चमकती हुई आंखें, इकहरा बदन, छोटा-सा कद, खाने-पीने और गपशप हांकने का शौकीन, बात-बात पर 'ला उस्ताद हाथ'। लेकिन तनख्वाह पर मामला न हो सका। मजबूरन योगराज ने अपने दोस्त मक्खन राम पुत्र फग्गामल एण्ड संज़ से मदद लेकर वहीं रोबिन रोड पर निहाल चंद की दुकान से पचास-साठ कदम पर फोटोग्राफी की अपनी दुकान खोल ली। दोनों में चुहलें हुईं। अंततोगत्वा निहाल चंद जो पहले चालीस देने को तैयार नहीं था अब पचास पर मान गया। निहाल चंद अजीब उदासीन और मस्त इन्सान था। काम भी वक्त पर न देता, अलबत्ता ग्राहकों को चिकनी-चुपड़ी बातों से खुश कर देता और बार सम्मान से सिर झुकाता, "जी बंदा परवर.......जी बंदा परवर......की रट लगाये रहता। निहाल चंद की जेब गर्म होती तो वह तरंग में होता। दुकान के चबूतरे पर बैठकर गन्ना चूसने में व्यस्त रहता या संगतरे की फांकें खाता। उसका बेटा कालेज में कई साल से बी.ए. में पढ़ता था। बी.ए. पास न होने का कारण उसका फेल होना नहीं था बल्कि उसने कभी परीक्षा ही न दी थी। निहाल चंद उसे 'नन्हा' कहकर बुलाता, "अच्छा तो नन्हें अब के इम्तहान मत दे, अप्रैल में तो गर्मी भी हो जाती है। आखिर जल्दी भी क्या है? फिर दे देंगे।" निहाल चंद का जब भी मूड हो तो वह दुकान से ग़ायब रहता। एक दिन योगराज ने बायस्कोप का प्रोग्राम बनाया लेकिन निहालचंद को न आना था और न आया। मालूम हुआ कि हज़रत मुक्ति फौज वाली मेम साहब के साथ जो फोटो बनवाने आई थी, सारा दिन घुड़दौड़ के मैदान में बाज़ी लगाते रहे। आख़िर योगराज ने दुकान छोड़ दी। किसी ने निहाल चंद से पूछा। कहा, मैंने उसे निकाल दिया है। योगराज ने लाहौर छोड़ बम्बई जाने की ठानी। न जाने निहाल चंद को कैसे मालूम हो गया। वह अलविदा कहने के लिए प्लेटफार्म पर आ पहुंचा और गाड़ी चलने लगी

तो झट छोटी-सी पोटली आगे बढ़ाते हुए कहने लगा, "लो इसमें आलू के पराठे हैं, अचार भी है और प्याज़ भी। भूख लगेगी, खा लेना।" और उसके होटों पर वही चंचल मुस्कराहट खेलने लगी और सफ़ेद सलवार तुर्रेदार पगड़ी में निहाल चंद अलविदा का रूमाल हिलाने लगा।

बलवंत सिंह को सौम्य स्वभाव से प्राकृतिक लगाव था। मनमौजी, मस्तमौला, खाने-पीने का रसिया, जीवन के सुख-दुःख को उदासीन भाव से लेने वाला, दायित्वों को हंसते खेलते निभाने वाला और प्रसन्न चित्त रहने वाला निहाल चंद माना कि एक मामूली आदमी है उसका सौम्य स्वभाव उसके व्यक्तित्व को आकर्षक और यादगार बना देता है। यह कहानी जैसे कि सौम्य एवं मनोविनोदी स्वभाव के प्रति बलवंत सिंह की श्रद्धांजलि है।

'खुद्दार' भी इसी ढब की छोटी-सी कहानी है। एक आम आदमी के किसी विशेष पहलू की। 'निहाल चंद' में जिस प्रकार सौम्य स्वभाव कहानी के केंद्र में था, यहां स्वाभिमान की समस्या प्रमुख है या वह व्यवहार जो स्वाभिमान को ढाल बनाता है। वाचक एक इंजीनियर है जो बिहार में ज़लज़ले के बाद अफ़सर की हैसियत से काम कर रहा है। रघुनाथ को उसने उसकी उम्र और ज़रूरतमंद होने की वजह से नौकरी दे दी है। वह निहायत ईमानदारी और ज़िम्मेदारी से अपना काम करता है और कहानी के वाचक को उस पर भरोसा है। रघुनाथ वैसे एक धनी आदमी था। उसने अपने बच्चों को ऊंची शिक्षा दिलवाई लेकिन ज़लज़ले में सब बर्बाद हो गया। अब उसके घर में अर्द्धविक्षिप्त पत्नी, विधवा बहन और उसका तीन साल का पोता रह गये थे। बड़ा लड़का दिक़ से मर गया। बची-खुची पूंजी उस पर उठ गयी। एक दिन वह वाचक से कुछ कहने के लिए सारा दिन फ़ुर्सत का इतंजार करता रहा। आखिर शाम को वाचक ने जब आग्रह करके पूछा तो रघुनाथ ने हिचकिचाते हुए कहा, "मैं बहुत शर्मसार हूं.... मुझको एक रुपया दरकार है।" धीमी आवाज़ में उसने बात स्पष्ट की "शायद आपको याद होगा। आपने एक दफ़ा मुझसे एक रुपया लिया था। साढ़े तीन महीने पहले....." "उम्मीद है आप भूले नहीं होंगे।" वाचक हैरान रह जाता है क्योंकि उसे याद था कि उसने वह रुपया उसी शाम लौटा लिया था। रघुनाथ शर्म से पानी-पानी हो रहा था। जैसे ज़मीन में गढ़ा जा रहा हो, "आपसे क्या छुपाना, कल से घर में रोटी नहीं पकी, आटा खत्म है, किसी के आगे हाथ फैलाने की मेरी आदत नहीं। बस यह थी असल बात.....वरना एक रुपये की हैसियत ही क्या, मैं हरगिज़ याद न दिलाता।" वाचक उसका हाथ थाम लेता है और पूछता है कि उसको कितने रुपयों की ज़रूरत है ताकि वह उसकी मदद कर सके। लेकिन रघुनाथ और अधिक रुपये लेने को तैयार नहीं होता। उसने ज़िंदगी भर न किसी के आगे हाथ फैलाया और न किसी से उधार लिया था। अब आखिरी उम्र में अपने सिद्धांत से डिगना नहीं चाहता। वाचक चुपके से एक रुपया निकाल कर देता है जिसे रघुनाथ मुट्ठी में भींच लेता है।

ऐसी कहानियों से अनुमान होता है कि बलवंत सिंह मानवीय मनोविज्ञान की गहराइयों में उतरने का हौसला रखते थे। कथानक की सृष्टि तथा चरित्रों को तराशते हुए बलवंत सिंह ने मानवीय मनोविज्ञान की कभी उपेक्षा नहीं की और कहीं-कहीं तो ऐसा नुक्ता पैदा हो गया है कि रोज़मर्रा की अनौपचारिक और रोटीन ज़िंदगी में कोई ऐसा पहलू सामने आ गया है या कोई ऐसा अर्थायाम उत्पन्न हो गया है कि न केवल कहानी रोचक बन गयी है बल्कि चरित्र भी यादगार हो गया है।

अब आइये उन कहानियों की ओर जिनमें ऐंद्रिकता और व्यक्तित्व की अपूर्णता का भाव केंद्रीय स्थिति रखता है। हमारे सामने ऐसी पांच कहानियां उल्लेखनीय हैं, यथा—'पेपरवेट', 'समझौता', 'दीमक', 'कठिन डगरिया' और 'सूरमा सिंह'। ध्यान रहे कि इस प्रकार की अधिकांश कहानियों का सम्बंध मध्यवर्ग या निम्न मध्यवर्गीय जीवन से है। इस समाज के नैतिक मूल्यों के आदर्शीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। आदर्श जो भी है, इन कहानियों में इनका दूसरा रुख़ ही सामने आता है। यानी ढंका-छुपा रुख़। मध्यवर्ग के आडंबर के पेशेनज़र मात्र बातचीत के रूप में आदर्श तो खूब दिखाई देते हैं, लेकिन इन आदर्शों को जीवन-व्यवहार में उतारने से बचाव किया जाता है। इनमें सिर्फ एक कहानी 'सूरमा सिंह' में सिख नैतिकता दृष्टिगत होती है। शेष कहानियों में सामान्य जन-जीवन की स्थितियां हैं।

'सूरमा सिंह' भी 'ग्रंथी' की भांति आम लीक से हटी हुई कहानी है। इसका परिवेश भी गुरुद्वारों का है। जैसे वहां ग्रंथी के चरित्र को प्रमुखता मिली है यहां गिरे-पड़े हाशियाई चरित्र सूरमा सिंह को केंद्रीयता प्राप्त है। अलबत्ता यहां प्रच्छन्न भावनाएं विद्यमान हैं जिनकी व्याख्या स्त्री या पुरुष किसी के साथ जोड़कर की जा सकती है। इस गुरुद्वारे में पहाड़ पर घूमने के लिए आये हुए लोग जिनको और कहीं जगह नहीं मिलती, कुछ दिनों के लिए ठहर जाते हैं। लेकिन सूरमा सिंह का चूंकि कोई ठिकाना नहीं था वह गुरुद्वारे में इधर-उधर ही गुज़ारा कर लेता है और खाना उसे लंगर से मिल जाता है। "जिस तरह मुसलमानों में अंधे शख़्स को हाफ़िज़ जी कहा जाता है और हिंदुओं में सूरदास, उसी तरह सिखों में उसे सूरमा सिंह कहते हैं।" सूरमा सिंह न सूरमा यानी ताकतवर था न मजबूत, बल्कि छोटे कद का कुरूप व्यक्ति था, चेहरे पर चेचक के दाग़, आंखों में सफ़ेदी, मुंह लगभग खुला रहता था और बालों का बड़ा-सा जूड़ा पगड़ी में से गिरता हुआ दिखाई देता था। जब-जब सूरमा सिंह मूड में होता है जीवन की नश्वरता पर लैक्चर झाड़ता। फिर श्लोंको, दोहों या बुल्ले शाह की काफ़ियों से जैसा मौका होता, समां बाध देता। लेकिन गुरुद्वारे के निहंग सिख के जिम्मे गुरुद्वारे के लंगर का काम था। उनमें और सूरमा सिंह में नोक-झोंक होती रहती थी। सूरमा सिंह भी सही शाम से भट्टी में कुछ दूर तख्ते पर बैठ जाता और उनको हिदायतें देता रहता। निहंग कहते कि औरत के मामले में सूरमा सिंह बड़ा घाघ है। औरतें जहां

कपड़े धोने के लिए इकट्ठी होती हैं। सूरमा सिंह किसी न किसी बहाने से वहां जा निकलता। औरतों की बातें सुनने का उसे बड़ा शौक़ था या अनजाने में किसी पर गिर पड़ता या छू जाता। एक दिन गैर मामूली शोर हुआ और कुछ लोगों ने सूरमा सिंह को पकड़ कर खूब पीटा। साथ वाले कमरे में एक शादीशुदा नौजवान औरत और उसके मां-बाप, भाई-बहन ठहरे हुए थे। बाक़ी कमरे चूंकि रुके हुए था उन्होंने सूरमा सिंह को अपने कमरे के एक कोने में जगह दे रखी थी। उस रोज़ जब दूसरे लोग इधर-उधर थे तो सूरमा सिंह ने औरत से बातों-बातों में पूछा कि उसकी उम्र क्या होगी? इस पर हंगामा खड़ा हो गया। सूरमा सिंह की पगड़ी उसके गले का हार हो रही थी। गाल तमाचों से दहक रहे थे। मसूड़ों से खून निकल आया था। औरत एक तरफ़ बैठी थी। गेहुंआ गोल गुलाब जामुन-सी मद भरी कामिनी आंखें। सूरमासिंह मार खाने में बहुत माहिर था। जब सब मार चुके तो सूरमासिंह ने औरत के दोनों पांव पकड़ लिये और उन पर माथा रख दिया। औरत के भाई ने उसे जूड़े से पकड़कर परे धकेल दिया। औरत बड़े ठस्से से पलंग से पांव लटकाये बैठी रही। ज्ञानी जी भी जब डांट चुके तो सूरमा सिंह ने औरत के पांव फिर से पकड़ लिये और उन्हें नर्मी से सहलाते हुए अपना गर्म-गर्म गाल उन पर रख दिया और बुल्ले शाह की काफ़ियों की आवाज़ में दबे-दबे से शब्द कहे। औरत का भाई सूरमा सिंह को हटाने के लिए झपटा तो औरत बोली, "रहने दीजिए भाई साहब, बेचारा सूरमा सिंह है।"

कहानी के वातावरण, चरित्र या घटना-विन्यास में कोई विशेष बात नहीं। लेकिन अपना मिज़ाज और कैफ़ियत रखती है। इसमें एक व्यक्ति की प्रच्छन्न भावनाएं तो हैं ही जिसकी आंखें उसके हाथों या कानों में है या जो मात्र स्पर्श करने से अनुभूति कर लेता है। लेकिन इसमें औरत का व्यवहार भी एक विशिष्ट अर्थ रखता है। उसका भाई और अन्य सभी लोग सूरमा सिंह के साथ मार पीट करते हैं भला-बुरा कहते हैं। लेकिन वह तटस्थ भाव से बैठी रहती है, जैसे कि वह नाराज़ है न खुश। और जब रोता हुआ सूरमा सिंह उसके पांव पकड़ कर उन पर गाल रख देता है तो वह अपने भाई को टोकती है कि रहने दीजिए, बेचारे को कुछ न कहिए। इस प्रकार मानो कि यह कहानी सूरमा सिंह की होते हुए भी उसकी नहीं है। एक ही वाक्य के द्वारा बलवंत सिंह ने औरत की वासना के भाव की ओर संकेत कर दिया है, उच्चकोटि की कलात्मकता के बिना यह संभव नहीं था।

'पेपरवेट', 'समझौता' और 'दीमक' रोज़मर्रा ज़िंदगी की दिलचस्प कहानियां हैं। 'पेपरवेट' में एक नौजवान जोड़ा है, नया-नया विवाहित। पति को नवयौवना पत्नी की इस बात से चिढ़ है कि दफ्तर जाने के बाद उसकी सुंदर पत्नी खिड़की खोलकर न बैठा करे कि सामने के फ्लैट में कॉलेज के लड़के ताकते हैं। पति जितना चिढ़ता और पत्नी को टोकता है पत्नी को उतनी ही सांत्वना मिलती है कि कोई देखता है तो देखा

करे, उसका क्या जाता है। पति बहाने-बहाने से झगड़ा करता रहता है। पत्नी टाल जाती है। पति को अपनी बेबसी पर बहुत गुस्सा आता है। अतएव खिसियाना होकर वह तय कर लेता है कि पत्नी से प्रतिशोध ले और घर छोड़ कर चला जाये। रात को जाने लगता है तो पत्नी के नाम ख़त लिखता है कि उससे तंग आकर घर छोड़कर जा रहा है। पत्नी पर विदा की दृष्टि डालने के लिए सोने के कमरे की ओर जाता है तो देखता है कि रज़ाई खिसक कर नीचे आ रही थी और खिड़की से आने वाली चांदनी में वह बहुत सुंदर लग रही थी। उससे रहा नहीं जाता चुम्बन लेने के लिए झुकता है तो पत्नी की मदमाती आंखें खुल जाती हैं और वह उसे पकड़ जूतों समेत रज़ाई के अन्दर खींच लेती है। नौकर की आवाज़ आती है कि सामान तांगे में रख दिया है। पत्नी नींद में डूबी हुई आवाज़ में कहती है, सामान उतार कर ऊपर ले आओ।''

नये-नये विवाह के बाद स्त्री-पुरुष की भावनाओं में जो उतार-चढ़ाव आते हैं पुरुष जिस प्रकार स्त्री पर प्रभुत्व जमाना चाहता है या बात-बात में उस पर संदेह करता है या आत्मविश्वास की कमी या हीन ग्रंथि के कारण खीझ व्यक्त करता है और स्त्री प्रायः व अधिकांशतः शांत भाव से उसे झेलती और सुलझाती रहती है। यह छोटी-सी कहानी इस भाव-स्थिति की मार्मिक व्यंजना है।

'समझौता' और 'दीमक' भी इसी प्रकार की रोचक कहानियां है। 'समझौता' में एक पति-पत्नी जिस फ्लैट में मकान बदल कर पहुंचते है वहीं सामने ही कुछ चंचल नवयुवक विद्यार्थी रहते हैं फ्लैट की व्यवस्था इस प्रकार की है कि पत्नी लाख बचने की कोशिश करे, घर का कामकाज करते हुए वह लड़कों की निगाह में रहती है और जब-जब लड़कों को मौक़ा मिलता है वे चुहलें करते हैं, जुमले कसते हैं और कभी-कभी एकाध गाने का बोल भी हो जाता है। अंततः तंग आकर एक दिन वह स्त्री तन कर खड़ी हो जाती है और लड़कों को खरी-खरी सुनाती है। उस दिन के बाद पड़ोस में मुर्दनी छा जाती है, सब हंसी-ठठोल और चंचलता ग़ायब हो जाती है। धीरे-धीरे खुद स्त्री की तबीयत उलझने लगती है। उसे अजीब कमी-सी महसूस होती है जैसे कि उसमें आकर्षण नहीं रहा है या वह बूढ़ी हो गई हो। अतएव वह पति से कहती है, ''घर बदल लें, मैं यहां नहीं रह सकती ।''

इस कहानी और 'पेपरवेट' कहानी में जो साम्य है वह बहुत स्पष्ट है। ताक-झांक, छेड़छाड़, हंसी-ठठोल आदि सुंदरता पर रीझने के कई तौर-तरीक़े हैं। ये यौवन की अनिवार्य सामग्री में से हैं। अधेड़ उम्र तक पहुंचते हुए वासनात्मक वृत्तियां एकरसता की पट्टी पर चलते हुए शांत और निष्क्रिय होने लगती हैं और इनकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। ये समस्याएं अलग हैं। बलवंत सिंह के कथानक में यह मनःस्थिति बहुत ही कलात्मक रूप में गुंथी हुई है। इस क्रम में दो कहानियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, 'दीमक' और 'कठिन डगरिया'। दीमक की हैसियत एक रूपक

की है। यही थीम पूरी कलात्मकता के साथ 'कठिन डगरिया' में अभिव्यक्त हुई है। 'दीमक' में जीवन की एकरसता प्रभावी है जो वासना और संवेदनाओं को जड़वत् कर देती है और स्फूर्ति को छीन लेती है। 'दीमक' दरअसल रोटीन और रोज़मर्रा के अवसाद का वह रोग है जो जीवन की स्फूर्ति और सौंदर्य के प्रति रागात्मक लगाव को चाट जाता है। ज़ैनू एक ऐसी ही पत्नी है जो दिन-रात घर-गृहस्थी में पति का मन रखने और बच्चों की देखभाल करने में व्यस्त रहती है। और धीरे-धीरे अपने-आपसे उदासीन हो जाती है। पति रातों को देर से आता है तो वह चुपचाप सोचती है कि क्या वह वास्तव में उसे दूध पीती बच्ची समझते हैं।

'दीमक' में जीवन की जिस एकरसता और वासनात्मक उदासीनता के भाव को सरसरी तौर पर व्यक्त किया गया है, 'कठिन डगरिया' में यह भाव अपेक्षाकृत अधिक गहन रूप में उभर कर सामने आता है और यह कहानी परत-दर-परत कई गिरहें खोलती है। यह एक प्रकार से स्त्री के भाव (नारीवाद) की कहानी भी है। बज़ाहिर यही मालूम होता है कि कर्ता पुरुष है लेकिन कर्ता स्त्री भी है। एकरसता का जो भाव पुरुष की संवेदना को जडवत् बना देता है यह पुरुष ही नहीं स्त्री की समस्या भी है। असल बात कल्चर की है, जो कि केंद्र में है, इसीलिए वासनात्मक जीवन का मुख्य कर्ता पुरुष को मान लिया गया है। अन्यथा वासना में स्त्री की भी बराबर की भूमिका है। आवश्यक नहीं कि बलवंत सिंह ने इसे नारीवाद के दृष्टिकोण से ही लिखा हो। उसने तो अपने कला-कौशल के साथ एक रचना का सृजन किया है। लेकिन चूंकि इसमें स्त्री की भावनाओं के साथ भी न्याय किया गया है या संयोग से यह न्याय हो गया है, हमारी राय में 'कठिन डगरिया' इस कोटि की कहानी है कि इसे नारीवादी कहानी की संज्ञा भी दी जाती है। प्रसंगतः यह संकेत कर देना भी आवश्यक लगता है कि बलवंत सिंह की यौन जीवन संबंधी कहानियां विशेष रूप से 'कठिन डगरिया' धारणाओं को तोड़ती है और आदर्शों का खंडन करती है; अपने अंतिम प्रभाव में यह भी रूमान से मुक्ति या कटु यथार्थ की कहानियां है न कि आदर्शवादी या रूमानी कहानियां।

'कठिन डगरिया' भी 'ग्रंथी' या 'सूरमा सिंह' की भांति एक गठी हुई कहानी है जिसमें एक शब्द भी अनावश्यक और अतिरिक्त नहीं है। विवाह को कई वर्ष बीत गये, तीन बच्चों का बाप है। पत्नी शांत सुन्दर है लेकिन उसमें पहले जैसा आकर्षण नहीं रहा है। बैजनाथ रखीराम का दोस्त है। जिसे मकान दिलवाने में रिखीराम ने मदद की थी। बैजनाथ की पत्नी कामिनी धीरे-धीरे रिखीराम के लिए आकर्षण का कारण बन जाती है। दोनों परिवारों में मधुर सम्बंध हैं और एक-दूसरे के यहां आना-जाना भी है। एक दिन रिखीराम को कारोबार के सिलसिले में यात्रा पर जाना है। वह पत्नी को फोन कर देता है कि सामान तैयार कर दे, रात की गाड़ी से वह दिल्ली चला जायेगा। लेकिन दिल्ली से सूचना मिलती है कि जिस व्यक्ति से मिलना था वह खुद

लाहौर आ रहा है। रिखीराम घर पहुंच कर पत्नी को बताता है कि यात्रा तो स्थगित हो गयी है लेकिन रात का खाना वह बाहर ही खायेगा। जल्दी से नहा-धो तैयार होकर वह निकल जाता है। अब्दुल्ला सिगरेटों का वह बड़ा प्रशंसक था। जब खुश होता तो वह अब्दुल्ला सिगरेट ज़रूर पीता। बैजनाथ के घर पहुंचता है तो खुद बैजनाथ कहीं जाने की तैयारी में है। रिखीराम कहता है कि मैं तो यों ही इधर चला आया। तुम कहीं जा रहे हो तो चलो, फिर सही। लेकिन बैजनाथ उसे रोकते हुए कहता है कि इतनी दूर से आये हो तो थोड़ी देर को रूको, मेरी कहीं दावत है। ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटे में लौट आऊंगा। मेरी वापसी तक तुम खाना भी यहीं खा लो। मैं बस चुटकी बजाते में आता हूं फिर ताश जमेगी। इसके बाद का दृश्य बलवंत सिंह के शब्दों में:

> "ड्योढ़ी का दरवाज़ा बंद करके कामिनी बैठक की खिड़की के क़रीब आ खड़ी हुई। वह वहां चुप खड़ी शौहर को गली के नुक्कड़ से गायब होते हुए देखती रही। इस कोशिश में रखी भी चुपके से दीवार से लगकर उसके करीब खड़ा हो गया था। कुछ देर कामिनी चुपचाप गली की जानिब देखती रही। फिर उसका हाथ ऊपर उठकर बिजली के बटन की तरफ बढ़ा और दूसरे लम्हे में बिजली का बल्ब बुझ गया और फ़र्श पर बिछी दरी पर खिड़की में से आती हुई चांदनी फैल गयी।
>
> रखी ने बाजू बढ़ाया जो कामिनी की पीठ से होता हुआ उसके गोश्त से भरपूर कूल्हे पर जाकर टिक गया। कामिनी की कमर हिली, लम्हे भर बाद शांत हो गई। वह और पास होकर उसके साथ खड़ा हो गया। उन दोनों की आंखें चार नहीं हुई लेकिन कामिनी की कमर ने हलके से कम्पन के बाद शांत होकर गोया उसके सवाल का जवाब संकेत में दे दिया था।
>
> वह ख़ामोश खड़ी थी। दो एक बार रिखी के होटों से मुहब्बत के दर्द में डूबी हुई मध्दम-सी आवाज़ सुनाई दी, "कम्मो, कम्मो!"
>
> जवाब में कामिनी ने पलकें ऊपर उठायीं और बार भरपूर नज़रों से उसकी तरफ़ देखा और फिर समर्पण के अंदाज़ में पलकें झुका कर रह गयी। वह बिजली के कौंदे की तरह आगे बढ़ा। उसकी कमर को बाजू में लेकर उसे अपनी तरफ़ खींचा, यों महसूस हुआ जैसे फूलों की नाजुक डाली पकड़कर झनझना दी हो। उसका जिस्म सिर से पांव तक कामिनी के नर्म लचकीले जिस्म के स्पर्श से सिहर उठा। किसी तात्कालिक भाव के वशीभूत उसने न मालूम किस-किस तरह उसे भींचा, चूमा और फिर लड़के की पुकार की आवाज़ें हथौड़ों के धमाकों की तरह सुनायी देने लगीं और फिर कामिनी उड़ती हुई खुशबू की तरह उसकी आंखों से ओझल हो गयी।"

कामिनी चूल्हे के पास बैठी देगची में चम्मच हिला रही थी। उसका तीन-चार साल का बेटा घुटने के साथ लगा ऊंघ रहा था। अंगारों की रोशनी में कामिनी का चेहरा

दमक रहा था। बाल कुछ परीशान हो गये थे। बच्चे को सुलाने के बाद कामिनी उसके लिए रोटी बनाने लगती है :

कामिनी ने रोटी उलटते हुए कहा, ''आपको भूख तो लग रही होगी।''

उसने उठकर कामिनी के गाल पर होंट रख दिये ''नहीं, कम्मो! मुझे भूख नहीं लग रही।'' यह कह कर वह उसे अपने बाज़ुओं में लेने की कोशिश करने लगा। कामिनी ने अपने-आपको उसकी मर्ज़ी पर छोड़ते हुए कहा, ''मुझे रोटी तो पका लेने दीजिए।''

''मेरी जान से प्यारी कम्मो! रोटी फिर पका लेना।'' यह कहकर उसने हाथ मारकर तवा चूल्हे से गिरा दिया।''

इस अवसर पर कोई दूसरा कहानीकार होता तो नग्नता की ओर आकर्षित हुए बिना न रहता। लेकिन बलवंत सिंह साफ़ दामन बचा गये। उन्होंने यह सब पाठक की कल्पना के लिए छोड़ दिया है और लिखा भी तो सिर्फ़ इतना :

''वह खुश था और सिर से पैर तक नशे में डूबा था। अब वह बैठक में दरी पर लेटा हुआ था। टांगें बिछाकर क़रीब बिछी हुई कुर्सी पर रखे वह बिजली की जगमगाती हुई रोशनी में वीकली का पर्चा पेट पर धरे उसके पन्ने पलट रहा था।

एक बार कामिनी चूल्हे के आगे बैठी उसके लिए पराठे सेंक रही थी। इस रोज़ से पहले ज़िदंगी के जो दिन गुज़र चुके थे, बिल्कुल रूखे और नीरस नज़र आने लगे थे। यह सुख, यह प्रसन्नता उसने महसूस नहीं की थी। मन संतुष्ट था। जिस्म हल्का-फुल्का महसूस हो रहा था। आत्मा अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति कर रही थी। आज कामिनी और वह एक हो गये थे।''

कहानी का अंतिम मोड़ वहां आता है जब रिखीराम प्रसन्न मुद्रा में घर लौटता है तो नुक्कड़ के पनवाड़ी के पास सिगरेट सुलगाने के लिए रुक जाता है और आदतन पनवाड़ी से पूछता है कि मुझसे मिलने कोई आया तो नहीं था। पनवाड़ी कहता है बाबू बैजनाथ आये थे, आपका इतंज़ार करके चले गये।'' ''बैजनाथ?'' ''हां बैजनाथ बाबू।'' वह सोच में पड़ जाता है। वह घर का रास्ता बहुत धीरे-धीरे तय करता है। भीतर प्रवेश करता है तो शांता तरोताज़ा और उजली दिखाई दे रही है। सोफे पर बैठते ही पूछता है, ''शन्नो आज तुम बहुत खुश दिखाई दे रही हो?' वह बिना कुछ कहे नर्मी से उसके कंधे पर गाल रख देती है। शन्नो की उनींदी पलकें बोझल होकर झुकने लगती हैं। वह कहता है ''मैं भी बहुत खुश हूं शन्नो! ज़रा लाओ तो अब्दुल्ला सिगरेट का डिब्बा!''

पूरी कहानी में एक भी कड़ी ढीली नहीं है। समूचा घटनाक्रम एक शाम का है जिसमें कुछ भी संयोगवश या प्रत्याशित रूप से घटित नहीं होता। यह मानवीय स्वभाव की सहज अभिव्यक्ति है। पूरी कथावस्तु की चूल कहानीकार ने इस कलात्मकता के

साथ बिठाई है कि कहीं पर कोई झोल नहीं। हर घटना स्वाभाविक रूप से घटित होती जाती है। पाठक को कहीं धचका नहीं लगता। पूरी कहानी एक सुहाने सपने की भांति चलती रहती है। रिखीराम का दिन भर के काम के बाद कुछ सोचते हुए घर लौटना। नहा-धो तैयार होकर एक झूठी उम्मीद लिये बैजनाथ के यहां पहुंचना, यहां खुद बैजनाथ का दावत के बहाने जाने का प्रोग्राम बनाये हुए होना, मुद्दतों से जिस मौके की प्रतीक्षा थी उसका यूं सहज ही हाथ आ जाना। चूल्हे के पास बैठी हुई कामिनी के दैहिक अस्तित्व का तमतमाना और पिघलना, ये सब जैसे कि 'रति' और 'काम' के सम्मोहन और भोग के रूपक हैं। अंतिम सिचुएशन में जब पनवाड़ी की बात से खुद रिखीराम के चकमा खा जाने का रहस्य खुलता है तो एक विडंबना (Irony) पैदा हो जाती है। जिससे कहानी की अर्थवत्ता और गहरी हो जाती है।

स्पष्ट रूप से कहानीकार ने एक रोचक कथानक बुना है जिसमें दोहरी चाल की तकनीक से काम लिया गया है। यानी जो मात देने चला है, वह खुद मात खाता है। अधेड़ आयु के मनोविज्ञान, अतृप्त वासना और वैवाहिक बंधन से मुक्त होकर प्रेम करने की स्थितियों से हम परिचित हैं जिनमें कोई असामान्यता जैसी चीज़ नहीं है। अलबत्ता कहानी में वासना के कारण भी जिज्ञासा का भाव है और इस कारण भी जिज्ञासा बनी रहती है कि एक-दूसरे के परस्त्रीगमन की बात का पता परस्पर किसी को नहीं चलता। जबकि वे दोनों ही लिप्त हैं। धोखा-धड़ी और छलकपट मानव-स्वभाव का अंग है लेकिन चकमा देने वाले का खुद चकमा खा जाना अनोखे अचंभे का पहलू रखता है। लेकिन यह 'प्रतिकार के नियम' (Law of Retribution) की कहानी हो, ऐसा नहीं है। रिखी पनवाड़ी से बात करके हतप्रभ अवश्य हो जाता है और थोड़ी देर को उसके क़दम भी नहीं उठते लेकिन मात का यह अहसास क्षणिक है, घर पहुंचकर वह पत्नी से कहता है, "आज तुम बहुत खुश दिखाई दे रही हो।" तो थोड़ी देर बाद खुद ही कहता है, "मैं भी बहुत खुश हूं ज़रा लाओ तो अब्दुल्ला सिगरेटों का डिब्बा।" गोया मात भी मात नहीं। इस कहानी को नैतिकता अथवा अनैतिकता की सीमाओं में बांधकर पढ़ना, इसके साथ अन्याय करना है और इसके कलात्मक सौंदर्य की हत्या करना है।

इस कहानी के कलेवर में और कोई गुंजाइश भी नहीं। पनवाड़ी से बात के बाद तस्वीर का दूसरा रुख़, जो अब तक ओझल था, अचानक आंखों के सामने आ जाता है। या तो कहें कि एक ही घटना विभक्त होकर दो घटनाओं में बदल जाती है या दृश्य विभक्त हो जाता है और दो मिलते-जुलते दृश्य जो एक दूसरे के प्रतिरूप हैं, अस्तित्व में आ जाते हैं। कहानी का 'अनुपस्थित वाचक' रिखीराम के साथ-साथ है यानी रखीराम और कामिनी का प्रसंग आंखों के सामने रहता है। क्योंकि उपस्थित तत्व ये दोनों हैं जबकि यही प्रसंग ठीक इसी वक़्त बैजनाथ और शांता के बीच भी

घटित होता है; ये दोहरी घटनाएं एक दूसरे की छाया भी हैं, निषेध भी। दोनों को एक दूसरे की ख़बर नहीं और खुद पाठक को भी दो की खबर है दो की नहीं। हालांकि कर्ता चारों हैं। प्रश्न यह है कि क्या परस्पर भिन्न युग्मों के सान्निध्य (Juxtaposition) से जीवन की एकरसता के स्थान पर नयी स्फूर्ति का संचार नहीं होता?

हैं अनासिर की ये सूरत बाज़ियां
शौबदे क्या-क्या हैं इन चारों के बीच
(मीर)

यह संक्षिप्त और रोचक कहानी जो कहती है सो कहती है और जो नहीं कहती सो नहीं भी कहती। मज़े की बात यह है साहित्य और कला (कथानक की काव्यात्मकता सहित) में इन प्रच्छन्न भावों की अभिव्यक्ति आनंददायक प्रतीत होती है। स्त्री और पुरुष का वासनात्मक जीवन अनेक दृष्टियों से कला का रूपक है। या इससे उल्टे कला स्त्री और पुरुष के मिलन का रूपक है। साहित्य और कला में यह कथा दब-दब कर उभरती है। कैसी-कैसी हस्तियों ने कैसे-कैसे अनुभवों की खोज की है या उन्हें कला का रूप दे दिया है। आर्ट की सबसे भयानक समस्या औपचारिक या परिपाटीबद्ध अभिव्यक्ति अर्थात् लीक से बचाव करके चलना है। परम्परा से संबंध बनाये रखना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है उससे बचाव या विद्रोह। नये स्वर, नये लहजे, नये ढंग और नयी शैली को पाने की व्यग्रता सृजन की वेदना से गुज़रते हुए एक नयी जीवन-स्फूर्ति और आकांक्षा की तलाश से जुड़े रहना रचना-कर्म की सबसे बड़ी विशेषता है।

साहित्य के संदर्भ से इस समस्या पर रूसी प्रकृतवादियों ने जो विचार किया है, उससे हम परिचित हैं। शिकलोवस्की का यह आग्रह गलत नहीं था कि रोज़मर्रा के जीवन में अनुभव की ताज़गी शेष नहीं रहती। हर चीज़ दिनचर्या या रोटीन बन जाती है। साहित्य और कला का कार्य अनुभव की ताज़गी की खोज है। शिकलोवस्की के इन शब्दों की याद दिलाना यहां अरुचिकर न होगा :

"Habitualization devours objects, clothes, furniture, even one's wife .... All art exists to help us recover the sensation of life. It exists to make us feel things."

बंधी हुई दिनचर्या या रोटीन और कला में शत्रुतापूर्ण संबंध है। एकरसता उकताहट पैदा करके इंद्रियों को संवेदनशून्य कर देती है और उनमें स्फूर्ति एवं स्पंदन शेष नहीं रहता। श्रेष्ठ कलाकार विशिष्ट मार्ग का संधान क्यों करते हैं या साहित्यिक रूढ़ियों पर व्यंग्य क्यों करते हैं अथवा पिष्टपेषण (Cliche) से क्यों बचाव करते हैं? साहित्य और कला में स्फूर्ति या नवीनता का संबंध अनिवार्य रूप से जिज्ञासा एवं विद्रोह से ही क्यों होता है—भले वह नवीनता अंतर्वस्तु की हो या रूप की। रूसी प्रकृतवादियों

ने सृजन के इस गुण को 'अजनबीयत' (Defamiliarisation) की संज्ञा दी है। दूसरे शब्दों में साहित्य और कला की क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का रहस्य नवीनता की सृष्टि करना है।

इस कहानी का जो स्पष्ट आशय है वह तो है ही लेकिन इसमें एक मर्म की बात छुपी हुई है। रिखीराम और बैजनाथ तो अपना-अपना घर छोड़कर दूसरी दिशाओं में जाते हैं लेकिन कामिनी और शांता कहीं नहीं जातीं । ये दोनों अपनी-अपनी जगह पर क़ायम हैं। रिखीराम और बैजनाथ गतिशील हैं, जबकि कामिनी या शांता स्थिर हैं—मूल या स्रोत के रूप में। सृजन या साहित्य-कला के रूपक में स्त्री एक सिग्नीफ़ायर है क्योंकि अपनी जगह पर स्थिर है। अतएव पुरुष जो जगह बदल लेता है और गतिशील है सिग्नीफ़ाइड के रूप में है। प्राचीन संस्कृति या सिंधु घाटी की सभ्यता में स्त्री की केंद्रीयता देखते हुए भी ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रायद्वीप के पर्वतांचल में शक्तिमठ और मातृ सत्तात्मक संस्कृति की दृष्टि से यह बात अर्थपूर्ण लगती है। जहां पुरुष नहीं स्त्री को केंद्रीयता प्राप्त है। इस दृष्टि से देखें तो यह कहानी नारीवाद के वर्तमान आशय से ओतप्रोत है। यद्यपि बलवंत सिंह को इस कहानी की रचना के समय यह अनुमान भी नहीं रहा होगा। लेकिन 'पाठ' (text) सिर्फ़ वह नहीं कहता जो कि लेखक कहलाना चाहता है। 'पाठ' लेखक से आगे भी जाता है और नयी अर्थच्छवियां उसमें पैदा हो जाती हैं। बहरहाल इतना मालूम है कि सिग्नीफ़ायर और सिग्नीफ़ाइड दोहरा रस्ता है, एक वास्तविक या साकार और दूसरा लौकिक या निराकार। बैजनाथ और कामिनी पति-पत्नी हैं और यह सम्बंध वास्तविक है जबकि रिखीराम और कामिनी पति-पत्नी नहीं हैं, यह सम्बंध लौकिक या अवास्तविक है। वास्तविक अर्थ का अंतिम निकष जिस प्रकार शब्दकोश है, उसी प्रकार पति-पत्नी के वास्तविक संबंधों का निकष सामाजिक नैतिकता है। लेकिन 'वास्तविक' या 'साकार' अर्थ केवल समझने के लिये या काम चलाऊ है, इसमें नई संभावनाएं नहीं हैं। अलबत्ता जब सिग्नीफ़ायर और सिग्नीफ़ाइड में अवास्तविक संम्बंध स्थापित होता है तो सांसारिकता से नया अर्थ उभरता है जिससे सौंदर्यात्मक आनंद की वृद्धि होती है। कामिनी और शांता जहां तक अपने-अपने सुनिश्चित सिग्नीफ़ाइड के साथ हैं, ये पिष्टपेषण (Cliche) हैं लेकिन जैसे ही इनका संबंध अनिश्चित या अवास्तविक सिग्नीफ़ाइड से स्थापित होता है इन्हें नया अर्थ मिल जाता है। और स्फूर्ति एवं आनंद का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। स्पष्ट रहे कि सिग्नीफ़ायर वही हैं और अपनी जगह पर स्थिर हैं, जबकि सिग्नीफ़ाइड गतिशील हैं, चलायमान हैं (रिखी राम या बैजनाथ)। अर्थात् यहां 'अर्थ' अवास्तविक प्रेमी या पति है, चलायमान या गतिशील है और जगह बदल लेता है। और उसका एक जगह न टिकना या चलायमान रहना उसे नये-नये अर्थ प्रदान करता है और स्फूर्ति से भर देता है। ग़रज़ यह है कि साहित्य और कला

सांसारिकता का खेल है, नित नये अर्थों के अन्वेषण करने का खेल—न कि लीक पर चलते जाने का। यहां यह संकेत कर देना भी अनावश्यक न होगा कि नवीनता का जो मर्म वासना की अंतर्वर्ती तह में छुपा हुआ है या साहित्य और कला की जीनियस में है वही मर्म संसार की सृष्टि या जीव विज्ञान (Biology) का भी सबसे बड़ा कारक है और जीवन की मुक्ति और उत्कर्ष का मूल आधार है। अर्थात् कोशिकाएं (Cells) विभक्त होकर अपना प्रतिरूप ढालती रहती हैं जिनमें DNA के हज़ारों कोड अपने आपको निरंतर दोहराते रहते हैं। और यह एक नियम के तहत होता है। प्रकृति का नियम है कि ये हज़ारों लाखों कोड़ ज्यों के त्यों विभक्त कोशिकाओं में एकत्र रहते हैं। सिवाय एक किसी कोड के जो हज़ारों-लाखों में केवल एक भिन्न रूप लेता है और जिससे पैटर्न अवास्तविक हो जाता है, उसे परिवर्तन की क्रिया (Mutation) कहते हैं। हज़ारों-लाखों पैटर्नों में एक अवास्तविक परिवर्तन यानी mutation न हो तो धरती पर भिन्न-भिन्न रूप-रंग और आकार-प्रकार ही दिखाई नहीं देंगे। मानो कि प्रकृति भी अवास्तविक पैटर्नों की आभारी है। बिल्कुल यही बात साहित्य और कला पर चरितार्थ होती है—साहित्य और कला में भी अर्थ की नवीनता और स्फूर्ति अवास्तविक संबंधों से उत्पन्न होती है। यह लीक से हटे हुए अर्थ का खेल है। लेकिन बलवंत सिंह को इससे क्या लेना देना—उसने तो एक मज़े का 'पाठ' बना दिया है, लेकिन रचनात्मक पाठ में यह गुंजाइश हमेशा रहती है कि समय के साथ-साथ इसकी संरचना से दूसरे अर्थ भी पैदा हो सकें। अतएव इस बात में किस को आपत्ति हो सकती है कि 'कठिन डगरिया' को साहित्य-कला के अवास्तविक और लीक से हटे सम्बंधों तथा नवीन अर्थ-बोध की संभावनाओं को उजागर करने वाली कहानी के रूप में भी पढ़ा जा सकता है, और इसके पाठ में अर्थगत लालित्य छुपा हुआ है।

ऊपर हमने बलवंतसिंह की कहानी-कला की विभिन्न दिशाओं पर यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास किया है। कहानी वैविध्य की दृष्टि से एक इंद्रधनुष की भांति है जिसके रंग एक के बाद एक तने हुए हैं। यह माना कि बलवंत सिंह को उनके जीवन में भी कोई महत्व नहीं दिया गया और मौत के बाद तो भुला ही दिया गया लेकिन उर्दू कहानी के रंगों में एक रंग बलवंत सिंह का भी है जो बहुत ही आकर्षक और दूसरे रंगों से पृथक भी है। कहानी के क्षितिज पर एक समय मंटो, बेदी, कृश्न चंदर और इस्मत चुग़ताई छाये हुए थे जिससे बलवंत सिंह की महक फैली तो लेकिन उतनी न फैली जितना उसका हक़ था। इसमें कुछ तो बलवंत सिंह की कम मिलनसारी का भी हाथ था और कुछ यह भी कि उनकी कहानियां और उपन्यास ज़्यादातर हिंदी में भी प्रकाशित होते रहे और उर्दू ने अपने एक अलबेले कलाकार को विस्मृत कर दिया। ऊपर हमने श्रेणी दर श्रेणी बलवंत की कला पर चर्चा की। सतही दृष्टि से वह एक रूमान निगार दिखाई देते हैं। आलेख के पहले भाग में इसी पक्ष पर विचार-विमर्श

किया गया है। उनकी इसी प्रकार की कहानियां ज़्यादा मशहूर भी हुईं जिनमें असाधारण रूप से हृष्ट-पुष्ट और लम्बे-चौड़े सिख सरदार सामने आते हैं जो न केवल शक्ति और पराक्रम में अद्वितीय हैं, ये सदाचार, परोपकार और मानवीय शील की भी प्रतिमूर्ति हैं। ये एक प्रकार से सांस्कृतिक परिवेश के अंतरंग सहधर्मी (Alter ego) हैं। अर्थात् एक अंचल की जाति विशेष की आकांक्षाओं का प्रामाणिक अनुवाद हैं या सामूहिक अवचेतन में विद्यमान आद्यबिम्ब हैं जो नायक के रूप में एक यथार्थ या आदर्श की भांति सक्रिय दिखाई देते हैं और मानवीय समुदायों या क़बीलों को मानवता के उच्च प्रतिमान प्रदान करते हैं। लेकिन यह पूरी तस्वीर नहीं। अधिकांशतः ये नायक अपना निषेध करते हैं। ये या इनके नमूने पर ढले हुए चरित्र उन मूल्यों का खंडन करते हैं, जिन मूल्यों की रक्षा के ये प्रतिनिधि हैं।

तीसरे भाग में इस विवाद पर विचार-विमर्श किया गया है और दूसरे पक्ष को सामने लाया गया है कि बलवंत सिंह की कला केवल रूमान निगारी की कला नहीं बल्कि यह रूमान से मुक्ति की दिशा में एक प्रस्थान भी है। जहां मानवीय शील पर मानवीय छद्म प्रभावी हो जाता है और इस दृष्टि से देखें तो कुछ ऐसे चरित्र सामने आते हैं जो कथात्मकता और सौंदर्य विधान की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। इसके साथ-साथ यह बात भी खुलती है कि बलवंत सिंह के यहां चरित्र मात्र चरित्र नहीं या घटनाएं मात्र घटनाएं नहीं—बल्कि सब उस व्यापक फलक पर निर्मित होता है जिसे सांस्कृतिक भूगोल कहा जाना चाहिये। इसमें क़स्बों का वातावरण और मिट्टी की रस-गंध तो है ही लेकिन केवल खेत-खलिहान या सरसों के फूल ही नहीं; तौर-तरीक़े, रहन-सहन, पूजा-पाठ, शबद कीर्तन, मेले-ठेले, तीज-त्योहार, गाना-बजाना, प्रथाएं, आस्थाएं—सभी कुछ जिससे कथाकार के सर्जनात्मक चित्त का निर्माण हुआ है। ये चरित्र जीवित इसलिए लगते हैं कि ये अपनी सांस्कृतिक सृष्टि में सांस लेते हैं। और यह सांस्कृतिक सृष्टि उनमें सांस लेती है। लेकिन यह सब मात्र परिवेश नहीं, कथानक की संरचना में शामिल है। और यह सांस्कृतिक सृष्टि बलवंत सिंह के साहित्यिक या सौंदर्य-मूल्यों में उसी प्रकार प्रवाहित है जैसे शिराओं में रक्त। यह विशेषता चूंकि दोनों प्रकार की कहानियों के कथ्य का अनिवार्य अंग है, इसलिए भाग दो में इसकी कुछ परतों पर प्रकाश डाला गया है क्योंकि बुनियादी रूप से यह उनकी सर्जनात्मक दृष्टि की सर्वत्र उपलब्ध विशेषता है।

अंतिम भाग में कुछ गिनी-चुनी शहरी कहनियों को लिया गया है। इसलिए कि बलवंत सिंह की कला केवल कहानियों तक सीमित नहीं हैं जिनकी चर्चा पहले भागों में की गयी है। उसने शहरी जीवन की कहानियां भी उसी संतुलन और कौशल के साथ लिखी हैं लेकिन उनकी संख्या अधिक नहीं है। यहां उन्होंने दिन प्रति संपर्क में आने वाले मामूली लोगों के बीच से यादगार चरित्र तराशे हैं। बलवंत सिंह की

कलात्मकता की व्यापकता का अंदाज़ा करने के लिए इनको निगाह में रखना भी ज़रूरी था। अंत में उन कहानियों पर दृष्टिपात किया गया है जिनमं ऐंद्रिकता के भाव को प्रमुखता मिली है। ये कहानियां भी अत्यंत प्रभावोत्पादक हैं और इनमें 'कठिन डगरिया' तो कथा-कौशल के एक भिन्न और नवीन पक्ष को सामने लाती हैं। रूढ़ अर्थों से हटकर या नैतिक और अनैतिक के विभाजन से मुक्त होकर इस कहानी को एक नारीवादी कहानी के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। यह साहित्य-कला में नवीनता का एक रूपक है जहां तमाम प्रकार के विधि-निषेधों से मुक्ति का आवाहन किया गया है। इस प्रकार इस कहानी के 'पाठ' को अलग हटाकर इसे शारीरिक नहीं, सौंदर्यात्मक आनंद के रूप में भी पढ़ा और परखा गया है।

ऐसी चित्ताकर्षक कहानियों का सर्जक उर्दू कहानी के इतिहास से ग़ायब नहीं हो सकता। राजिंदर सिंह बेदी ने विभाजन से कुछ वर्ष पहले बलवंत सिंह के कहानी संग्रह पर लिखते हुए कहा था, ''बलवंत के विषयों में विविधता है, उनकी रचना में उल्लास है और वह हर क्षण एक ऐसा नया पहलू पेश करते हैं कि पढ़कर हमारी सौंदर्य-वृत्ति को सुख की अनुभूति होती है।'' यह राय हर दृष्टि से उचित प्रतीत होती है। इसमें संदेह नहीं कि बलवंत सिंह के उपन्यासों की संख्या उनके कहानी-संग्रहों से कहीं ज़्यादा है लेकिन उनके जौहर कहानी-रचना में ही खिलते हैं। अपने उपन्यासों में वे ज़्यादा कामयाब नहीं। हम उपेंद्रनाथ 'अश्क' की इस राय से सहमत हैं कि ''उनके उपन्यासों में खासा ढीलापन है, बहुत कुछ ऐसा है जो बना हुआ, गढ़ा हुआ और यथार्थ से असंपृक्त है। लेकिन उनकी कहानियां इस दोष से मुक्त हैं।'' बहैसियत कहानीकार वह ज़्यादा कामयाब हैं। हालांकि मंटो, बेदी, कृश्न चंदर और अहमद नसीम क़ासमी के युग के तुरंत बाद होने के कारण उन पर निगाहें इस क़दर न ठहरीं और फिर समय से पूर्व निधन के कारण वह जल्द ही आंखों से ओझल हो गये। फिर सिख जातीयता के मनोविज्ञान और सांस्कृतिक मानस की दृष्टि से—इससे भी आगे 'जग्गा', 'ग्रंथी' 'सूरमा सिंह', 'वेबले 38', 'पहला पत्थर', 'देश भगत', 'काली तित्तरी' या 'कठिन डगरिया' के सर्जक की हैसियत से उर्दू कहानी की दुनिया में बलवंत सिंह का स्थान सुरक्षित है। उनकी ख़ास-ख़ास कहानियों की अर्थवत्ता और लोकप्रियता समय के साथ-साथ बढ़ेगी, कम नहीं होगी। ऐसा कहानीकार कुछ समय के लिए नज़र अंदाज़ हो सकता है, समय उसे हमेशा नज़र अंदाज़ नहीं कर सकता।

जीवन-वृत्त

बलवंत सिंह का जन्म 1921 ई. में चक बहलोल ज़िला गुजरांवाला (पाकिस्तान) में हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा वहीं गांव के क्रिसेंट प्रीपेरेटरी स्कूल में हुई। उनके पिता सरदार लाल सिंह देहरादून के मिलिट्री कॉलेज में लैक्चरर थे। कुछ वर्ष बाद बलवंत सिंह उनके पास चले गये और कैम्ब्रिज प्रीपेटेटरी स्कूल देहरादून से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बलवंत सिंह ने इंटरमीडिएट जमना क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद से किया और 1942 ई. में बी.ए. की डिग्री इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राप्त की। बी.ए. करने के बाद वे कुछ समय तक लाहौर में रहे जहां मौलाना सलाहुद्दीन अहमद, राजिंदर सिंह बेदी और कृश्न चंदर से उनकी मुलाक़ातें रहीं। स्कूल के ज़माने ही से बलवंत सिंह ने लिखना शुरू कर दिया था लेकिन 'साक़ी' दिल्ली में पहली कहानी 'सज़ा' प्रकाशित होते ही साहित्य-जगत में मशहूर हो गये और इसके बाद नियमित लिखते रहे। उनकी कहानियों के पहले संग्रह लाहौर से प्रकाशित हुए। विभाजन से पूर्व ही वे उर्दू के एक महत्वपूर्ण कहानीकार के रूप में स्थापित हो चुके थे।

आज़ादी के बाद जुलाई 1948 ई. में, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार की 'आजकल', 'बिसात-ए-आलम' और 'नौनिहाल' पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग से सम्बद्ध हो गये। लेकिन यह नौकरी ढाई वर्ष के बाद जनवरी, 1950 में खत्म हो गयी जिसे बहुत ही रोचक वर्णन बलवतं सिंह ने अपने रिपोर्ताज 'अहद-ए-नो में मुलाज़मत के तीस महीने' में किया है। इसी ज़माने में उनके पिता का निधन हो गया। इसके बाद वह स्थायी रूप से इलाहाबाद जाकर बस गये और मीरगंज में वेश्याओं के चौबारे के सामने पिता की खोली हुई 'इम्पीरियल होटल' चौक इलाहाबाद की देखभाल करने लगे। लेकिन उनका अधिकांश समय लेखन और अध्ययन में व्यतीत होता। और वह होटल की ओर इतना ध्यान न दे सके जिसकी ज़रूरत थी। परिणामस्वरूप कुछ वर्ष के भीतर उन्होंने होटल बेच दिया और नेताजी नगर में अपनी मां के साथ रहने लगे। जिस ज़माने में उन्होंने होटल का काम शुरू किया, उनका पहला विवाह हुआ, कुछ समय तक वह उसे निभाते रहे, अंततः विवाह विच्छेद हो गया। लगभग

बीस-इक्कीस वर्ष बाद उन्होंने दूसरा विवाह अपनी पसंद से किया। उनसे एक लड़का और एक लड़की है। पत्नी एक स्थानीय कॉलेज में पढ़ाती हैं।

बलवंत सिंह बचपन से ही सैरो-तफ़रीह और आवारा-गर्दी के लिए मशहूर थे। घर से कई बार भागे और पकड़ कर फिर स्कूल में बिठाये गये। संगीत और चित्रकला से लगाव था। बाँसुरी खूब बजाते थे। बहुत ही प्रसन्न चित्त, विनोद प्रिय और हँसमुख व्यक्ति थे। इलाहाबाद में उनका शुरू का ज़माना, जब वह कई उम्दा कहानियां और उपन्यास लिख चुके थे, बहुत ठाट-बाट का ज़माना था। उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने उनके बारे में लिखा है कि बलवंत सिंह खासे खुश पसंद और स्नॉब थे। बावजूद इसके वह बज़ाहिर हंसी-मज़ाक करते और शौकियाना लतीफ़े सुनाते। लेकिन अस्ल में वह एंटी सोशल थे और लोगों से वह बहुत कम मिलते जुलते थे। "वह मंझोले क़द और दोहरे बदन के गोरे चिट्टे, स्वस्थ ऊंचे पूरे, बेहद खूबसूरत इन्सान थे। अकेले पिक्चर देखते और तो और सिविल लाइन्स के कॉफ़ी हाउस में अकेले काफ़ी पीते थे। सुबह को बग़ैर पूरी तरह सजे-धजे वह किसी से नहीं मिलते थे। जिन दिनों होटल चलाते थे, उन्होंने एक बड़ा अल्सेशियन कुत्ता पाल रखा था। बाहर निकलते तो अपने लम्बे-चौड़े बदन के साथ फैलकर बैठते और पैरों में अल्सेशियन कुत्ता लेटा रहता। सिविल लाइन्स और आस-पास के इलाक़े में वह रिक्शा पर इसी शान से आते-जाते नज़र आते थे।"

बलवंत सिंह बड़े से बड़े सम्मान के पात्र थे लेकिन उनके जीवन में सिर्फ़ तीन पुरस्कार उन्हें मिले—उत्तर प्रदेश सरकार का साहित्यिक पुरस्कार, भाषा-विभाग पंजाब सरकार का साहित्यिक पुरस्कार और पंजाब ही से शिरोमणि साहित्यकार पुरस्कार।

दूसरा विवाह होने के बाद बलवंत सिंह जीवन के और अधिक वसंत नहीं देख सके। कदाचित् उन्हें आँतों की शिकायत थी जो कैंसर में बदल गयी। धीरे-धीरे दुबले-पतले होकर अपनी असल की एक प्रतिलिपि बन कर रह गये। मधुमेह की बीमारी पहले से ही रही होगी। इसका असर आंखों पर हुआ और ज्योति लगभग जाती रही। आख़िर में उन्होंने सिर के बाल कटवा दिये और दाढ़ी भी मुंडवा ली। 27 मई, 1986 को इलाहाबाद में उनका निधन हुआ।

अगले दिन जब अर्थी उठायी गयी तो उर्दू-हिन्दी के साहित्यकारों में से कोई मौजूद नहीं था और न ही किसी पत्र-पत्रिका ने बलवंत सिंह की मृत्यु का समाचार प्रमुखता के साथ छापा।

उर्दू और हिंदी में कुल मिलाकर बलवंत सिंह की चालीस से अधिक कृतियां प्रकाशित हैं। उन्होंने बाईस उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की।

(जानकारी के लिए श्रीमती मंजु बलवंत सिंह, उपेंद्रनाथ अश्क और डॉ. जाफ़र रज़ा के प्रति आभार)

बलदंत सिंह का साहित्य

उर्दू कृतियाँ (उपन्यास)

1. *रात, चोर और चांद* (उपन्यास), इदारा फ़रोग उर्दू लाहौर, 1948
2. *एक मामूली लड़की* (उपन्यास), इदारा अनीस उर्दू, इलाहाबाद, मई 1959
3. *औरत और आबशार*, उर्दू पॉकेट बुक्स, कराची
4. *काले कोस*, नया इदारा, लाहौर

(कहानी संग्रह)

5. *जग्गा*, मक्तबा उर्दू लाहौर (भूमिका में 18 अप्रैल, 1944 लिखा हुआ है)
6. *तारो-पोद*, मक्तबा जदीद, लाहौर, 1944
7. *हिंदोस्तां हमारा*, संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, जून 1947
8. *पहला पत्थर*, मक्तबा जदीद, लाहौर, दिसंबर, 1953
9. *सुनहरा देश*, मक्तबा जदीद, लाहौर (प्रकाशन वर्ष दर्ज नहीं)
10. *चक पीरां का जस्सा*, मक्तबा अहबाब, लाहौर
11. *बलवंत सिंह के अफ़साने*, मक्तबा उर्दू, लाहौर
12. *असंगृहीत रचना : अहद-ए-नो में मुलाज़मत के तीस महीने* (लम्बी कहानी-नुमा रिपोर्ताज)–प्रकाशक सवेरा, लाहौर (किताब नुमा, दिल्ली, मई, 1988)

हिंदी कृतियाँ

1. *रात, चोर और चाँद*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974
2. *काले कोस*, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद (प्रकाशन वर्ष दर्ज नहीं), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982
3. *सूना आसमान*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967
4. *दो अकाल गढ़*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969
5. *राका की मंजिल*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971

6. *चक पीरां का जस्सा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977
7. *एक मामूली लड़की*, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
8. *निशि*, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली (प्रकाशन वर्ष दर्ज नहीं)
9. *रावी पार*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980
10. *औरत और आबशार*, प्रगति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
11. *आग की कलियां*, प्रगति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
12. *संजोली निवास*, हिमालय पॉकेट बुक्स, इलाहाबाद, 1961
13. *बासी फूल*, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1965
14. *फिर सुबह होगी*, पाण्डुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1974
15. *सुनहरे बालों वाली*, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 1973
16. *साहब-ए-आलम*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979
17. *पहला पत्थर*, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
18. *चिलमन*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली , 1970
19. *मेरी प्रिय कहानियां*, राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, 1971
20. *किस्सा चार दरवेश*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986
21. *फूल खिल उठे* (बच्चों का उपन्यास) आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1972
22. *अमृता प्रीतम की कविताओं की आलोचना*, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, 1962
23. *मोना*, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1983
24. *होनी अनहोनी*, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1979
25. *सिंदूर की तलाश*, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1983
26. *एली-एली*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982
27. *देवता का जन्म*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977
28. *वनवास तथा अन्य कहानियां*, प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978
29. *पंजाब की कहानियां* (चुनी हुई कहानियां), ओंकार श्रीधर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1954

जग्गा

माझा के इलाके में भीकन एक छोटा-सा और अप्रसिद्ध गांव था। मुश्किल से सौ घर होंगे, ज़्यादातर सिखों की आबादी थी। यहां की एक बात अजीब थी, वह यह कि कभी-कभी कोई असाधारण रूप से सुंदर लड़की उभर कर सामने आती जिसके साथ किसी नौजवान मर्द की प्रेम कहानी इतनी रोमान से भरपूर होती कि ससी-पुन्नू, सोहनी-महीवाल और हीर-रांझे के किस्से भी फीके पड़ जाते थे। और अब की गुरनाम कौर की बारी थी।

गुरनाम की सुंदरता ने आस-पास की बस्तियों के नौजवानों में एक हलचल-सी मचा दी थी। वह एक गुड़िया की भांति थी, चीनी की मूरत। चलती तो इस मंथर गति के साथ कि पीछे छूटे हुए पैरों के निशान, सुरमा लगी हुई और उनमत्त आंखें ऐसे गुनाह को प्रेरित करती थीं कि जिससे बेहतर सवाब की कल्पना मन में नहीं आती थी, लेकिन अभी वह मासूम थी, यौवन का पहला सोपान था और वह एक बेफ़िक्र और नवयौवना सुंदरी की तीव्र भावनाओं को इस प्रकार मेहसूस करती थी जैसे खामोशी और शांत समय में कहीं दूर से शहनाई की उड़ती हुई आवाज़ सुनाई दे जाये, अभी वह मर्दों के संकेतों को नहीं समझती थी। वह अपनी मुस्कुराहट हर किसी को पेश कर देती, वह सब से हंस कर बात कर लेती, अभी उसमें सुंदरता का अहं पैदा नहीं हुआ था। इसलिए जो व्यक्ति उससे बात कर लेता, यही समझ लेता कि गुरनाम उससे प्रेम करती है। एक बार तो शिंगारा सिंह ने खुलकर नौजवानों के झुरमुट में खड़े होकर कह दिया था कि वह गुरनाम को भगा ले जायेगा। उस समय दिलीप सिंह उधर से गुज़रा तो दूसरों ने उसे समझाया कि देखो दिलीप सिंह की गिनती भी गुरनाम के प्रेमियों में होती है। उसने सुन पाया तो हालात ख़तरनाक सूरत अख़्तियार कर लेंगे। इस पर शिंगारा सिंह ने ज़बर्दस्त कहकहा लगाया और दिलीप के पीछे खड़े होकर बकरा बुला दिया।[1] इस बात पर दिलीप की आंखों में खून उतर आया। उसने क्रुद्ध दृष्टि से शिंगारे की ओर देखा और कड़क कर बोला, "तूने बकरा क्यों बुलाया है?"

---

1. किसी का उपहास करने के लिए अपने मुंह के आगे हाथ रखकर भक-भक की आवाज़ निकालना

शिंगारे ने तहबंद कस लिया और ख़म ठोंक कर मुक़ाबले पर आन खड़ा हुआ। दिलीप की आंखें क़हर बरसा रही थीं। लगता था कि दोनों जवान आपस में गुथ जायेंगे लेकिन सबने बीच-बचाव कर दिया—आख़िर कहां तक? एक खूनी पुल पर दोनों का मुक़ाबला होगा। दिलीप का टखना उतर गया और दिलीप की लाठी के एक ही प्रहार से शिंगारे का जबड़ा टूट गया, जान तो बच गयी मगर सूरत बिगड़ गयी। उस दिन से सबको कान हो गये। और अब दिलीप के जीते जी गुरनाम का दावेदार पैदा होना असंभव था।

रात भीग चुकी थी। चांद यौवन पर था, गांव पर एक गहरी खामोशी छाई हुई थी। कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आ जाती या उस समय रहट की चर्खी के पास एक जंगली बिल्ला बैठा दुम हिला रहा था और बड़ी वेदना के साथ म्याऊँ-म्याऊँ कर रहा था।

यह रहट अरोड़ियों[1] के पास गांव के बाहर की तरफ था। साथ ही पीपल का एक बहुत बड़ा पेड़ था जिस पर एक झूला पड़ा था। चूंकि बैलों के हांकने वाला कोई था नहीं, जी चाहता, चल देते, जी चाहता ठहर जाते, उस समय खामोशी से खड़े सींग हिला रहे थे।

इतने में सांडनी सवार एक सिख मर्द पीपल के नीचे आकर रुका। उसने सांडनी को नीचे बिठाना चाहा। सांडनी बलबलाकर मचली और फिर धपसे बैठ गयी। पंजाब के देहातों में छः फुट ऊँचा नौजवान कोई असामान्य बात नहीं। मगर इस मर्द के कंधे असाधारण रूप से चौड़े थे, हाथों और चेहरे की रगें उभरी हुई, आंखें सुर्ख अंगारा, नाक जैसी उक़ाब की चोंच, रंग स्याह, चौड़े और मजबूत जबड़े, सिर ऐसे दिखाई पड़ता था जैसे गर्दन में से तराश कर बनाया गया हो, जूड़े पर रंग-बिरंग की जाली, जिसमें से तीन बड़े-बड़े फुंदने निकलकर उसकी स्याह दाढ़ी के पास लटक रहे थे। कानों में बड़े-बड़े मुंदरे, काले रंग की छोटी-सी पगड़ी के दो-तीन बल सिर पर, बदन पर लम्बा कुर्ता, और मूंगिया रंग का धारियोंदार तहबंद उसकी एड़ियों तक लटकता हुआ। गरेबान के फीते खुले हुए, और उसके सीने पर के घने बाल दिख रहे थे और फिर उसके हाथ में एक तेज़ और चमकदार छवी।[2]

आते ही उसने बैलों को दुत्कारा और वे चलने लगे। उसने जूते उतारे, तहबंद को ऊपर उठाया, और अपने मोटे कड़े[3] को पीछे हटाया, पानी की छाल की तरफ बढ़ा। पहले उसने मुँह-हाथ धोया, ज़ोर से खांसा, और फिर पानी पीने लगा।

---

1. कूड़े का ढेर
2. एक तेज़ ख़मदार हथियार जो कि लाठी के सिरे पर चढ़ा लिया जाता है।
3. लोहे का कड़ा जो कि सिख कलाई में पहने रहते हैं।

जब वह पगड़ी की कलगी से मुंह पोंछने लगा तो एक नवयौवना सुंदरी को देखकर ठिठक गया। लड़की ने पानी भरने के लिए घड़ा छाल के नीचे किया। उसकी गोरी कलाई पर की काली-काली चूड़ियां एक छन की आवाज के साथ एक जगह हो गयीं। गुलाबी रंग की शलवार, छींट का घुटनों तक का कुर्ता, सिर पर धानी रंग की हलकी-फुलंकी ओढ़नी, कानों में छोटी-छोटी बालियां, जब उसने अपना नाजुक होंट दांतों तले दबाया, घड़े को एक झटके के साथ उठा कूल्हे पर रखा तो उसकी कमर में एक मोहक लचक पैदा हो गयी।

मर्द ने पहले एक पांव ओलू[1] से बाहर निकाला और उसे झटक कर जूता पहन लिया। फिर उसने अपने दूसरे पांव को झटका दिया और दूसरा जूता भी पहन लिया। तब वह अपनी छवी हाथ में लिये हुए अरोड़ी पर जहां कि एक सफ़ेद मुर्गी के बहुत से पर पड़े थे, खड़ा हो गया। पास ही किसी घर की कच्ची दीवार थी। जिस पर उपले रखे थे, जब लड़की दीवार के पास से गुजरने लगी तो मर्द ने छड़ी से एक उपला नीचे गिरा दिया जो लड़की के पांव के पास जा गिरा। इस समय अजनबी मर्द ने उसके पांव देखे। जैसे सफ़ेद-सफ़ेद कबूतर, तलवों की हल्की गुलाबी रंगत ऐसे मालूम होती थी जैसे वह पांव अभी-अभी गुलाब की कलियों को रौंद कर चले आ रहे हों—लड़की ने अपनी लम्बी पलकें उठाकर उसकी ओर देखा, शायद उसने उसे सिर्फ़ एक राहगीर समझा था, मगर उसकी डरावनी सूरत देखकर उसकी बड़ी-बड़ी सुरमई आंखों में भय की छाया दिखाई देने लगी। मर्द ने भारी-भरकम और कड़क आवाज़ में पूछा, "तू कौन है?"

लड़की की नज़रें मर्द के चेहरे पर जमी हुई थीं, यह पहला मौक़ा था कि किसी व्यक्ति ने उसे इस क़दर रूखेपन के साथ संबोधित किया। उसके सुर्ख-सुर्ख नाजुक होंट फड़कने लगे जैसे किसी ने लाल मिर्ची उन पर छिड़क दी हो, मगर मर्द असाधारण रूप से भयानक था, मर्द ने उसी लहजे में अपना सवाल दोहराया, "तू कौन है?"

लड़की समझ न सकी कि उसकी बात का क्या जवाब दे, उसने अपनी मेंहदी रची उंगली उठाकर इशारा करते हुए जवाब दिया, "मैं वहां उस घर में रहती हूं।"

मर्द ने चुभती हुई नजरों से उसकी ओर देखा। अपने चौड़े कंधों को हिलाकर बोला, "तेरा नाम क्या है?"

लड़की की आंखें चमक उठीं, बोली, "गुरनाम"

"तू वहां किसके साथ रहती है?"

"मेरी मां है, बेबे वीर,[2] चाचा,[3] बापू,[4] सभी रहते हैं।"

---

1. जहां पानी गिरता है।
2. भाई
3. बाप
4. दादा

"मुझे अपने घर ले चल।" मर्द ने उसके साथ-साथ क़दम बढ़ाते हुए कहा।

"मुझे तुझसे डर मालूम होता है।"

मर्द के माथे पर बहुत-सी त्योरियां पड़ गयीं, उसने अपनी दुल्हन की तरह सजी हुई सांडनी की महार पकड़ कर अपनी समझ से ज़रा नर्म लहजे में पूछा, "क्यों? क्या तुम लोग सिख नहीं हो क्या?"

लड़की का चेहरा कानों तक सुर्ख़ हो गया, "लेकिन मुझे तुझसे डर लगता है।"

"क्यों?" मर्द ने उजड्डपन से आग्रह करते हुए पूछा।

लड़की ने एक पल के लिए उसकी चमकदार आंखों की ओर देखा। "तुम हंसते क्यों नहीं?"

"अरे यह बात?" यह कह कर अजनबी ने एक भयानक क़हक़हा लगाया, जैसे कोई पानी से लबरेज़ मटका जमीन पर उंड़ेल दे, उसके क़हक़हे की आवाज़ सुनकर चमगादड़ें अपनी शिकारगाहों से निकल उड़ गयीं।

गुरनाम का घर गांव से बाहर धरेक[1] के पेड़ों के झुंड के पास था। उसकी ममटी तो बहुत दूर से नज़र आती थी।

दरवाज़े के सामने पहुंच कर अजनबी रुक गया, और गुरनाम ने अंदर से अपने बापू और भाई को बाहर भेजा। उनको देखते ही अजनबी ने बुलंद आवाज में कहा, "वाह गुरु जी का खालसा सिरी, वाह गुरु जी की फतह।"

"वाह गुरु जी का ख़ालसा सिरी वाह गुरु जी की फतह।"

अजनबी निस्संकोच भाव से बोला, "मैं दूर से आ रहा हूं, रात ज़्यादा बीत चुकी है। मैं आज यहीं ठहरूंगा।"

बापू दरांती अपने पोते के हाथ में देकर अजनबी के मुंह की तरफ़ देखने लगा। वह बहुत प्रसन्नचित्त और मिलनसार व्यक्ति था, मगर अजनबी की भयानक सूरत उसे शशोपंज में डाले हुए थी। ख़ैर उसने सहमति व्यक्त करते हुए उत्तर दिया, "मैं हर तरह से खिदमत के......"

इससे पहले कि वह अपना वाक्य पूरा कर सके, अजनबी सांडनी लड़के के सुपुर्द कर दरवाज़े के अंदर दाख़िल हो चुका था।

हालांकि घर में ग़रीबी की हालत थी। मगर गोबर से लिपी हुई कच्ची दीवारें इसका सबूत दे रही थीं कि घर की औरतें काहिल या आरामतलब हरगिज़ न थीं। घर के सब लोग ब्याह वाले घर गये थे, सिवाय चार के।

ड्योढ़ी से निकल कर अजनबी सेहन में दाखिल हो गया। एक बच्चा सीने से गुल्ली-डंडा लगाये सो रहा था। सेहन मवेशियों के मूत और गोबर से अँटा पड़ा था।

1. नीम से मिलता-जुलता एक पेड़

एक तरफ़ खुरली[1] के पास एक भैंस जुगाली कर रही थी। भुस और खली की बू चारों तरफ़ फैली हुई थी। रस्सी पर मैले-कुचैले कपड़े लटक रहे थे। एक ओर ख़रास[2], दूसरी ओर तन्नूर और उसके पास ही दीवार से टिका हुआ छकड़े का पहिया, ये बड़े-बड़े उपले, कोने में कपास की छड़ियां, चूल्हे के पास झूठे बर्तनों का अम्बार, एक कमरे में से सफेद-सफेद चमकते हुए बर्तन दिखाई दे रहे थे। साथ ही तागे में पिरोये हुए शलगम के कत्ले सूखने के वास्ते लटक रहे थे।

सेहन से गुज़र कर बूढ़ा बापू अजनबी को दरवाज़े से बाहर छप्पर के नीचे ले गया। थोड़ी-सी जगह के तीनों ओर एक कच्ची दीवार उठा दी गयी थी। सूखे हुए उपले जो जलाने के काम में आ सकते थे उसी जगह रखे जाते थे। यहां पर एक चारपाई डाल दी गयी। चारख़ानों वाला एक खेस और अजनबी के दिल की तरह सख्त एक अदद तकिया उस पर रख दिया गया।

गुरनाम ने कपास की छड़ियों का गट्ठा तन्नूर में फैंका और खुद आटा गूंधने लगी। जिस समय वह तन्नूर में रोटियां लगाने लगी तो उसकी ओढ़नी सिर से खिसक गई। उसकी लम्बी चोटी के रंगबिरंग के फुंदने उसकी पिंडलियों तक लटक रहे थे। दहकते हुए तन्नूर की रोशनी उसके सुंदर मुख पर पड़ रही थी। और अजनबी चुपके-चुपके उसे देख रहा था।

शलगम की तरकारी, एक कटोरे में शकर भी, डीलों[3] का अचार, दो बड़ी-बड़ी प्याज की गट्ठियां, और आठ चौड़ी-चौड़ी रोटियां थाली में रखकर गुरनाम उसको दे आयी।

जब अजनबी ने ऊंचे सुर में तीन चार डकारें लीं और बड़े ज़ोर-शोर के साथ मुंह में उंगली फेर कर कुल्ली की तो गुरनाम को मालूम हुआ कि वह खाना ख़त्म कर चुका है।

वह बर्तन उठाने लगी तो उसने देखा कि अजनबी कपड़े उतार रहा है। जब उसने तहबंद उतारा और उसे झाड़कर तकिये के पास रखने लगा तो सोने का एक कंठा नीचे गिर पड़ा। गुरनाम ठिठक कर वापस जाने लगी तो अजनबी ने धीरे से पूछा, "गुरनाम, बस जा रही हो क्या?"

गुरनाम हमेशा की तरह अपने मनमोहक बचकाना अंदाज़ में मुस्कुराई, और ओढ़नी सम्हालते हुए आगे झुक कर धीरे से बोली, "सब लोग सो जायें तो मैं आऊंगी।"

अजनबी दूर खेतों की तरफ़ देख रहा था, शरीहना और बबूल के पेड़ काले देवों की भांति ख़ामोश खड़े थे। मंड-मंड बेरियों पर बयों के घोंसले लटक रहे थे।

---

1. नांद जिसमें सानी की जाती है
2. बैलों के ज़रिए चलने वाली चक्की
3. बेर की भांति एक फल

ऐसे सुनसान समय में, तारों भरे आसमान तले, किसी दूर चलते हुए रहट से किसी नौजवान की मधुर गाने की हल्की-हल्की आवाज़ आ रही थी।

बागे बिच केलाई

निकल के मिल बालो।

साडे वंझने दा वेला ई

निकल के मिल बालो।

इतने में गुरनाम दबे पांव, शलवार के पांयचे उठाये, निचला होंट दांतों तले दवाये चुपके-चुपके क़दम नापती हुई आयी।

थोड़ी देर बाद दोनों में घुलमिल कर बातें होने लगीं।

अजनबी ने बहुत से सोने के ज़ेवरात और मोतियों के हार निकाले। क़रीब था कि गुरनाम के मुंह से आश्चर्य और खुशी के साथ एक चीख़ निकल पड़ी। मगर अजनबी ने होंटों पर उंगली रखकर ख़ामोश रहने का संकेत किया।

गुरनाम बहुत देर तक मैना की तरह चहकती रही, इधर-उधर की बातें करती रही। मगर उसका ध्यान ज़ेवरात की ओर था। आख़िर उसने अपनी बातों से आप ही उकता कर एक गहरी सांस ली और थकी हुई आवाज़ में बोली।

"क्यों तुम ये जेवरात कहां से लाये हो? मेरे ख्याल में कहीं तुम जेबकतरे तो नहीं हो? मुझे जेबकतरों, चोरों और डाकुओं से सख्त नफ़रत है।......वह झट से गला दबा कर आदमी को मार डालते हैं......"और यह कह कर गुरनाम अपनी मोटी-मोटी आंखों से शून्य में ताकने लगी। जैसे कोई सचमुच का हत्यारा उसका गला दबाने को आ रहा हो।

"मत घबराओ। तुम भी कैसी बच्चों की सी बातें करती हो। भला मेरे होते हुए तुमको किस बात का खतरा? उठो, यहां मेरे पास चारपाई पर बैठ जाओ।"

गुरनाम उठकर उसके पास बैठ गयी। उसने अजनबी के चौड़े कंधों का जायज़ा लिया और फिर जैसे हृदय से आश्वस्त होकर कहने लगी, "तुम बहुत अच्छे हो—ये ज़ेवरात तो तुम अपनी बीबी के लिए लाये होगे न?"

"हां।"

गुरनाम ने अपनी हथेली पर गाल रखते हुए बड़ी उमंग से पूछा,

"तुम्हारी बीवी कैसी है ?"

"मगर मेरी तो अभी शादी भी नहीं हुई।"

"अच्छा तो होने वाली बीवी के लिये लाये होगे?"

अजनबी ने अपनी दाढ़ी के खुरदुरे बालों पर हाथ फेरते हुए कहा, "अभी तो मुझे यह भी मालूम नहीं कि मेरी बीवी कौन बनेगी? बनेगी भी या नहीं?"

गुरनाम ने अपनी दोनों हथेलियों पर ठोड़ी रखकर अपनी आंखों को जल्द-जल्द झपकाते हुए नाक ज़रा सिकोड़कर भोलेपन से कहा, ''हां तो तुम काले हो ज़रा।''

अजनबी के सीने में जैसे किसी ने घूंसा मार दिया ।

मगर गुरनाम बहुत संजीदगी से किसी गहरी सोच में डूब चुकी थी। शायद वह अजनबी के लिए बीवी हासिल करने की तरकीब सोच रही थी।

''ये ज़ेवर तुम ले लो।''

गुरनाम ने चौंक कर अजनबी की ओर देखा, ''फिर तुम अपनी बीवी को क्या दोगें?''

अजनबी को कुछ न सूझा। लड़खड़ाती ज़बान से बोला, ''फिर मैं तुमसे ले लूंगा।''

गुरनाम की आंखें चमकने लगीं। उसकी बाछें खिल गयीं। ताली बजाकर बोली, ''मैं इनको उपलों में छुपा दूंगी—कभी-कभी रात को अच्छे-अच्छे ज़ेवरात पहन कर खेतों में जाया करूँगीं।''

कुछ देर की चुप्पी के बाद अजनबी ने कहा, ''गुरनाम, तुम भी तो मुझको कुछ दो।''

गुरनाम ने दोनों हाथों से चेहरा छुपा लिया । ''मेरे पास क्या है? ''

''कुछ भी दो।''

गुरनाम चेहरे से हाथ हटाकर कुछ देर सोचती रही। फिर उसने अपने गले से कौड़ियों और खरबूज़े के रंग-बिरंगे बीजों का हार उतार कर अजनबी की तरफ़ बढ़ा दिया। वह अपनी इस तुच्छ भेंट को देखकर झेंप सी गयी। और उसके कपोल दहकने लगे।

थोड़ी देर बाद गुरनाम ने एक अंगूठी उठाकर कहा, ''यह मेरी उंगली में पहना दो। देखूं कैसी लगती है?''

अजनबी ने अपने काले-काले, मैले-कुचैले, लंबे-चौड़े हाथों में गुरनाम का कमल-सा हाथ लिया। गुरनाम नज़रें झुकाये बच्चों की-सी सहजता और ललक के साथ अंगूठी की तरफ़ देख रही थी। उसके बालों ने उसके कपोलों का एक बड़ा भाग ढाँप रखा था। अजनबी लगभग समाधिस्थ होकर उसके सुंदर सीपों जैसे पपोटों पर दृष्टि टिकाये हुए था। जब वह उसकी उंगली में अंगूठी पहनाने लगा तो उसकी अपनी उगलियां कांपने लगीं, और उसे ऐसा महसूस होने लगा जैसे उसकी चार-चार अंगुल चौड़ी कलाइयों की पूरी ताकत खींची जा रही है।

गुरनाम चौंकी और सहमी हुई हिरनी की भाँति उठ खड़ी हुई, ''माँ, खांस रही है—अब मैं जाती हूं।''

अजनबी अपने सपने से चौंका।

गुरनाम ने आगे झुककर मीठी आवाज़ में पूछा ''जाऊँ क्या?''

अजनबी की इजाज़त लेकर वह ज़ेवरों की पोटली बग़ल में दबाये झट अंदर चली गयी।

भोर में गांव के मवेशी रात भर की गर्मी से घबराकर जोहड़ में घुस गये।

अजनबी जाने के तैयार बैठा था। गुरनाम ने उसे एक बासी रोटी पर मक्खन और एक छन्ना[1] लस्सी का दिया। और जब अजनबी कपड़े पहन कर तैयार हुआ तो गुरनाम रोने लगी। अजनबी ने धीरे से कहा, "रोती क्यों हो?"

"तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। तुम मत जाओ।"

अजनबी हँस पड़ा, "मैं फिर आऊंगा।"

बापू को आते देखकर उसने आंसू पोंछ डाले। बापू अजनबी को विदा करने के लिए कुछ दूर तक उसके साथ गया। उसने अजनबी से पूछा, "क्या मैं अपने मुअज़्ज़िज़ मेहमान का नाम मालूम कर सकता हूं?" "हां!" अजनबी ने अपनी तेज़ नज़रें उसके चेहरे पर गाड़ कर जबाब दिया। फिर उसने अपने धूप में चमकने वाले गंडासे की तरफ़ गर्व के साथ देखते हुए आगे कहा, "और तुमको यह भी मालूम होना चाहिए कि अगर मेरे नाम का ज़िक्र अपने या पराये किसी से भी किया तो तुम्हारे और तुम्हारे ख़ानदान के सब लोगों के खून से मुझे हाथ रंगने पड़ेंगे।"

बूढ़े का चेहरा फक हो गया।

अजनबी सांडनी पर सवार हो गया और महार को झटका देकर अपनी भारी आवाज़ में बोला, "आज रात जग्गा डाकू तुम्हारा मेहमान था।"

जग्गा डाकू, असल नाम सरदार जगतसिंह विर्क[2] वह भयानक आदमी था जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े बहादुरों के छक्के छूट जाते थे। क़त्ल, लूटपाट, ज़ुल्म उसके रोजाना के शगल थे। लड़कपन और यौवन खून की होली खेलने में ही बीत गया। बहुत सी ज़मीन का मालिक था। बड़े-बड़ों पर हाथ साफ़ करता था। ग़रीब खुश थे, इसके खिलाफ़ गवाही देने का कोई व्यक्ति साहस नहीं कर सकता था। अब तीस वर्ष से ऊपर उम्र थी। मौत के साथ खेलता हुआ सो जाता, और मौत का उपहास करता हुआ जाग उठता। प्रेम, सुंदरता, शालीनता और नेकी आदि का उसके लिए कोई विशेष अर्थ नहीं था। दूर-दूर तक उसकी धूम थी। इलाक़ा भर उससे थर्राता था। उसका दिल पत्थर, बाज़ू लोहा, गुस्सा क़यामत, मुंह शौला—वह क़हर था।

लोगों ने उसके नाम पर कई गाने बना लिये थे। नौजवान झूम-झूम कर उनको गाया करते थे। एक घटना का ज़िक्र इस प्रकार होता था :

पक्के पुल ते लड़ाइंया होइयां, पक्के पुल ते
पक्के पुल ते लड़ाइयां होइयां ते छवियां-दे-किल

---

1. बड़ा कटोरा
2. जाटों की एक जाति

टुट गये।[1] .. जगया या..

फिर लायलपुर में उसने एक ज़बर्दस्त डाका डाला था। और बचकर वापस भी आ गया था। उसकी चर्चा इस प्रकार होती थी :

जग्गे मारया लायलपुर डाका, जग्गे मारया

जग्गे मारया लायलपुर डाका, ते तारां खड़क गईयां आपे।[2]

उसकी लम्बी, अंधेरी और भयानक जीवन रूपी रात्रि में एक तारा चमका जिसने उसकी आंखों को दीप्ति से भर दिया। और वह तारा थी—गुरनाम!

गुरनाम बेचारी नादान छोकरी, उसे इश्क़-मुहब्बत का पता ही न था। उसे लोग कनखियों से देखते। वह हंस देती । उसके यौवन और सौंदर्य के अहं भाव को किसी ने जाग्रत करने का प्रयास ही नहीं किया था। अभी उसको इतना होश ही न था जान-बूझ कर शिकार खेलते घायलों का तड़पना देखे और उस आनंद की अनुभूति करे जो कि घायल करने वालों के हिस्से की चीज़ है। वह भोली-भाली सहज अबोध छोकरी यह जानती ही न थी कि वह बाज़ जिसको ज़ख्मी करने के लिए पंजाब के शहज़ोर नौजवानों की कमानें टूट चुकी थीं और जिस पर जो भी तीर फैंका जाता था वह उसे छूकर और कुंद होकर ज़मीन पर गिर पड़ता था, वही बाज़ उसके ग़लत अंदाज़ तीर का शिकार होकर अधमरा उसके पैरों के पास पड़ा था। और वह तीर क़ुदरत ने उसकी पलकों में छुपा कर रख छोड़ा था।

रात के अंधेरे में जग्गा उनके यहां आता और भोर से पहले विदा हो जाता। उसने स्वयं को एक नेक ज़मीदार बताया। बापू के अलावा घर के सभी लोग उसे धर्म सिंह के नाम से जानते थे। गुरनाम की कशिश उसे खींच लाती थी। उसके दिल में एक चुभन-सी रहती थी कि वह उस फ़रिश्ते को अपनाने से पहले खुद को क्योंकर उसके क़ाबिल बनाये। उसने कभी भी उस पर प्रेम जताने की कोशिश नहीं की। वह नहीं जानता कि वह क्योंकर अपनी ओर से पहल करे, वह सोचता था, पता नहीं प्रेम जताने पर गुरनाम कैसा व्यवहार करने लगे। वह उसके पास बैठी चहकती रहती थी और वह मंत्रमुग्ध-सा बैठा सुना करता। कभी-कभी उसको स्वयं से नफ़रत होने लगती। सूरत तो उसकी पहले ही वितृष्णा जगाती थी। मगर उसकी सीरत पर तो शैतान दामन में मुंह छुपाता था। गुरनाम थी कि उसने कभी भी उसके प्रति घृणा व्यक्त नहीं की। वह बड़े अपनेपन के साथ उससे पेश आती। अगर वह उसे अपने पास बैठने के लिए कहता तो वह उसके पास ही बैठ जाती हालांकि उसने आज तक उसे छूने का दुस्साहस न किया था। गुरनाम के फ़रिश्ते जैसे गुण उसके दिल में धड़का पैदा कर देते थे।

---

1. पक्के पुल पर इतनी सख्त लड़ाई हुई कि छवियों की कील ही टूट गयी।
2. जब जग्गे ने लायलपुर में डाका डाला तो हर तरफ बर्की तारों के ज़रिये इसकी ख़बर कर दी गई।

उसका दिव्य सौंदर्य उसका सिर झुका देता था। सिर्फ़ उसके मन की व्यग्रता और अंतःकरण की विकलता बढ़ गयी। यहां तक कि लोगों ने बड़े आश्चर्य के साथ सुना कि :

जग्गे ने डाका डालना छोड़ दिया है।

डेढ़ वर्ष का अंतराल पलक झपकते बीत गया। जग्गा सुबह-शाम पाठ करता, ग़रीबों को खाना खिलाता-पिलाता, दान करता, गुरुद्वारे में जाकर सेवा करता, हर किसी से विन्रमता से बातचीत करता।

उसने बापू से मन्नत की कि गुरनाम कौर की शादी उसके साथ कर दी जाये। उसने डाका डालना छोड़ दिया है और जो कुछ उसने लूटा वह सब बड़ी तोंद वालों का था। ग़रीबों की कमाई का एक पैसा उसके पास न था। वह अपनी बहुत सी ज़मीन और रुपया उनको देने को तैयार था। बापू को वह हमेशा बुजुर्ग समझ कर उसकी सेवा करेगा। लेकिन् गुरनाम को यह मालूम न होने पाये कि वह जग्गा डाकू था। और न हीं फ़िलहाल उसे इस बात का पता चल सके कि उसकी शादी किसी से होने वाली है क्योंकि उसे विश्वास था कि वह उसे चाहती थी और जब वह अपने प्रियतम को अपने पति के रूप में अचानक देखेगी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा।

नेक बापू ने सब कुछ मंजूर कर लिया।

जग्गा भीकन से चौदह कोस परे रहता था। उसके आने-जाने की सूचना किसी को कानों कान न होती थी। लोगों ने उस अजनबी को कभी-कभार उनके घर से निकलते देखा था। मगर किसी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। क्योंकि पहले तो वह आता ही कभी-कभार था और दूसरे वह रातों-रात वापस भी चला जाता था। वह हमेशा अपनी बढ़ी हुई व्यस्तताओं का बहाना कर देता था। जग्गे को दुनिया जानती थी मगर उसको कोई न पहचानता था।

जग्गे को शादी की मंजूरी मिल गयी थी। अब वह चाहता था कि गुरनाम की ज़बान से प्रेम की स्वीकृति सुन ले, चाहे उसे यह न बतलाया जाये कि उसका होने वाला पति वही था।

एक दिन बाद वह सूरज डूबते ही भीकन में दाख़िल हुआ। घर पहुंचकर पता चला कि गुरनाम पास वाले गांव में जुलाहों को सूत देने गयी हुई थी ।

जग्गे ने आईने में अपनी सूरत देखी। उसने पगड़ी को ज़रा तिरछा किया। कलगी को ज़रा और ऊँचा किया और फिर उसने सबकी नज़रें बचाकर चिराग में से सरसों का तेल हथेली पर उलट लिया। फिर वह मूंछों को बल देता हुआ घर से बाहर निकला और धीरे-धीरे टहलता हुआ पांच-छः फर्लांग तक चला गया।

हर ओर धुंध-सी छाई हुई थी। चांद की मलगजी रोशनी में वह एक भूत की भांति दिखाई देता था।

दूर से एक सूरत दिखाई दी। उसने ग़ौर से टकटकी बांधकर देखा। कोई औरत थी। और निश्चय ही वह भी गुरनाम कौर।

जग्गा असील मुर्गे की भांति तनकर खड़ा हो गया।

गुरनाम पास आते ही मुस्कुरा दी। लेकिन मुस्कुराहट में कुछ गंभीरता झलकती थी। सिर पर एक भारी गठरी थी, "मेरी तो गर्दन टूट गयी।"

"इस गठरी में क्या भर लायी हो?" यह कहते हुए जग्गे एक हाथ से यह मन भर बोझ उसके सिर पर से यों उठा लिया जैसे कोई दो साल के बच्चे को टांग पकड़ कर उठा दे।

"उपले – और होता क्या?" गुरनाम ने अपनी पतली-सी नाक सिकोड़ कर कहा। "आ रही थी रास्ते में उपले चुनने लगी। यहां तक कि शाम इसी में हो गयी।"

दोनों खेत की मेंढ पर बैठकर बातें करने लगे।

आज जग्गे ने गुरनाम की तरफ़ देखा तो उसके मन में अजीब-अजीब विचार पैदा होने लगे। वह अपनी होने वाली पत्नी की ओर बड़ी गौर से देख रहा था। उसकी हाथ की पकी हुई रोटियों और साग की कल्पना उसे बेचैन किये देती थी। कभी तो उसके दिल में आता कि सारा भेद खोल दे और कभी सोचता कि हर्गिज़ न बताये। आखिर उससे रहा न गया क्योंकि गुरनाम कुछ उदास-सी हो रही थी, "गुरनाम !" यह कहते-कहते राल उसकी दाढ़ी पर टपक पड़ी। उसने उसे अपनी आस्तीन से पोंछा और फिर बोला, "तुमको एक खुशख़बरी सुनाना चाहता हूं।"

गुरनाम ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह अपने पांव के अंगूठे से जमीन कुरेदने में व्यस्त थी। और गहरी सोच में थी। हालांकि वह पहले सी चंचल और अल्हड़ न रही थी। मगर क्योंकि जग्गे से बहुत लगाव था। इसलिए उससे ज़्यादा शर्माती भी नहीं थी।

जग्गे को कुछ उलझन-सी होने लगी। उसने उसका कंधा हिलाते हुए पूछा, "क्यों गुरनाम किस सोच में हो?"

गुरनाम पहले तो चौंकी। फिर उसने धीरे-से कहा, "मैं बहुत परेशान हूं—मैं बहुत दिन से चाहती थी कि तुमको सब हाल सुनाऊं लेकिन.."

"लेकिन क्या?"

"शर्म आती थी।" गुरनाम ने झेंपकर जवाब दिया।

जग्गा कुछ-कुछ ताड़ गया। मूंछों के नीचे मुस्कुराया। "अरे मुझसे शर्म कैसी?"

गुरनाम चुप रही।

जग्गा खिसक कर उसके पास हो गया। उसके बार-बार आग्रह करने पर गुरनाम ने बताया, "वे मेरी शादी करना चाहते हैं।"

"तो इसमें परेशानी की क्या बात है। शादी तो सभी की होती है।"

गुरनाम की आंखों में आंसू आ गये। भर्राई हुई आवाज़ में बोली, "वे किसी रुपये-पैसे वाले आदमी से मेरा ब्याह करना चाहते हैं। जिसे मैंने देखा भी नहीं है। मगर मैं और किसी से.." यह कह कर वह रो पड़ी।

जग्गे ने अपनी ऊपर उठी हुई कलगी को छूकर देखा कि वह नीचे तो नहीं झुक गयी। फिर उसने सीना फुलाकर कहा, "नहीं गुरनाम, नहीं। जिसको तुम चाहोगी उसी से तुम्हारी शादी होगी। मैं बापू को खुद समझाऊंगा......हां तो......मगर वह है कौन?"

जग्गे की आंखें मारे खुशी के चमक रही थीं।

गुरनाम ने उसके सीने पर सिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। आज उसे उसके चौड़े कंधों और संदूक जैसे सीने को छूकर बड़ी सांत्वना मिल रही थी।

जग्गा घबरा गया। उसने उसे चुमकारा और दिलासा दिया और फिर उस व्यक्ति का नाम पूछा।

गुरनाम ने कुछ कहना चाहा फिर रुक गयी......और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। जग्गे ने सांत्वना दी तो वह बोली, "तुम ज़रूर मेरी मदद करोगे, इन सबके हाथों से बहुत बेज़ार हूं। तुम बहुत अच्छे हो......उसका नाम.....

जग्गे का दिल बल्लियों उछलने लगा।

"उसका नाम दिलीप.. दिलीप सिंह।"

जग्गे को सांप ने डस लिया।

उसका चेहरा यकायक भयानक हो गया।

"दिलीप सिंह उसका नाम है।" गुरनाम ने दोहराया।

जग्गे की मूंछें लटकने लगीं।

उसके माथे पर बल पड़ गये। शरीर के रोंगटे कांटों की तरह खड़े हो गये। आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। गर्दन की नसें फूल गयीं.......गुरनाम ने साश्चर्य उसकी ओर देखा।

"घर जाओ," उसने भारी आवाज़ में कहा।

यह कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

"मगर नाम......" गुरनाम ने संजीदगी से कहा।

"तुम फ़ौरन वापस जाओ।" उसने कड़क लहजे में गरज कर कहा। गुरनाम चुपचाप हैरत के साथ उठी और गठरी सिर पर रखकर घर की ओर चल दी। जग्गा उसी तरह खड़ा हुआ था। उसका चेहरा पल प्रति पल भयानक होता जा रहा था। उक़ाब की चोंचनुमा नाक सुर्ख हो गयी। आंखें रक्तिम होकर रह गईं और चेहरे से क्रूरता टपकने

लगी। इसके साथ ही उसने खंज़र निकाला और उसे मज़बूती से हाथ में पकड़ा। दांत पीसते हुए धीरे-से बोला, "दिलीप सिंह?"

मौत का फ़रिश्ता दिलीपसिंह के सिर पर मंडराने लगा।

खूनी पुल इलाके भर में मशहूर था।

यह पुल एक छोटी-सी नहर पर बना हुआ था। नहर के दोनों किनारों पर शीशम के बहुत ही घने पेड़ थे। वहां न तो सूरज की धूप पहुंच सकती थी और न ही चांद की चांदनी। पुल बड़े-बड़े और भद्दे पत्थरों से बनाया गया था। उसके नीचे सिर्फ़ एक कोठी थी और पानी दो भागों में बंटकर बहता था। रात के समय दो बड़े-बड़े मुंह ऐसे दिखाई देते थे जैसे दो मुंह वाला कोई देव, इनसानों को हड़प लेने के लिए मुंह खोले बैठा हो या जैसे किसी मर्द की दो बड़ी-बडी आंखें जिसकी पुतलियां कौवे नोंच कर खा गये हों।

पास ही एक क़ब्रिस्तान था। और कुछ फ़ासले पर मरघट। रात के समय कोई व्यक्ति उधर से निकलने का दुस्साहस नहीं कर सकता था। क्योंकि उस पुल पर इतनी हत्याएं हो चुकी थीं कि उसका नाम 'खूनी पुल' रख दिया गया था। नौजवान लड़कियां और बच्चे तो दिन को भी अकेले उधर न आते थे। मशहूर था कि वहां एक सिर कटा सैयद रहता था। कभी-कभी उसका सिर तो पुल के नीचे भयानक चीखें करता। और वह खुद बिना सिर के क़ब्रिस्तान में इत्मीनान के साथ टहला करता था।

आधी रात बीत चुकी थी।

दिलीप सिंह शहर से वापस आ रहा था। छोटे से गधे पर दो बोरियों का सामान था। वह सुनार का काम भी करता था और पंसारी की दुकान थी। उसकी अपनी बनाई गुलकंद खूब बिकती थी।

वह नौजवान था। सुंदर और दिखाऊ। मसें अभी भीग ही रही थीं। गालों और ठोड़ी पर बिल्कुल छोटे-छोटे बाल जैसे ज़ाफ़रान। आंखें शरबत से लबरेज़ कटोरे। इस समय सिर पर लुंगी बांधे हुए था। उसका एक छोटा-सा तुर्रा नीचे की ओर लटका हुआ और दूसरा ऊपर की ओर उठा हुआ था। अलगोजे खूब बजाता था। जब रांझा हीर की शादी के बाद उसके यहां भीख मांगने के लिए जाता है तो उस घटना को 'वारिस' की हीर से बड़ी दर्दनाक लय में गाया करता था बल्कि उसमें तो दूर-दूर तक अपना कोई सानी नहीं रखता था।

दिलीप ताकतवर और दिलेर नौजवान था। मगर खूनी पुल का दृश्य और फिर उसके साथ जुड़ी खूनी कहानियां उस जगह को और भी भयानक बना देती थीं। रात के अंधेरे में शीशम के घने पेड़ों के नीचे नहर के सिसक-सिसक कर बहने वाले पानी

की आवाज़ सुनकर उसके दिल को कोफ़्त-सी होने लगी। उसने ज़रा ऊंची आवाज़ में छई[1] गाना शुरू कर दिया। अंधेरे और सन्नाटे में अपनी आवाज़ सुनकर उसे ढाढस बंधा।

उसका गधा पुल पर से पार हो चुका था। वह ठीक पुल के बीचों-बीच था। प्रसन्न था कि यहां कोई विशेष घटना नहीं घटी। तत्क्षण उसे अपनी गर्दन में पीछे से किसी तेज़ चीज़ की चुभन मेहसूस हुई और जैसे कोई उसके कुर्ते को पकड़कर पीछे की ओर खींच रहा हो— उसने घूम कर देखा।

एक भीमकाय व्यक्ति पुल की दीवार से उचका हुआ था। उसने अपनी छवी पीछे से उसकी कमीज़ में अड़ा दी थी। उसकी आंखें अंगारों की भांति दहक रही थीं।

''तुम कौन हो?'' दिलीप ने साहस करके ऊंची आवाज़ में उससे पूछा।

''इधर आ!'' भारी और क्रुद्ध आवाज़ आयी।

दिलीप उसकी तरफ़ बढ़ा—यकायक उसने अजनबी को पहचान लिया। बोला, ''मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैंने तुझको कहीं देखा ज़रूर है। क्या तुम वही शख़्स नहीं जिसने तीन लोगों से लड़ते वक़्त मेरा साथ दिया था......हां शायद वह ननकाना साहब का मेला था। तभी का वाक़्या है और तुमने दो आदमी जान से भी मार डाले थे।''

''बेशक मैं वहीं हूं। लेकिन मैं नहीं जानता था कि तेरा नाम दिलीपसिंह था। मैं तुझे एक अजनबी और नई उम्र का छोकरा समझ कर तेरा मददगार बना।......और क़त्ल तो बहुत किये हैं। इसी पुल ग्यारह आदमी क़त्ल कर चुका हूं......और मुझको बारहवां क़त्ल करना है।''

दिलीप को उसके उजड्डपन पर आश्चर्य हुआ। बोला, ''मैं नहीं जानता कि तुम्हारी मुझसे कोई दुश्मनी है। तुम तो मेरे रक्षक हो।''

''तू गुरनाम से मुहब्बत करता है। जो सिर्फ़ मेरी है। मुझको यह भी मालूम हुआ कि तूने शिंगारा सिंह को इसी पुल पर सख़्त ज़ख्मी किया था......आज तेरा मेरा फैसला होगा।''

यह कह कर अजनबी ने छवी हाथ से रख दी और उसकी और बढ़ा......''और मैं चाहता हूं कि तू एक मर्द की तरह मेरे मुक़ाबिल आ जाये।''

दिलीप पसोपेश कर रहा था। उसने कहा, ''मैं अपने बचाने वाले से लड़ना पसंद नहीं करता।''

अजनबी ने गरजकर जवाब दिया, ''तू बुज़दिल है। यह औरतों की तरह गले में रेशमी रूमाल लपेटकर घूमना और बात है और किसी मर्द के साथ दस्त पंजा लड़ाना कुछ और बात है। अगर तू वाकई अपने बाप से पैदा हुआ है तो मेरे सामने आ।'' यह कह कर उसने उसके मुंह पर थूका।

---

1. पंजाब का एक मशहूर गीत

दिलीप को ग़ैरत आ गयी। वह शेर की तरह बिवर गया। वह डंडा जो वह गधे को हांकने के लिए हाथ में लिये था उसने उसके मुंह पर दे मारा। लेकिन अजनबी ने वार रोकने की कोशिश नहीं की। दिलीप ने दूसरा वार उसके कान पर किया। डंडा टूट गया। उसके माथे और कान से खून बहने लगा। दिलीप जोश में था। उसने पूरी शक्ति के साथ एक मुक्का उसके मुंह पर रसीद किया। जिससे उसका जबड़ा अपनी जगह से हट गया।......मगर अजनबी निहायत सुकून के साथ खड़ा रहा।

इस समय उसके माथे से ख़ून बह-बह कर उसकी दाढ़ी को तर कर रहा था। एक कान के ऊपर वाला हिस्सा टूट कर लटक रहा था और उसमें से खून की धारा छूट रही थी। मुंह टेढ़ा हो जाने के कारण उसकी सूरत और भी भयानक हो रही थी। मगर वह आश्चर्यजनक रूप से शांत था।

फिर उसने दिलीप की आंखों में आंखें डालकर अपनी गहरी और भारी आवाज़ में कहा, "इस तरह नहीं। दिलीप, अभी तुम महज़ बच्चे हो। लेकिन जग्गा कोई बचकाना हरक़त नहीं करना चाहता।"

यह कह कर उसने एक घूंसा अपने मुंह पर दिया और उसका जबड़ा फिर से ठीक अपनी असल जगह पर आ गया। दिलीप जग्गे का नाम सुनकर कुछ भयभीत-सा हो गया।

अजनबी अपनी छवी पकड़ कर बोला, "तेरे पास छवी है?"

"नहीं।"

"तलवार है?"

"नहीं"

"सफा जंग है? "

"नहीं।"

"मगर लाठी तो है, वह तेरे गधे की पीठ पर बोरी में ठुंसी हुई।"

दिलीप आश्चर्य के मारे चुपचाप खड़ा था।

"जा!" अजनबी ने पुकार कर कहा, "लाठी ले आ.. मैंने सुना है तू इलाक़े भर में सबसे ज़्यादा तेज़ दौड़ने वाला नौजवान है। लेकिन मैं उम्मीद करता हूं कि तेरी ग़ैरत तुझे बुज़दिल की मौत हर्गिज़ न मरने देगी।"

दिलीप बहादुर था। मगर इस क़िस्म के शख़्स से आज तक पाला न पड़ा था।

जग्गे ने छवी उतार अलग रख दी और सिर्फ़ लाठी उठा ली और वे दोनों एक दूसरे को ललकारते हुए मैदान में कूद पड़े।

उनकी ललकार की आवाज़ सुनकर परिंदे घोसलों में फड़फड़ाने लगे, गीदड़ों ने हुदू-हुदू, हुआ-हुआ का शोर बुलंद किया। चारों ओर धूल ही धूल दिखाई पड़ती।

लाठी से लाठी बज रही थी। दिलीप हलका-फुलका चुस्त-चालाक उभरता हुआ नौजावान छोकरा। बिजली की तरह बेचैन, जोड़-जोड़ में पारा। जग्गा भारी भरकम

गठीला भीमकाय आदमी। बावजूद मोटा होने के अब भी जिस समय सरक लगाता था तो ऐसे मालूम पड़ता जैसे पानी की सतह पर ठीकरी फिसलती हुई चली जा रही हो। दिलीप ने दाव लगा कर पहला वार किया। जग्गा उसे ख़ाली देकर चिल्लाया, "एक।"

दिलीप ने फिर वार किया जग्गा ने उसे बचाया और गरजा, "दो।"

दिलीप ने तीसरा वार किया। जग्गे ने उसे भी रोका और कड़का, "तीन।" यह कह कर वह आगे की ओर लपका, "ओ संभल बे छोकरे अब जग्गा वार करता है।"

पसीने के कारण दिलीप के हाथ से लाठी छूट गयी। वह फ़ौरन छुरा लेकर झपटा। जग्गे ने एक लात उसके पेट में रसीद की और लड़खड़ाता हुआ पुल की दीवार से टकराकर गिर पड़ा।

अब जग्गे के होटों पर खूनी मुस्कुराहट पैदा हो गयी। उसने एक वहशी भेड़िए की भांति हल़क से एक भयानक आवाज़ निकाली। और फिर दोनों एड़ियां उठाकर आगे की ओर उचक उसने भरपूर वार किया। दिलीप ने छुरा संभाला और चीते की भांति तड़प कर हवा में छलांग लगा गया। मगर पुराने अभ्यासी उस्ताद का वार अपना काम कर गया। शायद पहली सूरत में यह वार उसके सिर को तोड़ देता और लाठी उसके सीने तक पहुंच जाती। मगर अब भी लाठी काफ़ी ज़ोर के साथ सिर पर पड़ी। सिर फट गया। और वह तड़प कर बारहसिंघे की भांति नहर के किनारे पर जा गिरा। कुछ देर तक तड़पता रहा और फिर ठंडा पड़ गया।

गर्म खून बह-बह कर नहर में मिलने लगा। नहर के पानी की कल-कल की आवाज़ ऐसे मालूम पड़ती थी जैसे खूनी पुल क़हक़हे लगा रहा हो।

क़ब्रिस्तान में टूटी-फूटी क़ब्रों के छेदों में से हवा सुबकियां लेती हुई चल रही थी।

पीला चांद बदलियों में से निकल आया। मगर उसकी किरणें शीशम के घने पत्तों में उलझ कर रह गयीं।

जग्गे ने बड़े इत्मीनान के अपनी खून से सनी पेशानी को साफ़ किया। मुंह-हाथ धोया। कान पर पगड़ी फाड़कर पट्टी बांधी। उसने दिलीप के सीने पर हाथ-रख कर हृदय गति सुनने की कोशिश की । फिर उसने छवी उठा ली और दिलीप को पीठ पर लादकर खेतों की ओर चल खड़ा हुआ।

इस घटना के पच्चीस दिन बाद!

देहात में शाम होते ही सन्नाटा हो जाता है। विशेष रूप से सर्दियों में तो लोग अपने घरों में घुस बैठते हैं।

गुरनाम के यहां सभी लोग अपने कामों से निवृत्त होकर बड़े कमरे में बैठे थे। औरतें चर्ख़ा कात रही थीं। बड़े-बूढ़े बातों में मशगूल थे और बच्चे शरारतों में व्यस्त।

इतने में जग्गा ने प्रबेश किया।

शायद डेढ़ वर्ष के बाद उसके मज़बूत हाथों में छवी चमक रही थी। सबने उसे देखकर प्रसन्नता व्यक्त की।

गुरनाम आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगी। बेबे ने उसे बैठने के लिए कहा। मगर उसने बताया कि उसकी डाची[1] बाहर खड़ी थी और उसे जल्द ही वापस जाना था।

कुछ पलों के लिए वह स्तब्ध रहा। फिर उसने बड़े शांत और निर्णयात्मक स्वर में कहना शुरू किया, "मैं आप लोगों से सिर्फ़ इतनी बात कहने के लिए आया हूं कि आप गुरनाम की शादी जिस शख़्स से करना चाहते हैं। वह हर्गिज़ नहीं हो सकती बल्कि उसकी शादी उस शख़्स से होगी जिससे कि मैं चाहूंगा।"

सब लोग अचंभे में थे। क्योंकि वे जानते थे कि गुरनाम का होने वाला पति वह खुद ही था। मगर चूंकि उन्हें यह गोपनीयता बरतने की ताक़ीद की गयी थी इसलिए वे चुप रहे।

"और वह शख़्स यह है।......यह कहकर उसने दरवाज़े की तरफ़ देखा और दिलीप भीतर आया।

हर व्यक्ति आश्चर्य में डूब गया।

गुरनाम पता नहीं किस दुनिया में खो गयी। उसे शर्मा जाना चाहिये था। मगर वह उठकर उसके पास आ गयी।

जग्गे ने दिलीप के कान में कहा, "अगर गुरनाम को मुझसे मुहब्बत होती तो तुम आज जिंदा नज़र न आते। दिलीप, तुम मर्द हो। मैंने अच्छी तरह से तुम्हें आज़मा कर देख लिया है। मैं चाहता तो तुमको क़त्ल कर डालता। मगर मर्दों से मुझको मुहब्बत है। अब जबकि तुम्हारी गुरनाम तुम्हें सौप रहा हूं उम्मीद करता हूं कि तुम मेरा राज़ ज़ाहिर न करोगे।"

दिलीप ने कृतज्ञता के साथ अपने रक्षक की ओर देखा।

जग्गा ऊंची आवाज़ में बोला, "बापू! माँ" बेबे!!. मैं इनकी शादी के लिए ज़रूरत से भी कहीं ज़्यादा रुपया दूंगा और इनको बहुत-सी ज़मीन दूंगा।

बापू असल क़िस्सा भांप गया। लेकिन सबको ज़्यादा अचंभा इस बात का था कि दिलीप जीवित कैसे हो गया? मशहूर हो चुका था दिलीप की डाकुओं ने खूनी पुल पर हत्या कर दी है।

दिलीप ने किस्सा गढ़कर सुना दिया कि खूनी पुल पर डाकुओं ने उसे घेर लिया। उस लड़ाई में गंभीर रूप से घायल हुआ और क़रीब था कि डाकुओं के हाथों मारा जाता कि सरदार धर्मसिंह वहां पहुंच गये। और वह इतनी तेज़ी से लड़े कि डाकुओं

---

1. सांडनी

के छक्के छूट गये। और उनको भागते बनी। फिर वह उसको अपने घर ले गये और तीमारदारी करते रहे।

जग्गे की मूंछों के नीचे उसके होठों पर एक तीखी मुस्कुराहट पैदा हो गयी। गुरनाम की आंखों में आंसू आ गये।

वह जैसे जादू के वशीभूत होकर आगे बढ़ी उसने जग्गे का भद्दा हाथ अपने कमल समान हाथों में ले लिया। पहले उसने जग्गे के उभरे हुए सीने, उसके असाधारण रूप से चौड़े कंधों का अवलोकन किया। और फिर जैसे संतुष्ट होकर भर्राई हुई आवाज़ में बोली, "तुम कितने अच्छे हो.. तुम यहीं हमारे पास ही रहा करो।"

जग्गा की स्थिति यह थी कि चीखें मार-मार रो पड़े। मगर जल्दी से पगड़ी के तुर्रे में मुंह छुपाकर बगूले की तरह दरवाज़े से बाहर निकल गया।

शादी हो गयी----..

कुछ अर्से बाद रात के समय गुरनाम बापू के साथ घरसे बाहर करेले की बेलें के पास खड़ी थी। उसी क्षण दूर से गुबार उठा । कुछ सांडनी सवार दिखाई दिये। उनकी सजी-सजाई सांडनियां, मर्दाना और भीमकाय सूरतें, चमकती हुई छवियां......अजीब दृश्य पैदा कर रहे थे......उनका मुखिया तो असाधारण रूप से चौड़ा चकला आदमी था। गुरनाम उसे देखते ही चिल्ला उठी, "बापू वे कौन लोग हैं? यह सबसे आगे वाला आदमी तो धर्मसिंह दिखाई देता है।"

"नहीं, बेटी नहीं, वह धर्मसिंह नहीं।" यह कहकर उसने अपनी पोती का सिर सीने से लगा लिया......और फिर बबूल के पेड़ों के झुंड में ग़ायब होते हुए सांड़नी सवारों की ओर स्वप्निल दृष्टि से देखते हुए बड़बड़ाया, "आज जग्गा डाकू डाका डालने के लिए जा रहा है।"

ग्रंथी

"सतनाम!" ये शब्द हमेशा की तरह ग्रंथी जी के मुंह से निकले और उनके कदम रुक गये। लेकिन उनके कच्छे का लटकता हुआ इज़ारबंद घुटनों के क़रीब झूलता रहा।

"ग्रंथी जी तुमको सौ बार कहा है यों दनदनाते हुए अन्दर न बढ़े आया करो। ज़रा परे खड़े रहा करो। किसी वक़्त आदमी न मालूम कैसी हालत में होता है......" नल के पास खड़ी हुई औरत ने अपनी पिंडली शलवार का पायंचा खिसका कर ढांप ली और एड़ियां रगड़ने लगी। ग्रंथी कब का पीछे हट चुका था। औरत ने मुफ़्त में रामायण छेड़ दी उसका मुंह ऊपर को हुआ था। मुंह ऊपर उठाये रखने की भी उसे आदत सी हो गयी थी। उसकी दाढ़ी बहुत घनी थी। ठोड़ी के नीचे गर्दन के पास बाल पसीने से तर रहते थे। गर्दन का वह हिस्सा उसे हमेशा बेचैन रखता। अनजाने ही मुंह ऊपर रखने से हवा का कोई भूला-भटका झोंका आता और उसे ठंडक का अहसास होने लगता।

वह मूर्खता की हद तक सीधा-सादा ज़रूर था लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह बिलकुल जडबुद्धि था......वह जानता था कि आज उस औरत ने यह बात क्यों कही। पिंडली, आख़िर पिंडली में क्या रखा है, अगर कोई देख भी ले तो 'सौ बार' की भी खूब रही। हालांकि यह बात उसे पहली बार कही गई थी। वह हर्गिज़ इस तरह दनदनाता हुआ अंदर दाख़िल हो अगर बाहर खड़ा होने पर उसकी मद्धम आवाज़ सुन ली जाये । उसकी आवाज़ अच्छी खासी थी लेकिन ज़ोर से आवाज़ देने पर उसको टोका गया था। "यह क्या बदतमीज़ी है। इस तरह हलक़ फाड़ने की भी क्या ज़रूरत है।"

अगर वह खड़ा उनकी मनपसंद आवाज़ में बड़े तरन्नुम के साथ सुबह से शाम तक 'सतनाम, सतनाम' कहता रहे तो कोई उसकी आवाज़ न सुन पाये। और न ही उसको रोटी दे। गुरुद्वारे के मुसाफ़िर भी एक मुसीबत थे। न वे रोज़-रोज़ आवें, न उसको रोटियां मांगनी पड़ें। अपने वास्ते तो वह कभी भी रोटियां मांगने न आये......एड़ियां रगड़-रगड़ कर पांव धोने वाली की सूरत तो देखो! यह तो खैर ! इस आफ़त की चिनगारी की सूरत भी देखने लायक़ थी जिसने उस पर बदनीयती का इल्ज़ाम थोप

रखा था। सबसे मूर्खतापूर्ण बात जो उसके बारे में कही जा सकती थी यह थी कि उसने फ़लां औरत की तरफ़ बुरी नज़र से देखा लेकिन वही इल्ज़ाम उस पर लगा कर वह तूमार बांधा गया कि तौबा ही भली। इतने में फ़तह सिंह चौकीदार सेहन में दाख़िल हुआ।

औरत ने बेतकल्लुफ़ी से पूछा, "आ फतिया! क्या बात है?" चौकीदार फत्ते ने ग्रंथी की तरफ़ चुभती हुई नज़रों से देखा। "वो सरदार जी घर पर नहीं हैं? वो आयें तो कहना कि रात को कुएं पर आ जायें।" लस्सी का कटोरा पेश किये जाने पर वह उसे एक ही सांस में चढ़ा गया। ग्रंथी के कंधे से कंधा भिड़ा कर वह बाहर निकल गया.....औरत के माथे पर सिलवटें पड़ गयी।

ग्रंथी इन बातों का मतलब समझता था......आज उसे उसके न किये हुए गुनाहों की सज़ा मिलने वाली थी।

उस रात गांव के बड़े कुएं पर गांव भर के मुखिया लोग जमा हुए। ग्रंथी पर जिरह की गयी और अगर कोई बात उसके हक़ में निकल आती तो झल्लाते......सब लोग उससे नाराज़ थे। किसी को असली शिकायत यह थी कि वह उनके घरवालों को प्रसाद हमेशा कम देता था। किसी के बच्चों को उसने गुरुद्वारे की फुलवाड़ी उजाड़ने से मना किया था। किसी के घर में जाकर काम करने से उसकी पत्नी ने इनकार कर दिया था। लेकिन उस पर इल्ज़ाम यह था कि लाजो एक दिन गुरुद्वारे में माथा टेकने के लिए गयी तो उसने उसका हाथ पकड़ लिया—लाजो को गांव के तीन सगे भाई कहीं से भगा लाये थे। वह पर्दादारी के साथ तीनों की पत्नी थी वे तीनों बेकार थे, जो दांव लगता, कर गुजरते थे। एक भाई ने पंसारी की दुकान खोल रखी थी। कभी जलेबियां निकाल लेते। कभी एक तांगा तैयार कर लेते। मौके पड़ने पर अच्छे पैमाने पर चोरियां भी करते। कभी किसी राहगीर की घोड़ी छीन लाते—"क्यों लाजो ! क्या बात सच है कि ग्रंथी ने तुम्हारा हाथ पकड़ा? लाजो ने बड़े विस्तार से बताया कि क्योंकर ग्रंथी ने उसका हाथ पकड़ा और उसको गले लगाने की कोशिश की।

"ग्रंथी जी तुम को कुछ कहना है?"

"मैंने इसका हाथ नहीं पकड़ा।"

लाजो चमक कर कुछ कहने को थी कि उसको रोक दिया गया, "तो ग्रंथी जी आज तुमने लाजो का हाथ पकड़ा, कल किसी और का आंचल खींचोगे। गांव की बहू-बेटियों की इज़्ज़त तुम्हारे हाथों सुरक्षित नहीं।"

"मैंने उसका हाथ नहीं पकड़ा।"

"तुमने काम तो वह किया है कि तुमको......ख़ैर कल संक्रांत का काम भुगताकर परसों यहां से चले जाओ।"

ग्रंथी वापस आकर बिस्तर पर लेट गया। नींद न आती थी।

एक अर्से तक ठोंकरें खाने के बाद वह इस गुरुद्वारे में ग्रंथी नियुक्त हुआ था। यहां उसको हर तरह की सुख-सुविधाएं थीं, एक तरफ़ प्राचीन इमारत, दूसरी तरफ नयी इमारत बन रही थी। चक 35 और 36 का साझा गुरुद्वारा था। ये गांव क्योंकि एक दूसरे के बिल्कुल पास-पास थे इसलिए अलग-अलग गुरुद्वारे की ज़रूरत महसूस न होती थी। नतीजा यह था कि चढ़ावा भी ज़्यादा चढ़ता था।

थोड़ी देर तक उसकी पत्नी उसके पास बैठी रही। वह उदास थी। लेकिन उसे अपने पतिं पर भरोसा था। वह जानती थी कि उसके पति पर जो इल्ज़ाम धरा गया था वह सरासर बेबुनियाद था। वे दोनों इस विपदा का असली कारण भी जानते थे। लेकिन लाचार थे। अगर इस जगह रहने का मतलब यह था कि बात-बात में बेइज़्ज़ती सहन की जाये। उसकी पत्नी दूसरों के घरों में जाकर न सिर्फ़ काम करे बल्कि उनकी खुशामद भी करे तो इससे बेहतर यही था कि वे इस गुलामी को अलविदा कह कर अपने गांव को चले जायें......लेकिन भविष्य में वह क्या करेगा? यह बात उसकी समझ में नहीं आती थी।

गर्मियों की चांदनी रात में वह खुले आसमान तले चारपाई पर बैठा सही मानों में तारे गिन रहा था। उसने तारों की तरफ़ कभी ध्यान ही नहीं दिया था वरना तारों की दुनिया भी किस क़दर सुंदर और अनोखी थी। कितनी दूर तक फैले हुए बेशुमार तारों और बादलों की सूरत के वे तारे जिनकी बाबत कहा जाता है कि मरने के बाद इन्सान की रूह इसी रास्ते से होकर जाती थी। ना मालूम वह रास्ता कैसा होगा? कैसी जगह होगी? पेड़ होंगे या रेत के टीले । जब रूह थक जाती होगी तो उसे दम लेने की इजाज़त होगी या नहीं? यह रास्ता कहां ख़त्म होता है?

उसकी आंख लग गई। जब जागा तो तारे झिलमिला रहे थे। हवा में खुनकी थी। बाड़े में बूढ़ा बैल सींग हिला रहा था और उसके गले में पड़ी हुई घंटियां बज रही थीं। गुरुद्वारे के भीतर उसके छोटे से मकान के सेहन में उसकी पत्नी दही बिलो रही थी। दही बिलोने की आवाज़ इस बात का यक़ीनी सबूत थी कि सुबह होने वाली थी।

वह उठा। कुल्हाड़ी पकड़कर बबूल के पेड़ों की तरफ चला गया। एक नाज़ुक सी डाली काटकर उसने तीन दातुनें बनाईं। अपने लिए अपनी पत्नी के लिए और नौ वर्ष की बेटी के लिए। एक झाड़न कांधे पर डाले वह खेतों में से होता हुआ बाड़े में वापस आया और बैल की रस्सी खोलकर रहट की तरफ़ बढ़ा।

पुरानी तर्ज़ का यह रहट ज़मीन की सतह से बहुत ऊँचा था। एक ऊँचा गोल चबूतरा जहां से गोबर मिली मिट्टी नीचे गिरती रहती थी। चबूतरे के दोनों तरफ़ गारे की बेडौल-सी टेढ़ी-मेढ़ी दीवारें खड़ी थीं उनपर पेड़ काटकर एक लम्बा लठ टिका दिया गया था उसके बीचों-बीच चरखड़ी की लकड़ी घुसी हुई थी।

पास ही दूसरी चरखड़ी उसमें दाँत जमाये खड़ी हुई थी। निचली चरखड़ी के पास लकड़ी का कत्ता जो उसके पीछे की ओर घूमने से रोकता था। जब बैल को जोत दिया गया और चरखड़ियां घूमने लगीं तो कत्ता कट-कट बोलने लगा। कुएं वाला बड़ा चरखड़ा भी घूमा। रस्सियों से बंधी हुई टिंडें[1] पानी की ओर लपकीं। जो टिंडें रात की भरी बैठी थीं उन्होंने पानी उड़ेल दिया। झाल में से पानी की धारा तेज़ी के साथ निकली। कुआं अजीब सुरों में रूं-रूं की आवाज़ निकालने लगा। कभी ऐसा जान पड़ता जैसे गा रहा हो। कभी रोने की-सी आवाज़ निकलने लगती। कभी उसमें से दिल दहला देने वाली चीख़ की आवाज़ निकलती......अंधेरे में यह अज़ीबो ग़रीब आवाज़ें, छोटी-बड़ी घूमती हुई चरखड़ियां यों दिखाई देती थीं जैसे कोई विचित्र प्रकार का जानवर रेंग रहा हो।

शोरो-गुल से वातावरण में ज़िंदगी की लहर दौड़ गयी। इधर-उधर से दो चार कुत्ते भी भौंकने लगे।

ग्रंथी ने झाल की तरफ़ तख़्ता लगाकर पानी रोक लिया ताकि ये टोंटियों की तरफ़ चला जाये। जब खेतों को पानी देना होता तो पानी का रुख़ झाल की तरफ़ कर दिया जाता । चार दीवारी पर बैठ कर उसने दातौन की। दातौन की कूची से दांत और मसूढ़े साफ़ किये। फिर दातौन बीच-बीच फाड़कर उसे कमान की भांति घुमाया और ज़बान पर रगड़ा। मुंह में उंगली फेर-फेर कर वह खांसता और थूकता रहा।

कुएं पर झुके हुए शहतूत के पेड़ पर परिन्दे फड़फड़ाने लगे।

दातौन फैंक कर उसने कपड़े उतारे। टूटी के मुंह से लकड़ी हटा दी। मुंह और दाढ़ी धोकर वाह-गुरु वाह-गुरु करता हुआ पानी की धारा के नीचे बैठ गया। यह रोज़ का क्रम था। कल वह इस जगह को छोड़कर जा रहा था। इस वक़्त यह बात किस क़दर अविश्वसनीय थी।

कच्छा निछोड़ कर उसने बग़ल में दबाया। पानी से लबरेज़ बाल्टी उठाकर वह गुरुद्वारे के भीतर चला गया। बड़े सेहन में उसकी पत्नी झाड़ू दे रही थी। कच्छा झटक कर रस्सी पर डालने के बाद उसने फ़र्श पर पानी छिड़कना शुरू किया।

आज संक्रांति थी।

सफ़ाई और छिड़काव के बाद टाट फ़र्श पर बिछा दिया गया। ग्रंथ साहब पर सिल्क के रूमाल डाल दिए गये। चबरी[2] भी साफ़ करके पास रख दी गयी। फिर वह भीतर से हारमोनियम, ढोलकी, चिमटा, छैने वगैरह गाने-बजाने का साज़ उठा लाया। उसकी पत्नी पास खड़ी दातौन कर रही थी। उन्होंने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों को इस बात का अहसास था कि जब उनको वहां रहना ही नहीं तो उसकी बला से वे काम

1. मिट्टी का बड़ा आबख़ोरा
2. मक्खियां झलने के इस्तेमाल में आती है।

भी क्यों करे? लेकिन यह गुरुघर का काम था। यह तो गुरुद्वारे की सेवा थी। किसी पर क्या अहसान था। अपने ही परलोक का सवाल था......और दोनों के दिलों में एक धूमिल-सा अहसास भी था कि मुमकिन है कोई ऐसी निकल सूरत आये कि उनका जाना रद्द हो जाये।

लड़की आज अच्छे-अच्छे कपड़े पहने फूली न समाती थी। कितनी प्यारी बच्ची थी।

धूप निकल आयी । उसकी पत्नी चेहरे पर छडी[1] मलकर घड़ी की घड़ी धूप में जा बैठी। ग्रंथी ने बड़े-बड़े मटकों में पानी भरना शुरू किया ताकि संगत को प्यास लगे तो पानी की दिक्कत न हो। गुरुद्वारे का बूढ़ा बैल कमज़ोर हो चुका था। काम कम करता और आराम ज़्यादा करता। यह तो हो न सकता था कि वह संगत को पानी पिलाने के लिए बैल को शाम तक कुएं के आगे जोते रहे।

शंख हाथ में लिए वह गुरुद्वारे की टूटी-फूटी चार दीवारी से बाहर निकल आया। दरवाज़े के पास पेड़ का एक भारी भरकम तना पानी के गढ़े में धंसा पड़ा था। गुरुद्वारे के आसपास वे खेत थे जिनमें उसने खुद हल चलाया था बीज बोया था। चांदनी और अंधेरी रातों में पानी से सींचा था। निराई की थी। इन खेतों से उसका कितना गहरा सम्बंध था। उसका पसीना इन खेतों की भुरभुरी मिट्टी में जज़्ब हो चुका था। अब वह अपनी अमानत किसी सूरत में भी वापस लेने का हक़दार नहीं था। पास ही बड़ का एक बूढ़ा पेड़ था। जिसके बारे में एक कहानी मशहूर थी। गुरुओं के ज़माने में एक पवित्र व्यक्ति गुरुद्वारे की सेवा करता था। उसने अपनी उम्र इसी जगह गुरु के चरणों में बिता दी। यहां तक कि वह बूढ़ा हो गया......लेकिन उसकी मेहनत में फ़र्क न आया। उसके भीतर वही उत्साह था। एक बार का ज़िक्र है कि गर्मियों की दोपहर में वह खेतों की निराई कर रहा था। उसकी पगड़ी के अंदर उसके उलझे हुए बाल पसीने में तर हो रहे थे। उसे प्यास लगी। उसने टिंड में पानी भरकर रस्सी का बगना बांधकर उसे पेड़ की टहनी से लटका रखा था। जब उसने टिंड को छुआ तो वह इस कदर ठंडी थी जैसे बर्फ़ । किस क़दर ठंडा पानी है, उसने दिल में कहा, गुरु साहब सच्चे बादशाह इसी तरफ़ को आने वाले हैं क्यों न पानी उन्हीं के लिए रहने दूं। वह उसमें से पानी पर लेंगे तो बाक़ी पानी से मैं अपनी प्यास बुझा लूंगा।

बेशक गुरु साहब दौरा करते हुए इस तरफ़ को आने वाले थे लेकिन उनके आने में अभी बहुत देर थी। इस समय वह शांत मन से दरबार में बैठे हुए संगतों को दर्शन दे रहे थे। यकायक गुरु साहब उठ बैठे और तुरन्त कूच का हुक्म दिया। सब हैरान कि आख़िर इसमें भेद क्या है। यह बैठे-बिठाये एक दम इतनी उजलत क्यों? गुरु साहब सच्चे पादशाह ने कहा, "मेरा एक सिख इंतज़ार कर रहा है, वह प्यासा है। जब तक मैं वहां जाकर पानी न पीऊंगा, वह प्यासा ही रहेगा.....गुरु साहब घोड़ा सरपट दौड़ाते

1. छाछ कपड़े में छानने के बाद जो तलछट सी रह जाती है उसे छडी कहते हैं।

हुए उस जगह पहुंचे। जाते ही पानी मांगा। बूढ़े सिख ने वह टिंड आगे बढ़ा दी। वह कितना प्रसन्न था। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

ग्रंथी पेड़ के तने पर खड़ा हो गया। जब उसने शंख मुंह से लगाया तो दिल में सोचने लगा—गुरु साहब दिलों का हाल जानते हैं। वे मेरी बेगुनाही से परिचित हैं। वह यहां से नहीं जायेगा। उसे विश्वास था कि कोई न कोई सूरत ज़रूर निकल आयेगी।

शंख पूरने के बाद वह देर तक गांव की तरफ़ देखता रहा जैसे वह किसी के आने की बाट जोह रहा हो। कितनी तेज़ धूप हो गयी थी और लोग अभी घर से भी न निकले थे। मटियाले-मटियाले मकान। मकानों के बीच में से सिर उठाये हुए हरे-भरे पेड़.....कच्ची सड़क से आगे ढलवान पर भंगियों के काले-कलूटे नंग-धड़ंग बच्चे खेल रहे थे। दो-तीन बछड़े इधर-उधर कुलांचे भरते फिरते थे।

वह गुरुद्वारे के छोटे से बाग़ में गया। अंगूर की बेलें आड़ी-तिरछी लकड़ियों पर से गिर पड़ती थी, एक कोने में से उसने उलझी हुई रस्सियां उठायीं, बेलों को लकड़ियों के साथ लगाकर, रस्सियों के टुकड़ों से कुछ ढील दे-देकर बांधने लगा। उसकी मोटी-मोटी उंगलियां काम में माहिर थीं। पास ही हरे धनिये और मिर्चों की क्यारी थी। वह उसके किनारे पंजों के बल बैठ गया। बीच-बीच में खट-मीठी बूटी के छोटे-छोटे पौदे भी थे। उसने ध्यान के साथ उन्हें उखाड़ना शुरू किया। बच्चे उन बूटियों को शौक़ से खाते थे। अनार के पेड़ मौन समाधि में बैठे हुए दरवेशों की भांति दिखाई देते थे। हवा बंद थी। पेड़ों की पत्तियां तक न हिलती थीं। मालूम होता था जैसे परमात्मा से उनकी लौ लगी हुई हो। बाग़ का कितना हिस्सा बेकार पड़ा था। उसका विचार था कि झाड़ियों और मदार के अपने-आप उगे पेड़ों से वह हिस्सा साफ़ करके वहां सब्जियां लगाये। मटर, टमाटर, गोभी......।

हर पेड़ और पौदे को देखता हुआ वह बाहर निकला। फिर उसी तने पर खड़े होकर उसने दूसरी बार शंख फूंका। कोई सूरत नज़र न आती थी। मर्द तो ख़ैर खेतों पर काम कर रहे थे लेकिन औरतें घरों में घुसी पड़ी थीं। पत्नी से कहने लगा, "दो बार शंख पूर चुका हूं कोई आदमी नज़र नहीं आता। कम से कम औरतों को आ जाना चाहिये।"

उसकी पत्नी चुप रही। औरतों के बारे में वह जानती थी। पहले तो हर औरत के चार-चार पांच-पांच बच्चे थे, उनको नहलाना धुलाना। फिर हर औरत को बनाव-सिंगार भी तो करना था। यही वह जगह थी जहां अपने कपड़ों और गहनों की नुमाइश की जा सकती थी। इसके अलावा दुनिया भर की बातें यहीं की जाती थीं। कई पेचीदा समस्याएं यहीं बैठकर सुलझाई जाती थीं।

छोटी बच्ची ने खुशी में ढोलकी धपधपानी शुरू कर दी। ग्रंथी चमेली के पौदों के आसपास ईंटों के उखड़े हुए जंगलों की मरम्मत करने लगा। कहीं कोई ईंट गिरी पड़ी

थी। कहीं कोई टहनी ईंटों में उलझ कर रह गयी थी। किसी जगह पौदे इस क़दर फैल गये थे कि जंगले को और चौड़ा करने की ज़रूरत महसूस होती थी।

लोहे के डोल भर-भर कर उसने फूलों को पानी देना शुरू कर दिया। बेचारे गेंदे के फूल तो निरे अनाथ ही थे। कोई उनकी चिंता ही न करता था। बेचारे सूखी और कठोर जमीन में पलते-बढ़ते रहते। कूड़ा करकट भी उन्हीं पर फैंक दिया जाता। इसके बावजूद जब फूल आते तो हर तरफ़ पीला ही पीला नज़र आता। फूलों के हार गूंथे जाते। बच्चे झोलियां भर-भर घरों को ले जाते । कुछ ग्रंथ साहब के सामने चढ़ा दिये जाते। बड़ी दुर्गति होती बेचारों की। वह जब कभी गेंदे के किसी खिले हुए फूल की तरफ़ देखता तो उसे उसके अनाथ होने का ख़्याल आने लगता जैसे कि वह खुद अनाथ था। वह पौदे के पास बैठ जाता। फूल हवा में इधर-उधर झूमने लगते। वह फूल को प्यार से दोनों हाथों में ले लेता जैसे वह किसी बच्चे का चेहरा हो। उसको एक बात याद आ जाती। एक बार (शायद) गुरु अर्जुन देव जी के लबादे की झपट में आकर फूल की एक पंखुड़ी धूल में गिर पड़ी तो गुरु साहब की आंखों में आंसू उमड़ आये। यह सोचते-सोचते ग्रंथी किसी अज्ञात भाव के वशीभूत होकर बेसुध-सा हो जाता। वह कितनी-कितनी देर तक दम साधे बैठा रहता। वह कुछ समझ न सकता था। वह जानता था कि उसकी अक़्ल मोटी थी। लेकिन इसके बावजूद वह समझ से परे किसी मनःस्थिति में डूब जाता।

भट्टी के पास उसने कड़ाह प्रसाद का सारा सामान इकट्ठा कर दिया। लकड़ियां और मोटे-मोटे उपले भी एक तरफ़ ढेर कर दिये और शंख लेकर फिर पेड़ के तने पर जाकर खड़ा हो गया। तीसरी बार शंख पूर कर वह देर तक उसी जगह खड़ा रहा। धूप चिलचिला रही थी। आंखें धूप में तपी हुई हवा की गर्मी को सहन नहीं कर पा रही थी। उसने आंखों पर हाथ रख कर गांव पर नज़र जमा दी। शायद कोई सूरत नज़र आ जाये। उसे चिंता थी काम ख़त्म करने की।

कुछेक नीले-पीले दुपट्टे हवा में लहराये। कुछ नयी उम्र के लड़के और लड़कियां अठखेलियां करते दिखाई देने लगे। रंग-बिरंग के रूमालों से ढंकी हुई थालियां हथेलियों पर रखे भक्तों जैसी सूरत वाली बूढ़ी औरतें पीछे-पीछे चली आती थीं। धीरे-धीरे दोनों गाँव के लोग चीटियों की तरह रेंगते हुए निकले। और छोटी-छोटी टोलियों में गुरुद्वारे की ओर बढ़े।

ग्रंथी ने हाथ-पांव धोकर पगड़ी को ठीक किया। गले में पीले रंग का लम्बा-सा कपड़ा डाले वाह गुरु, वाह गुरु कहता गुरु ग्रंथ साहब के पास जा बैठा।

ग्रंथ साहब से रूमाल हटाकर उनको सावधानी से लपेट जिल्द में नीचे दबाते हुए पवित्र पुस्तक के लिए खोला और आंखें मूंद कर चवरी हिलाने लगा।

लम्बे-लम्बे घूंघट निकाले औरतों ने चार दीवारी के भीतर प्रवेश किया। उनमें से कुछ नई नवेली दुलहनें थीं। जिन्होंने कुहनियों तक चूड़ियां पहन रखी थीं। सुर्ख रंग की कमीज़ और शलवार में गठरी-सी बनी हुई बीर बहूटी की भांति दिखाई दे रही थीं। गुरु ग्रंथ साहब के सामने पैसे, बताशे, फूल, थालियों में दालें, चावल, आटा, आदि रख कर वे माथा टेकतीं और एक ओर बैठ जातीं। लड़कों में कुछ ने हारमोनियम पकड़ लिया। एक लड़का पिछले तख़्ते को हिला-हिला कर हवा देने लगा। दूसरा अपनी उंगलियों से लकड़ियों के काले-सफेद सुरों को बेतहाशा दबाने लगा। एक ने ढोलकी बजानी शुरू की। दो लड़के बड़े चिमटे को बजाने लगे। छैने भी छनाछन बोलने लगे। उधर औरतें आपस में विचार विनिमय करने लगीं। उनकी आवाज़ें हर पाबंदी से आज़ाद दूर-दूर तक सुनी जा सकती थीं। कुछ लड़कों ने इधर-उधर भागना शुरू किया। नई इमारत के ईंटों के चक्के लगे थे। लड़कों ने ईंटों की रेलगाड़ी बनाई। एक लम्बी कतार में ईंट के पीछे ईंट कुछ-कुछ अंतर पर रख दी गयीं। फिर एक को जो ठोकर लगाई तो सारी ईंटें धड़ाधड़ गिरने लगीं। लड़के उछल-उछल कर शोर मचाने लगे। उनकी ढीली-ढीली पगड़ियां खुल गयीं। उन्होंने नये सिरे से बांधने के बजाय पगड़ियों को बग़लों में दबाया और बाग़ के दौरे पर निकल गये। आज वे निडर हो रहे थे। वे अपनी मौंओं के साथ थे। ग्रंथी का अव्वल तो आज कुछ डर भी न था, दूसरे वह इस समय आंखें बंद किये ग्रंथ साहब के पास खड़ा था।

अब मर्दों का आना शुरू हुआ। मोटे खद्दर के तहबंद बांधे घुटनों तक लम्बे कुर्ते पहने, सिरों पर आठ-आठ दस-दस गज़ कलफ़ लगी पगड़ियां लपेटे, हाथों में लोहे और पीतल की शामों वाली मज़बूत लाठियां थामे और अपनी दाढ़ियों को खूब चिकना किये हुए आये। और माथा टेक-टेक कर वे इधर-उधर बैठने लगे। उनमें लम्बे छरहरे नौजवान भी थे। जिनके तहबंद रंगदार थे। तहबंद के पिछले हिस्से एड़ियों में घिसटते आते थे। कुछ जो शलवारें पहने हुए थे, उनके रंगीन रेशमी इजारबंद खास तौर पर घुटनों तक लटक रहे थे। पगड़ियों के तुर्रे खूब अकड़े हुए । ऐसे छैल-छबीले भी थे जिन्होंने पगड़ी का आख़िरी सिरा घुमाकर पगड़ी के अगले सिरे पर आन ठूंसा था जैसे किसी पले हुए मुर्गे के सिर पर उसकी शानदार कलगी।

मर्दों के पहुंच जाने पर कार्रवाई शुरू हुई, कुछ नौजवानों ने बढ़कर साज़ संभाले। एक-एक इलायची और लौंग मुंह में डालकार साज़ बजाने शुरू किये। हारमोनियम के साथ ताल पर ढोलकी बजने लगी। चिमटे वाले ने झूम-झूम कर चिमटा बजाना शुरू किया। उधर छैने भी टकराये। हारमोनियम ने मुंह खोलकर लम्बी 'हू' की आवाज़ निकलने के बाद कहा।

एथे बैठ किसे नहीं रहणा मेला दो दिन दा[1]

---

1. संसार का मेला अस्थायी है। कोई व्यक्ति यहां अमर होकर नहीं आया है।

इतना कहकर वह लगातार मुंह हिलाने लगा। ढोलकी वाले की गर्दन हिलती तो चिमटे वाले का धड़।

जब एक बार कार्रवाई शुरू हो गयी तो मुखिया लोगों ने कानाफूंसी शुरू की। कई समस्याएं विचारणीय थीं।

शबद कीर्तन के बाद श्री गुरुग्रंथ साहब की पवित्र बानी पढ़कर उपस्थित जनों को सुनाई, इसके बाद ग्रंथी चौकी पर से उतरा और अरदास (दुआ) के लिए गुरु ग्रंथ साहब के सामने हाथ बांध कर खड़ा हो गया। उपस्थित जनों ने भी उसका अनुसरण किया। सब लोग हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ग्रंथी ने आंखें बंद कर लीं और अरदास शुरू कर दी–

प्रथम भगवती सुमर के गुरु नानक लई ध्याय

फिर अंगद गुरु ते अमरदास रामदासे हो सहाय।

इस प्रकार दसों गुरुओं के नाम दोहराये गये।

पंज प्यारे, चार साहबज़ादे (साहब अजीत सिंह जी, साहब झझा सिंह जी, साहब जोरावर सिंह जी, साहब फतहसिंह जी), चालीस मकते, शहीदों, मुरीदों, सदक़ रखने वाले सिखों की कमाई का ध्यान धरके ख़ालसा जी, बोलो जी वाह गुरु......''ग्रंथी के वाह गुरु कहने पर उपस्थित जन 'वाह गुरु, वाह गुरु' कहते। इधर उपस्थित जनों की आवाजें गूंजने लगीं, उधर एक बड़े नगाड़े पर चोब पड़ती और नगाड़े की आवाज़ उपस्थित जनों की आवाजों में धुलमिल कर देर तक कांपती रहती और दिलों पर एक हैबत सी छा जाती।......''जिन लोगों ने धर्म के लिए जानें कुर्बान कीं, चरखड़ियों पर चढ़े (बदन के) जोड़-जोड़ अलग करवाये, जिनकी खालें खींच ली गयीं, जिन्होंने खोपड़ियां उतरवाई, लेकिन अपना धर्म नहीं छोड़ा, जिन्होंने सिखी सदक अपने सिर के पवित्र केशों और अपनी आखिर सांसों तक निभाया। सिंहों और सिंहनियों की कमाई का ध्यान करके, खालसा साहब बोलो जी, वाह गुरू......''

''वाह गुरु, वाह गुरु।''

''.....जिन गुरमुखों ने गुरुद्वारों के सुधार के खातिर, श्री ननकाना साहब जी में और श्री तरणतारण के सिलसिले में अपने शरीर पर कष्ट उठाये। जीते जी तेल डालकर जला दिये गये। दहकती भट्टियों में झोंक दिये गये और वे इस तरह शहीद हो गये। उन गुरु की सूरत रखने वाले सिखों की कमाई का सदका, खालसा साहब बोलो जी वाह गुरु......''

''वाह गुरु, वाह गुरु......!!''

''......जिन माओं, बीबियों ने अपने बच्चों के टुकड़े-टुकड़े करवा कर अपनी झोलियों में डलवाये, उनकी कमाई का सदका, ख़ालसा साहब बोलो जी, वाह गुरु.....''

''वाह गुरु, वाह गुरु!!''

लम्बी दुआ के अंत में......"(ऐ गुरू साहब) हमें सांसारिक इच्छाओं, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान से बचाइए। आपके सामने अमृत देने की अरदास। अगर भूल चूक में कोई शब्द कमोबेश हो गया हो तो उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। सबके काम संवारिये। गुरु नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाने सबका भला।"

सबने झुककर माथे फ़र्श पर टिका दिये। ग्रंथी ने दिल ही दिल में कहा, "वाह, गुरु सच्चे पादशाह से दिलों का हाल छुपा नहीं हैं।" फिर खड़े होकर "जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल।" के तीन नारे लगाये गये। इसके बाद कड़ाह प्रसाद (हलवा) बांटा गया। धीरे-धीरे लोग प्रसाद हाथों में छुपाये या कटोरियों में ले विदा हुए। कुछ ख़ास-ख़ास बड़े लोग बैठे रहे। जब एकांत हो गया तो उन्होंने ग्रंथी से कहा कि अगर प्रसाद बचा हो तो लाया जाये। ग्रंथी ने प्रसाद उनको बांट दिया। चेहरों को अपने चिकने हाथों से मलते हुए उन्होंने बही-खाता संभाला। पौन घंटे बहस-मुवाहिसे के बाद सब हिसाब साफ़ हो गया। ग्रंथी से कह दिया गया कि दूसरे दिन विदा होने से पहले वह चाबियां सरदार बग्गा सिंह नंबरदार को दे जाये।

उनके चले जाने के बाद ग्रंथी की सब आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी पत्नी ने घर का सामान समेटना शुरू कर दिया। ग्रंथी के दिल में अब तक कुछ टीस-सी थी। वह व्याकुलता में इधर-उधर घूमने लगा।

अपने दोनों हाथ पीठ पर बांधे वह तालाब के पास खड़ा होकर उसके हरे रंग के पानी को देखने लगा। उसके किनारे टूट-फूट गये थे। एक-दो जगह से सीढ़ियों की ईंटें भी उखड़ गई थीं। काई जमी हुई थी। इस तालाब में कोई न नहाता था। न मालूम उसमें कब से बरसात का पानी जमा था। बबूल के पीले-पीले फूलों की तह-सी जमी हुई। बरगद के बड़े-बड़े पीले रंग के पत्ते टुकड़े-टुकड़े हो जाने वाले जहाज़ के टूटे तख़्तों की तरह तैर रहे थे।

इसके पास पुरानी समाधि थी जिसकी दीवारों पर जाबजा चूना उखड़ा हुआ था। उसकी दीवारों पर पुराने ज़माने की रंगदार तस्वीरें बनी हुई थीं। कई जगह से रंग उखड़े हुए ज़रूर थे लेकिन जहां कहीं भी मौजूद थे, किस क़दर चमकदार और आकर्षक दिखाई देते थे। खास कर गुरू नानक साहब की तस्वीर, पेड़ की छांव तले बाबा नानक जी बैठे थे। एक ओर भाई 'बाला' और दूसरी ओर भाई 'मर्दाना'। पेड़ की डाल से पिंजड़ा लटक रहा था। जिसमें एक सुर्ख चोंच वाला तोता साफ़ दिखाई दे रहा था। इसी कमरे में सातवें गुरु साहब परमात्मा की याद में व्यस्त रहते थे। तीन-चार बरस पहले की बात थी, एक सिख इसी कमरे में बैठकर बिना नागा भक्ति किया करता था। एक बार रात के समय कमरा रोशन हो गया। कण-कण दिखाई देने लगा। इतने में एक देदीप्यमान चेहरा दिखाई दिया......लेकिन वह सिख दर्शन की शक्ति न बटोर सका। वह भागकर बाहर निकल आया और उसी समय गूंगा हो गया। इसके बाद उसे किसी

ने बोलते नहीं सुना.....ग्रंथी ने कमरे का दरवाज़ा खोलकर उसके नमदार फर्श पर अपना नंगा पैर रखा और चुपचाप खड़ा हो गया। इतने में उसकी पत्नी वहां आई और उसकी बदली हुई सूरत देखकर परेशान-सी हो गयी। वह उसको अपने साथ ले गयी।

सेहन में दस्ती चरखड़ी वाले छोटे-से कुएं के आसपास बने हुए चौड़े चबूतरे पर नीले रंग की लम्बोतरी पगड़ियां बांधे हुए निहंग सिख पत्थर के बड़े कूंडे में शरवाई घोंट रहे थे। पगड़ियों पर लोहे के चक्कर, गले में लोहे के मनकों की माला, लम्बे-लम्बे चुगे.....वे लोग बारी-बारी बादाम, चारों मगज़, काली मिर्चें और कुछ भंग वाली शरदाई की घुटाई कर रहे थे। एक आदमी ने अपने हाथों और पांवों से कूंडे को दोनों तरफ़ से जकड़ रखा था। और दूसरा घोंटने का एक लम्बा-चौड़ा डंडा, जो नीचे से कम मोटा और ऊपर से बहुत ज़्यादा मोटा था, हाथों में लिये घुमा रहा था। डंडे के ऊपर घुंघरू बंधे हुए थे जो छनाछन बोल रहे थे। ग्रंथी कुछ देर तक खामोशी से देखता रहा।

सूरज डूब चुका था। हवा बंद थी। जब उसकी पत्नी दूध दुहकर घर के भीतर जा रही थी उसने हमेशा की तरह अपनी चारपाई बाड़े के पास डाल दी। जूते उतार कर दोनों घुटनों पर कुहनियां टेक चारपाई पर हो बैठा।

कौवों के झुंड के झुंड काँव-काँव करते गांव के चक्कर लगा रहे थे। छोटी-सी नहर की ऊँची मेढ़ चक्कर लगाती क्षितिज में गुम हो रही थी। दूर कुछ ऊंट बेमहार इधर-उधर घूम रहे थे।

ग्रंथी खोई-खोई आंखों से क्षितिज की ओर ऐसे देख रहा था जैसे वह किसी की प्रतीक्षा में हो। जैसे आकाश से कोई देदीप्यमान छवि उभरेगी......अंधेरा बढ़ रहा था। पूरा चांद निकल रहा था। इतने में बंता सिंह कंधे पर फावड़ा रखे आ निकला। बंता सिंह किसी औरत को अगवा करने के जुर्म में डेढ़ वर्ष का सश्रम कारावास भुगत कर कल ही अपने गांव में वापस आया था। जेल की सख्तियों का उस पर कुछ भी असर न हुआ था। वह बदस्तूर हट्टा-कट्टा था। जब उसे सज़ा हुई, उस समय ग्रंथी गुरुद्वारे में आया ही था। क़रीब पहुंच कर बंतासिंह ने ऊँची आवाज़ में सतश्री अकाल का नारा लगाया। चारपाई पर बैठ गया। उसके फावड़े से गाढ़ा-गाढ़ा कीचड़ टपक रहा था।

इधर-उधर की बातों के बाद उसने पूछा,"ग्रंथी जी, सुना है कुछ आपके खिलाफ़ झगड़ा खड़ा किया गया है......मैं तो कल रात वापस आया था। आज सुबह से मैं चक 156 में मामू से मिलने चला गया था। अब सीधा खेतों की तरफ़ चला आया, आख़िर माजरा क्या है?"

बंतासिंह का न सिर्फ़ अपने गांव में दबदबा था बल्कि इलाके भर में सब लोग उससे भय खाते थे। जब ग्रंथी ने उसे बताया कि उसकी क़िस्मत का फ़ैसला भी हो

चुका तो वह चिल्ला कर उठ खड़ा हुआ, "किसकी मजाल है कि तुमको यहां से निकाले। ग्रंथी जी! तुम इसी जगह रहोगे और डंके की चोट रहोगे। मैं देखूंगा कौन माई का लाल तुमको यहां से निकालने के लिए आता है।"

यह सुन ग्रंथी ने जो अब तक संवेदन शून्य-सा बैठा था, आंखें झपकाईं। उसकी भौंहें हिलीं। वह बारीक आवाज़ में बोला, "और सरदार बंतासिंह वाह गुरु जानता है, मैंने लाजो को छुआ तक नहीं।"

सरदार बग्गासिंह के दो आदमी उधर से गुज़रते हुए ये बातें सुन रहे थे। बंतासिंह उनको सुनाकर बुलंद आवाज़ में ललकार कर बोला, "ग्रंथी जी। तुम यह क्यों कहते हो कि तुमने उसका हाथ नहीं पकड़ा, तुम हज़ार बार लाजो का हाथ पकड़ सकते हो.....मैं बग्गा सिंह को भी देख लूंगा। बड़ा नंबरदार बना फिरता है.....और जिन लोगों ने तुम्हारे खिलाफ़ पंचायत में हिस्सा लिया था, उनमें से एक-एक से निबट लूंगा।"

अपनी भरपूर आवाज़ में उसने ये मोटी-मोटी गालियां भी सुनाईं......

यह खबर दोनों गांवों में आग की तरह फैल गयी.....सब लोग लाजो को गालियां देने लगे। हरामज़ादी! मुफ़्त में बेचारे ग्रंथी पर इल्ज़ाम धर दिया।

बाबा महंगा सिंह

एक हमारे मामूं साहब हैं कि शहर में किसी न किसी काम से आते रहते हैं। रात आम तौर पर मेरे यहां ही गुज़ारते हैं और जब विदा होने लगते हैं तो मुझे अपने साथ ले जाने का आग्रह करते हैं। मुझे गांव से कोई दिलचस्पी नहीं है। खुली हवा, दूध दही और सीधे-सादे भोले-भाले लोगों से मेरा क्या सम्बंध? मैं दूध के बजाय चाय पीना पसंद करता हूं। खुली हवा की बजाय काफी हाउस का धुआंधार वातावरण ज़्यादा अच्छा मालूम होता है। देहात के सीधे-सादे लोगों से सीधे-सीधे संबंध बनाने के बजाय में आराम कुर्सी पर बैठ कर किसी दोस्त के साथ बैठकर इन बेचारों के फ़ायदे की बातों पर चर्चा करना अच्छा समझता हूं। तुलना की दृष्टि से देहात मैं अस्सी साल तक जीवित रहने की तुलना में शहर के हानिप्रद वातावरण में चालीस साल जीवित रहना कहीं ज़्यादा अच्छा समझता हूं। लेकिन मामूं साहब के आग्रह पर मजबूर होकर एक बार देहात में जाना पड़ा।

गांव में पहुंच कर मुझे निराशा बिल्कुल नहीं हुई बल्कि कुछ प्रसन्नता हुई कि गांव के बारे में जो मेरी धारणा थी, सच निकली। अब हर तरफ़ खुली हवा थी, कोई अच्छा मकान नहीं, कोई सिनेमा नहीं। कोई कार नहीं, कोई कम्युनिस्ट नहीं, बस खुली हवा है और इस पर मुझे खुश रहने के लिए निमंत्रित किया जा रहा था। मैं मामूं के मकान के बाहर वाले कमरे में बैठा जम्हाइयां लिया करता। घर के सामने खुली जगह में मामूं साहब की भैंसें खड़ी दुम हिलाया करतीं। कभी-कभी मेरी ओर देखतीं, कहो बेटा दूध पियोगे, मक्खन चाटोगे, दही खाओगे। मैं कहता.....मैडम! आप दूध की बजाय गर्म चाय क्यों नहीं देतीं, मालूम होता है कि आप चाय के ज़ायके से वाकिफ़ नहीं.....वरना.....भैंस भी आख़िर देहातिन ठहरी। वह बात काट कर सींग हिलाने लगी और फिर अपनी बेकदरी से निराश होकर बड़ी उपेक्षा के साथ पूर्व दिशा की ओर देखने लगी और मैं टाई की गांठ ढीली करके पश्चिम की ओर नज़रें जमा देता।

दो दिन बाद ही मुझे विश्वास हो गया कि इस जगह मेरे देखने की कोई चीज़ नहीं है, अलबत्ता मैं गांव वालों के लिए देखने की चीज़ हूं। मामूं जान मुझे अपने साथ लेकर बाहर निकलते तो जो परिचित मिलता—और गांव भर में ऐसा कोई आदमी नहीं

था जो उनका परिचित न हो—उसे मेरे बारे में विस्तार से बताते। वे लोग मुझे सिर से पांव तक आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगते—उनके इस रवैये से मैं भूल ही गया कि मुझे यहां कुछ देखना है।.....और वे प्यारी-प्यारी देहाती लड़कियां जिनकी तरबूज़-तरबूज़ भर छातियां, जिन्हें देहाती सचमुच छातियां समझते हैं और उनके वे गोबर में सने हुए हाथ,जिन्हें फैलाकर वे कुछ ऐसे बेबाक अंदाज़ से मेरी ओर देख रही थीं मैं अपने आपको बिल्कुल सीदा-सच्चा ज़ाहिर करने लगता। आंख-वाँख मारना तो एक तरफ़ मुस्कराने तक का साहस न होता था.....और बिचारे भोले-भाले नौजवान जिनकी सूरतों से ज़ाहिर होता था कि अगर मेरे साथ मामूं जान न होते तो वे एक टके के लिए मेरी जान लेने से न हिचकते।

इस वातावरण में मेरे लिए और ज़्यादा समय तक ज़िंदा रहना असंभव हुआ जा रहा था। मुझे बड़ा ध्यान रखते हुए वहां ले जाया गया था और मैं भी बड़े रौबदाब से वहां गया था। इसलिए दो दिन बाद ही एकदम लौट आना उचित लगता था। न मालूम, मैं क्या कर गुज़रता। अगर सचमुच मेरी दिलचस्पी का सामान पैदा न हो जाता। कुल मिलाकर सब चीज़ों में से सबसे ज़्यादा आकर्षण मेरे मन में सरदार महंगा सिंह के प्रति उत्पन्न हो गया।

एक दिन सुबह के समय जब कि मामूं साहब मुझे पूरा आधा सेर ताज़ा दुहा हुआ दूध पिलाने पर उतारू थे सरदार महंगासिंह उधर से गुज़रा। मामूं से दुआ-सलाम की। 'वाह गुरु जी की फतह' कहकर आगे बढ़ गये और फिर मुझे मामूं जी की बातों से मालूम हुआ कि वह तो मेरे लिए शिक्षा की साक्षात् मूर्ति थे......वह कैसे? अब सरदार महंगा सिंह की उम्र तीन कम अस्सी की थी लेकिन इस उम्र में भी तीन-चार सेर दूध एक ही सांस में पी लेना, उसके लिए कोई असाधारण बात नहीं थी। और इधर मैं जो अभी नौजवान था आध सेर भी नहीं पी सकता और जब सरदार महंगा सिंह जवान था तो वह दूध से भरे घड़े में मुंह लगा दिया करता था।

"पीने के लिए......?"

"और नहीं तो क्या?"

मैं खेतों में गायब होते हुए महंगा सिंह को देखता रहा। उसका ऊँचा कद, लम्बी दाढ़ी और बड़े-बड़े हाथ-पांव ।

"काम क्या करता है ?'

"कुछ नहीं। अपनी जमीन की देखभाल करता है। पहले डाके डालता था। अब वाह गुरु की भक्ति करता है।"

मेरी महंगा सिंह के व्यक्तित्व में रुचि पैदा हो गयी थी। वह एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह राजनीति, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषयों पर बातचीत नहीं कर सकता था लेकिन एक इनसान की हैसियत से वह निस्संदेह दिलचस्प था। उसका

राक्षसों की भांति डील-डौल, गेंडे की तरह खाल, मुरब्बे वाली फूलों हुई हरड़ की तरह आंखें, घने बालों से ढंका हुआ सीना, छाज की भांति कान, पुराने बाबली बादशाहों की तरह बंटी हुई लम्बी दाढ़ी और मूछें देखकर इनसान को इस बात का संदेह भी न कर सकता था कि वह कोई मज़ेदार बात कह सकता है या गुदगुदी पैदा करने वाले किसी चुटकुले को सुनकर क़हक़हे लगा सकता है।

चांदनी रातों में गांव से बाहर आमतौर नौजवान कबड्डी खेला करते थे। लेकिन अंधेरी रातों में प्रायः महंगा सिंह को घेर लेते। महंगासिंह के जीवन में बेशुमार रोचक घटनाएं घट चुकी थीं। वह उनकी सजाएं भुगत चुका था और जो साबित न हो सकीं वे दुनिया ने माफ़ कर दीं। अब वह वाह गुरु के नाम का सुमरन करता था या गांव के नौजवानों को कोई मज़ेदार क़िस्सा सुनाता था।

गांव से लगभग एक फर्लांग पर लफटन की बाग़ीची थी। यानी लेफ्टीनेंट का बाग़। मैंने उसके नामकरण का कारण जानने का कभी प्रयास ही नहीं किया। ख़ैर उस बाग़ीची के पास एक ऊंचा टीला था। महंगा सिंह रात का खाना खाने के बाद उस टीले पर जा बैठता और प्रेम रस में डूबे हुए शबद, अपनी बेढब आवाज़, लेकिन अपनी समझ से निहायत दर्दनाक लय के साथ पढ़ा करता। कुछ आदमी भी उसके पास आन बैठते। दाढ़ियों पर हाथ फेर-फेर कर शबदों और उनकी व्याख्या की प्रशंसा करते। कई बार ज्ञान-ध्यान की बातों को छोड़कर औरतों की बातें करने लगते। उनके बालों, आंखों, होटों, गर्दन और छातियों से होते हुए गहराइयों तक उतर जाते। सब मिल-जुल बड़ी भद्दी बातें करते और जब जी भर जाता तो अचानक सारी बातचीत का एक नैतिक निष्कर्ष निकाल लेते और सब बड़े ज्ञानियों की तरह जीवन की नश्वरता पर लम्बी आहें भर कर उठ कर गांव की तरफ़ चल देते।

मेरी भी यह दिनचर्या हो गयी थी कि शाम का खाना खाया और बाबा जी के टीले की तरफ़ चल देता। बाबा महंगा सिंह आंखें मूंदे, गुरु चरणों में शीश झुकाये या तो कपड़े की बनी हुई माला जपते या शबद गाते। जिस रोज़ का अब ज़िक्र कर रहा हूं, उस रोज़ भी सब प्रेम रस में रसगुल्ले बने बैठे थे। न मालूम औरतों का जिक्र कहां और क्यों शुरू हुआ। उस रोज़ औरत के कोमल स्वभाव पर नया आरोप लगाया गया और महंगा सिंह ने पहले गुरु साहब के लिखे हुए स्त्री चरित्र का हवाला दिया और फिर इस प्रसंग को छोड़कर निजी अनुभवों का बखान करने लगे......

हम सब सरक कर उनके पास हो बैठे।

तारों की मध्दम रोशनी में जब महंगा सिंह इस नये विषय पर बातचीत करने के लिए मुंह खोला तो उसकी आंखों में एक नयी चमक पैदा हो गयी । उसकी हवा में लहराती हुई दाढ़ी जैसे झूम-झूम कर प्रसन्नता व्यक्त करने लगी।

"औरतों की चालाकी......?......हा हा......मर्द अपने आपको कितना ही अक़्लमंद क्यों न समझे लेकिन औरत के सामने उसकी एक नहीं चलती। अब मैं आप-बीती सुनाता हूं, जो प्रकट में इतना आश्चर्यजनक है कि शायद तुम लोगों में से कुछ को इस बात का विश्वास भी न आये.......

हम सब उसके मुंह से निकला हुआ एक-एक शब्द ध्यान से सुन रहे थे। असल बात शुरू करने से पहले उसने बताया कि उस समय उसकी उम्र तीस वर्ष के लगभग थी। वह बहुत ताक़तवर आदमी था। घूंसा मार कर ईंट तोड़ डालता था। कई मार्के के डाके डाल चुका था। इलाक़े भर के लोग तो उसका नाम सुनकर थर-थर कांपते थे पुलिस तक की जुरअत न होती थी कि......

यह भूमिका काफ़ी लम्बी थी। वह ये बातें पहले भी इतनी बार दोहरा चुका था कि हम उसे सुन-सुन कर तंग आ चुके थे। लेकिन न उसे टोका जा सकता था, न उसका खंडन किया जा सकता था। अब भी लड़ने-मरने पर आमादा हो जाता था। आख़िर वह असल क़िस्से की ओर मुड़ा।

....."जिस घटना का मैं अब ज़िक्र करने वाला हूं उससे पहले कई रोज़ कोई माल हाथ न लगा था। यों तो वाह गुरु का दिया सब कुछ था और फिर बाज़ुओं के ज़ोर से भी बहुत कुछ कमाया था। लेकिन शरीर में जान थी, ताक़त का इस्तेमाल भी तो ज़रूरी था न!......हां भई चरण! तुम तो लगभग मेरे हमउम्र ही हो न? तुम्हें याद है? केलां के गांव के आसपास का इलाका किस क़दर ख़तरनाक समझा जाता था।

"हां, मुझे याद है वहां बड़े-बड़े पेड़ों के झुंड और झाड़ियां कोसों तक चली गयी थीं। जंगल ही जंगल था....."

महंगा सिंह ने फिर बात शुरू की, "बड़ा सुनसान इलाक़ा था, वहां या तो भेड़िए रहते थे, या डाकुओं की कमीगाहें (छुपने का स्थान) थीं। मुझे भी कई बार वहां पनाह लेनी पड़ी थी। ......एक बार काफ़ी अरसे तक वहां छुपे रहने के बाद मैंने अपने घर जाने की ठानी महीनों से न घर वालों की मुझे और न मेरी घर वालों को ख़बर रही थी। मैंने दो तीन साथियों को ताक़ीद कर दी कि मैं ज़्यादा से ज़्यादा आठ दस दिन तक लौट आऊँगा और मैं अगर इतने अरसे के अंदर-अंदर वापस न आऊं तो समझना कि गिरफ़्तार हो गया हूं, फिर मुझे जेल से छुड़ाने की तजवीज़ कर लेना......"

बाबा महंगा सिंह ने अपनी टांगों को सहलाते हुए थोड़ा विराम लिया......"अपने गांव तक चालीस कोस का फ़ासला था, सोचा रात को सफ़र किया करूंगा और दिन को कहीं छुपा रहूंगा। जंगल ख़त्म होते ही पहला गांव 'केलां' था। रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी थी। मेरे हाथ में एक लम्बा लठ और कमर से एक डेढ़ फुट की कृपाण लटकी हुई थी। यह कृपाण मैंने ख़ालिस लोहे की बनवाई थी......इस समय मुझे सिवाय जानवरों के और कोई ख़तरा नहीं था। केलां के लोग चूंकि बड़े ख़तरनाक

इलाके में रहते थे इसलिए सर्दियों में तो शाम पड़ते ही घरों में घुस बैठते थे। मैं मज़े से शबद गुनगुनाता हुआ खेतों के बीच में से होता हुआ चला जा रहा था। अचानक मेरी नज़र उठी तो एक बहुत विचित्र दृश्य दिखाई दिया......केलां से कई खेत इधर पेड़ों के पीछे श्मशान और क़ब्रिस्तान साथ-साथ कुछ ढंग से बने हुए थे कि अगर गांव से एक ओर देखा जाये तो सिवाय उन घने पेड़ों के और कुछ नहीं दिखाई देता था......देखता क्या हूं कि क़ब्रिस्तान में तेज़ रोशनी हो रही है, पहले मैंने सोचा कि संभव है कि श्मशान में कोई मुर्दा जलाया गया हो......और आग अभी जल रही है लेकिन यह रोशनी कुछ और ही तरह की थी और फिर पल-पल तेज़ हो रही थी......।''

सब लोग अपलक महंगा सिंह की ओर देख रहे थे। महंगा सिंह ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए क़िस्सा जारी रखा :

''यह रोशनी देखकर मेरे मन में कई तरह के विचार आये। ज़रा ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी सुनसान जगह, अंधेरी रात, कड़कड़ाती ठंड, हर ओर सन्नाटा......और क़ब्रिस्तान में बढ़ती हुई रोशनी......पहले मैंने सोचा, हे मना! (हे दिल) तुझे इन बातों से क्या लेना देना! सीधा रास्ता नापता चला जा! तुझे मंज़िल तय करनी है, वाह गुरु की बातें, वाह गुरु ही जाने'', लेकिन दिल की तसल्ली न हुई और मैंने सोचा, देखूं तो सही, आखिर मामला क्या है?......लो भाई मैंने अपना रास्ता छोड़कर क़ब्रिस्तान का रुख किया। क़ब्रिस्तान मुझसे काफी दूरी पर था। ज्यों-ज्यों मैं पास पहुंचता गया, त्यों-त्यों रोशनी और साफ़ दिखाई देने लगी। क़ब्रिस्तान से कुछ दूरी पर में रूक गया, घनी झाड़ियों में न केवल आग की रोशनी साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थी बल्कि वहां कोई चीज़ हिलती हुई दिखाई दी।......पहले सोचा, शायद मेरा वहम हो, चुपचाप खड़ा देखता रहा। यों मालूम हुआ जैसे दो सींग हिल रहे हो। मैं क़दम नापता, पेड़ों की ओट लेता हुआ कुछ और पास पहुंचा तो सिर से पांव तक बिल्कुल स्याह गाय दिखाई दी......आग का एकाध अंगारा झाड़ी के ऊपर लपकता दिखाई दे जाता था......वह स्याह गाय वीराने में अकेली खड़ी हुई चुड़ैल का रूप मालूम होती थी। मैंने हमेशा वाह गुरु अकाल पुरुष का भरोसा किया है.....अतएव मैं वाह गुरु का नाम लेकर और आगे बढ़ा। फिर ठिठक गया। कुछ इस प्रकार का संदेह हो रहा था कि वहां कोई और हस्ती भी है। रात एकदम अंधेरी थी। पेड़ों के वे हिस्से जहां आग की रोशनी नहीं पहुंच रही थी बड़े भयानक दिखाई दे रहे थे। मैंने एक नज़र अपने सिर के ऊपर डाली, टहनियों पर भी डाली कि कहीं कोई वहां छुपा हुआ न बैठा हो?......''

हम लोग उसकी आवाज़ की गूंज और शब्दों के जादू से मूर्तिवत् बैठे हुए थे। उपस्थित लोगों में से किसी के मुंह से थरथराती हुई आवाज़ निकली......'' फिर तुमने क्या देखा......?''

"मैं फूंक-फूंक कर क़दम रख रहा था। एक पेड़ की ओट से दूसरे पेड़ की ओट तक अत्यंत सावधानी से चलता हुआ मैं बिल्कुल पास पहुंच गया। मैने ज़िदंगी बड़े-बड़े वीराने में बसर की है। कई विचित्रताएं देखने में आयी हैं। लेकिन जो दृश्य वहां देखा, वह मरते दम तक न भूलूंगा। ......गाय के क़रीब एक क़ब्र के पास बड़ा-सा चूल्हा बना हुआ था। उसमें आग जल रही थी। कुछ बर्तन पड़े थे, पानी का एक कोरा मटका-- इन सब चीज़ों के बीच एक औरत......"

"औरत......?" सबके हलक से निकला।

"हां औरत......! बीस-इक्कीस के आस पास होगी। इतनी ज़्यादा सुंदर और नवयौवना कि वर्णन नहीं किया जा सकता, मैं तो उसे देखकर हक्का-बक्का रह गया। सोचा, न मालूम यह परी है सचमुच की। या किसी चुड़ैल ने परी का रूप धारण कर लिया है। पेड़ के तने के साथ लगा हुआ मैं चुपचाप उसे देखता रहा...... सोचने की बात है कि ऐसी काली रात में आबादी के परे, निर्जन बल्कि क़ब्रिस्तान में किसी सुंदर और नवयौवना औरत की हिम्मत कैसे हो सकती थी। मैंने दिल में कहा कि देखें अब यह क्या करती है?......उसने मेरे देखते-देखते चूल्हे में और लकड़ियां डाल दीं, आग भभक उठी, फिर उसने सिर से दुपट्टा उतार दिया। उसके काले बाल दिखाई देने लगे। उसने मेंढ़ियों को खोला और फिर सारी चोटी खोल कर बाल बिखराये और रूई की सदरी के बटन खोलने लगी। सदरी के नीचे एक मखमली वास्कट पहन रखी थी, उसके बटन खोलकर उसे भी उतार दिया। और जब उसने क़मीज़ के बटन भी खोलना शुरू कर दिये तो मेरा दिल धड़कने लगा,......वाह गुरु......वाह गुरु.....!! बटन खोलने के बाद उलटा कर कमीज़ को भी उतार दिया। अब उसके ऊपर वाले हिस्से पर एक तार भी नहीं था। आप लोग मेरी हैरानी का अंदाज़ा बखूबी लगा सकते हैं, उस समय मुझे भी आस पास की खबर न रही, दिल धड़क रहा था, न मालूम यह औरत क्या करने को है, मैं एक बच्चे की-सी हैरानी के साथ उसकी तरफ़ देखता रहा और अब जो उसने अपनी शलवार का इज़ारबंद खींचा, तो मैंने मुंह दूसरी ओर फेर लिया.......। कुछ क्षणों तक मेरी हालत कुछ अजीब-सी हो गयी। मैंने समझा कि यहां ज़रूर भूतों और चुड़ैलों का डेरा है। इतने में पानी के गिरने की आवाज़ें आने लगीं। मैंने झिझकते हुए उस ओर नज़रें डालीं तो औरत ने पानी का मटका काली गाय के सिर पर सींगों में फंसा कर रख दिया। एक हाथ से उसने मटका थाम रखा था। दूसरे से लोटे भर-भर कर पानी अपने बदन पर डाल रही थी। नहाकर उसने एक चादर से बदन पोंछा। बग़ैर कपड़े पहने उसने एक रंगीन टोकरी में से ज़ेवर निकाल कर पहनने शुरू किये। अंगूठियां, गोखरू, चौक, तवेतड़ियां, कंठा, बाजूबंद, बालियां, गरज़ वह सिर से पांव तक सोने से ज़र्द हो गयी।"

हम में से एक ने कहा, "ऐसी सर्दी में उसने कपड़े नहीं पहने......."

"नहीं, यही तो हैरानी की बात है। अब उसने एक छोटी सी रकाबी से कपड़ा सरकाया! उसमें गुंधा हुआ आटा था। चूल्हे पर तवा रखा। और आटे को पराठे के अंदाज़ में लपेट कर तवे पर डाल दिया और उसे घी में तलने लगी......"

अब मैं सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिये, मैंने सुना था कि परियों की कमर का पिछला हिस्सा खोखला होता है, यानी रीढ़ की हड्डी नहीं होती, दूसरे भूतों का साया नहीं होता, और उस औरत का साया साफ़ नज़र आ रहा था और फिर हर चीज़ इतनी स्पष्ट थी कि मैंने समझ लिया, दाल में कुछ काला है। एक तो भूत, चुड़ैलों में मुझे विश्वास नहीं था, इस औरत की घटना इतनी विचित्र थी कि विश्वास नहीं होता था कि एक नवयौवना सुन्दर लड़की इस निर्जन में आने का दुस्साहस कर सकती थी। खैर ! अब मैने क़दम बढ़ाया और उससे कुछ क़दम परे खड़ी हुई गाय की पीठ से टेक लगाकर खड़ा हो गया। गाय के बदन को छूकर मेरा विश्वास पक्का हो गया, यह कोई असामान्य हस्ती नहीं है अब मैं खड़ा हुआ ही था कि उस औरत की नज़र मेरे पांव पर पड़ी, और फिर अचानक उसने निगाह उठाकर मेरी ओर देखा। अब अचानक उसका चेहरा विकृत हो उठा......बाछें चढ़ गयीं, दांत चमकने लगे, नथुने फैल गये, और आंखें जैसे उबल पड़ीं, हाथों की उंगलियां अकड़ गयीं और वह बाल फैलाये, "कलेजा खा लूंगी, कलेजा खा लूंगी" कहती हुई मेरी ओर झपटी। उसकी आवाज़ सुनकर मुझे तसल्ली हो गई कि यह कोई औरत है, चुड़ैल नहीं। ज्यों ही वह पास पहुंची । मैंने मुस्कुरा कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। वह वहशियों की तरह मेरा हाथ काटने लगी। मैंने जोर से उसे पीछे की ओर धकेल दिया। वह गिरते ही फिर मुझसे गुत्थम-गुत्था हो गयी। उस औरत में बला की ताकत थी। लेकिन ज़ाहिर था कि हम दोनों का कोई मुकाबला ही न हो सकता था। मैंने तंग आकर उसके बालों को खूब झिंझोड़ा और उसकी पीठ पर दो तीन धप मारे लेकिन सिर्फ़ इतने जोर से वह सह सके फिर मैंने उसकी नाजुक गर्दन को अपनी लम्बी उंगलियों की गिरफ़्त में लेते हुए कहा, "देखो! अगर ऐसी छिछोरी हरकतें करोगी तो मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा......वह बिचारी थक कर हाँप रही थी, मैंने उसे परे धकेल कर कहा, ज़रा वहां खड़ी होकर बात कर मुझ से......"

अब उसे इस बात का विश्वास हो गया कि मैं उसकी हकीक़त समझ चुका हूं, इसलिए ज़्यादा आनाकानी व्यर्थ थी। अचानक उसने चादर उठाई और अपने बदन पर लपेट ली और उसकी आंखें नीचे झुक गयीं। मैंने असल मकसद जानने की कोशिश की, वह ज़मीन की तरफ़ देखती रही और झिझक-झिझक कर बातें करती रही। अब उसे मुझसे डर मालूम होता था। उसकी बातों से पता चला कि चार बरस पहले उसकी शादी एक बड़े साहूकार से हुई थी लेकिन अब तक वह संतान के लिए तरस रही थी और उसका पति दूसरी शादी पर तुला हुआ था। इधर यह परेशान थी। आख़िर एक

बूढ़ी औरत ने उसे यह नुस्खा बताया था कि काली गाय के सिर पर पानी का मटका रखकर कब्रिस्तान में स्नान कर, और वहीं से एक पराठा पका कर ला और किसी संतान वाली औरत को खिला दे तो उसके बच्चे मर जायेंगे और तेरे घर में संतान होगी......मैंने यह सुना, तो कहकहा मार कर हंसा। उस समय गहनों से लदी हुई वह औरत आग की रोशनी में बड़ी सुंदर दिखाई दे रही थी। मैंने आगे बढ़कर उसके गाल को छुआ। वह तुरंत पीछे हट गयी। कैसी नर्म त्वचा थी उसके चेहरे की और कितनी भोली सूरत थी उसकी......!

उसने गुस्सा जताते हुए कहा, "तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं एक शरीफ़ घराने की औरत हूं !'

मैंने हंस कर कहा, "मुझे मालूम है कि तू शरीफ़ औरत है। लेकिन नेक बीवी! मैं भी भले ख़ानदान का आदमी हूं। पराई स्त्री की ओर बुरी नीयत से देखना पाप समझता हूं। 'गुरु का दिया खाता हूं, बहुत बड़ी मजबूरी के सिवा कभी किसी पर हाथ नहीं उठाता, इसलिए तू ख़ातिर जमा रख......लेकिन यह बात सुन ले कि तूने संतान प्राप्त करने का जो तरीक़ा अपनाया है, यह बहुत बड़ा पाप है। किसी का बुरा चाहना भले आदमी का काम नहीं है। बड़े-बड़े ऋषियों, गुरुओं, नबियों ग़रज़ यह कि किसी ने भी संतान पाने का यह तरीक़ा नहीं बताया, जो तू अपना रही है।"

यह कहकर कुछ मैंने दाढ़ी को संवारा, कुछ पगड़ी को दुरस्त किया। अंगोछे से मुंह और बाजुओं की धूल पोंछी......"और भाई! मैं ख़ासा कड़ियल नौजवान था......वह मुस्कुरा दी।"

बाबा महंगा सिंह ख़ामोश हो गये। हमने कहा, "बाबाजी! उसके बाद तुमने कभी मिलने की कोशिश की?

"हां, फिर लेकिन मुलाक़ात नहीं हुई मालूम होता है कि फिर उसे मेरी कोई ज़रूरत ही नहीं रही होगी......और यह भी हो सकता है कि वह मुझसे नाराज़ हो गयी हो?"

"क्या तुमने कोई नाराज़ी की बात की थी?'

"नहीं, उसे मेरी कोई हरकत नापसंद नहीं थी। अलबत्ता वह जब जाने लगी, तो मैंने उसका कंठा पकड़ लिया, वह हैरान-सी रह गयी, बोली, 'तुम्हारा मतलब?' मैंने जवाब दिया कि इससे पहले तो मेरा कोई मतलब ही नहीं था मेरा असल मतलब यही है। उसने कहा कि अकेली जानकर मेरे ज़ेवरों पर हाथ डाल रहे हो। मैंने जवाब दिया, "चलो गांव में जितने आदमियों के सामने कहो, तुम्हारे ज़ेवरात उतार लूं।" उसे मेरी यह तज्वीज़ पसंद नहीं आई। अतएव उसने सारे ज़ेवरात मेरे हवाले कर दिये।"

यह कह कर बाबा जी ने सिर झुका लिया और फिर जैसे गुम हो गये। एक बुज़ुर्ग, बोले "देखा ऐसी पाजी होती हैं औरतें!'

लीजिए मैं दिल में सोचने लगा—मारूँ घुटना फूटे आंख—इस क़िस्से का क्या ही शानदार नैतिक निष्कर्ष निकाला गया है। सब लोग आपस में औरतों की बदमाशी और उनकी चालाकी पर अपनी-अपनी रायें देने लगे। लेकिन बाबा जी आंखें अधखुली किये चुपचाप बैठे रहे।

"वाह गुरु......वाह गुरु।" उनके होंट हिले।

मैंने उन्हें उदास देखकर पूछा "बाबाजी, आपने जो उस औरत के ज़ेवरात उतार लिये, शायद आपको इसी बात का दुःख हो रहा है इस समय......"

बाबा जी के भारी पपोटे हिले और उन्होंने मेरी और प्रेम भरी दृष्टि से देखते हुए ठंडी आह खींची और बोले, "नहीं, मुझे इसका दुःख नहीं है, लेकिन दुःख इस बात का है कि पचास बरस गुज़रने को आये, वाह गुरु अकाल पुरुष ने मुझे ऐसा मौक़ा फिर कभी नहीं बख़्शा!"

सज़ा

यह कहानी पंजाब के एक गांव से जुड़ी हुई है।

छोटा-सा गांव था। दो चार हवेलियों को छोड़कर बाक़ी सब मकान गारे के बने हुए थे। वही जोहड़, वही बबूल, शरीहना और बेरों के पेड़, वही घने पीपल के तले रूं-रूं करते हुए रहट, वही सुबह के समय कुएं पर कुंवारियों के जमघट, दोपहर के समय बड़े-बूढ़ों की शतरंज और चौपड़, शाम को नौजवानों की कबड्डी और शांत रातों में वारिस अली शाह की हीर, हीर और काज़ी के सवाल-जवाब, वही मज़बूत नटखट और चंचल छोकरियां और वही सीधे-सादे ऊंचे-पूरे और हृष्ट-पुष्ट नौजवान!

शाम हो चुकी थी।

घर में पकाने के लिए कोई चीज़ न थी। इसलिए जीत कौर पैसे आंचल में बांधकर दाल लेने के लिए घर से बाहर निकली लेकिन चार क़दम चलकर रुक गयी। सामने पीपल के नीचे मुगदर के पास फ़मन सिंह चारपाई पर बैठा मूंछों को बल दे रहा था।

जीत कौर जानती थी कि जब वह उसके पास से गुज़रेगी तो वह उसे बग़ैर छेड़े हरगिज़ न रहेगा। लिहाज़ा उसने सोचा कि बजाय दाल लेने के किसी खेत से साग लिये आती है। इस तरह वे पैसे छोटा-भाई चन्नन ख़र्च करेगा। आज दोपहर भर वह खांड की रंगदार गोलियों के लिए रोता रहा था। यह सोच कर वह खेतों की तरफ़ चल दी।

सूरज डूब रहा था। बबूल और गन्नों की छाया लम्बी होती जा रही थी। जीत कौर छोटी-छोटी कांटेदार झाड़ियों से शलवार बचाती हुई चली जा रही थी। जामुन के पास बेरों की झाड़ियां थीं। उसने थोड़े से बेर चन्नन के लिए तोड़ लिये। फिर आगे बढ़ गयी। उसके चेहरे से उदासी और गुस्से के अनुभाव व्यक्त हो रहे थे। इस समय वह फ़मन सिंह के बारे में सोच रही थी। आख़िर फ़मन सिंह उसे क्यों तंग करता है? अगर कोई और नहीं तो सुमित्री उससे कम सुंदर तो न थी। वह उसे क्यों नहीं छेड़ता? लेकिन सुमित्री के तीन जवान भाई थे। अगर कोई उसकी तरफ़ उंगली भी उठाये तो वे उसका ख़ून पी जायें। यह ख़याल आते ही उसे अपना भाई याद आया। तीन साल पहले जब कि उसकी उम्र पंद्रह बरस की थी, उसका भाई घर से खाना खाकर कुएं

पर गया। जहां उसने तरबूज़ खा लिया और शाम तक हैज़े से मर गया। उसका भाई गांव भर में सबसे ज़्यादा लम्बे क़द का था। उसका सीना ऐसा था जैसे किसी चक्की का पाट। एक बालिश्त ऊंची और मोटी गर्दन। चौड़े-चकले मज़बूत हाथ। कलाई पकड़ने और कबड्डी खेलने दूर-दूर तक कोई उसकी बराबरी का दावेदार नहीं था। एक बार कबड्डी में थप्पड़ मार कर अपने प्रतिद्वंद्वी नौजवान की हंसली की हड्डी तोड़ दी थी। ये बातें याद करके जीत कौर की आंखों में आंसू आ गये। भला आज उसका भाई जीवित होता तो क्या फमन सिंह की हिम्मत पड़ सकती थी कि उससे छेड़खानी करे। कल ही की बात तो है कि उस बदमाश ने उसका आंचल खींच कर उसका सिर नंगा कर दिया था। यह सब इसीलिए तो था कि वह नंबरदार का लड़का था और दूसरे ये उनके क़र्ज़दार थे। मां की मौत के बाद उन पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े। मां के बाद बाप मरा। बाप के बाद उसका भाई मरा और अब बूढ़ा दादा रह गया था। जिसे वह बापू कहा करती थी। या चन्नन था। छः साल का बच्चा। मां-बाप की आख़िरी निशानी। कई बार फ़सलें खराब हुई। नंबरदार का डेढ़ सौ रुपये का कर्ज सिर पर हो गया। ज़मीन अलग रहन थी। बापू बूढ़ा था। इन तमाम मुसीबतों पर तुर्रा यह कि बेशर्म फमन सिंह उसे दम न लेने देता था।

अब जीत कौर का फिर से खून खौलने लगा। उसके दिल में तमाम मर्दों के प्रति घृणा पैदा हो गयी । थी। दिल ही दिल में कहने लगी। अब तारा सिंह को ही देखो इसका आगा न पीछा। बस ले दे के उसकी मां है, थोड़े दिन की मेहमान। उसे भला काहे का फिक्र? जमीन है। एक कच्चा मकान। तीन बैल। एक भैंस और एक गाय भी है। उसे अपनी अकेली जान के लिए काफ़ी से भी ज्यादा है । मारे बेफ़िक्री के रांड का सांड हो रहा है। जब देखो मूंछ पर हाथ। इतना लम्बा-चौड़ा जवान होकर बिचारी लड़कियों पर आवाजें कसते शर्म नहीं आती। मैं तो कहूंगी कि सभी मर्द दर्जे के घमंडी, गुंडे और पाजी होते हैं। जब कभी पानी का घड़ा कुएं से उठाकर लाती हूं तो कैसी भद्दी आवाज़ से गाता है –

निक्का घड़ा चक लछिए! तेरे लक नू जरब न आवे[1]

निक्का घड़ा चक लछिए

बापू सोचते हैं कि मैं उससे शादी कर लूं। मगर मैं ऐसे लफंगे के साथ शादी करूं क्यों? माना कि फम्मन सिंह की तरह उसने छेड़छाड़ कभी नहीं की। मगर इस किस्म के गाने नौजवान लड़कियों को सुना-सुनाकर गाना भी तो भले आदमियों का काम नहीं।

इस समय जीत कौर को रह-रह कर ख़्याल आता था कि काश वाह गुरू काल पुरूष उसे ताक़त देता तो वह इन दिल फैंक आशिक़ों को ईंट का जवाब पत्थर से देती।

---

1. ऐ लड़की तू छोटा घड़ा उठाया कर । मुझे डर है कि तेरी कमर में लचक न आ जाये।

चलते-चलते वह रुक गयी। सामने गन्ने के खेतों के पास ही हरा भरा साग का खेत था लेकिन वह खेत था तारासिंह का। उसने इधर-उधर देखा। मवेशी बांधने का मकान ख़ाली मालूम पड़ता था। रहट चल रहा था। और पास ही बैल बंधा हुआ था।

उसने जब अच्छी तरह से देख लिया कि पास कोई नहीं है तो चुपके से खेत में सिमट-सिमटा कर बैठ गयी और जल्दी-जल्दी साग तोड़ने लगी। अचानक एक आवाज़ सुनकर उसने सहम कर सिर ऊपर उठाया। देखा कि दूर गन्ने के खेतों से तारू हाथ में फावड़ा लिये ऊंची आवाज़ में गालियां देता चला आ रहा है। उसके शरीर में सनसनी-सी पैदा हो गयी और साग वही फैंक जल्दी-जल्दी दूसरी तरफ को चल दी। इतने में तारू वहां आ पहुंचा। उसने तोड़ा हुआ साग हाथ में उठाकर देखा और फिर उसकी ओर लपका। इधर उसके छोटे-छोटे फटे हुए स्लीपर हरी घास पर बार-बार फिसलते थे। यह देखकर कि तारू उसे पकड़ा ही चाहता है, वह भाग खड़ी हुई । तारू भी दौड़ा। थोड़ी दूर दौड़ने पर तारू ने उसे जा दबोचा। और उसकी कलाई मज़बूती से पक़ड़ कर बोला, "क्यों री जीतू हमसे ये चालाकियां! हर रोज़ तू ही साग चुराकर ले जाती थी ना? आज मैं भी इसी ताक में बैठा था।"

जीतू रोते हुए और उसकी मज़बूत पकड़ से बाजू छुड़ाने की कोशिश करते हुए बोली, "मैं तो तेरे खेत में पहले कभी नहीं आई.....छोड़ो मुझे।"

"कभी नहीं आई थी, तारू दांत पीसते हुए बोला, "चल आज मैं चखाता हूं तुझे मज़ा।"

तब तारू उसे घसीटता हुआ कच्चे मकान की तरफ़ ले गया और दरवाज़ा खोल कर जोर से उसे अंदर धकेल दिया। वह भैंस के ऊपर गिरने से बाल-बाल बची। उसकी एक चूड़ी भी टूट गयी। चूड़ी को टूटते देखकर उसके धीरज ने जवाब दे दिया। चीख कर बोली, "तूने मेरी चूड़ी तोड़ दी । मैंने इतने शौक से मेले में ली थी।" उसकी आवाज़ भर्रा गयी और वह टूटी हुई चूड़ी के टुकड़ों को देख-देखकर आंसू बहाने लगी।

अब तारू नरम पड़ गया। दिल में अफ़सोस भी पैदा हुआ। यकायक उसने देखा कि चूड़ी का टुकड़ा चुभ जाने से जीतू की कलाई से खून बह रहा है। यह एकदम आगे बढ़ा, "ओ हो! जीतू तुम्हारी कलाई से खून बह रहा है, लाओ......"

"हटा!" जीतू ने दो क़दम पीछे हटकर कहा, "बदमाश, कलमुंहा, मुस्टंडा......"

तारू गालियां खाकर ख़ामोश हो गया। उसे मालूम न था कि बात का बतंगड़ बन जायेगा। वह तो दो घड़ी के लिए जीतू को परेशान करना चाहता था। क्योंकि उसे तंग करने में उसे मज़ा आता था। लेकिन यह मंशा हर्गिज न था कि जीतू का कोई नुकसान हो या वह उसे कोई शारीरिक कष्ट पहुंचाये।

जीतू दीवार के पास खड़ी चुपके-चुपके रो रही थी। और तारू अपनी गर्दन झुकाकर रखा था। उसके मन में दया आ गयी। मगर वह सहानुभूति प्रकट नहीं कर सकता था।

दो घड़ी बाद वह बाहर निकल आया और वह दरवाजा बंद करके खेतों की तरफ़ चला गया।

थोड़ी देर बाद तारू सरसों का उम्दा साग लिये सेहन में दाख़िल हुआ। जीतू ने नज़र उठाकर उसकी ओर देखा। उसकी भीगी-भीगी लम्बी पलकों को देखकर उसके दिल में हूक-सी उठी। उसे अपनी हरकत पर बहुत अफ़सोस हो रहा था। वह झुकता हुआ आगे बढ़ा और साग का गट्ठा आगे बढ़ाते हुए बोला, "जीतू अब तुम घर जाओ। लो यह साग।"

जीतू पहले ही भरी पड़ी थी। उसने झपट कर साग लिया और उलटा उसके मुंह पर दे मारा। तमाम साग बिखर कर ज़मीन पर गिर पड़ा और दो-चार पत्ते तारू की छोटी-छोटी दाढ़ी में फंस कर रह गये। तारू मुंह से कुछ न बोला और झुक कर साग को चुनना शुरू कर दिया।

जीतू जल्दी से बाहर निकल आयी, तारू भी साग लिये पीछे-पीछे लपका। जीतू पानी की नाली फांदने लगी। उसका एक पांव ज़मीन में धंस गया, क्योंकि ज़मीन नमी के कारण नर्म हो रही थी, उसने पांव बाहर खींच लिया। लेकिन स्लीपर फंसा रह गया। तारू ने जल्दी से बढ़कर स्लीपर बाहर खींच लिया और कहने लगा, "तुम ठहरो मैं अभी धोये देता हूं।"

नाली के किनारे कपड़े धोने की सिल पड़ी थी। जीतू उस पर मुंह फुला कर बैठ गयी और तारू पानी की धारा में पहले साग धोने लगा। अब वह कोई सुलह की बातचीत करना चाहता था। धीमी आवाज़ और अपनी समझ में बहुत नर्म लहजे में कहना शुरू किया,

"जीतू ! अब यह भैंस तो दो कौड़ी की नहीं रही। तीन सेर सिर्फ़ तीन सेर दूध देती है। भला ऐसी भैंस रखने से क्या फ़ायदा? एक भूरी भैंस मेरी नज़र में है। कम से कम सोलह सेर दूध देने वाली। दाम ज़्यादा है। मगर कुछ हर्ज नहीं। मुझे भैंस रखने का बहुत शौक है। मैंने एक सौ पचपन रुपये जमा किये हैं। बड़ी मुश्किल से बहुत ही मुश्किल से। उस भैंस को ज़रूर खरीदूंगा। ऐसी मरियल भैंस रखने से क्या फायदा? ऐसी भैंस......"

तारू को अपनी बातें बिल्कुल अप्रासंगिक लग रही थीं। उसका साहस भी न था कि जीतू की ओर नज़र उठाकर देख ले। उसने साग धोकर एक ओर रख दिया और अब टूटा हुआ स्लीपर धोने लगा। एक और सूझी बोला, "और हां तुम दरियामू को तो जानती हो बहुत खोटा आदमी है। एक दिन क्या देखता हूं कि चन्नन के कान ऐंठ रहा है। मैंने कारण पूछा तो कुछ डर गया। कहने लगा, इसने खेत से एक खरबूज़ा चुराया था। मैंने चन्नन को उसके हाथ से छुड़ाया, बिचारा चिड़िया की तरह सहमा हुआ था और फिर मैंने दो धप दरियामू की गर्दन पर दिये और कहा कि, तू इत्ती-सी

बात पर लौंडे को मारे डालता है, ख़बरदार जो उसे कभी हाथ भी लगाया तो......जानता नहीं चन्नन किसका भाई है?"

यह कह तारू खामोश हो गया और उसने चुपके से कनखियों से जीतू की ओर देखा। मगर वह अभी तक मुंह फुलाये ख़ामोशी से अपने कबूतरों के-से सफ़ेद-सफ़ेद पांव को ठीकरी से रगड़-रगड़ कर धो रही थी। तारू उठा और स्लीपर उसके पांव के पास रख दिया और साग उसकी झोली में डाल दिया। वह ठुमक कर उठी और इठलाती हुई चल दी। वह नज़दीकी रस्ते से जल्द से जल्द घर पहुंचना चाहती थी। क्योंकि अब अंधेरा हो चुका था। रस्ता खराब था। खेतों में पानी भरा हुआ था और मेंढ बहुत कम चौड़ी थी। जीतू ने स्लीपर हाथ में लेकर बजाय मेंढ़ के पानी से होकर जाने की ठानी। तारू जल्दी से आगे बढ़ा और उसका बाजू थाम लिया......, मैं तुम्हें सहारा दिये रहूंगा।"

जीतू ने झटके से हाथ छुड़ाया और कहने लगी, "तुम लोगों को शर्म नहीं आती। तुम लोग हर काम बुरी नीयत से करते हो। मगर मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि तुम लोगों की ऐसी हरकतें चुपचाप सहन नहीं करूंगी।"

ये 'ख़राब नीयत' शब्द सुनकर तारू ने सफाई में कुछ कहना चाहा लेकिन जीतू चमक कर बोली "और आज मैं तुम्हें ख़बरदार किये देती हूं कि आयंदा मुझे हाथ लगाने की हिम्मत हर्गिज़ न करना वरना हाथ तोड़ दूंगी।"

तारू ने पहले उसके कोमल और नन्हे-मुन्ने हाथों को देखा फिर अपने भारी भरकम, मैले-कुचैले और खुरदुरे हाथों पर नज़र डाली और तब उसके होंटों पर मुस्कुराहट उभर आयी।

जीतू को उसकी यह हरकत देखकर ज़हर-सा चढ़ गया और उसने आव देखा न ताव तड़ाक से स्लीपर उसके मुंह पर दे मारा।

"जीतू!!" तारू अनायास शेर की भांति गुस्से में गरजा। लेकिन फिर न मालूम क्या सोच चुप साध गया।

कुछ देर के लिए दोनों ओर चुप्पी बनी रही। फिर जीतू बेपरवाई से शलवार उठाकर पानी में चल दी। स्लीपर की एक कील थोड़ी बाहर निकली हुई थी जिसके कारण तारू के माथे पर खरोंच आ गयी और खून बहने लगा। मगर वह खून की चिंता किये बिना जीतू के आगे-आगे चल रहा था। रास्ते में जो कांटेदार झाड़ी होती उसे अपने फावड़े के एक वार से उखाड़ कर जीतू का रास्ता साफ़ करता जाता। जब यह पानी का रास्ता खत्म हो गया तो तारू ने बढ़कर कांटेदार झाड़ी में से रास्ता बना दिया और खुद ठहर गया। जीतू ने एक क्षण के लिए उसके खून से तर कुरते की ओर देखा और फिर चुपचाप घर की ओर चल दी।

अंधेरे में उसने घर का दरवाज़ा खोला।

एक ओर दीपक जल रहा था। बापू गंडासे से ज्वार काटने में व्यस्त था। चन्नन कैंची से कागज के फूल बनाने में मग्न था।

जीतू ने प्रवेश किया तो बापू ने एक बार सिर उठाया और फिर झुक गया। चन्नन ने एक बार कहा, "बहन आ गयी।" और फिर अपने काम में डूब गया।

उसने कोने में से कपास की छड़ियां उठाईं और उन्हें तोड़कर चूल्हे में रखा और ऊपर उपले रखकर आग जलाई। तब मिट्टी की हंडिया में साग पकने को रख दिया।

बापू धीमे से बोला, "आज नम्बरदार और सिपाही फिर आये थे।"

वह सब कुछ समझ गयी। उसके हाथ रुक गये। वह विचार मग्न होकर अंधेरे को देखने लगी। उनकी बर्बादी और तबाही नाचती हुई दिखाई दे रही थी। जग हंसाई उसके अलावा थी। उसने ठंडी आह भर कर सिर झुका लिया और कुछ व्यग्रता से उठी और आटा लेकर तन्नूर पर रोटी पकाने चली गयी।

रोटी खाते समय बापू ने बताया कि सिपाही कहता था कि अगर परसों तक रुपये का इंतज़ाम न हो सका तो घर की कुर्की कर दी जायेगी।

मनुष्य पर विपदाएं आती हैं तो एक नहीं बल्कि सैकड़ों विपदाएं एक के बाद आक्रमण करके मनुष्य को विवश और लाचार बना देती हैं।

आज मानो कि अंतिम दिन था। बापू सुबह से बाहर गया हुआ दोपहर को घर वापस आया। उसके उदास झुर्रियोंदार चेहरे से साफ़ ज़ाहिर था कि रुपये का बंदोबस्त न हो सका। जीतू की मां का एक सोने का ज़ेवर बेचा था। कुल बाईस रुपये जमा हुए। बाक़ी एक सौ तीस कहां से आयें। घर के मवेशी बेचने से कुछ रुपया मिल सकता था। मगर उन्हीं से तो रोज़ी थी। अगर वे बिक गये तो जैसे दाल-रोटी से भी गये। जीतू दोपहर का काम निपटाकर घर से बाहर थोड़ी देर तक खुली हवा में खड़ी रही। नंबरदार अभी तक न आया था लेकिन उसे आना ज़रूर था और कल? कल तमाम दुनिया उनका तमाशा देखेगी।

सामने से काली घटा झूम कर उठी और आसमान पर छा गयी।

जीतू गुरूद्वारे की तरफ़ चल दी। यह छोटा-सा गुरुद्वारा गांव से कमोबेश तीन फर्लांग की दूरी पर था। इमारत पुरानी थी। दो-तीन कोठरियां मुसाफ़िरों के लिए बनी हुई थी और साथ ही एक छोटा-सा बाग़ था।

गुरुद्वारे का काम एक नियम धर्म के पक्के बुजुर्ग के सुपुर्द था। जीतू के बापू की उनसे गाढ़ी छनती थी। यह बुज़ुर्ग जीतू को सिख गुरूओं के पवित्र जीवन के प्रसंग, उनके त्याग और परोपकार की कहानियां सुनाया करते थे। जिससे जीतू के दिल को कुछ सांत्वना मिलती थी। जब वह वहां पहुंची तो मालूम हुआ कि वह बुज़ुर्ग दूसरे गांव में किसी कार्यवश गये हुए हैं। उसने कुएं पर स्नान किया। पवित्र ग्रंथ के आगे सिर झुकाया और बाबा नानक की समाधि से रो-रोकर इस विपदा के टल जाने की दुआ

करती रही। फिर उसने चमेली के फूल चुने और चन्नन के लिए हार गूंथने लगी। क्योंकि आज सुबह उसने उससे हार का पक्का वायदा किया था। इतने में बारिश शुरू हो गयी। खूब मूसलाधार हुई। आख़िर जब बारिश बंद हो गयी और वह बुजुर्ग न आये तो जीतू ने हार अपने बालों के जूड़े से लपेटा और गांव की तरफ़ चल दी।

बादल अभी तक छाये हुए थे। रोशनी धीरे-धीरे कम हो रही थी। वह अभी तक घर से काफ़ी दूर थी। उसने देखा कि एक सिपाही और गांव का नंबरदार उनके घर से बाहर आ रहे हैं। वह जहां थी वहीं खड़ी रह गयी। उसके पांव सिल हो गये। आख़िर क्या हुआ होगा? कल......हां कल ढोल पिट जायेगा.....वह आगे कुछ न सोच सकी। वह लड़खड़ाते हुए क़दमों से घर की ओर जाने के बजाय किसी अन्य दिशा में चल दी। वह जानती थी कि इस समय उसके बूढ़े दादा की क्या दशा हो रही होगी? मगर उसका साहस न होता था कि घर जाये। वह अजब परेशानी में चली गयी न मालूम कितनी दूर तक......आख़िर उसकी टांगों ने जबाब दे दिया और वह वहीं खेत के किनारे बैठ गयी।

हम दुःख से उतना आतंकित नहीं होते जितना कि दुःख की कल्पना से। वह जानती थी कि कष्ट का सामना उसे करना ही पड़ेगा। लेकिन चाहती थी कि अंधेरा हो जाये। और वह सब की नज़रों से बचकर चुपके से अपने घर में चली जाये। उसकी आंखों के सामने अपने घर की तस्वीर आ गई जहां उसने अपने बचपन से अब तक अपने जीवन के दिन बिताये थे। और अब वह घर ग़ैरों का होने वाला है।

अंधेरे घिरने लगे। आसमान पर इक्का-दुक्का तारा झिलमिलाने लगा। मवेशी वापस गांव को जा रहे थे। जोहड़ के किनारे पीले-पीले मेंढक टर्रा रहे थे। झाड़ियों में टिड्डे अपनी तेज़ आवाज़ में बोल रहे थे। और गिद्ध बेरियों पर बैठे ऊंघ रहे थे।

जीतू ने सिर उठाया । सामने धुंधलके में तारू का कच्चा मकान और रहट दिखाई दे रहा था। आज तारू का कुआं देखकर जीतू के मन में अजाने भाव जाग्रत हो गये। पिछली घटना आंखों के सामने आ गयी। जबकि वह साग लेने गयी थी। तारू की बदमिज़ाजी, उसकी चूड़ी का टूटना तारू का पछताना और उसे साग लाकर देना, उसका स्लीपर धोना, फिर हाथ लगा देना। तब स्लीपर खाकर भी सहन कर जाना, उसके रास्ते से कांटे साफ़ करना और उसके माथे से लहू का बहना—यह संपूर्ण दृश्य उसकी आंखों के सामने साकार हो उठा। वह सोचने लगी कि तारू में हज़ार ऐब सही मगर दिल का बुरा नहीं और जबकि उसका दिल उमड़ा आता था, वह चाहती थी कि कोई व्यथा-कथा सुने। अगर सुनने वाला सहानुभूति के दो शब्द भी कहे दे उसके दिल को तसल्ली हो जाये। मगर ऐसा हमदर्द था कौन?

तारू के कुएं पर इस समय कैसी शांति थी। इस समय रहट की रैं-रैं और मवेशियों की घंटियों की टन-टन ने वातावरण को कितना मोहक बना दिया था। शरीहना के

ऊंचे-ऊंचे पेड़ हवा में झूम रहे थे। हरे-भरे खेत में सफ़ेद घोड़ी घास चर रही थी। गन्नों के खेत के पास कुत्ते खेल रहे थे। कभी दुम हवा में उठाकर अजब अंदाज़ से चलते, कभी गुर्राकर एक दूसरे पर लपकते और फिर इकट्ठे होकर नये खेल खेलने की जुगाड़ सोचने लगते।

जीतू को चाहे-अनचाहे विश्वास हो गया कि तारू उसका दुखड़ा ज़रूर हमदर्दी से सुनेगा। यह सोचकर इस तरह से समय भी कट जायेगा और उसके मन का बोझ भी हलका हो जायेगा। वह कुएं की ओर चल दी। मदार के पेड़ों और कांटेदार झाड़ियों में से होती हुई वह कुएं पर पहुंच गयी। हरी-हरी घास की सौंधी-सौंधी सुगंध आ रही थी। जीतू ने इधर-उधर तारू को देखा किंतु वह दिखाई नहीं दिया। वह दरवाजें की ओर बढ़ी ओर कुछ ठिठकी। ठिठककर बढ़ी और धीरे-से दस्तक दी।

"कौन है?" भीतर से तारू ने कड़क और तमतमाकर पूछा।

जीतू चुप रही।

"अरे भई कौन है? चले आओ दरवाज़ा खुला हुआ है।"

जीतू ने धीरे से दरवाजा खोल दिया।

तारू उसे देखते ही उछल पड़ा। "आओ जीतू, तुम कैसे रस्ता भूल पड़ी?"

उससे कुछ जबाब न बन पड़ा। उसने तारू की ओर, जो कि पटरी पर बैठा गन्ना चूस रहा था, दबी नज़रों से देखा और धीमे स्वर में बोली, "यूं ही इधर आई थी सोचा कि मां से मिलती जाऊं।"

"मां? मां तो कुएं पर बहुत कम आती है। आती भी है तो दिन को इस वक़्त घर पर ही रहती है।

वह जानती थी कि तारू की मां कुएं पर नहीं रहती गांव में रहती है। दिखाने के लिए वह उलटे पैरों लौटी तो तारू ने डरते-डरते पीढ़ी अपने नीचे से निकाल कर उसकी ओर धकेल दी और झिझकते हुए बोला, ".....जीतू अब आई हो तो बैठो......अगर तुम्हें जल्दी न हो तो बैठो। साग ले जाओ। चन्नन के लिए गन्ने लेती जाना। गन्ने बहुत मीठे हैं।"

जीतू पीढ़ी लेकर अंधेरे कोने में बैठ गयी। तारू शायद दिल में समझा होगा कि साग और गन्नों का दाव चल गया।

तारू ने टाट पर बैठते हुए पूछा, "आज तो बारिश अच्छी हो गयी। हवा मज़े की चल रही है.....क्या तुम शर्बत पियोगी? बहुत उम्दा गुड़ रखा है।"

"नहीं, प्यास नहीं इस वक़्त।"

"अच्छा कुछ हर्ज नहीं तुम गुड़ घर ले जाना और कल को शरबत बना कर देखना।"

"अच्छा।"

"मैंने चन्नन से कहा था कि गन्ने ले जाये मगर वह आज तो आया नहीं। उसे यहां भेज दिया करो। रस्ता जानता ही है। रस (गन्नों का) पी जाया करेगा और ये

हमारे पिछवाड़े पेड़ लगे हुए हैं। लाल-लाल बहुत मीठे। मैं तो इधर-उधर के छोकरों को तोड़ने नहीं देता। मैं कहता हूं कि चन्नन आये तो खाये। आख़िर बच्चा है ना। उसे बेर बहुत भाते हैं। जब हम-तुम छोटे थे, याद है ना, हम भी तो बेर खाने जाया करते थे।''

''क्यों तारू? तुम्हारे गन्ने तो खूब हुए हैं अब के।'' जीतू ने बात का रुख़ बदल कर कहा।

''हां सब वाह गुरु अकाल पुरुष की कृपा है। ''

वह ख़ामोश रही।

''कहो तो बाहर से गन्ना ला दूं?''

''नहीं तारू मेरा जी नहीं चाहता।''

अब फिर कुछ देर के लिए मौन रहा। तारू उसके मौन का कारण जानना चाहता था। फिर बहुत संभल कर कहने लगा, ''जीतू!.....दरअसल मुझे डर लगता है कुछ कहते हुए, कहीं तुम नाराज़ न हो जाओ......आख़िर बताओ न तुम आज इस क़दर ख़ामोश क्यों हो? क्या कोई ख़ास बात है।''

सहानुभूति के ये शब्द सुनकर जीतू की आंखों में आंसू आ गये। लेकिन अंधेरे के कारण तारा उन्हें देख न सका। लेकिन वह अपनी भर्राई हुई आवाज़ को छुपा न सकी। ''नहीं तारू! तुम्हें क्या बताऊं?''

तारू का चेहरा कठोर-सा हो गया। आंखों में क्रोध उतर आया। वह तीखी आवाज़ में कड़क कर बोला, ''फमन सिंह ने कोई हरकत तो नहीं की ? बता दो जीतू! वह देख सामने कृपाण लटकी हुई है। मैंने आज ही तेज़ की है। मैं फमन के बारे में थोड़ा-बहुत जानता हूं। मगर अब उसकी मौत दूर नहीं। यह कृपाण उसी का खून पीने के लिए रखी है......''

''नहीं तारू!'' जीतू हाथ उठा कर बोली, ''यह बात नहीं, यह बात बिल्कुल नहीं। मैं बताती हूं, तुम से कुछ छुपाना नहीं है......असल बात यह है कि......''

दरवाजा धीमे से खुला। तारू चीते की तरह चौकन्ना हो गया और उसका हाथ तुरंत पास पड़ी हुई कुल्हाड़ी पर जा पड़ा। जीतू ने चौंककर दरवाज़े की ओर देखा।

''क्या मेरी बहन यहां है?''चन्नन ने धीरे से दरवाजे में से सिर निकाल कर तारू से पूछा।

तारू ने संतोष की सांस ली और कुल्हाड़ी पीछे की तरफ सरका दी।

''चांद, आओ मैं यहां हूं।''

चन्नन दौड़कर आया और अपनी बहन की गोद में जा बैठा।

''ढूढं लिया ना? मैं तुम्हें बहुत देर से ढूंढ रहा हूं। फिर मैंने सोचा कि बहन हमारे लिए ज़रूर बेर लेने के लिए तारू के कुएं पर गयी होगी।''

जीतू उसके माथे से बाल हटाते हुए बोली, ''क्यों रे! तुझे डर नहीं लगा अंधेरे में।''

''नहीं।''

तारू बोला, ''वाह, भला शेरों के बच्चों को भी कभी डर लगता है।''

चन्नन ने तारू को संबोधित करते हुए कहा, ''अच्छा तुमने कहा था कि गन्ने देंगे। लाओ अब? मैं तो बहुत से लूंगा।''

''आओ, जितने चाहो ले लो।''

''अच्छा लाओ दो।'' यह कह कर वह गोदी से उतरने लगा। मगर फिर रुक गया, ''जरा ठहरो, एक बात है तुम्हें नहीं बतायेंगे।'' फिर बहन के कान में कहने लगा, ''बहन हमें एक पैसा दो, तुमने कहा था.....।''

''घर पर लेना।''

चन्नन कंधों को हिलाकर ज़िद से कहने लगा, ''नहीं, अभी दो।''

''तुम बहुत अच्छे हो चन्नन।'' जीतू ने चुमकारते हुए कहा, ''इस वक़्त नहीं।''

''तो तारू से ले दो।''

''उसके पास भी नहीं हैं।''

''हैं क्यों नहीं......आज जब तुम बाहर चली गयी थीं। तारू हमारे घर आया था और बापू ने उसे छन-छन करके बहुत से रुपये गिन दिये।''

''चन्नन!!'' जीतू आश्चर्य के साथ बोली।

लेकिन चन्नन अपनी ही धुन में था, ''मगर मैं तो कहता हूं, बापू ने बहुत बुरा किया। उसने शाम को सब रुपये नम्बरदार को दे दिये।''

जीतू के आश्चर्य की सीमा न रही, ''मगर यह तुमसे किसने कहा? ''

''किसने कहा?'' चन्नन चीख कर बोला, ''मैंने खुद देखा। अच्छा बताओ अब मैं तारू से पैसे ले लूं?''

''तुमने खुद देखा?'' यह कहकर वह खामोशी से हवा में ताकने लगी। एक बड़े तूफान और आंधी के बाद यकायक बादल फट गये, हवा ख़ामोश हो गयी और हर ओर शांति सी छा गयी। उसकी मानसिक उलझनें दूर हो गयीं। उसके मन पर से एक बोझ-सा हट गया। इस खोई हुई मन:स्थिति में उसे मालूम नहीं हुआ कि कब चन्नन ने तारू से पैसा ले लिया, और कब वह कुएं पर से गन्ने लेने के लिए बाहर दौड़ गया और तारू अपनी जगह से उठकर भैंस के पास जा खड़ा हुआ। इस सुखद ध्यानावस्था में जीतू को तारू की याद आई, वही दुनिया में उसका सच्चा हमदर्द था। कितना नेक। इतनी देर बातें करने के बावजूद उसने उन रुपयों का किंचित् भी संकेत नहीं किया। वे रुपये उसने कितने कष्ट उठाकर जमा किये थे। लेकिन उसने अपनी निजी ज़रूरतों की तुलना में उसकी (जीतू) विपदा को महत्व दिया।

तारू का ध्यान आते ही उसकी सूरत उसकी आंखों के सामने खड़ी हो गयी । जब उसने उससे कहा था कि वह हर काम बुरी नीयत से करता है। ये शब्द कितने निरर्थक और स्वार्थपूर्ण थे। वह उसका घायल माथा, वह बहता हुआ ख़ून, वह उसका धैर्य और सहनशीलता। जीतू चौंकी और उसकी आंखें तारू को ढूंढ़ने लगीं। जोकि उसकी ओर पीठ किये भैंस के पास खड़ा था। जीतू उसके पास जाकर धीरे से बोली,

"तारू!"

वह चुप रहा।

"मेरी तरफ़ देखो तारू!"

तारू ने देखा कि जीतू की बड़ी-बड़ी सुरमई आंखों में आंसू डबडबा रहे हैं।

वह अपनी भारी आवाज़ में बोला, "रोती क्यों हो जीतू! मैं तो हर समय इसी कोशिश में रहता हूं कि तुम्हारे काम आ सकूं। मुझे उस दिन का अपनी हरकत पर बहुत अफ़सोस है।"

जीतू ने धीरे से अपना हाथ उसके माथे पर रख दिया जिस जगह कि उसके कमबख्त हाथों ने स्लीपर मारा था। फिर धीरे से कहने लगी,

"तारू अब मैं जाती हूं। मैं फिर आऊंगी। अब तुम आराम करो। हां, मैं फिर आऊंगी।"

यह कहकर वह वापस पीढ़ी के पास आयी और स्लीपर पहन कर लौटी तो देखा कि तारू रास्ता रोके दरवाज़े के आगे खड़ा है। वह मुस्कराकर अपने तीखे लहजे में बोला, "जीतू! आज फिर मेरी नीयत ख़राब हो रही है। आज फिर सज़ा दे दो।"

जीतू ने झेंपकर एक उचटती हुई निगाह तारू पर डाली फिर अपने भीतर सिमटती हुई उसकी ओर बढ़ी। अपने जूड़े से चमेली का हार खोला और कुछ मुस्कुरा कर और कुछ लजाकर वह हार उसके गले में डाल दिया।

तारू ने रास्ते से हटकर दरवाज़ा खोल दिया।

आगे चन्नन गन्ने लिये भागा आ रहा था। जीतू ने गन्ने थाम लिये और उसे गोद में उठा लिया। गोबर और कचरे से पांव बचाती हुई चल दी। चन्नन उसके गले के आस-पास बाहें डालकर कहने लगा, "बहन तारू मुझे बहुत अच्छा लगता है। तुम्हें कैसा लगता है?"

जीतू मन ही मन में लजा गयी। उसने इधर-उधर देखकर कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा, जवाब दिया "हां, चन्नन! तारू मुझे भी......तारू बहुत अच्छा लगता है।"

जीतू को अब भी तारू के गाने की भारी और बेसुरी आवाज़ सुनाई दे रही थी :

निक्का घड़ा चक लछिए!
तेरे लक नूं जरब न आये
निक्का घड़ा चक लछिए!

रास्ता चलती औरत

यह कोई अंगारा नहीं था, बल्कि बूटा सिंह की नयी नवेली बीर बहूटी-सी दुल्हन के सुर्ख़ दुपट्टे का आंचल था जो तेज़ गर्म हवा के झोकों में फड़फड़ा रहा था।

अब वह कोट गूरां नाम के गांव के पास पहुंच चुके थे। शादी के बाद पहली बार बूटा सिंह पत्नी को उसके मैके से अपने गांव ले जा रहा था। लगभग आधा रास्ता तय हो चुका था क्योंकि कोट गूरां आधे रास्ते पर स्थित था।

दोपहर का समय था। कड़ी धूप और गर्मी थी। कोट गूरां के लोग इस भीषण गर्मी से कुछ राहत पाने के लिए गांव के बाहर शरीहना के ऊंचे और घने पेड़ों के झुंड की छांव में आ बैठते थे। अतएव इस समय भी वे वहां इकट्ठे होकर अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। कोई शतरंज खेल रहा था, कोई चौसर। कोई बातें बना रहा था कोई ऊंघ रहा था। कुछ लोग घरों से हल्की-फुल्की चारपाइयां उठा लाये थे और कुछ ज़मीन पर ही बोरियां बिछाये हुए थे। अलबत्ता जगीर सिंह अपने लफंगे साथियों के साथ अलग महफ़िल जमाये हुए था। वह महज़ दर्शनी जवान ही नहीं था बल्कि सचमुच में दमख़म का मालिक था और अपने चेले-चांटों में सबसे विशिष्ट था। कुछ दिन पहले तेज़ आंधी के तूफ़ान में शरीहना के ऊंचे पेड़ की एक भारी-भरकम डाली चरचरा कर ज़मीन पर आ गिरी थी। जगीर और उसके आठ-दस साथी उससे टेक लगाये खड़े थे। उस समय वे केवल आपस की गपशप में मग्न थे। जगीर अपनी एक फुट की कृपाण से एक छोटी-सी डाली को बांये हाथ में थामे धीरे-धीरे छील रहा था। इस बेकार के काम के दौरान में रह-रह कर उसकी बाछें खिरी जाती थीं। उसके उजड्ड चेहरे से गुस्सा टपक रहा था। उसके साथी अनावश्यक उत्कंठा के साथ या तो उसके हाथों की ओर देख रहे थे या शिकारी जानवर जैसी चौकसी के साथ इधर-उधर ताक रहे थे। अचानक उन्होंने दूर से आती हुई दुल्हन को देखा तो साभिप्राय एक ने थोड़ा-सा खांस कर जगीर के कूल्हे पर कुहनी का टहूका दिया।

पहह यानी वह चौड़ी पगडंडी जिस पर बूटा सिंह अपनी पत्नी के साथ चला आ रहा था, पेड़ों के इस झुंड के पास से ही गुज़रती थी। सामने कुछ दूरी पर गुरुद्वारे की छोटी-सी इमारत दिखाई दे रही थी। उसके गुम्बद पर एक झंडा लहरा रहा था जिसका

रंग कभी गहरा ज़र्द रहा होगा फिर भी उस पर एक चक्र, दो कृपाणों और एक खड़े खंडे का निशान अब तक मिटा नहीं था।

वहां उपस्थित एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिस की नज़र हठात् उस दुल्हन की ओर न उठ गयी हो। जो ऐसी दिखाई देती थी जैसे अभी-अभी किसी हुनरमंद कुम्हार के चाक से उतारी गयी हो। जगीर और उसके साथियों की निगाहें तो मानोकि दुल्हन के चंदन से बदन से लिपट कर रही गयी थीं।

जैसे-जैसे दुल्हन पास आती गयी यह सच्चाई और भी खुलती गयी कि लड़की वाकई नायाब थी। उसके आगे चलते हुए बूटा सिंह की शान भी निराली थी । देखने में वह कोई लहीम-शहीम कड़ियल जवान नहीं था। उसका कद बीच का, जिस्म इकहरा और तेवर मर्दाना थे। चाल में नाग का-सा लहरा था। दोहरे तुर्रे वाली पगड़ी से बांकपन टपकता था। सांवले सलोने चेहरे पर अजब दमक थी। हाथ में हल्की-फुल्की लाठी थी।

जब यह जोड़ा उन सब लोगों के पास से गुज़र रहा था। तो यकायक जगीर सिंह एक ख़ास अंदाज़ से खांस उठा।

बूटा सिंह रुक गया।

उन दोनों की नज़रें एक-दूसरे से उलझ कर रह गईं पल भर के विराम के बाद बूटा सिंह मुस्कुराया तो उसके सामने ऊपर के दोनों दांतों में जड़ी हुई सोने की नन्ही-नन्ही कीलें दमकने लगीं। वह जगीर को आंखों-आंखों में तौलते हुए भारी आवाज़ में बोला, "मालूम होता है कि आपको कुछ तकलीफ़ है।"

'है तो!' जगीर ने रहस्य और अर्थ से भरी दृष्टि दुल्हन पर डाली।,

"ऐसी-वैसी भागी-भगाई लड़की नहीं है। मेरी ब्याहता जोरू है।"

"तो भाई अपना रास्ता नापिये।"

"सो तो नाप ही रहे थे लेकिन आपको कुछ तकलीफ़ में पाकर रुकना पड़ा।"

"तकलीफ़ की बात छोड़ो लेकिन एक प्रश्न जरूर उठता है।"

बूटा सिंह ने खड़े-खड़े पहलू बदला, "प्रश्न?"

जगीर ने ज़ोर से ज़मीन पर थूक कर जवाब दिया, "प्रश्न उठता है कि जो लोग गले में हीरे लटकाये फिरते हैं, उन्हें इस बात का प्रबंध भी रखना चाहिये कि कहीं कोई अजनबी झपट्टा न मार ले जाये।"

गांव के सभी लोग जानते थे कि राहगीरों पर बेजा फब्तियां कसना जगीर और उसकी टोली का धंधा था। मगर आज वे हद तक से कहीं आगे निकल गये थे। यह बात किसी को भी अच्छी नहीं लगती थी।

"समझा!" बूटा सिंह दबे-दबे कहर में डूबी आवाज़ में गुर्राया।

सब लोग ग़ैर मामूली लफड़े के लिए तैयार हो गये।

बूटा सिंह ने अपनी लाठी दुल्हन के हवाले की और फिर उसने आगे से तहबंद को समेटकर पूरे पल्लू को दोनों जांघों में घुमाकर उसे पीछे की तरफ़ से नीचे पहने हुए कच्छे (जांघिए) के नेफ़े तक अच्छी तरह ठूंस लिया। जूते उतार कर एक तरफ़ रख दिये फिर लाठी हाथ में लेकर सीधा खड़ा हो गया।

सब लोग एकटक उसकी हरकत ग़ौर से देख रहे थे।

उसने लाठी को पहले एक उंगली पर टिकाकर हवा में उठाया। क्षण भर रुकने के बाद उसने लाठी को हवा में खूब ऊपर तक उछाला। जब लाठी ऊपर से नीचे की तरफ़ गिरी तो उसने उसे दोनों हाथों में दबोच कर दसों उंगलियों पर नचाना शुरू कर दिया। अजब तमाशा था। ऐसा लगता था जैसे लाठी क़िस्म का साज है, जिसके तारों पर बूटा सिंह की तेज़ी के साथ चलती हुई उंगलियां नाच रही थीं। क्या मजाल जो लाठी उसकी उंगलियों की गिरफ़्त से निकल कर गिर जाये।

लाठी पर अपनी गिरफ़्त के कमाल का प्रदर्शन करने के बाद बूटासिंह ने उसे दोनों हाथों में थाम कर चारों तरफ़ घुमाना शुरू कर दिया—वह पैंतरे पर पैतरे बदलने लगा। सरक लगाता हुआ कभी इधर, कभी उधर निकल जाता। उसकी टांगों में मानो कि बिजली भरी हुई थी। पांवों के नीचे से धूल के हलके-हलके बादल बलबलाकर हवा में उठने लगे। कुछ क्षण तो ऐसे आये जब देखने वालों को लाठी नहीं केवल उसका कौंधता हुआ साया दिखाई दे रहा था। लाठी थी कि बिफरा हुआ नाग। ऐसा लगता था कि न जाने कितने नाग वातावरण में फुंकार रहे हैं। इस बात में तो कोई संदेह न रहा था कि अगर बूटासिंह हमलावरों से घिरा होता तो इस समय तक उसकी लाठी न मालूम कितनों का खून चाट चुकी होती और न जाने कितनी लाशें ज़मीन पर बिछ चुकी होतीं।

आख़िर बूटा सिंह ने लाठी रोक दी और उसकी बोंजी मूठ पर ठोढ़ी टेक कर खड़ा हो गया। उसने धीरे-धीरे आंखों की पुतलियां घुमा-घुमा कर वहां मौजूद लोगों का जायज़ा लेना शुरू किया। हर व्यक्ति दम साधे बैठा या खड़ा था।

अब बूटा सिंह ने जगीर सिंह पर नज़र जमा दी। जो अभी तक उसी टहनी को छीले जा रहा था। कुछ अंतराल के बाद बूटासिंह ने उससे कहा, "जो सवाल आपने उठाया था, उसका जवाव तो मैंने दे दिया अब मेरे मन में एक सवाल उठा है जिसका जवाब मुझे मिलना चाहिये।"

संकेत जगीर की ओर था जो बदस्तूर कृपाण से टहनी छीले जा रहा था।

बूटा कहता गया : यहां से आगे बढ़ने के बाद जो होगा उससे तो मैं निपट लूंगा लेकिन सवाल यह है कि इस गांव में भी तो कोई न कोई अपने बाप के तुख़्म (बीज) से और अपनी मां का लाल होगा जिसके दिल में पराये हीरे उड़ाने का चाव होगा।"

इससे आगे बूटासिंह जो कहना चाहता था वह या तो उसने जान बूझ कर या अनजाने में नहीं कहा—फिर भी उसकी बात अधूरी होने पर भी मुकम्मल थी।

ज़ाहिर था कि यह जगीर के लिए खुला चेलैंज था। धड़कते हुए दिलों के साथ लोग-बाग यह देखने के लिए प्रतीक्षारत थे कि क्या जगीर और उसके साथी बूटासिंह पर टूट पड़ेंगे।......अब जगीर कृपाण हाथ से रखकर एक-एक क़दम बूटासिंह की तरफ़ बढ़ा और पास पहुंचकर मुस्कुराते हुए गहरी आवाज़ में बोला, "सरदार जी इस गांव में न तो कोई अपने बाप के तुख़्म से है और न अपनी मां का लाल है।"

इतना कहकर जगीर उलटे क़दमों लौट गया।

एक बार फिर दोनों राहगीर अपने रास्ते पर हो लिये। पीछे औरत चकौरी की तरह चलती हुई। आगे मर्द जिसकी पगड़ी का तुर्रा असील मुर्ग की कलग़ी की तरह हवा में सिर बुलंद किये हुए था।

तीन बातें

रवेल सिंह गुरुद्वारा डेरा साहब के सेहन में सोया होता तो उसे मुंह अंधेरे ही जागना पड़ता। क्योंकि गुरुद्वारे में सुबह-सुबह ही शब्द-कीर्तन शुरू हो जाता था। और सेहन की सफ़ाई के लिए मुसाफ़िरों को जगाना पड़ता था। इसलिए छत पर देर तक सोया रहा। यहां तक कि सूरज निकल आया और तेज़ धूप में शेरे-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की समाधि का कलश जगमगा उठा।

कीर्तन शुरू हो चुका था और गुरुप्रेम के मतवाले नर और नारी जमा हो रहे थे। रवेल सिंह को अपनी ग़फ़लत पर बड़ी शर्म मेहसूस हुई। जब वह गांव में था तो कभी इतनी देर से नहीं उठा था। लेकिन जब से वह लाहौर में आया था दिन भर आवारागर्दी करने के बाद इस क़दर थक जाता कि सूरज उगने तक ग़ट रहता था।

लेटे-लेटे उसने अपने पैरों पर निगाह डाली, उसके पैर बड़े-बड़े थे और टख़नों की हड्डियां किसी बैल की हड्डियों से कम न थीं। उसकी टांगें बहुत लम्बी थीं और लम्बी दौड़ों में हिस्सा लेने के कारण वे मज़बूत और सुडौल हो गयी थीं।

कुछ देर इसी तरह लेटे रहने के बाद वह अचानक उछल कर उठ बैठा। इधर-उधर नज़र दौड़ाई। जो लोग रात को उसके साथ छत पर सोये थे उनमें से अधिकांश जा चुके थे। उसने सेहन की ओर झांक कर देखा जहां औरतें छोटे-छोटे घूंघट निकाले हाथों में दौने और कटस्यिां थामे इधर-उधर घूम रही थीं।

अपने घर में भी वह इसी तरह उछल कर उठ बैठता था। यहां उसे कोई काम न था। पहाड़-सा दिन काटे नहीं कटता था। चार दिनों से वह गुरुद्वारे के लंगर से रोटी खा रहा था। थोड़ी-सी नक़दी जो उसके पास थी। वह शर्बत और लस्सी पीने के लिए उसके पास सिर्फ़ चंद आने बाकी रह गये थे और वह नहीं जानता था कि इसके बाद उसका गुज़ारा कैसे होगा? वह शराफ़त का ऐसा कुछ कायल भी न था। वह सटे हुए कल्लों वाले बनियों को बड़ी भयानक नज़रों से घूरा करता था, लेकिन यह लाहौर था—एक गहमा गहमी, लगातार आवागमन—कोई इक्का-दुक्का मिल जाये तो वह एक ही धौल जमाकर अपना शिकार हथिया ले। उसे याद आया कि....पांच-छः माह पहले वह, उसके साथी गांव के एक साहूकार के घर में आधी रात के समय जा घुसे। जब

कुछ हाथ न आया तो जल्दी में उन्होंने तेरह बोरियां गेहूं की उड़ा लीं। लेकिन पकड़ लिये गये। तीन साथी तो सज़ा पाकर बड़े घर पहुंच गये। मगर वह और उसके एक साथी का जुर्म साबित नहीं हो सका। आयंदा के लिए उसने सौगंध तो नहीं खाई, अलबत्ता सचेत हो......गया।......सचेत होने के कई और कारण थे......एक तो गिरफ़्तारी की स्थिति में उसे बचाने वाला कोई नहीं था। बाप मर चुका था और मां बेचारी बिना हाथ-पांव की थी। दूसरे, अमर कौर जिससे वह बहुत प्रेम करता था और जो कोमल और धार्मिक स्वभाव की लड़की थी, उससे कहने लगी कि तुम जेल गये तो मैं कुछ खाकर मर जाऊंगी। रवेल सिंह जानता था कि वह ज़िद्दी लड़की जो कुछ कहती है उसे पूरा कर दिखायेगी। अतएव उसकी प्रेमिका और मां ने मिल-जुल कर उसे इस बात पर रज़ामंद कर ही लिया कि वह शहर में जाकर कोई नौकरी तलाश करे। ताकि वे लोग आराम से ज़िदंगी बसर कर सकें।

उसकी प्रेमिका अमर कौर अपनी अवस्था को देखते हुए बहुत स्यानी और दूरदर्शी थी। उसने रवेलसिंह के दिल में बजाय आवारगी के घर का प्यार पैदा करने की कोशिश की । उनका एक घर होगा। वे दोनों खूब मज़े में बड़े प्यार से इकट्ठे रहा करेंगे। उनके यहां नन्हे-मुन्ने पैदा होंगे। फिर उन्हें कितनी खुशी हासिल होगी। रवेल सिंह का कुंद ज़ेहन इन बातों को समझने से लाचार था। उसका अक्खड़ दिल घर की कशिश से दूर ही रहा। लेकिन जब शाम के धुंधलके में अमर कौर कस्सी की पटड़ी पर गीली मिट्टी का तसला सिर पर जमाये हंस-हंस कर इस क़िस्म की बातें करती तो उसकी तेज़ी से घूमने वाली चमकदार आंखें और पतले-पतले होंट उसे बहुत ही भले मालूम होते थे। उसकी ज़बान बांछों पर घुलने लगती थी, जैसे अमर कौर मिठाई का दौना हो। अगर वह अमर कौर का ऐसा ही चहीता था तो घर, घर का प्यार और बच्चे तो मामूली बातें थीं। लेकिन जब अमर कौर देखती कि वह उसकी बातों की ओर ध्यान देने के बजाय, ललचाई नज़रों से उसके गालों और होटों की ओर देख रहा है तो सटपटा कर टूटे हुए स्प्रिंग वाली घड़ी की तरह ख़ामोश हो जाती।
"ओ हो हो हो।" रवेल सिंह उसे दोनों बाजुओं में उचक लेता। उसकी छोटी-छोटी मूछें हिलने लगतीं। "भई अमरो देख मुहं मत फुलाओ। धरम से जो तुम कहोगी, वही करूंगा।"

"तो मैं क्या कह रही थी......तुमसे?"

अमर कौर चमक कर पूछती।

"सुनो अमरो! मेरी मोटी अक्ल इन बातों को नहीं समझ सकती। तुम मुझे समझाने की कोशिश मत करो। बस मुझे इत्ता बता दो कि मैं क्या करूं?"

फिर वह उसके तमतमाते हुए गालों पर होंट रख देता। अमरो उसे प्यार करने की छुट्टी भी दे देती और साथ ही मलामत भी जारी रखती, "देखो, कोई आ रहा है?

कोई देख लेगा? अब मैं यहां कभी नहीं आऊंगी इस जगह......बस देख लेना......हां।''

उनके घर के पास ही अमरो की गाय बंधी रहती थी। शाम के समय अमरो यहां दूध दुहने को आती थी। जब वह इधर से गुज़रता तो उचक कर एक नज़र इधर जरूर डालता। अगर अमरो दिखाई देती तो पहले इधर-उधर देखकर आश्वस्त हो जाता और फिर उसे संबोधित करके गुनगुनाने लगता–

"नीं......लछिए बादाम रंगिए
तैनू लैन कबूतर आया......।

'जो बोले सो निहाल'......गुरु के मतवालों ने नारा किया तो रवेल सिंह चौंक उठा। अब प्रसाद बांटा ही जाने वाला था। उसने इधर-उधर देखकर अपना कंधा सम्हाला बिखरे हुए बालों को समेटने के बाद जल्दी से पगड़ी बांधी और चादर कंधे पर डालकर तहमद की सलवटें ठीक करता हुआ सीढ़ियों से नीचे उतरा। मुंह पर पानी की छींटे दिये और पगड़ी के तुर्रे से चेहरा पौंछा। गुरुद्वारे के दरवाज़े पर निहंग सिखों को खड़े देखकर बड़े श्रद्धा भाव से पांव भी धो डाले और दरवाज़े की चौखट फलांग कर भीतर प्रवेश किया। पहले एक बार उसने गलती से चौखट पर पांव रख दिया था तो सेवादार ने उसे आंखें दिखा कर टोक दिया था।

प्रसाद बांटा जा रहा था। उसने पहले तो सामने से हाथ बढ़ाकर प्रसाद लिया। फिर पैंतरा बदल कर दूसरी ओर हाथ बढ़ाकर प्रसाद ले लिया। प्रसाद बांटने वाले को थोड़ा संदेह हुआ। जब ज़रा चक्कर काटकर उसने तीसरी बार हाथ बढ़ाये तो प्रसाद बांटने वाले को गुस्सा आ गया, ''सरदार जी बड़े अफ़सोस की बात है।'' वाक़ई बात अफ़सोस की थी। लेकिन वह सुबह को इसी हलवे से नाश्ता कर लेता था। वह ऊपर से पाव भर दही की लस्सी पी लेता था। गांव में तो हर आदमी को पाव भर हलवा दिया जाता था लेकिन यहां......? ये शहरी लोग छः माशा हलवा देकर रह जाते थे। अतएव रवेलसिंह ने कहा ''ज्ञानी जी ! इतना-सा हलवा तो हमने ज़िदंगी में पहली बार देखा है......यह तो बस हथेलियों से चिपक कर रह जाता है।''

प्रसाद बांटने वाले के तेवर बिगड़ गये। ''सरदार साहब, प्रसाद आख़िर प्रसाद है......इसका यह मतलब नहीं कि प्रसाद ही से पेट भर लिया जाये।''

रवेल सिंह इस प्रकार के व्यवहार से परिचित नहीं था। चुपचाप एक ओर सरक कर खड़ा हो गया। जब सभी मतवाले चले गये तो वह एक में कोने में सीमेंट के ठंडे फ़र्श पर आलती-पालती मार कर बैठ गया। इतने में ज्ञानी जी सामने से आये और एक दोने में पाव डेढ़ पाव हलवा डालकर उसे दे गये। रवेल सिंह हैरान रह गया। जब हलवा खाकर वह बाहर निकला तो पाव भर दही में सेर भर पानी डालकर लस्सी पीने लगा।

लस्सी पीने के बाद वह बुड्ढे दरिया की ओर चल दिया। दो दिन पहले वह सरदार बुध सिंह चोवफ़रोश के यहां गया था। वे उनके गांव ही के रहने वाले थे। उन्हें एक मुलाज़िम की ज़रूरत थी और वे रवेल सिंह को नौकरी देने के लिए रजामंद हो गये थे। लेकिन ये शब्द बुध सिंह के बेटे हरनाम सिंह ने कहे थे। इसीलिए वह बुध सिंह से मिलने के लिए वहां आया था। बुध सिंह को व्यस्त रवेल सिंह कोने में पड़ी हुई चारपाई पर बैठकर ऊंघने लगा।

रवेल सिंह कुछ पढ़ा-लिखा भी था। दो जमातें पास कर चुका था। तीसरी जमात में एक बार मास्टर ने उसे ज़्यादा देर तक मुर्ग़ा बनाये रखा तो उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया था। इसके अलावा उसने अंग्रेज़ी पढ़ने की कोशिश भी की थी। अतएव वह 'ए' से 'ज़ेड' तक सारे अक्षर पढ़ लेता था और उनमें से कुछ लिख भी लेता था।

निवृत्त होकर बुधसिंह ने उसकी ओर ध्यान दिया। उसकी नज़र कमज़ोर थी और कान भी कुछ बहरे थे। अतएव रवेल सिंह को उसके पास पहुंच कर और चिल्ला-चिल्ला कर अपनी बात बतानी पड़ी। बमुश्किल बुड्ढे ने बताया कि उनके पहले मुलाज़िम का पत्र कल ही आया है और वह दो-चार दिन में वापस आने वाला है। इसलिए वे उसे नहीं रख सकते।

उधर से जवाब पाकर रवेल सिंह ने प्याऊ से पानी पिया और शहर की तरफ़ चल दिया। अब वह बिल्कुल निराश हो चुका था। उसने सोचा आज सैर करके कल वापस गांव चला जाया। वह बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर शहर आया था लेकिन अब क्या मुंह लेकर वापस जायेगा। वह एक बेफिक्र और आवारा मिज़ाज नौजवान था। इस प्रकार की नियमितताओं और विवशताओं से उसका परिचय नहीं हुआ था। घूमते-घामते वह शाही महल्ले के पास एक धर्मशाला में पहुंच गया। वह दिन में एकाध बार इस धर्मशाला में चला आया करता था। यहां का ग्रंथी अलबेली तबीयत का नौज़वान आदमी था। वे दोनों व्यवहार में अनौपचारिक हो गये थे। किंतु रवेलसिंह ने उसे कभी अपने मन का भेद नहीं बताया था । ग्रंथी उसे अभी तक एक खाता-पीता ज़मीदार समझता था।

समय बिताने के लिए रवेल सिंह दोपहर को वहां पहुंच जाता था। वे दोनों फ़र्श पर ठंडे पानी का छिडकाव करते......और बर्क़ी पंखे तले ईंटों के बने हुए ठंडे फ़र्श पर लेट जाते, इधर-उधर की गप्पें हांकते रहते। नींद आती तो सो भी जाते।

आज वह समय से कुछ पहले ही पहुंच गया था। जब सीढ़ियां चढ़कर हाल में प्रवेश करने लगा तो देखा कि बग़ल वाले कमरे में ग्रंथी रीठों के पानी से सिर धो रहा है। उसे देखकर ग्रंथी ने कहकहा लगाया। दो-चार बातों के बाद रवेल सिंह अंदर चला गया। उसने सुराही से गिलास में पानी उंडेला और धीरे-धीरे पीने लगा। दर असल उसे कस कर भूख लग रही थी। कई दिनों से वह लंगर की रोटियां खा रहा था। अब

उसे शर्म मेहसूस हो रही थी। उसने सोचा कि अब वह कम से कम एक समय का खाना वहां से नहीं खायेगा।

पंखा छोड़कर उसने पगड़ी उतारी और फर्श पर लेट गया। ग्रंथी नहाने के साथ-साथ बातें भी करता जाता था। उसकी बेतुकी बातों से खेल सिंह अपनी भूख को बहलाने लगा। थोड़ी देर बाद ग्रंथी अपने लम्बे-लम्बे बाल निचोड़ता हुआ भीतर आया और एक बड़े मज़े की बात शुरू कर दी।

. इतने में एक आदमी उन्हें खाने पर बुलाने के लिए आया। श्राद्धों के दिन थे। रवेल सिंह दिल ही दिल में खुश हुआ कि आज पेट भर खाना मिलेगा। थोड़ी-सी औपचारिकता के बाद भोजन में शामिल हो गया। भोजन के बाद उसे ऐसी नींद आयी कि शाम तक आंख न खुली।

उटते ही उसने नल के ठंडे पानी से स्नान किया तो मन प्रसन्न हो गया। ग्रंथी ने शक्कर के ठंडे शर्बत में सत्तू घोलकर रखे थे। उसने आंखें बंद कर दो लोटे पिये। वह सत्तुओं का बड़ा शौक़ीन था।

दोबारा पगड़ी बांधकर उसने ग्रंथी से हाथ मिलाया और उसने बताया कि उसका काम ख़त्म हुआ। और वह कल अपने गांव लौट रहा है। इस पर ग्रंथी ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और ताकीद की, "कि वह जब कभी लाहौर आये तो उसे ज़रूर मिले।"

यहां से वह बाज़ार की सैर करने के लिए चल खड़ा हुआ। अनार कली में घूमता हुआ वह नीला गुम्बद जा निकला। वहां से उसने लकड़ी के बड़े-बड़े तख़्तों पर कई तरह की तस्वीरें देखीं। एक तस्वीर में पहाड़ का दृश्य दिखाया गया था। पहाड़ में जगह-जगह बिल बने हुए थे। इधर-उधर पत्थरों पर बड़े-बड़े चूहे दौड़ते हुए दिखाये गये थे। नीचे लिखा था "जापानी चूहे हैं इन्हें मार भगाओ।" यह तस्वीर देखकर रवेल सिंह बहुत खुश हुआ। विशेष रूप से चूहों की सूरतें बड़ी हास्यास्पद थीं। यानी शरीर तो चूहे की भांति और सिर आदमियों के कुछ चूहों ने ऐनकें भी लगा रखी थीं। वह सोचने लगा कि वह जब गांव में जाकर अमर कौर से इन चूहों का ज़िक्र करेगा तो वह कितनी खुश होगी! कितनी हैरान होगी! फिर उसने दिमाग़ पर ज़ोर दिया कि आख़िर ये जापानी कौन हैं? ये किस भांति के चूहे होते हैं उसने आज तक ऐसे चूहे नहीं देखे थे। उसने पगड़ी सरकाई, सिर खुजाया, गौर किया लेकिन कुछ न समझ सका।

इतने में किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिये। उसने घूम कर देखा । यह उसका पुराना दोस्त हरसा सिंह था। धूप में उसका चेहरा काले बूटों की तरह चमक रहा था। आधी पगड़ी सिर पर बंधी हुई थी और आधी इधर-उधर झूल रही थी। रवेल सिंह उछल कर उससे गले मिलने लगा।

हरसा सिंह भाड़ों के ख़ानदान से था। रवेल सिंह से उसे विशेष लगाव था। हरसा सिंह मज़बूत जिस्म का शेर दिल आदमी था। उसे ऐसे-ऐसे हथकंडे याद थे कि बड़े-बड़े उस्ताद उसके सामने कान पकड़ते थे। दोनों बचपन से ही बहुत गहरे दोस्त थे। हरसा सिंह कबड्डी खेलने में दक्ष था। उसका शरीर मछली की तरह चिकना और खरगोश की मानिंद फुर्तीला था और वह भेड़िये की तरह खूंखार और मक्कार था। जवान होते ही उसने बड़े-बड़े पैमाने पर डाके डालने शुरू कर दिये थे। उसने इलाके के एक नामी डाकू सुंदर सिंह से भी साठ-गांठ की थी और इन दोनों ने मिलकर बडे-बड़े मैदान मारे थे। बाद में सुंदर सिंह को फांसी हो गई और हरसा सिंह छुप गया। आज उसे अपने सामने देखकर रवेलसिंह को बड़ी खुशी हुई। दोनों एक हलवाई की दुकान में गये । हरसा सिंह ने दो सेर मिठाई ख़रीदी और मिठाई खाने के बाद दोनों ने पेट भर लस्सी पी।

हरसा सिंह ने उसे बताया कि उसने ज़िला अमृतसर में दो ऐसे घर ताड़ रखे हैं जहां से माल उड़ाना कोई मुश्किल नहीं है। यह सुनकर रवेल सिंह बहुत खुश हुआ। इस प्रकार की बातें उसे बड़ी रुचिकर लगती थीं। उसने भविष्य के सुंदर सपने देखे और उन दोनों ने तय कर लिया कि कल उसी जगह मिलेंगे। यह तय कर के वे एक दूसरे से विदा हो गये।

हरसा सिंह के चले जाने के बाद थोड़ी देर तक रवेल सिंह को ऐसा लगा जैसे उसके दिल पर से भारी पत्थर हट गया हो। लेकिन जब उसे अमरो का ध्यान आया तो वह कुछ उदास-सा हो गया। अगर उसे मालूम हो गया कि उसने फिर डाके डालना शुरू कर दिये हैं तो निश्चय ही बिगड़ जायेगी। उसे चोर की बीवी बनना बिल्कुल पसंद नहीं था। इस पर उसने अमरो को मन ही मन दो-तीन गालियां दीं। लेकिन वह उससे प्रेम करता था। इसलिए उसे नज़र अंदाज़ नहीं कर सकता था। उसने फिर गंभीरता से सोचना शुरू किया। अगर यह संभव हो सके कि वह सिर्फ़ एक बार डाका डाल ले फिर चाहे ज़िंदगी भर के लिए इस धंधे को छोड़ दे। अगर वह गिरफ़्तार हो गया तो उसकी ज़िंदगी बर्बाद हो जायेगी। अमरो से हाथ धोने पड़ेंगे। मां को अलग दुःख होगा और वह खुद जेल में पड़ा सड़ेगा।

इस उधेड़बुन में वह चला जा रहा था। हालांकि काम बहुत मुश्किल था लेकिन वह हृष्ट-पुष्ट होने थे बावजूद मक्कार था और वह नहीं जानता था कि आख़िर वह क्या कहे? सड़कों पर बेशुमार मोटरें, बेशकीमती कपड़े पहने हुए अमीर लोग, बड़ी से बड़ी दुकानें और ऊंचे-ऊंचे मकानात देख कर वह हैरान हो रहा था। आख़िर इन सबके लिए इतना रुपया कहां से आता है? वह अपनी प्रेमिका के साथ सुखमय जीवन बिताने से वंचित क्यों है? इस प्रकार के विचारों में डूबा हुआ वह एक बाग़ में जा निकला। एक पगडंडी के किनारे बड़े-बड़े से बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—

"बहादुरी के प्रतिदान में "

वह सोचने लगा 'प्रतिदान' क्या होता है? फिर वह ध्यान से तमगे की ओर देखने लगा जिसके नीचे लिखा हुआ था—"विक्टोरिया क्रास......मंगल सिंह आठवीं राजपूताना रायफ़ल्स को बहादुरी के प्रतिदान में विक्टोरिया क्रास दिया गया।"

वह नहीं जानता था कि विक्टोरिया क्रास होता क्या है और कैसी बहादुरी पर दिया जाता है और फिर विक्टोरिया क्रास मिलने के बाद क्या होता है......उकता कर वह परे एक बैंच पर जाकर बैठ गया। उसे अपनी मूर्खता पर बहुत ही अफ़सोस हुआ। वह फिर अपने विचारों में खो गया और अपने माथे को उंगलियों से बजा-बजा कर सोचने लगा कि वह क्या करे और क्या न करे! वह हरसा सिंह से मिले या न मिले।

वह घास पर लेट गया। एक हाथ सिर के नीचे रख लिया, दूसरा माथे पर और अधखुली आंखों से दूर-दूर तक नज़र दौड़ाने लगा। सामने ठंडी सड़क के परले सिरे पर बहुत लम्बा-चौड़ा तख्ता लगा हुआ था। उस पर एक सुंदर औरत की तस्वीर बनी हुई थी। उस औरत का चेहरा उसके पूरे कद के बराबर था। बड़ी-बड़ी आंखों और सुर्ख़-सुर्ख़ गालों वाली बहुत सुंदर औरत थी। वह हैरान हुआ कि आख़िर यह किस औरत का फोटो है? नीचे अंग्रेज़ी के मोटे-मोटे अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। उसने सोचा शायद किसी मेम की तस्वीर होगी। हालांकि उसने देसी कपड़े पहन रखे थे मगर उसने सुना था कि अब मेंमें भी देसी कपड़े पहनने लगी हैं। मगर इस तस्वीर को सरे बाज़ार दिखाने की क्या ज़रूरत थी? ग़ैर मर्दों के सामने अपनी सुंदरता का प्रदर्शन क्यों किया गया था? फिर वह तस्वीर की लम्बाई-चौड़ाई को देखकर अचंभित होने लगा, 'बल्ले,बल्ले ! इस बोर्ड के साथ एक और छोटा सा तख्ता था। उस पर मोटे-मोटे अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। उसने माथे से हाथ हटाकर आंखें और भी ज़्यादा खोलीं। देर तक ग़ौर करने के बाद कुछ पढ़ सका—

"इण्डियन आर्म्ड कोर
को आप जैसे नौजवानों की ज़रूरत है।"

वह उछल पड़ा। यह इण्डियन आर्म्ड कोर नया ही नाम है। हरबंस कौर, प्रेम कौर, जीत कौर तो उसने सुन रखे हैं लेकिन इण्डियन आर्म्ड कोर बिल्कुल नया नाम है। शायद किसी अंग्रेज औरत का नाम हैं इधर-उधर कुछ लोग घूम रहे थे। उसके मन में आयी किसी से उस औरत के बारे में पूछताछ करे। लेकिन किसी औरत का मामला था। इस प्रकार की बात बेबाकी से पूछते हुए उसे शर्म मेहसूस हुई। अतः उसकी बात मन की मन में रह गयी। आख़िर उसने अपनी चादर को तह कर के उसे सिर के नीचे रखा और लेट गया। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। हवा में मोहक-सी नमी थी। उसे ख़ुमार-सा आने लगा। लेटे-लेटे वह फिर इण्डियन आर्म्ड कोर के बारे में सोचने लगा। धीरे-धीरे उसे कुछ समझ आने लगी कि इस औरत की तस्वीर लगाने का क्या उद्देश्य

है। उसने सुना था कि लाहौर में बड़ी-बड़ी बदमाशियां होती हैं। लेकिन क्या औरत इतनी जुरअत कर सकती है कि अपनी तस्वीर इस तरह सरे बाज़ार खड़ी करके दूसरे तख़्ते पर लिखवा दे कि "इण्डियन आर्म्ड कोर को आप जैसे नौजवानों की ज़रूरत है।" उसने परियों की कहानियों में एक सुंदर मलिका का क़िस्सा सुना था। उसकी जवानी बस एक क़यामत थी। जो भी उसकी तरफ़ नज़र उठाकर देख लेता, सुध-बुध खो बैठता था। वह नित नये नौजवानों से गठजोड़ करती और जब वे बेकार हो जाते तो उन्हें मगरमच्छों के तालाब में फिंकवा देती......मगर वह तो कहानी थी, लेकिन यह औरत? आखिर इसे नौजवानों की क्या ज़रूरत है? क्या इसका चाल-चलन भी ख़राब है? क्या यह भी नौजवानों को बेकार करके परे फैंक देती होगी? क्या गवर्नमेंट ने ऐसा कोई क़ानून नहीं बनाया कि जो ऐसी बदकार और नौजवानों को बर्बाद कर देने वाली औरत पर लागू हो सके।

धीरे-धीरे बाग़ में आवा-जाही बढ़ने लगी। काली-काली माएं बच्चों की गाड़ियां धकेलती हुई आयीं। कुछ शौकीन मिज़ाज कॉलिजिएट छोकरे अंग्रेजी में गिट-पिट करते हुए इधर-उधर मटरगश्त करने लगे। कई बूढ़े खूसंट अपनी चिकनी खोपड़ियों पर हाथ फेरते हुए बैंचों पर आ बैठे। पास के पेड़ से रेडियों की आवाज़ आने लगी। उसने पहले भी रेडियो सुना था। लेकिन बाग़ में अचानक रेडियो की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा। इधर-उधर के लोग भी रेडियो वाले पेड़ के पास ज़मीन पर बैठ गये। उसने अपनी ढीली-ढाली पगड़ी को ठीक किया और सम्हल बैठा। इतने में रेडियो से मिर्ज़ा साहबान के बोल सुनाई दिये। उसके मन में उन्माद-सा छा गया.....एक छाबड़ी वाला इधर आ निकला उसने जेब टटोल कर देखी। एक टका बच गया था। अब यही उसकी कायनात थी। उसने छाबड़ी वाले को आवाज़ देकर दो पैसे के कचालू लिये और उन्हें तिनके से अड़स-अड़स खाने लगा।

कचालू खाने के बाद वह उठा, नल से पानी पिया और मूंछें पौंछता हुआ रेडियो वाले पेड़ की तरफ़ बढ़ा। वहां एक ओर बड़ा तख़्ता लगा हुआ था। जिस पर नीचे-ऊपर तीन आदमी भागे चले जा रहे थे। उनके पीछे तीन आदमी बंदूकें थामे उनका पीछा कर रहे थे। हर जोड़े के साथ हाशिए में लिखा था—

इटली में दुश्मन को भगाने वाला कौन? पंजाबी नौजवान!

जर्मनों को कौन भगा रहा है? पंजाबी नौजवान!

जापानियों को कौन भगायेगा? पंजाबी नौजवान!

वह ध्यान से उन तस्वीरों को देखने लगा। कैसी हास्यास्पद सूरतें बनाकर रखी हैं, यों मालूम होता है जैसे भागने और भगाने वाले लकड़ी के बने हुए हों। वह देर तक आंखें फाड़-फाड़ कर बोर्ड की ओर देखता रहा। फिर उसने एक लम्बी जम्हाई ली और जोर से खांस कर बलगम उगला और आंखें झपकता हुआ रेडियो की ओर बढ़ा।

आवाज़ पेड़ की टहनियों में से आ रही थी। उसने सोचा कि अगर रात को पेड़ पर चढ़कर रेडियो उतार लिया जाये तो कैसी रहे? वह पेड़ के तने और टहनियों पर नज़र दौड़ा-दौड़ा कर ऊपर चढ़ने की संभावनाओं पर विचार करने लगा। उसने इधर-उधर घूम कर देखा तो उसे मालूम हुआ कि पेड़ पर सिवाय भौंपू के और कुछ भी नहीं। एक बाबू ने उसे बताया कि रेडियो परे सरकारी कमरे में बंद है। वहां से बिजली का एक तार पेड़ से बांध दिया गया है और तार के आगे भोंपू लगाया गया है।

रवेल सिंह निराश होकर एक ओर बैठ गया। यहां भी छोटे-छोटे बोर्ड लगे हुए थे। एक पर लिखा था—"हिंदुस्तान को बचाओ!" उसने अपने कसे हुए जूड़े को ढीला किया और सोचने लगा कि हिंदुस्तान कहां है? वह यू.पी. के लोगों को हिंदुस्तानी समझता था और बस इतना जानता था कि पूरब की ओर कोई देश है जिसे लोग हिंदुस्तान कहते हैं। वहां के लोग दुबले-पतले से होते हैं। उनकी भाषा भी खूब 'चड़-पड़'-सी होती है। फिर वह मन ही मन में कहने लगा 'न मालूम बिचारे हिंदुस्तान पर क्या आफ़त आन पड़ी है?' धीरे-धीरे फिर वह अपनी उलझनों में गुम हो गया। इतने में किसी औरत ने रेडियो पर पंजाबी गीत गाना शुरू किया—

दे पंजाबी जवानां !.....दे वीरा ते थों
जर्मन जापानी थर-थर कंबदे!

वह तिनके से दांत कुरेदने लगा। अब उसे कस कर भूख लग रही थी। उसने सोचा कि आज वह ज़रा जल्द ही गुरुद्वारे पहुंच जायेगा। वरना अगर खाने का समय निकल गया तो उसे फिर भूखा रहना पड़ेगा। लाहौर में उसका जी नहीं लगा। उसे इस बात का दिली रंज था कि उसे कोई नौकरी नहीं मिली। उसके पास बैठा हुआ लड़का एक दूसरा बोर्ड पढ़ने लगा।

"इण्डिया की जय!"

"आ जाओ नौजवान दुश्मन भाग रहा है, यही मौक़ा है, उसका पीछा करने का।"

एक सिपाही लोहे की टोपी पहने और दोनों हाथ उठाये ललकार रहा था। उसके एक हाथ में बंदूक़ थी। दूसरा ख़ाली था। उसके पीछे-पीछे और सिपाही भी चले आ रहे थे।

रवेल सिंह ने फिर हाथ फैलाये और मुंह खोलकर एक लम्बी सी जम्हाई ली।

उसके मुंह के चौड़े दहाने में बड़े से बड़े दुश्मन की खोपड़ी आ सकती है और उसकी फ़ौलादी उंगलियां तगड़े-तगड़े दुश्मन का टेंटुआ दबा सकती हैं। लेकिन दुश्मन था किधर?

उसकी भूख तेज़ होती जा रही थी। मस्तिष्क में विचारों की उधेड़-बुन बढ़ती जा रही थी। लोग शोर मचा रहे थे। रेडियो गीत सुना रहा था। कुत्ते भौंक रहे थे......वह

चादर झाड़कर उठ खड़ा हुआ । अब वह और अधिक सहन नहीं कर सकता था। वह गुरु के लंगर में समय से पहले पहुंच जाना चाहता था।

जब वह बाग़ के फाटक से गुज़रने लगा तो उसने एक और बड़ा-सा तख़्ता देखा। उस पर एक फ़ौजी सिख की तस्वीर बनी हुई थी। जिसके गालों पर ख़ूब चर्बी चढ़ी हुई थी। खुशनुमा दाढ़ी ख़ूब कस कर बंधी हुई थी और सिर पर गोल सी दोहरी पगड़ी बंधी हुई थी। उसके एक हाथ की तीन उंगलियां उठी हुई थीं। दूसरे हाथ की एक उंगली से वह उन उंगलियों की तरफ़ इशारा कर रहा था।

तीन बातें–

"अच्छी ख़ुराक!"

"अच्छी तनख़्वाह!"

"जल्दी तरक़्क़ी!"

और नीचे लिखा हुआ था :

"खाना मुफ़्त मिलता है। वर्दी, बूट और तनख़्वाह सब कुछ मुफ़्त ही मुफ़्त । घर जाने के लिए छुट्टियां भी पूरी तनख़्वाह पर।"

रवेल सिंह कुछ देर तक उस तख़्ते की तरफ घूमता रहा। फिर अपनी लम्बी ज़बान होटों और बांछों पर फेरी......और फिर पता पूछता हुआ भर्ती के दफ़्तर की तरफ़ रवाना हो गया।

काले कोस

छोटा-सा क़ाफ़िला जिसमें तीन औरतें और एक आदमी शामिल थे, दम लेने के लिए कुएं के पास डेरा डाले था।

वे लोग मुसलमान थे और वे दिन उस धरती को आज़ादी मिलने के दिन थे जिसे आजकल पाकिस्तान और हिंदुस्तान कहते हैं।

आदमी 32 या 33 वर्ष का एक ग्रांडील व्यक्ति था। सिर पर छोटी-सी पगड़ी के दो-चार बल।.....गले में कुर्ता उसके नीचे चौड़ी नीली धारी का तहबंद......नाक-नक़्शे में कोई ऐब नहीं था। दाढ़ी को कई दिनों से उस्तरे की धार ने छुआ नहीं था। मूंछें खूब बड़ी-बड़ी, कबूतरों के परों की भांति, नीचे को गिरी हुई । तीखी और कुछ खोजती हुई आंखें जिनमें अब थकान उतर आयी थी। शरीर के फैले हुए ढांचे, लम्बी-लम्बी बाहों और लम्बी टांगों के बावजूद वह मोटा नहीं था। उसके शरीर की बनक में डंड, बैठकों और बादामों का हाथ नहीं बल्कि उसके शरीर के पोर-पोर को गेहूं या मक्की के आटे और साग-भात ने बनाया था। उसका नाम ग़ुलाम मुहम्मद उर्फ़ गामा था......वह अच्छा आदमी नहीं था......उसमें एक ही अच्छी बात थी वह यह कि उसे नेक होने का दावा नहीं था। यह चीज़ उसके चेहरे ही से ज़ाहिर थी।

तीन औरतें—एक बूढ़ी, एक जवान और एक नौजवान। क्रमशः ये उसकी मां, पत्नी और बहन थीं।

बूढ़ी पांचों नमाज़ें पढ़-पढ़ कर सारे हिंदुओं विशेष रूप से सिखों के नेस्त नाबूद होने की दुआएं मांगा करती थी, सिवाय फलोर सिंह के......फलोर सिंह उर्फ़ फलोरा, उसके बेटे का दोस्त था।

पत्नी की आयु पच्चीस वर्ष के आसपास थी। सीधे-सादे नाक-नक़्श, शादी को आठ वर्ष बीत चुके थे लेकिन एक बलूंगा तक पैदा नहीं हुआ था। गामे के दोस्त चुटकी लेने के अंदाज़ में कुहनियों से उसे टहूके देके पूछते थे, "कहो उस्ताद! आख़िर माजरा क्या है?" इस पर गामां अच्छा इनसान न होने के बावजूद पल भर के लिए आकाश की ओर देखता और कहता "जो अल्लाह की मर्ज़ी!"

"हां भई, आड़े वक्त में अल्लाह के सिवा और कौन काम आता है।"

बहन अतीव सुंदर और कोमलांगी थी। इस दृष्टि से वह गामे से बहुत अलग थी उसके बारे में गामे ने उड़ती हुई ख़बर सुनी थी कि वह गांव के एक छोकरे अल्लाह दते को मीठी नज़रों से देखती है और अल्लाह दता भी उसके विछोह में ठंडी आहें भरता है।......गामा ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब कभी वह उन्हें इकट्ठा देख पायेगा तो गंडासे से उनका सिर उड़ा देगा। लेकिन कोशिश करने के बावजूद गामां को इस अफ़वाह की सच्चाई का सुबूत नहीं मिल सका।

चार दुःखी प्राणियों का यह लुटा-पिटा क़ाफ़िला पांव-पैदल पाकिस्तान को जा रहा था।

उनकी कहानी दूसरे लाखों मुसलमानों की कहानी थी जो पूर्वी पंजाब से पश्चिमी पंजाब को जाने के लिए मजबूर किये गये थे।

गामां लुटेरा भी था और हत्यारा भी। बदमाश भी था और डाकू भी लेकिन इन सब बुराइयों के बावजूद वह किसान था......हल चलाना और बीज बोना उसका पैतृक व्यवसाय था।

देश के विभाजन के बाद अचानक सारी ख़ुदाई उनकी दुश्मन हो गयी थी। घर की चार दीवारी तक उन्हें भींचकर मार डालने की धमकियां दी जाने लगीं। वह धरती जो पहले मां की जगह थी, अब गर्म होकर इस क़दर तप गयी थी कि उस पर उसके बच्चों का चलना-फिरना असंभव हो गया था। वह ज़मीन जो पहले उसका खून-पसीना सोख कर सोना उगलती थी अब उनका खून पीकर भी तृप्त नहीं होती थी। अतएव एक दिन गामे ने घर आकर कहा, "अब हमें जाना ही पड़ेगा।"

सामान?

इस पर वह तीखी हंसी हंसा और उसने तीनों औरतों को बकरियों की भांति घर से हांक दिया।

इसके बाद रक्तपात के दृश्य, आग, आतंक, भूख......और प्यास......निरतंर! फलोर सिंह गामे का दोस्त था। बुरे कामों में दोनों साथी रहे थे। मिलकर उन्होंने अच्छा काम कभी नहीं किया था। फलोर सिंह ने परामर्श दिया क़िसी बड़े क़ाफ़िले के साथ जाना ख़तरे से खाली नहीं। अतएव गामे ने सब कुछ फलोरे पर छोड़ दिया और वह रातों रात चोरी छिपे एक गांव से दूसरे गांव तक पहुंचा देता। दिन के समय वे लोग आराम करते और रात होते ही फिर सफ़र शुरू कर देते।

एक रात फलोरे के आने में कुछ देर हो गयी तो मालिक मकान जो डरपोक था, उनसे कहने लगा, "भई आज रात हमले का सख़्त खतरा है। उनका वहां से चले जाना ही बेहतर है। वरना वे खुद भी जान से हाथ धोयेंगें और उसे भी फंसा देंगे।"

गांव से बाहर भी जान का खतरा कम नहीं था। उसे अपने भुजबल पर भी भरोसा था लेकिन हथियार बंद भीड़ का मुक़ाबला करना उसकी शक्ति से बाहर था......और फिर औरतों का साथ!

उन्होंने अपना सफ़र जारी रखा। दिन के समय खेतों, झाड़ियों या किसी अंधे कुएं में छुप जाते और रात भीग जाने पर चल खड़े होते।

उन्हें फलोर सिंह से बिछुड़े हुए दो रातें बीत चुकी थीं और तीसरी बीत रही थी।

रात भीग चुकी थी। लेकिन अभी उन्होंने सफ़र जारी नहीं किया था।

चांदनी रात थी लेकिन आकाश पर हल्का-सा धुंधलका छाया हुआ था। इसलिए चांदनी बहुत उदास दिखाई दे रही थी।

इस समय वे एक ऐसे कुंए के पास बैठे थे जो एक मुद्दत से वीरान पड़ा हुआ था। कुंए की मेंढ़ गिर चुकी थी। दो कच्ची दीवारें इस बात की गवाह थीं कि कभी यहां भी रहट की रूं-रूं सुनायी देती होगी। शायद अलगोज़ों की तानें भी उड़ती होंगी और चंचल कुंवारियों के मीठे-मीठे क़हक़हे भी वातावरण में गूंजते हों......

यह मुक़ाम ज़मीन की सतह से कुछ ऊंचा था। गामां सिर उठाकर दूर-दूर तक निगाहें दौड़ा रहा था। वे अनुमानतः पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे लेकिन उन्हें इसका कोई ज्ञान नहीं था कि इस समय वे कहां हैं और पाकिस्तान की सीमा से कितनी दूर है?

वे लगभग निढाल हो चुके थे। काश, फलोरे का साथ न छूटता तो शायद अब तक वे अपने गंतव्य तक पहुंच चुके होते।

बूढ़ी मां के ढीले-ढाले चेहरे में झांकती हुई दीप्ति-हीन आंखों से आश्चर्य और विवशता टपक रही थी। अपने लम्बे जीवन में उसने ऐसी घटनाएं देखी थीं, न सुनी थीं। पत्नी......भूख, निरंतर व्यथा और मान-प्रतिष्ठा के भय से बिल्कुल निढाल हो चुकी थी। उसका सिर ढुलक कर दीवार से टिक गया था......आशाँ अपेक्षाकृत ताज़ादम थी। एक तो ख़ैर उम्र का तक़ाज़ा था और फिर शायद उसे ख़तरे की गंभीरता का पूरा-पूरा अहसास नहीं था। उसके बोझल बालों ने झुक कर उसके चेहरे के बहुत बड़े हिस्से को ढांप रखा था। अलबत्ता उसके कोमल होंट, खिंची हुई सुंदर नाक और घनी भौहें साफ़ दिखाई दे रही थीं। फीकी चांदनी ने उसके मुख की आभा को और अधिक बढ़ा दिया था।

बैठे-बैठे गामां सोचने लगा। संभव है, आशां और अल्लाह दते वाली बात सच हो......अब इस प्रकार के विचार से वह दुःखी नहीं हुआ।......नन्हीं-नन्हीं भोली-भाली फ़ाख़्ता-सी एक चिड़िया। बहन कभी-कभी उचटती हुई नज़रों से भाई की ओर देख लेती और फिर आंखें झपका लेती......वह बचपन ही से भाई से बहुत डरती थी फिर भी वह अक्खड़ भाई की सलामती के प्यारे-प्यारे दर्द भरे गीत गाया करती।

अचानक हवा चलने लगी। पीपल की पत्तियों ने तालियां बजा-बजाकर गामे का चौंका दिया।

वह उठकर खड़ा हो गया और बोझल आवाज़ में बोला, "अब हमें चलना चाहिये।"

औरतें कुछ सोच-विचार के बाद घुटनों पर हाथ रखकर उठ खड़ी हुईं। उनमें से किसी को भी पता नहीं था कि उन्हें किधर जाना है। सब लोग बोझल कदमों से एक दिशा में चल दिये।

धीरे-धीरे चलते हुए वे कुएं से कुछ दूर ही गये होंगे कि गामे के क़दम रुक गये। औरतें भी रुक गयीं।

ज़मीन ऊबड़-खाबड़ थी । दूर-दूर तक आबादी का कोई निशान नहीं मिलता था और फिर आबादी से उन्हें क्या सरोकार? उनकी देह थकान से चूर-चूर हो गयी थी। शरीर का जोड़-जोड़ दुख रहा था। मारे भूख के उन्हें ऐसा लगता था जैसे कलेजा किसी भारी पत्थर के नीचे दब गया हो।

गामां खोयी-खोयी नज़रों से चारों ओर देखने लगा। पास ही ईंटों का भट्टा था। वह भी सुनसान पड़ा था। मालूम होता था, मुद्दत से उसे यूं ही छोड़ दिया गया है।......दृष्टि की सीमा तक कोई सूरत नज़र नहीं आती थी। उनके हित में यह बात अच्छी थी लेकिन दुःखद बात यह थी कि अपनी आख़िरी मंज़िल का कुछ पता नहीं था। अभी शायद उन्हें अनगिनत कोसों की दूरी तय करनी पड़ेगी। अनगिनत कोस! उसके मन में उलझन-सी पैदा होने लगी। उसने घूमकर औरतों की ओर देखा। उन्हें देखकर उसे बड़ा रहम आया। ये मासूम, बेगुनाह, भोली-भाली सूरतें!

फिर उसने खेत की मेंढ पर बैठते हुए कहा, "आओ, थोड़ी देर आराम कर लें।"

वे सब एक शब्द कहे बिना बैठ गयीं। उन्होंने इतना भी तो नहीं कहा कि अभी तो हम दो फर्लांग भी नहीं चलीं, आराम की क्या ज़रूरत है

खेतों के सिलसिले फैलते हुए क्षितिज में गुम हो रहे थे जहां आकाश तपती हुई धरती के होंट चूमता हुआ दिखाई दे रहा था। उसने हर ओर बार-बार नज़र दौड़ाई और फिर होंटों ही होंटों में बड़बड़ाया, "न मालूम पाकिस्तान कहां है?"

बूढ़ी मां ने आकाश की ओर दृष्टि उठाकर कहा,"अल्लाह, हमें मिल्लत की सर ज़मीन तक जल्द पहुंचा दे!"

वे नेक चलन औरतें अपनी आबरू के लिए चिंतित हो रही थीं। वे चाहती थीं कि एक बार वे अपने मान-सम्मान के साथ पाकिस्तान की सर ज़मीन तक पहुंच जायें। चाहे वहां पहुंचते ही उनको मौत आ जाये। उन्हें अपनी जानें ऐसी प्यारी नहीं थीं।

गामे ने तारों से नज़र हटाकर दोनों हाथों में खेत की भुरभुरी मिट्टी को उठाया और उसे बड़ी लालसा से देखने लगा। उसने उसे दबाकर उसके स्पर्श को महसूस किया । उसने हवा को सूंघा। लम्बाई-चौड़ाई में जाल की भांति फैली हुई खेतों की

मेंढों पर निगाह दौड़ाई। जो एक-दूसरे को काटती-छांटती क्षितिज तक फैल गयी थीं। लेकिन गामे की निगाहें पाकिस्तान की धरती, पाकिस्तान की मिट्टी, पाकिस्तान के खेतों और पाकिस्तान की झाड़ियों को खोज रही थीं।

वातावरण विषादपूर्ण था लेकिन वहां इतनी शांति थी कि एक बार तो उन औरतों को भी विश्वास-सा होने लगा कि काली कमली वाला इन्हें पूरी इज़्ज़त-आबरू के साथ अपनी आख़िरी मंज़िल तक......

अनायास एक झटके के साथ गामां चौकन्ना हो गया। उसने अपना मज़बूत मछलियों वाला बाज़ू औरतों की सुरक्षा करते हुए उनके आगे फैला दिया। दूसरा हाथ पलक झपकते ही छुरी तक पहुंच गया। उसके ताक़तवर बाज़ुओं के पट्ठे फड़फडाने लगे। उसकी खोजती हुई आंखें भट्टे की ओर एक बिंदु पर जम गयीं।

आख़िर क्या है?......लेकिन यह सवाल औरतों के होटों तक नहीं आ सका।

अब गामां मोटे-ताज़े असील मुर्गे की भांति बाज़ू फैलाये क़दम ज़मीन में गाड़-गाड़ कर आगे बढ़ते हुए धीरे से बोला, "इस भट्टे के पीछे ज़रूर आदमी छुपे बैठे है।"

उन्हें भी एक आदमी की झलक दिखाई दी। औरतों ने सोचा कि अब इस मुसीबत से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं हो सकता।

कुछ क्षणों बाद टूटी-फूटी ईंटों और मिट्टी के टीलों के पीछे से एक आदमी दिखाई दिया......वह सिख था।

वह ख़ाली हाथ अकेला आगे बढ़ने लगा। वह भी गामे की भांति लम्बा-तड़ंगा आदमी था। चाल-ढाल से वह भी शरीफ़ इनसान नहीं दिखाई देता था। शायद साथी भट्टे के पीछे छुपे बैठे थे।

वह एक-एक क़दम आगे बढ़ रहा था।

गामां रुक गया। धुंधली रोशनी में वह छाया निकट से निकटतर आती गयी। यहां तक कि गामे की मानसिक उत्तेजना चरम तक पहुंच कर शून्य पर आ गयी। शायद......नहीं......निश्चय ही......नवागंतुक फलोरा था।

......और फिर अपेक्षाकृत ऊंचे नारों से उन्होंने एक दूसरे का स्वागत किया।

आते ही फलोरे ने पहले औरतों को ध्यान से देखा। सब कुछ सकुशल पाकर बोला, "शुक्र है......। शुक्र है!!'

गामे ने मुस्कुरा कर कहा, "हम सब सलामत हैं।"

"लेकिन तुम लोग अकेले क्यों चले आये थे? मेरा इंतज़ार क्यों नहीं किया तुमने......"

गामे ने सारा क़िस्सा कह सुनाया।

इस पर फलोरे ने शोर मचाकर कहा, "यह तो तुम्हें घर से निकालने की बड़ी कठोरता थी और तुम्हारी भी बेवक़ूफ़ी थी। उफ़्फ़ोह! वहां पहुंच कर मैं बहुत परेशान था। यह सच था कि कुछ ख़तरा पैदा हो चला था। लेकिन तुम्हें आसानी के साथ

छुपाया जा सकता था। उस दिन से तुम्हारी तलाश में मारा-मारा फिर रहा हूं। यही चिंता थी कि कहीं दंगाइयों के हत्थे न चढ़ जाये।''

मां बोली, ''बेटा! अल्लाह के फ़ज़्ल से हमारा बाल तक बांका नहीं हुआ। लेकिन हमारे ये दिन तो बड़ी मुसीबत में कटे हैं। हमें तो यह उम्मीद भी नहीं रही थी कि तुम हमें दोबारा मिलोगे......''

''वाह जी वाह!'' फलोरे ने और शोर मचाकर कहा, ''भला तुम्हारे दिल इस तरह के ख़्याल ही पैदा क्यों हुए? देखना! तुम्हारे पैरों के निशान देख कर यहां तक आन पहुंचा हूं।''

वातावरण में दोनों दुर्जन व्यक्तियों की आवाज़ें गूंजने लगीं। उदास चांदनी रात में चहल-पहल नज़र आने लगी। डूबतें को तिनके का सहारा। औरतों ने बड़े इत्मीनान का सांस लिया। जैसे अब उनकी मदद को पूरी फ़ौज पहुंच गयी हो......फलोरा जो उस बुढ़िया के हाथों में पल कर बढ़ा हुआ, बातें किये जा रहा था।

इधर-उधर की बातें हो चुकी तो गामे ने कहा, ''यार, हम तो अटकल पच्चू चले आये हैं। न जाने कहां से कहां निकल आये हैं। कुछ पता नहीं चलता।''

यह कह कर वह खुद ही रुक गया और आंखें सिकेड़ कर दूर-दूर तक निगाहें दौड़ाने लगा कि शायद कहीं पाकिस्तान की धरती दिखाई दे।

इस पर फलोरे ने गामे को एक बांह में समेटने की कोशिश करते हुए कहा, ''ओये गामयां! अब तो तुम पाकिस्तान पहुंच चुके हो। तुम क्या समझे बैठे थे......कि वहां पहुंचने के लिए दरिया पहाड़ फांदने पड़ेंगे?''

गामां हक्का-बक्का रह गया। हकला कर बोला, ''सच?......कहां है पाकिस्तान?''

यह कह कर फिर वह आंखें सिकेड़ क्षितिज की ओर ताकने लगा।

औरतों के होटों पर भी मुस्कुराहट की लहरें दौड़ने लगीं।

फलोरे ने हाथ का इशारा करते हुए कहा, ''वे रहे पाकिस्तान के खेत!''

सब लोग फलोरे के साथ-साथ तेज़-तेज़ कदम उठा कर चलने लगे। बमुश्किल एक फर्लांग दूर पहुंच कर फलोरा रुक गया। फिर हाथ से इशारा करके बोला, ''लो अब यहां से पाकिस्तान के खेत शुरू हो जाते हैं। तुम सीधे चले जाओ। कहीं पुलिस या फ़ौज की चौकी तक पहुंच जाओगे या किसी गांव में जा पहुंचोगे।......अब तुम्हें कोई ख़तरा नहीं......

''औरतों ने जंगली चकौरियों की भांति अपनी चाल तेज़ कर दी। गामां दो खेत तो तीर की-सी तेज़ी के साथ पार कर गया और फिर रुका। तीनों औरतें लपकती हुई उसके पीछे चली आ रही थीं। तेज़ चलने के कारण वे हांपने लगी थीं।

गामे की बाछों में से हँसी फूटी पड़ती थी। घूम कर कहने लगा, ''अमां, हम पाकिस्तान पहुंच गये हैं।''

भोली औरतों ने रुक कर नज़रें इधर-उधर दौड़ाई और दिल ही दिल में खुदा शुक्र अदा किया।

गामे ने कुछ देर रुकने के बाद झुककर खेत की भुरभुरी मिट्टी भर ली और उसे अपने चेहरे के पास ले आया। कुछ क्षण उसे ध्यान से देखता रहा। दबाकर उसके स्पर्श को महसूस किया । हवा को सूंघा फिर सिर घुमा कर लम्बाई-चौड़ाई में जाल की भांति फैली हुई खेतों की मेंढ़ों पर निगाह दौड़ाई जो एक -दूसरे को काटती छांटती क्षितिज तक चली गयी थीं......।

उसके चेहरे पर गंभीरता आ गयी।

फिर उसे अहसास हुआ कि फलोरा उसके साथ नहीं है.......फलोरा दो खेत परे धुंधली चांदनी में अड़ियल टट्टू की तरह ज़मीन पर पांव जमाये खड़ा था। कुछ क्षणों तक वे सब चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

ऊंचे-पूरे फलोर सिंह की ढीली-ढाली पगड़ी के तुर्रे हवा में लहरा रहे थे और उसकी लम्बी लाठी की बिरंजी शाम उसके दाहिने कान की लव को चूम रही थी।

बूढ़ी मां ने फलोरे की ओर देखा और फिर पृष्ठभूमि में छिटके हुए सितारों पर नज़र दौड़ा कर दिल में कहने लगी—मैं पांचों वक़्त नमाज़ के बाद अल्लाह से इस शख़्स के हक़ में दुआ मांगा करूंगी।

भोली-भाली यह औरत यह भूल गयी कि इस आदमी के लिए मांगने पर खुदा सबके गुनाह माफ़ कर देगा?

अलविदा कहने के लिए गामां धीरे-धीरे क़दम उठता हुआ अपने दोस्त की ओर बढ़ा......उसके पांव मन-मन के हो रहे थे.....वह जानता था कि फलोरा दो खेत परे क्यों रुक गया है?

जब दोनों पास-पास खड़े हुए तो क़दो-क़ामत और डील-डील मे दोनों बराबर थे।

फलोरे के सख़्त चेहरे पर भद्दी-सी मुस्कुराहट पैदा हुई......जैसे वह कह रहा हो,"गामे! तुम पाकिस्तान की धरती से मुझे मिलने के लिए वापस आये हो।"

गांमा ने अपने ऊंचे क़द को और भी ऊंचा किया और एक बार फिर अपने सामने खड़े हुए कड़ील किसान से आंखें मिलायीं। उसकी घनी मूछों में हरकत हुई। उसने फलोरे का चौड़ा-चकला हाथ अपने हाथ में ले लिया और फिर— जैसे स्वीकार में सिर हिलाते हुए उसने भरपूर मर्दाना आवाज़ में जवाब दिया—

"आ हो, फलोरया!"

लम्हे

सोम का दिन था।

यों तो मैं अपने दोस्तों की बहुत कद्र करता हूं लेकिन कभी-कभी जी चाहता है कि दोस्तों की सूरत तक दिखाई न दे और मैं केवल अपने लिए ही होकर रह जाऊं। मेरे दोस्तों की तादाद बहुत कम है, इसलिए मेरे जीवन में ऐसे अवसर भी आ जाते हैं।

जिस दिन का मैं ज़िक्र कर रहा हूं, वह इसी तरह का दिन था, सुबह का समय था। इससे पहले कि कोई दोस्त मेरे घर पहुंच कर 'उमाकांत' 'उमाकांत!' के नारे लगाता, मैं चाय से निवृत्त होकर घर से बाहर निकल खड़ा हुआ।

न बीवी, न बच्चे, न नौकरी, न कारोबार, न खुशी, न ग़मी—अजीब आज़ादाना ढंग से ज़िदंगी कट रही थी। मेरी बेकारी से घर वालों की नाखुशी के कारण मन उदास रहता था। कोई ज़िम्मेदारी न होने के कारण दिमाग़ हलका रहता था। अपनी पत्नी न होने के कारण मन पर रूमानियत का क़ब्ज़ा रहता था।

बस स्टैंड पर पहुंच कर देखा कि कनाट प्लेस जाने के लिए बस तैयार खड़ी थी। अंदर इक्का-दुक्का मुसाफिर बैठे हैं, मैंने फुटपाथ पर खड़े होकर जेब में से 'केमिल्ज़' की डिबिया निकाली और बड़ी निश्चिंतता से सिगरेट को सहलाता रहा, फिर उसे होटों में दबाया और सुलगा कर लम्बा कश लिया। अंततः कोट के कालर ठीक करता हुआ बस में घुस गया।

आठ बजे थे। भला सर्दी के मौसम में किसी को क्या पड़ी थी कि घर के गर्म वातावरण से निकल बाहर उठ भागे। अतएव बड़ी शांति थी। कुछ लोग एक दूसरे से परे-परे बैठे धीरे-धीरे बातें करने में डूबे हुए थे।

मैंने पहले तो औरतों और लड़कियों का जायज़ा लिया। तीन लड़कियां थीं और दो औरतें।

लड़कियां गोरी थीं। दो चोटियां, आंखें बड़ी न छोटी, बातें मीठी न फीकी। लेकिन......गाल......उफ़ तौबा......इस क़दर बेहूदा गाल! हड्डियां उभरी हुई और गहरी-गहरी लकीरें जो हंसने वक़्त और गहरी हो जाती थीं।......अब दूसरी औरत की ओर देखा.....हरे राम! वह तो सूरत से बिल्कुल आया लगी। शायद सचमुच की आया

हो। इसी बात से मुझे ध्यान आया कि हम लोग बच्चों के लिए किस क़दर बदसूरत आयाएं नियुक्त करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जीवन भर हमारे बच्चों का सौंदर्य-बोध पनपने नहीं पाता......ख़ैर अब एक औरत का जायज़ा लेना बाक़ी था। वह मेरी ओर पीठ मोड़े बैठी थी। उसके कंधे पर नन्हे बच्चे का सिर टिका था और एक बच्ची सामने क़ी सीट पर बैठी थी। याने वह कम से कम दो बच्चों की मां थी।

मन उदास होने लगा। बीस-पच्चीस मिनट का यह सफ़र यों ही कट जायेगा। दिल बहलावे के लिए कोई सुदंर चेहरा दिखाई न देगा। क्या यह सफ़र जम्हाइयां लेते ही बिताना पड़ेगा।

सोचा......अगर दो बच्चों की मां बदसूरत है तो अपनी बहनों से बढ़कर क्या होगी? यही न कि उनके बराबर होगी या थोड़ी बेहतर । आख़िर यही तय पाया कि उस महिला के ठीक पीछे वाली सीट पर डेरा जमाया जाये।

पिछली सीट पर चुपके से बैठ कर मैंने सिर पर हाथ फेरते हुए बालों की तह जमाई और फिर प्रतीक्षा करने लगा कि वह ज़रा इधर-उधर घूम कर देखे तो सूरत निहार ली जाये।

लेकिन वह इधर-उधर देखे बिना सामने की ओर मुंह किये चिपकी बैठी रही। यहां तक कि बस चल दी।

मुझे बेचैनी-सी मेहसूस होने लगी। बारे कंडक्टर ने आकर पैसे मांगे। टिकट लेते समय ध्यान आया कि काश इस महिला से थोड़ी-बहुत बातचीत हो चुकी होती तो इसके टिकटों के दाम देकर अच्छे-खासे संबंध बनाये जा सकते थे।

जब उसकी बारी आयी तो उसने मुंह फेर कर देखा। उसके उज्ज्वल मुख के दर्शन हुए.....दिल धक से रह गया।

वह सचमुच में बहुत सुंदर थी। तारा-सी आंखें, नाज़ुक होंट और दमकता हुआ माथा.....प्रत्याशा के विरुद्ध उस औरत को सुंदर पाकर हाथ-पांव फूल गये।

अब समस्या यह थी कि उससे बातचीत कैसे शुरू की जाये? कौन-सा विषय उचित रहेगा? मौसम?..... लेकिन हिंदुस्तान में अभी मौसम के विषय पर बातचीत शुरू करने से अपेक्षित परिणाम नहीं निकल सकता। इस औरत से यह कहना कि आहा! क्या सुहाना मौसम है, महज़ बेकार होगा। सिनेमा, एक्टर, एक्ट्रेस, बसें, सड़कें......नहीं-नहीं ये बातें फ़िज़ूल हैं......इतने में औरत के कंधे के साथ लगे हुए नन्हे-मुन्ने बच्चे ने आंखें खोलीं और आश्चर्य व ललक के साथ इधर-उधर देखने लगा। बड़ा प्यारा बच्चा था। मैंने उसके गाल पर हल्की-सी चुटकी ली तो उसके छोटे-छोटे होटों पर मुस्कुराहट खिल गयी। फिर मैने दोनों उंगलियों से उसकी ठुड्डी को हलके-हलके सहलाना शुरू कर दिया तो वह हंसने लगा......मैं जानता था कि उसकी मां को मेरी इस चेष्टा का पता चल चुका है।

बच्चे के कान के पीछे दाद के निशान दिखाई दे रहे थे। मैंने साहस से काम लेकर पूछा,

"क्यों जी ! नन्हे के कानों के पीछे दाद हो रहा है......"

"जी......हां!"

"तो क्या आप इसका इलाज नहीं करायेंगे?"

"इलाज तो हो रहा है......"

"क्या होम्योपैथी इलाज करा रही हैं?"

"जी नहीं, है तो एलोपैथी।"

"एक डॉक्टर है रचीराम। होम्योपैथी इलाज करते हैं। विशेष रूप से बच्चों के इलाज में तो उन्हें महारत हासिल है। अगर इस इलाज से फ़ायदा होता है तो उधर ध्यान दीजिएगा।"

"बेहतर।"

"बहुत ही प्यारा बच्चा है।" मैंने बातचीत जारी रखने की कोशिश करते हुए कहा।

औरत ने बच्चे को कंधे से हटाकर खिड़की के साथ पीठ लगा ली। अब उसका रुख़ लगभग मेरी ओर था। उसने बच्चे को घुटने पर बिठाकर देखना शुरू किया कि वह वास्तव में सुंदर है या नहीं? फिर जैसे मन ही मन में मेरे कथन का समर्थन करते हुए मीठी नज़रों से मेरी ओर देखा।

"आपको बच्चों से ख़ासा लगाव है। क्या आपके भी बच्चे हैं?"

"जी नहीं।" मैंने कुछ झेंप कर कहा, "अभी तो मेरी शादी भी नहीं हुई है।"

"क्यों शादी न होने की क्या वजह है?"

"यों ही ।" मैंने सिर खुजाते हुए जवाब दिया, "यही, अभी बेकार हूं, जब तक आमदनी की ठीक-ठाक व्यवस्था न हो, मन में शादी का विचार भी नहीं आ सकता।"

"लेकिन आप बेकार क्यों हैं?"

मैं इस जिरह से घबरा गया था। मैंने पंजाब यूनीवर्सिटी से बी.ए. करने के बाद पेशावर में कारोबार शुरू किया था। आमदनी की सूरत नज़र आने लगी तो दंगे शुरू हो गये और मुझे इधर भागना पड़ा। अब नये सिरे से काम करने का विचार है।"

औरत की आंखों में उदासी की झलक दिखाई दी। इस समय वह कुछ खोयी-खोयी-सी दिखाई दे रही थी। अवसर का लाभ उठाते हुए उसके सुंदर मुखड़े के रूप को ध्यान से निहारने लगा।......क्या वह मेरी ख़ातिर उदास थी? एक क्षण के लिए ही सही!.....काश! मुझे भी ऐसी ही मोहिनी पत्नी मिल जाये।"

कहते हैं कि स्त्री पुरूष के मन की भावनाओं को बहुत जल्द पहचान लेती है। उस औरत ने नज़रें झुका लीं और थोड़ा सोच-विचार के बाद न मालूम क्यों......बड़ी बच्ची की ओर इशारा करके मुस्कुराकर बोली, "यह मेरी बेटी है।"

"आओ बेटी, मेरे पास आओ......" मैंने हाथ फैलाये । वह मारे शर्म के आगे नहीं बढ़ी तो मैंने खुद ही बढ़कर उसे गोद में उठा लिया, "आ हा हा हा......बड़ी अच्छी है हमारी बेबी......अच्छा तो तुम पढ़ती हो क्या?"

लेकिन वह बड़ी शालीनता के साथ संकोच करती रही।

औरत बोली, "बताओ न बेबी! तुमसे कै बार कहा कि यों ही मत शर्माया करो।"

मैंने सोचा, यह औरत कितनी सुसंस्कृत है। उसकी बातचीत से मालूम होता है कि वह पढ़ी-लिखी और ख़ासी सुलझी हुई है।

मां की प्रताड़ना से बेटी ने स्वीकार में सिर हिला दिया।

"क्या पढ़ा है। भई हमें भी तो सुनाओ.....तुम तो बहुत अच्छी बेबी हो। तुम्हें तो पढ़ा-लिखा याद होगा सारा, बोलो याद है।"

"हां जी!"

बेबी ने बड़ी-बड़ी आंखें उठाकर भरपूर नज़रों से मेरी ओर देखा। मालूम होता था कि इस बात को स्वीकार करने में उसे बड़े गर्व की अनुभूति हो रही है।

"अच्छा भई, फिर सुनाओ ना! क्या पढ़ा है तुमने?"

"ए, बी, सी, वाई, ज़ेड।"

इस पर हम दोनों क़हक़हा मार कर हंसे। मैं और वह औरत। हम दोनों जो एक दूसरे से बहुत दूर थे। लेकिन क़हक़हों की मिली-जुली आवाज़ से ऐसा लगने लगा जैसे किसी फ़िल्म के हीरो हीरोइन कोई जादू भरा दोगाना गा रहे हैं।"

औरत ने बमुश्किल हंसी रोकते हुए कहा, "अरी बेबी! तुझे ए बी सी अभी तक याद नहीं हुई। सी के बाद एकदम वाई ज़ेड?"

अब हमारी भेंट काफ़ी आश्वस्तिकारक हो गयी थी। अब अधिकांश संदेह दूर हो चुके थे। हम दो बहुत अच्छे परिचितों बल्कि दोस्तों की तरह बातचीत करने लगे।

बीस या पच्चीस मिनट की यात्रा में ज़्यादा बातें नहीं हो सकती थीं। लेकिन अगर अनुभूति की बात करें तो एक क्षण में कुछ का कुछ हो जाता है। एक मीठी नज़र थी कि जीवन के इन क्षणों को रंगीन बनाती चलाती गई। उसकी आवाज़ में ऐसा लोच और लचीलापन था कि मुद्दतों तक कानों में शहद-सा घुलता रहा।

इधर-उधर की बातों में हम इतने डूब गये थे कि आस पास की कुछ ख़बर नहीं रही थी......। जब मैंने जंगल में शेर के फ़र्ज़ी शिकार की कहानी सुनाई और झूठ ही कह दिया कि मैंने शेर के सामने खड़ा होकर उस पर गोली चलाई थी तो औरत की आंखें फटी की फटी रह गयीं। साश्चर्य बोली,

"लेकिन मैंने तो सुना है कि शेर का शिकार मचान पर बैठ कर किया जाता है।"

उसने सचमुच मेरी बात पर विश्वास कर लिया। बातों-बातों में मुझे ध्यान आया कि पुरुष के मन में स्त्री के आकर्षण का एक कारण यह भी है कि स्त्री के सामने

वह दिल खोलकर झूठ बोल सकता है और स्त्री भी हर समय झूठ सुनने के लिए तैयार रहती है। होशियार से होशियार स्त्री भी अंततः उसी पुरुष को पसंद करती है जिसके झूठ पर वह विश्वास कर सके।

औरत बचकाना अंदाज़ पर कई बात पर पूछती रही और मैं ध्यानपूर्वक उनके जवाब देता रहा। पाप-पुण्य, प्रेम-मुहब्बत, सौहार्द और कुटिलता की मिली-जुली-सी यह मुलाक़ात कितनी मनभावन और जान लेवा थी......उस सुहानी सुबह को दो अजनबी यात्रियों की छोटी-सी मुलाक़ात दुनिया के इतिहास की कितनी महत्वपूर्ण घटना!!

इश्क़ की मंजिल तो क्या आती......अलबत्ता बस की मंज़िल पास आ रही थी।

बेबी अभी तक मेरी गोद में बैठी थी। अचानक मुझे महसूस हुआ कि काम निकल जाने के बाद बेबी को तो में भूल गया था। मैंने सकुचाकर बेबी को बग़लों को गुदगुदाया, "अरे बेबी ! तुम तो कोई बात ही नहीं करतीं......क्या तुम हमसे नाराज़ हो? "

वह चुप रही।

"बोलो, बेबी।"

"ला हीं।" बेबी ने अस्वीकृति में सिर हिलाते हुए जवाब दिया।

"अच्छा तो बताओ तुम्हारा नाम क्या है? "

"मेरा लाम! "

"हां"

"सोलतानां।"

"सुल्ताना!" औरत ने कहा।

मुझे पहली बार इस बात का पता चला कि वह मुसलमान है। सुलताना की बग़लों को गुदगुदाते हुए मेरे हाथ रुक गये। मैंने कुछ हिचकिचाते हुए पूछा,

"क्या आप मुसलमान हैं?"

"जी!" यह कह कर औरत ने मेरी ओर प्रश्नाकुल दृष्टि से देखा।

"नहीं, कुछ नहीं । मैंने हंस दिया......"मुझे लगा क्योंकि देखने में......"

फिर एक प्रकार की भद्दी-सी चुप्पी छा गयी।

"बात कुछ भी नहीं थी।" मैंने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा,

"दंगों के दिनों में आप दिल्ली में ही थीं?".

"जी हां, हम सब यहीं थे।"

मेरे दिल को न मालूम क्या होने लगा। मैंने रुकी-रुकी आवाज़ में पूछा, "आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई? "

औरत ने कुछ ठंडे स्वर में कहा, "बस कुछ न पूछिए। माली नुक़सान बहुत हुआ, जानें बच गयीं। यही ग़नीमतं समझिए। कनाट प्लेस में हमारीं दुकान लुट गयी। मकान

में दंगाई घुस आये।......लेकिन इससे पहले कि कोई नुक़सान होता, पुलिस आ गयी......'।

मेरा सिर झुक गया......ऐसा क्यों होता है? ऐसा क्यों होता है?

स्टैंड पर पहुंच कर बस रुक गयी।

यह सोचकर औरत अकेली है, और बच्चे दो, शायद इसे मेरी मदद की ज़रूरत हो, मैं अपनी सीट से उठने में हिचकिचाया लेकिन औरत की सहजता से प्रकट हुआ कि उसे मदद की ज़रूरत नहीं है। अतएव मैं शरीफ़ आदमी की तरह उठकर चल दिया।

कुछ क़दम चलने के बाद मैंने यों ही घूम कर देखा कि वह औरत उठकर दरवाज़े की ओर बढ़ रही है। लेकिन उसके क़दम उखड़े-उखड़े दिखाई देते थे। वह कुछ लंगड़ा कर चल रही थी।

मैं सोचने लगा कि अगर उसकी टांग में यह कमी न होती तो वह क़दम-क़दम पर फ़िल्ने ढाती। ऐसी हसीन औरत और यह ऐब!

अनायास हमारी नज़रें मिलीं......शायद वह समझे बैठी थी कि मैं चला गया हूं। मुझे एक बार फिर अपने सामने पाकर वह परेशान-सी हो गयी जैसे कह रही हो, "आख़िर तुमने मुझे लंगड़ा कर चलते हुए देख लिया ना!"

सकुचाकर जैसे उसने अपना गुलाबी होता चेहरा झुका लिया और फिर जैसे रूठ कर मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

मैं उसे मनाने के लिए आगे बढ़ा और उसके सामने जा खड़ा हुआ और उसके मुखड़े को निहारते हुए मन ही मन में कहा, "सम्मानित महिला! तुम बहुत ही सुंदर हो। तुम सौंदर्य की प्रतिमा हो। तुम क्या जानो मैं इन गिने-चुने मोहक क्षणों के लिए तुम्हारा कितना आभारी हूं।" और फिर मैंने कुछ ऊँची आवाज़ में कहा, "माफ़ कीजिएगा,.....आप कुछ परेशान-सी नज़र आती हैं। क्या आपको कहीं आगे जाना है? तांगा लाऊं? या आपको किसी का इंतज़ार है?"

उसने सिर पर दुपट्टा संवारते हुए जवाब दिया, "जी जाना तो क़रीब ही है......वो नहीं आये......नौकर को भेज देते......नौकर को तो आना ही चाहिये था......"

मैंने आगे बढ़कर लड़की को गोद में उठा लिया और बोला, "चलिए मैं आपको छोड़ आऊं।"

वह बिना कुछ कहे मेरे साथ हो ली।

अभी हम पंद्रह बीस क़दम ही चले होंगे कि वह बोल उठी, "लीजिए, वह लड़का......हमारा नौकर चला आ रहा है।"

हम रुक गये। मैंने झिझकते हुए तांगे की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा, "क्या पैदाइशी नुक़्स है?"

उसने कुछ सोच-विचार किया। फिर अपनी आंखें मेरी आंखों में डालते हुए बोली, "जी नहीं, जब दंगाइयों ने हमारे मकान पर हमला किया तो एक शूरवीर ने लाठी घुमा कर मार दी थी......"

मेरा दिल बैठने लगा। कांपते हुए हाथों से मैंने बच्ची को नौकर की तरफ़ बढ़ाया......मेरे माथे पर ठंडे पसीने की बूंदें फूट पड़ीं। कांपते हुए हाथ से जेब में रूमाल टटोलने लगा।

विदा होते हुए कुछ कहना चाहा लेकिन होंट फड़फड़ा कर रह गये। अतएव मैं कुछ इस ढंग से दो क़दम पीछे हटा जैसे वह प्राचीन बाबलियों की हसीन शहज़ादी हो। मेरी आंखें झुककर उसके क़दमों पर जम गयीं। मैंने अपनी कल्पना में उसके पांव पर सिर रख दिया।

फिर उचटती हुई निगाहों से उसकी ओर देखा तो मालूम हुआ कि अब उन आंखों में वह रूखापन नहीं था, न सख़्ती। फिर मुझे ऐसा लगा कि वह मेहरबान होती हुई किसी ज़िद्दी मलिका की तरह कह रही है, "मा बदौलत खुश हुए......मा बदौलत ने न सिर्फ़ तुम्हें बल्कि तुम्हारी सारी कौम को माफ़ किया......."

एक बार फिर हमने एक दूसरे की ओर आभार की दृष्टि से देखा......और फिर हम एक दूसरे से दूर होने लगे। यहां तक कि अंततः एक दूसरे की आंखों से हमेशा-हमेशा के लिए ओझल हो गये।

हिंदोस्ताँ हमारा

हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा
(इक़बाल)

जगजीत सिंह अपनी पत्नी की तलाश में था।

भला इतने बड़े जोड़ मेले में एक स्त्री को ढूंढ निकालना भी कोई आसान काम था। सिखों का जोड़ मेला वर्ष में एक बार ही लगता था। गुरु अर्जुन देव जी महाराज की याद में बड़े-बडे दीवान लगते। पंजाब के दूर-दूर के स्थानों से प्रेमी सिख झुंड के झुंड आते। दो दिन तो इस जगह तिल फेंकने को जगह न मिलती थी। स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सभी जमा होते थे। इतनी भीड़ में भला जगजीत सिंह की पत्नी का क्या पता चल सकता था।

लेकिन वह पत्नी को ढूंढे बिना वापस न जा सकता था। वह कुछ अर्से तक बर्मा के मोर्चे पर जाने वाला था। उसने बमुश्किल दो हफ़्ते की छुट्टी ली थी। वह चाहता था कि इन छुट्टियों में वह अपनी पत्नी को साथ लेकर शिमला चला जाये। उसकी पत्नी की इच्छा थी कि वह किसी पहाड़ी स्थान की सैर करे। हिज़ मैजेस्टी की फ़ौज का लेफ्टीनेंट होने की हैसियत से न मालूम कितने अर्से तक उसे अपनी क़ौम और देश की सेवा करना पड़े। हिंदुस्तान की पवित्र धरती को लालची और ख़ूँख़्वार दुश्मनों से बचाने के लिए यहां तक कि हिंदुस्तान की आज़ादी बरकरार रखने के लिए न मालूम कब तक उसे तलवार हाथ में लिये रहना पड़ेगा। इन हालात में उसने उचित समझा कि कुछ दिन अपनी पत्नी के संसर्ग में किसी मनोरम स्थान पर बिताये।

वह आज सुबह ही घर पहुंचा था लेकिन पत्नी मौजूद न थी सिर्फ़ मां बैठी चर्खा कात रही थी। घर पहुंचते ही उसने इधर-उधर देखना शुरू किया। वह मुंह से कुछ कहने में लजाता था। शादी को ज़्यादा समय नहीं बीता था। मां भांप गयी। सूत के साथ नई पौनी लगाकर बोली, "लड़कियां जोड़ मेले पर गयी हैं। मेरा भी जी चाहता

था। लेकिन मेले के दिनों में घर अकेला छोड़कर जाना ठीक नहीं। इसलिए मैंने आज उन्हें भेज दिया। कल मैं खुद जाऊँगी।"

फिर मां ने बलाएं लेकर कहा, "अच्छा अब नहा-धोकर कुछ खा-पी लो।"

"लेकिन वे कब आयेंगी मां?"

मां हंसने लगी, "छोकरियां हैं, कौन कह सकता है कब आयें? मुझे उम्मीद है कि वे शाम से पहले नहीं आयेगी। आज दोपहर का खाना भी वे लंगर ही से खायेंगी।"

जगजीत सिंह शीघ्रता में था। उसने मां को अपना सारा प्रोग्राम बताया। मां कहने लगी, अब वह तेरे साथ पहाड़ पर नहीं जा सकती।

"नहीं जा सकती......क्यों?"

"मूर्ख!" उसकी मां ने साभिप्राय कहा, "कह जो दिया वह नहीं जा सकती।"

वह कुछ न समझा। लेकिन वह बिना कुछ खाये-पीये पत्नी की तलाश में निकल खड़ा हुआ।

शादी हुए चार-पांच महीने ही बीते थे। शादी के बाद वह एक माह के आसपास पत्नी के साथ रहा फिर उसे नौकरी पर जाना पड़ा। अब यही एक मौका था। इसके बाद न मालूम कब मुलाक़ात हो या न हो। उसे अपनी पत्नी से उतना ही प्रेम था जितना किसी उत्साही नवयुवक को हो सकता है। उसे उसका तीखे नाक-नक़्श वाला सुंदर चेहरा अच्छी तरह याद था। उसे भरोसा था कि वह जहां कहीं भी होगी, वह उसे पहचान लेगा।

भीड़ में से रास्ता बनाता हुआ वह चला जा रहा था। पहले वह तंबुओं के अस्थायी बाज़ार में से इधर-उधर नज़रें दौड़ाता हुआ गुज़र गया। उसकी पत्नी चटपटी चीज़ें खाने की बहुत शौक़ीन थी। उसने दूर चाट वाले की दुकान पर कुछ औरतों का जमघट देखा। वह लपक कर वहां पहुंचा । औरतों की खासी भीड़ लगी हुई थी। इनमें उसकी पत्नी शामिल हो या न हो? अगर वह यों ही नज़र उठा कर किसी ग़ैर आदमी को देख ले तो वह हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाये। अतएव वह दो पैसे के दही बड़े लेकर एक ओर खड़ा हो गया और कनखियों से औरतों का जायज़ा लेने लगा। लेकिन उनमें उसकी पत्नी मौजूद न थी। वहां से निकला तो परे मछली बेचने वाले की दुकान थी। उसे मालूम था कि उसकी पत्नी मछली के पकोड़े या तली हुई मछली भी बड़े मज़े से खाती है। संभव है वहां बैंच पर उंगलियां चाटती हुई सी-सी कर रही हो। उसकी पत्नी भी अभी नई उम्र की लड़की थी। यही सोलह-सतरह वर्ष की थी। बड़ी चंचल और छबीली। उसे देख पायेगी तो वह भला किस भंगिमा से मुस्कुराने लगेगी। वह भागा-भागा पहुंचा। लेकिन उसकी पत्नी उस जगह भी मौजूद न थी। इसी तरह भाग-भाग कर पगड़ी भी ढीली हो गयी। गर्दन की चमड़ी लाल हो गयी।

बड़े गुरुद्वारे के आस-पास दूर तक अलग-अलग शामियानों के नीचे दीवान लगे थे। इन दीवानों में मर्द भी शामिल थे, औरतें भी। उसने सोचा कि संभव है वह किसी दीवान में ही बैठी हो। वह भागा-भागा एक दीवान में घुस गया। स्टेज पर नई रोशनी का एक सिख जंटलमैन खड़ा हुआ था। वह सिख जाति की किसी समस्या पर आधुनिक विचारों की रोशनी में बहस कर रहा था। वह एक छोटे क़द का आदमी था। हालांकि वह बड़े उत्साह के साथ बोल रहा था लेकिन यह बात दिन की रोशनी की भांति स्पष्ट थी कि गांव-देहात से आये हुए अक्खड़ सिख उसके लैक्चर में ख़ास दिलचस्पी नहीं ले रहे थे। उसकी कमज़ोर पतली-पतली बाहें और छोटी कसी हुई मुट्ठियां, उसकी बारीक ज़नाना आवाज़ और फिर उसकी उर्दू मिली पंजाबी बोली या पंजाबी मिली उर्दू सोने पर सुहागे का काम कर रही थी।

"मैं आप नूं यकीन दिलाता हूं । बल्कि हम ऐसी बात पर मजबूर हो गये हैं। असी ये नतीजा निकालन में हक़ बजानिब हैं कि सिख कौम बड़ी बहादुर क़ौम थी और हुण भी है। लेकिन सिख राजनीति के मामले विच कोरे ही हैं। सियासत में कोई टावां-टावां आदमी समझदार भी नज़र आ जांदा है। पर इस बात की पंथ नूं हमेशा ही कमी रहंदी है......जे आप बघेल सिंह की गल पर गौर करो। बघेल सिंह ने दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लीता। दिल्ली पर पंथ का निशान लहरान लग पया। तो खालसा साहिबो! दीवाली के दिन आ गये। सब सिखों ने कहा कि ऐसी दीवाली अमृतसर मनावनी है जी। इस गल नूं सुनकर बघेल सिंह जी बोले, "खालसा जी बात हम स्वीकार करते हैं। हुण खालसा जी अमृतसर जी की तरफ़ कूच कर देओ। उस वक़्त किसे ने कहिया, "सरदार साहब, दिल्ली दा क्या बनेगा?" सरदार बघेल जी कहने लगे, "फिर फ़तह कर लेंगे।" तो जी जयकारे बुलांदे और वापस अमृतसर आन धमके।"

जगजीत सिंह उचक-उचक कर औरतों की ओर देखता रहा। उसे अपनी पत्नी कहीं भी नज़र नहीं आयी। बिचारा बहुत परेशान था। वहां से हटकर भीड़ में धक्के खाता हुआ चला जा रहा था। कोई औरत उसकी नज़र से न बचती थी। वह और एक दीवान में जा निकला। वहां भी लैक्चर हो रहा था। यह लैक्चर देने वाले सरदार साहब खूब लंबा-सा लठ हाथ में थामे हुए थे। वे बड़े जोश में बोल रहे थे। उनकी आवाज़ गरजदार थी और सूरत से रौब टपकता था। उसने अपने मुंह के दहाने के आगे से अपनी घनी और बड़ी-बड़ी मूछें हाथ से हटाते हुए कहा,

"पंथ जी ओ! मुझे एक बड़े विद्वान प्रोफेसर ने यह बात बताई थी। वे कहते थे कि हिंदुस्तान की हिस्ट्रियां लिखने वाले सब अंग्रेज लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि उस ज़माने में उन्हें पूर्व में सबसे सख़्त दुश्मन सिख ही मिले थे। यह बात कट्टर से कट्टर अंग्रेज़ भी स्वीकार करते हैं......आख़िर यह जोश और ताक़त सिखों में कहां से आ गयी? यह श्री गुरु कलग़ीधर का भरा हुआ जोश है और यह सब श्री गुरु अर्जुन

देव जी महाराज की कुर्बानियों का नतीजा है......मैं आपको एक मज़े की बात सुनाता हूं" यह कहकर वह ज़ोर के साथ खांसा। जगजीत सिंह औरतों के झुरमुट के पास चला गया......"यह महाराज रणजीत सिंह के ज़माने की बात है। उस वक़्त महाराज जी के जरनेल हरि सिंह नलवे की धूम मची हुई थी। यह वही नलवा था जिसने काबुल-कंधार तक सिखों की तलवार का सिक्का बिठा दिया था। पठान माएं अपने रोते हुए बच्चों को उसका नाम लेकर चुप कराती थीं । उन्हीं दिनों की बात है कि अंग्रेज़ों ने कलकत्ता में एक कान्फ्रेंस बुलाई। उसमें हिंदुस्तान के बड़े-बड़े हुक्मरान या उनके नुमायंदे भी आमंत्रित किये गये। महाराजा रणजीत सिंह ने हरि सिंह नलवे को भेज दिया। जिस दिन पहली मीटिंग होने वाली थी सरदार हरि सिंह नलवा वक़्त से कुछ पहले ही वहां जाकर बैठ गये। हरि सिंह बहुत भारी डील-डौल वाला आदमी था। सूरत ऐसी भयानक और रौबदार कि देखते ही दिल थर्रा जाता था। आंखें ऐसी थीं कि कोई आदमी उससे आंख नहीं मिला सकता था। खैर, उस मीटिंग में सभी लोग जमा होने शुरू हो गये। जो कोई नलवे को देखता, हैरत से उसके आंखें खुली की खुली रह जातीं। मीटिंग की कार्रवाई का वक़्त आन पहुंचा। लेकिन उपस्थित लोगों को जैसे सांप सूंघ गया हो। हर तरफ़ ख़ामोशी छाई हुई थी। हरि सिंह नलवा कुछ देर तक तो इंतज़ार करते रहे फिर वे बुरा मान गये और उसी दिन पंजाब की तरफ़ रवाना हो पड़े और लाहौर पहुंच कर महाराज से इस बात की शिकायत की। महाराज ने उसी वक़्त अंग्रेज़ों को चिट्ठी लिखी कि आप लोगों ने हमारे नुमायंदे का अपमान किया है। वह आपकी कान्फ्रेंस में शामिल हुआ और सब चुपचाप बैठे रहे। इस बात पर अंग्रेज़ों ने जबाब दिया कि हम माफ़ी चाहते हैं। लेकिन हम लाचार थे आपके जरनेल का दबदबा ही कुछ ऐसा था कि यहां पर किसी को ज़बान हिलाने की जुरअत तक न हुई। सब मेम्बरान यही सोचते रह गये कि संभव है वे कोई बात कहें जो नलवे को पसंद न आये और वह नाराज़ हो जायें.....सो यह था हमारे जरनेल हरि....."

जगजीत सिंह आगे बढ़ गया। गर्मियों के दिन थे। उसने सुबह से कुछ खाया-पिया भी नहीं था। उसने सोचा था कि वह जल्दी से अपनी पत्नी को ढूंढ कर ले आयेगा। फिर वह नहा-धोकर खाना खायेगा और उसकी पत्नी भी शाम तक तैयारी कर लेगी। अगर इस तरह ढूंढते-ढूंढते ही शाम हो गयी तो वे आज न जा सकेंगे। जिसके मानी हैं कि एक दिन बर्बाद हो जायेगा। यह सोचकर वह और भी सरगर्मी से पत्नी की तलाश करने लगा। उसकी परेशानी देख कर कोई सेवादार पूछ बैठता, "क्यों सरदार जी ख़ैरियत तो है। कोई बच्चा-वच्चा तो नहीं खो गया। वह मुस्कुरा कर आगे बढ़ जाता वाक़ई इतने बड़े मेले में पत्नी को तलाश करना बहुत मुश्किल था।

परे घास के टुकड़े पर पेड़ की छाँव तले रंग-बिरंग के कपड़ों वाली औरतें बैठी थीं। उसे कुछ इस क़िस्म का धोखा हुआ जैसे उसकी पत्नी भी उनमें शामिल हो। वह बड़ी उम्मीदों के साथ वहां पहुंचा। लेकिन निराश लौटा।

कई छैल-छबीली औरतों को पीछे से देखकर उसे यह संदेह होना संभव है कि वह उसकी पत्नी ही है। मगर जब पास पहुंच कर उनकी ओर देखता तो लज्जित होना पड़ता। उधर वे औरतें अपनी सुंदर आंखें एक बार तो हैरत से उसके चेहरे पर गाढ़ देतीं। फिर वे जल्दी से मुंह फेर कर चल देतीं।

एक और बड़े जमघट में औरतें बैठी दिखाई दीं, वह स्वयं लम्बे क़द का आदमी था। लेकिन उसके आगे खड़े हुए तुर्राबाज़ सिख नौजवानों की पगड़ियों के फैले हुए कलगे उसके रास्ते में आड़े आ जाते थे। वह भी मजमे में घुस कर खड़ा हो गया। यहां ढड-सारंगी वालों ने समां बांध रखा था। ढड छोटी ढोलक-सी होती है जिसे एक हाथ में पकड़ कर दूसरे हाथ की उंगलियों से बजाया जाता है। उसके साथ सितार बजता है। इन दोनों साज़ों का प्रयोग युद्ध संबंधी और ओजपूर्ण गीतों के लिए किया जाता है। सबसे ज़्यादा भीड़ इसी जगह थी। ओरतों की तादाद भी बहुत ज़्यादा थी। जगजीत सिंह को पूरा भरोसा था कि उसकी पत्नी इस जगह ज़रूर मिल जायेगी।

वह कुछ आगे बढ़ा फिर रुक गया। उसने सोचा कि अगर उसने ज़्यादा धमा-चौकड़ी मचाई तो लोग उसे निकाल बाहर करेगें। वह ऐसे कोण पर खड़ा होना चाहता था जहां से वह औरतों को ठीक तरह से देख सके। वह कुछ देर के लिए ढड-सारगी वालों के गीत सुनने के लिए खड़ा हो गया।

वे तादाद में तीन थे। तीनों आदमी खूब पले हुए भैंसों की तरह मोटे-ताज़े थे। रंग तांबे की भांति सुर्ख़। गर्दन की रगें फूली हुई। जोश में बिफरे हुए शेरों की तरह दिखाई देते थे। उस समय वे मशहूर शायर शाह मुहम्मद की लिखी हुई युद्ध संबंधी नज़्म सुना रहे थे। इस नज़्म में शाह मुहम्मद ने बड़े ओजपूर्ण ढंग से सिखों और अंग्रेज़ों की लड़ाई का हाल बयान किया है।

उन तीन लोगों में से एक के हाथ में सितार था और दो के हाथ में ढड की धपाधप की आवाज़ के साथ उनके हाथ और सिर भी हिल रहे थे। उपस्थित जन बैठे हुए झूम रहे थे। ढड वालों में एक आदमी कभी गद्य में युद्ध का वर्णन करता और फिर वे तीनों एक स्वर से कोई बोल गाने लगते।

''साहिबान! यह एक ग़लत बात है कि महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिखों ने जंग की शुरूआत की। सच्चाई यह है कि खुद अंग्रेज़ों की नीयत ख़राब थी। उन्होंने रिश्वत देकर चंद सिख सरदारों को अपनी तरफ़ मिला लिया था। मजबूर होकर सिखों को भी लड़ना पड़ा। यह अंग्रेज़ों का सौभाग्य था कि उस वक़्त सिखों का कोई नेता नहीं था। अगर यह लड़ाई महाराजा शेरे पंजाब की जिदंगी में शुरू हुई

होती तो निश्चय ही आज हिंदुस्तान का इतिहास कुछ और ही होता। एक तरफ़ फ़िरंगी ने कुछ ऐसे हालात पैदा कर दिये कि सिखों के लिए युद्ध अनिवार्य हो गया। और जब सिख मरने और मारने पर तैयार हो गये तो अंग्रेज़ों ने चाहा कि तूफ़ान थम जाये। इस तरह शाह मुहम्मद फ़र्माते हैं:-

चिट्ठी लिखी फ़िरंगियां ख़ालसे नूं
तुस्सी कास नूं जंग मचानू वीं ओ
(अंग्रेज़ों ने सिखों की चिट्ठी लिखी कि आप जंग क्यों छेड़ रहे हैं?)
कई लख रुपया ले जाओ साथूं
होर दिये जोंस फ़र्मां दे ओ!

(हम से लाखों रुपया ले जाओ और इसके अलावा जो कुछ आप तलब करें, हम देने को तैयार हैं।)

जगजीत निराश होकर मजमे से बाहर निकल आया। अब कोई उपाय न बचा था। उसके होंट सूख रहे थे। पसीना इतना आया था कि उसकी बग़लों में उसका ख़ाकी कोट तक भीग गया था। पेट पीठ से जा लगा था। जमकर प्यास लग आयी थी। उसे अपनी पत्नी पर बहुत क्रोध आने लगा। न मालूम कमबख़्त कहां छुप कर बैठ रही है? उसका सारा प्रोग्राम चौपट हुआ जा रहा था। उसने प्याऊ से दूध की कच्ची लस्सी पी कर लाहौर के क़िले की दीवार से पीठ लगाकर खड़ा हो गया। उसके पैर थक चुके थे। वह ज़्यादा देर तक खड़ा न रह सका। इतने कोलाहल और धक्कम-मुक्के में वह सुबह से भूखा-प्यासा घूम रहा था। उसने सोचा कि कहीं लेटकर कमर सीधी कर ले।

यह सोचकर वह मेले से ज़रा हटकर एक पेड़ की ओर बढ़ा। बरगद के फैले हुए पेड़ के नीचे, गांव से आयी हुई औरतें बैल गाड़ियों के नीचे बैठी हुई रोटियां खा रही थीं। वह निराश थका-हारा क़दम बढ़ाये हुए चला जा रहा था कि इतने में एक लड़की भागती हुई उनके सामने आन खड़ी हुई.....उसने आंखें उठायीं......अरे उसकी छोटी बहन......"सतो! सतो!! तुम लोगों को सुबह से ढूंढ रहा हूं। कहां बैठी हो तुम लोग?"

बहन ने उंगली से दूर इशारा किया। वह उसके साथ चल दिया और वहां उसकी दूसरी बहन और बीवी साहिबा भी विराजमान थीं। पत्नी हमेशा की तरह चटोरी बिल्ली की तरह अपने सामने कई चटपटी चीज़ें और पूरियां खाने में व्यस्त थी।

दोनों की नज़रें मिलीं तो पत्नी लुभावने ढंग से मुस्कुरा कर लजा गयी। कितनी मेहनत के बाद पत्नी की सूरत देखने को मिली थी। वह पहले की तरह सांवली सलोनी ही थी। सुर्ख़ रंग की शलवार और तंग सी कमीज़ पहने हुए जिसमें उसकी छातियों की उभरी हुई गोलाइयां साफ़ नज़र आती थीं। उसकी देह पहले की भांति ही आकर्षक थी......

जगजीत सिंह उनके पास बैठ गया। और दो-तीन पूरियां भी खा लीं और साथ ही साथ अपना रोना भी रोता गया। पत्नी बोली,"आख़िर मैं कहीं गुम तो न हो जाती, आप घर ही पर क्यों न बैठे रहे......इस क़दर धूप में......ख़्वामख़्वाह......

उसने बहनों की आंखे बचाकर उसकी बग़ल में चुटकी ले ली और वह बल खाकर परे सरक गयी। उसने बताया कि वे दोनों शिमले को जाने वाले थे।

उसकी पत्नी हैरान रह गयी। उसके मुंह का निवाला मुंह में ही रह गया। हलक़ से उतरा ही नहीं। बड़ी खुशी हुई । वह जानता था कि उसकी पत्नी कितनी खुश होगी।

वे लोग जल्दी से मेले को नमस्ते कहकर घर आ गये। आते ही उसकी पत्नी ने सामान बांधना शुरू कर दिया। मां ने कहा, वह तेरे साथ कैसे जा सकती है? एक तो तुम मूर्ख हो और तुमसे ज़्यादा वह मूर्ख है जो झट से तुम्हारे साथ चलने को तैयार हो गयी।

उधर उसकी बहनें भी वावेला करने लगीं कि वे भी चलेंगी। नहीं तो भाभी को भी न जाने देंगी। यह नया झंझट आन पड़ा। उसने मां से कहा, "आख़िर हर्ज ही क्या है? पहाड़ पर चली जायेगी तो उसकी सेहत और अच्छी हो जायेगी।"

इस पर उसकी मां ने नाक चढ़ा कर कहा, "वाह गुरु, वाह गुरु, लफ़टीनेंट बन गया है पर इतनी अक़्ल भी नहीं सिर में......"

फिर वह उसे घर के एक कोने में ले गयी और उसके कान में खुसर-फुसर करने लगी। जगजीत सिंह की आंखें फैल गयीं। उसके मुंह से खुशी की हल्की-सी चीख़ निकल गयी। उसकी पत्नी गर्भवती थी। उसने मां को बाहों में जकड़ कर ऊपर उठा लिया, "उफ़्फ़ोह मेरी अच्छी मां......मेरी बहुत ही अच्छी मां......बोल तो किस चीज़ से मुंह मीठा करेगी?"

मां खुशी से फूल कर कुप्पा हो गयी। बोली, "अरे पगले! मुंह तो मीठा कर ही लूंगी, तू यह बता कि मेरा मतलब भी समझ गया कि मैं क्यों तुझे उसे साथ ले जाने से मना करती थी।"

"लेकिन मां इससे क्या होता है वह चलेगी मेरे साथ, अच्छा हुआ जो तूने बता दिया। मैं उसका सब ध्यान रखूंगा......मैं सब कुछ समझता हूं।"

मां बिगड़ गयी "फिर वहीं मुर्गे की एक टांग। जब मैंने कह दिया नहीं जायेगी।"

"क्यों मां, क्यों नहीं जायेगी?"

"नहीं जायेगी। हज़ार बार लाख बार कह दिया नहीं जायेगी।"

यह नयी मुश्किल आन पड़ी। उसने मिन्नत करके कहा, "मां आख़िर तुझे हो क्या गया है?"

"अरे जाहिल! होश की दवा ले। औरत के पेट में बच्चा हो और पहाड़ों पर कुलांचे भरती फिरे, तेरी अक़्ल घास चरने गयी है क्या?"

वह आगे बढ़कर मां को समझाने लगा,"मां! धीरज करके मेरी बात भी तो सुन....तीन-चार महीने का बच्चा तो है ही इसमें परेशानी की क्या बात है?"

इस पर मां झुंझलाकर कुछ कहने ही वाली थी कि उसने उसका मुंह बंद करके कहा, "मेरी बात तो सुन ले। पहले मुझे यह बता कि तू पहाड़ को समझती क्या है। वहां चौरस सड़कें होती हैं। फिर हर क़िस्म की सवारी जैसे रिक्शा, डांडी वग़ैरह। भला मैं उसे पैदल घुमाऊंगा। तूने भी मुझे ऐसा ही बेवकूफ़ समझा है। मैं तुझसे वादा करता हूं कि अगर दस क़दम भी जाना होगा तो मैं उसे रिक्शा पर बिठा ले जाऊंगा।"

अनपढ़ मां ने रोनी आवाज़ में कहा, "अरे बेटा रिक्शा क्या होती है मैंने तो आज ही नाम सुना है। क्यों बनाता है मुझे....."

जगजीत ने मां को समझाने में अपनी सारी योग्यता लगा दी। मां बड़ी मुश्किल से राज़ी तो हो गयी लेकिन उसके मन में अब भी वही विचार घर किये हुए था कि बेटा ग़लती कर रहा है। मां से जान छूटी और सामान बंधने लगा तो बहनें बिसूरने लगीं। आज उसे बहनों पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। उन्हें इतनी शिक्षा भी नहीं दी गयी कि अगर पति-पत्नी कहीं घूमने जा रहे हों तो दूसरों को व्यर्थ ही उसमें अपनी टांग नहीं अड़ाना चाहिये। वह बहनों को कुछ नहीं कह सकता था। लेकिन इस मौके पर उसकी मां ने दोनों लड़कियों को झाड़कर बिठा दिया, "ख़बरदार! चोटी काटकर फैंक दूगी अगर तुममें से किसी ने जाने का नाम भी लिया तो।"

अब बहनें भाई की तरफ़ देखने लगीं। भाई ने सिर और आंखों के संकेत से जताया कि वह क्या कर सकता था।

बिचारी सीधी-सादी बहनें समझती रहीं कि भैया बिचारा तो उन्हें ले जाने के लिए तैयार था, मां ने नहीं जाने दिया ।

इन सब बातों से मुक्त होकर उसने घड़ी देखी तो चार बजे थे। साढ़े आठ बजे गाड़ी रवाना होती थी। अभी बहुत समय था। लेकिन वह सशंकित था कि कहीं कोई नयी बाधा न खड़ी हो जाये! इसलिए उसने नौकर को उसी समय तांगा लेने के लिए भेज दिया। मां कहने लगी, "बेटा, ऐसी भी क्या जल्दी है?"

उसने बहाना किया कि गाड़ी में बहुत थोड़ा समय बच रहा है। तांगा आया और वे जल्दी से सामान रखकर तांगे में बैठ गये। मां ने बलाएं ली और दोनों को तांगा चल देने पर भी पुकार-पुकार क़ीमती नसीहतें करती रही।

जब घर से दूर चले आये तो वह हाथ जोड़कर कहने लगा, "भई शुक्र है हज़ार-हज़ार जान छूट ही गयी।"

उसकी पत्नी हंस कर उसके समीप हो गयी। उसने पत्नी की आंखों में आंखें डालकर कहा, "अच्छा अब तुम भी मुझसे बातें छुपाने लगीं?"

"मैंने क्या बात छुपाई?" उसकी पत्नी अज्ञानता ने आंखें झुकाकर बोली।

जगजीत ने पेट की ओर आंख से संकेत किया और वह दोनों हाथों से मुंह छुपाकर रूठ गयी। "आप बहुत बेशर्म है और नहीं तो।"

"हो हो" जगजीत ने कहा, "तुम रूठ गयीं भई तुम्हें मना लेना क्या मुश्किल है। अभी दो पैसे के गोल गप्पे खिलाऊँ तो खुश हो जाओगी।"

इस पर उसकी पत्नी उंगलियों के बीच से देख-देख कर मुस्कुराने लगी।

"अच्छा वाक़ई बताओ तो क्या खाओगी? दही बड़े, पकौड़े, कुल्फ़ी, रसगुल्ले, आइसक्रीम, बताओ मेरी चटोरी बिल्ली।"

"खाने बैठ जायेंगे तो गाड़ी जो चल देगी।"

"हा हा......आ गयी चकमे में......भई अभी तो बहुत वक़्त पड़ा है। मैंने तो यों ही गप उड़ा दी थी। सोचा जरा इन लोगों से जान छुड़ा कर भागें।"

वे दोनों एक बहुत बड़े होटल में घुस गये। वह जान बूझ कर पत्नी को उस होटल में ले गया था। अब वह लैफ़्टीनैंट हो गया। वह चाहता था कि ज़रा पत्नी भी उसकी शान देख ले। वे एक अलग बॉक्स में बैठ गये। उसकी पत्नी के स्फूर्त और सुंदर मुख पर आश्चर्य का भाव कितना मोहक लग रहा था। पहले भी उसने होटलों में खाना खाया था लेकिन ऐसे शानदार होटल में आने का संयोग नहीं हुआ था।

जगजीत सिंह ने बटन दबाया, घंटी बजी। बैरा हाज़िर हुआ। उसने आर्डर दिया।

आज वह बहुत खुश था। अपनी प्रिय पत्नी के साथ न कभी पहले यात्रा की थी, न वे अकेले किसी स्थान पर जाकर रहे थे। फिर शिमला जैसे स्थान पर उन्हें कितना आनंद आयेगा।

वह इस क्षण से लेकर छुट्टियां खत्म होने के अंतिम क्षण तक के बीच का समय आह्लाद और उन्मुक्तता के साथ बिताना चाहता था। आज सुबह से ही वह विचित्र उत्फुल्लता में घूमता रहा। वह समझने लगा कि यह भी वाह गुरु काल पुरुष की कृपा थी कि सब मुश्किलें आंख झपकते ही दूर हो गयीं।

खाना आया और वे आपस में बातें करने लगे। उसकी पत्नी की रसीली आवाज़ उसके कानों में अमृत टपकाती थी। वह भी तो अत्यंत प्रसन्न थी। मैना की तरह चहक-चहक कर बातें कर रही थी। उसकी बचकाना हरकतें और भी ज़्यादा आंनदित कर रही थीं।

वह बोली, "क्यों जी? हम गुरुद्वारे में ठहरेंगे जाकर?"

"नहीं माई डार्लिंग। हम किसी शानदार होटल में ठहरेंगे। गुरुद्वारे का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये। गुरुद्वारे पर बोझ डालने के बजाय हमें अपने हाथ से वहां दान करना चाहिए।"

फिर उसने पर्वतीय स्थानों के बारे में सब बातें बतायीं, "वहां मकान ऊपर-नीचे बने हुए होते हैं। जब बारिश होती है तो वहां अपने शहरों की तरह कीचड़ नहीं होती

बल्कि पानी तुरंत बह जाता है। सड़कें धुलकर साफ़ हो जाती हैं......वहां ज़मीन से बहुत ऊंचे हो जायेंगे समझी......ये बादल जो आसमान पर नज़र आते हैं हमारे नीचे नज़र आयेंगे.....हां।"

उसकी पत्नी ये बातें सुनकर बहुत हैरान हुई। खाना खाने के बाद वे दोनों खुश-खुश बातें करते हुए स्टेशन की ओर चल दिये। तांगे से सामान उतरवाकर कुलियों के हवाले किया। अभी गाड़ी जाने में आधा घंटा बाकी था। और उसने सैकंड क्लास के दो टिकट ख़रीद लिये।

युद्ध के कारण भीड़-भाड़ बहुत ज़्यादा थी। इसलिए वे दोनों तुरंत प्लेटफ़ार्म की ओर चल दिये। पत्नी पति के पीछे-पीछे चल रही थी। उसका हृष्ट-पुष्ट पति उसकी अगुवाई कर रहा था। गाड़ी ठसाठस भरी हुई थी। सैकंड क्लास के सिर्फ़ एक डिब्बे में एक अंग्रेज़ के सिवा और कई नज़र न आता था।

जगजीत सिंह दरवाज़ा खोल कर अंदर जाने लगा तो अंग्रेज़ उठकर दरवाज़े पर आन खड़ा हुआ। "किसी और डिब्बे में बैठिए जाकर।"

वह बहुत हैरान हुआ, "और कोई डिब्बा ख़ाली नहीं है।"

"ख़ैर इस डिब्बे में नहीं बैठने दूंगा।"

"क्यों, यह क्या रिज़र्व हो चुका है?"

अंग्रेज़ ने नथुने फुलाकर कहा, "रिज़र्व ही समझ लो।"

जगजीत सिंह बहुत परेशान हुआ। उसने इधर-उधर देखा, कहीं भी 'रिज़र्व' लिखा न दिखाई दिया। "यह रिज़र्व नहीं है।" यह कह कर वह भीतर प्रवेश करने लगा। तो साहब ने फिर रास्ता रोक दिया। इस बात पर कुछ तू-तू मैं-मैं हो गयी। कुछ लोग भी जमा हो गये। स्टेशन का बाबू भी आ निकला। जगजीत सिंह ने बाबू को सारी बात समझाई। साहब ने चिल्ला कर कहा, "मैं इसे अपने डिब्बे में सफ़र करने की इजाज़त नहीं दे सकता।"

बाबू ने कहा, स्टेशन मास्टर से कहिए। जगजीत सिंह स्टेशन मास्टर के पास गया। उसने आकर साहब को समझाया लेकिन साहब ने सौ सवालों का एक जवाब 'न' में दिया। पुलिस के कांस्टेबल चुपचाप इधर-उधर खिसक गये।

स्टेशन मास्टर सुपरिंटेंडेंट पुलिस को फ़ोन किया। वह दफ़्तर में नहीं था। उसने भी लाचारी दिखाई। आख़िर हो भी क्या सकता था।

गाड़ी चलने में पांच मिनट बाकी रह गये थे। जगजीत सिंह प्लेटफ़ार्म पर खड़ा था। कुली सामान ज़मीन पर रखे चुपचाप बैठे थे। उसकी सुरमई आंखों वाली पत्नी बड़ी व्यग्रता से उसकी ओर देख रही थी। साहब खिड़की के पास बैठा निश्चिंत भाव से चुरट पी रहा था।

मातृभूमि के सीने पर मातृभूमि की रेलगाड़ी खड़ी थी और मातृभूमि के एक बेटे को इस धरती से हज़ार मील पर रहने वाला अजनबी गाड़ी में प्रवेश नहीं करने देता था। उसका यह उचित अधिकार कोई क़ानून वापस नहीं दिला सकता था। जगजीत सिंह का शरीर तंग वर्दी में जकड़न-सी महसूस करने लगा......अचानक उसने कुलियों को सामान उठाने के लिए कहा और पत्नी को साथ लेकर गाड़ी के उसी डिब्बे की ओर बढ़ा। इससे पहले कि साहब उठकर उसका रास्ता रोके, वह फुर्ती से दरवाज़ा खोलकर भीतर घुस गया। साहब की गर्दन पकड़ी और उसकी टांगों में हाथ दिया और उछाल कर प्लेटफार्म पर फेंक दिया। पत्नी का हाथ पकड़ कर उसे सीट पर बिठाया। कुली सामान लेकर अंदर आ गये और साहब का सामान उठा-उठा कर फलेटफार्म पर फेंकना शुरू कर दिया।

साहब गाड़ी की तरफ़ लपका। जगजीत ने गाड़ी से नीचे उतर कर उसे रास्ते में ही जा लिया। उसकी गेहुआं गाल हाथों की पकड़ में साहब की टाई आ गयी और दूसरे फ़ौलादी हाथों के दो ज़न्नाटे के थप्पड़ उसके मुंह पर पड़े। साहब की बत्तीसी हिल गयी। और उसे दिन में तारे नज़र आने लगे। वह थप्पड़ खाकर लड़खड़ाता हुआ पीछे की तरफ़ अपने खुले सूटकेस में जा धंसा......इस कशमकश में उसके सिर से हैट गिर कर जो लुढ़का तो एक बाज़ारी कुत्ता उसे मुंह में दाब कर ले भागा।

इसके बाद साहब को आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई, ज्यों ही जगजीत सिंह ने पायदान पर पांव रखा, गाड़ी चल दी।

वेबले 38

शहर का वह हिस्सा जिसे पहले वाक़ई शहर का हिस्सा कहा जा सकता था, अब बुरी तरह बर्बाद हो चुका था। टूटे-फूटे मकान दूर से देखने वालों को बिल्कुल ग़ैर आबाद खंडहर दिखाई देते थे। और अगर इन टूटी-फूटी गलियों में पश्चिमी पंजाब से आये हुए शरणार्थियों की चहल-पहल न होती तो शायद दिन के समय भी आदमी को वहां जाने में डर महसूस होता।

कुछ मुद्दत पहले यहां के मूल निवासियों यानी मुसलमानों को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा था। उन पर जो बीती थी, उसकी कहानी इन खंडहरों की ज़बानी सुनी जा सकती थी। दंगों के बाद जबकि मूल निवासी दूसरी जगह जा चुके थे, और अभी शरणार्थी आन कर बसे नहीं थे इस बस्ती पर विकट आपदा आयी थी। मकान गिराये गये थे, जलाये गये थे और तो और इनकी ईंट से ईंट बजाई गयी थी। रहने वाले आदमियों के बिना दरवाज़े की चौखटें मानो कि आश्चर्य से मुंह खोले कभी वापस न आने वाले लोगों की बाट जोह रही थीं। धूल से ढके आकाश पर गिद्ध मंडराते थे। खुजली के मारे हुए कुत्ते कोने-कथरे सूंघते फिरते थे और भूली भटकी हुई गायें ईंटों के ढेर में ठोकरें खाती फिरती थीं।

इस महाविनाश में अगर एक जाति विशेष के मकानों को अपूर्णीय क्षति पहुंची थी तो दूसरी ओर अन्य जाति के इक्का-दुक्का मकान सुरक्षित खड़े हुए थे।......इन्हीं मकानों में से एक मकान सरदार बुध सिंह का था।

इस क़दर अच्छे नाम वाले हज़रत बेतुके डील-डौल के मालिक थे। छोटा क़द, कद्दू-सा सिर, छोटी-छोटी नुकीली आंखें, मोटा-ताज़ा बदन, लम्बी लहराती हुई दाढ़ी सुबह, शाम पाठ करते, माला जपते, यों तो माला हर समय कलाई से लिपटी रहती लेकिन भोर में जब वह सुखमनी साहब का लम्बा पाठ करने लगते तो घर के लोगों की नींद उखड़ जाती। आप गुरूद्वारे में भी पाठ करवाते रहते थे। दूसरों को भी पाठ की शिक्षा देते थे।

दंगों के ज़माने के क़िस्से बड़े दर्दनाक लहजे में दोहराते थे कहते हैं। यह सारी आबादी मुसलमानों की थी। बस आबादी के एक सिरे पर हम लोगों के घर थे।

इसीलिए उन दिनों उन्हें अपना मकान छोड़कर हिन्दू महल्ले में जाना पड़ा था। शहर में उनके कई और भी मकान थे। लेकिन वे सब किराये पर उठे हुए थे। अतएव उन दिनों उन्हें बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा।

इधर जब पांसा पलटा तो उन्होंने भयभीत होकर भागते हुए मुसलमानों की हज़ारों की जायदादें कौड़ियों के मोल खरीद लीं और फिर धनवान शरणार्थियों के हाथ ज़्यादा से ज़्यादा दामों पर बेच कर जी खोल कर मुनाफ़ा कमाया। पाठ और अधिक तीव्रता के साथ करने लगे और उनके मुखमंडल पर ब्रह्मज्ञान की आभा दिखाई देने लगी।

दूर तक फैले हुए खंडहरों के एक सिरे पर खड़े हुए कुछ ठीक-ठाक और सुरक्षित मकान एक विचित्र हास्यास्पद दृश्य प्रस्तुत करते थे। इनमें सबसे अच्छा मकान बुध सिंह का था। दो मंज़िले का निचला हिस्सा उन्होंने किराये पर उठा रखा था और ऊपर वाली मंज़िल पर उनकी अपनी रिहायश थी। उनके घर के पास ही रेल का पुल था। दिन-रात रेलगाड़ियां उधर से गुज़रती थीं। ऐसे मौक़ों पर इंजन की सीटियों और गाड़ी की गड़गड़ाहट का शोर इतना बढ़ जाता कि कान पड़ी आवाज़ सुनायी नहीं देती थी।

शरणार्थियों ने घबराहट में जो काम सामने आया, शुरू कर दिया। एक के बाद एक विपत्ति झेलने के कारण उनका मन उद्विग्न हो उठा। कुछ लोगों के आत्मीय जन मर-खप गये थे। कुछ अनाथ और निराश्रित हो गये थे। इस प्रकार के अनगिनत ख़ानदानों में से एक ख़ानदान बिसाखा सिंह का भी था।

बिसाखा सिंह पश्चिमी पंजाब के लायलपुर जिले का एक मामूली ज़मींदार था। उसके दो लड़के थे और तीन लड़कियां। वह खुद सांवलापन लिये हुए गेहुंआ रंग का ऊँचा-पूरा और मज़बूत आदमी था। उसके हाथ सचमुच हल की हत्थी थामने के लिए बने थे। उसकी शादी छोटी उम्र में ही हो गयी थी। इस प्रकार वह अभी सैंतीस वर्ष का था और उसका लड़का उन्नीस वर्ष का हो चुका था। उससे छोटा लड़का सतरह वर्ष का। लड़कियों में सबसे बड़ी पंद्रह की थी। छोटी बहनें भी चार-पांच बरस तक जवान हुआ चाहती थीं।

पहले-पहल अपने घर से निकल कर उन्हें कैम्प में दुबके रहना पड़ा। न कुछ खाने को न पीने को। न तन ढाँपने को कपड़ा और न सिर छुपाने को कुटिया। इससे भी कहीं त्रासद यह कि हर समय प्राणों का भय मन में समाया रहता। पल-पल जीवन बिताना बहुत कष्टप्रद साबित हो रहा था। यह क़ाफ़िला बड़ी दरिद्रता की हालत में पूर्वी पंजाब की ओर रवाना हुआ। आबाल-वृद्ध और स्त्री-पुरुष थके-हारे और भूखे-प्यासे जानें हथेली पर धरे अपनी मंज़िल की ओर बढ़ रहे थे। क़ाफ़िले में कई बहादुर आदमी भी थे। जो मौक़ा पड़ने पर बड़े साहस से लड़ते थे लेकिन भूख और प्यास के मारे हुओं का लड़ना-भिड़ना भी क्या था? कभी-कभी अंधेरी रातों को रूखी-सूखी खाकर लोग खेतों की मेढ़ों पर ही करवट बदलकर ऊंघने लगते। जाबजा सुलगती हुई आग

में से चिंगारियों की फुलझड़ियां छूटने लगतीं। कोई आंखों से अंधी बुढ़िया पोपले मुंह से कांपती हुई बेसुरी आवाज़ में शबद गाने लगती तो अचानक कोलाहल-सा बढ़ जाता। दंगाई रात का हमला कर देते। वे बेखटके डेरे के अंदर बढ़ आते। तारों की मद्धम रोशनी में तेजी से बढ़ते और उचकते हुए साये दिखाई देते। अफ़रा-तफ़री मच जाती। जब हमलावर बची-खुची गठड़ियां और पोटलियां छीन लेने की कोशिश करते तो कई औरतों के रुदन और विलाप से आकाश गूंज उठता लेकिन तारे चुपचाप आंखें झपका-झपका कर तमाशा देखा करते। धार्मिक नारों, 'मारो-मारो' का शोर और पहरेदार सिपाहियों की बंदूकों की तड़ातड़ की आवाजें धीरे-धीरे मद्धम पड़ जातीं। विवश और असहाय कराहती हुई स्त्रियां और घायल आदमियों के सुते हुए चेहरे बाक़ी रह जाते। यह क़ाफ़िला पके हुए फोड़े की भांति था जिसे बार-बार चर्के दिये जाते थे और जो सदा रिसता रहता था।

बिसाखा सिंह ने खुद भी मौक़ा पड़ने पर लड़ने-भिड़ने से मुंह नहीं मोड़ा। उसे और उसके दोनों लड़कों के भी बड़ी संख्या में घाव लगे थे। अंततः जब उन्होंने यूनियन की सीमाओं में प्रवेश किया तो दम में दम आया। वहां उन्हें दूध और जलेबियां खाने को मिलीं। आलू-कचौरिया से भी सत्कार हुआ। इस समय उन्हें इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि अब वे आराम की नींद सो सकेंगे। अब उनका कोई दुश्मन रात का हमला नहीं करेगा। अब उनकी बहू-बेटियों की आबरू कोई नहीं लूटेगा। अब उनकी जानो-माल की पूरी-पूरी सुरक्षा की जायेगी।

हिंदू यूनियन की सीमाओं में प्रवेश करते ही क़ाफ़िला माला के दानों की भांतिं बिखरने लगा। कुछ लोग रास्ते में जो शहर पड़ते, वहां रुक जाते। फ़रारशुदा मुसलमानों के मकानों पर क़ब्ज़े होने लगे। बिसाखा सिंह ने भी बुध सिंह के पड़ोस में एक बेहद टूटे-फूटे मकान में डेरा डाल लिया। यह मकान दर अस्ल इस क़दर बुरी हालत में था कि इस समय तक किसी को उस पर क़ब्जा जमाने का ख़्याल तक नहीं आया था। चूंकि और कोई मकान खाली नहीं था इसलिए बिसाखा सिंह ने उसे ग़नीमत जाना।

यह अजीब क़िस्म की बस्ती थी। लुटे हुए अभागे लोगों के छोड़े हुए मकानों में दुर्दशाग्रस्त भाग्य के मारे और बेघर लोग बस रहे थे। विश्व के इतिहास में मनुष्यों के दो समुदायों ने इतना भयानक मज़ाक़ कभी नहीं किया होगा।

मनुष्य के शरीर का अस्थि-पंजर बहुत भयावह और सीख देने वाला होता है लेकिन जली-फुंकी नष्ट-भ्रष्ट बस्ती का दृश्य भी कुछ कम डरावना और सीख देने वाला नहीं है।

ऊंची-नीची, ऊबड़-खाबड़ गंदी गलियों में सुते हुए चेहरों वाले निराश्रय, निरुपाय और सशंकित लोग दर-बदर घूमा करते थे। यह बस्ती दिन के किसी क्षण में भी सुख की अनुभूति नहीं कराती थी। रात की मैली रोशनी में यह एक लम्बे-चौड़े फैले हुए

कब्रिस्तान की भांति लगती थी। सुबह के समय सूर्य की किरणें जब अंधेरे की चादर को चीर देतीं तो मानो समूची बस्ती अपने मुख से 'त्राहि माम! त्राहि माम' पुकारने लगती थी। सारा-सारा दिन बहके-बहके लोग इधर-उधर घूमा करते थे। कुत्ते भौंकते, मरियल बिल्लियां हड्डियां भंभोड़तीं और मक्खियां भिनभिनाया करतीं। शाम के समय तन्नूर और चूल्हे जलते। पहले तो धुंए की पतली-पतली लकीरें ऊपर को उठने लगीं और फिर धुंए के खंभे बन-बन कर बोझल बादलों की भांति आसमान के इस सिरे से उस सिरे तक फैल जाते। इस फैली-फैली कालिमा के आवरण में यह बस्ती और भी अधिक तुच्छ और हीन दिखाई देने लगती।

पहले-पहल बिसाखा सिंह ने वाह गुरु का हज़ार-हज़ार शुक्र अदा किया। अंततः यह अकाल पुरुष की ही कृपा थी कि वह अपने सारे कुनबे समेत सारी कठिनाइयों से सकुशल निकल आया था। धीरे-धीरे आजीविका की चिंता सताने लगी। कुनबे का पेट पालने का सवाल सामने रहने लगा। यों तो हर आदमी के लिए जमा-जमाया काम छूट जाने के बाद नये सिरे से काम शुरू करना बहुत ही कठिन समस्या थी। लेकिन बिसाखा सिंह जैसे लोगों के लिए जो पहले खेती-बाड़ी करते थे और जो कोई अन्य हुनर नहीं जानते थे, यह लगभग एक दुर्निवार समस्या बन कर रह गयी थी। और फिर बिना पूंजी के तो कुछ भी नहीं हो सकता था। यहां तक कि नौबत मज़दूरी तक आन पहुंची। इसके बावजूद घर के ख़र्च पूरे नहीं होते थे। जान-पहचान वालों के सामने इस प्रकार का काम करने में और भी हेटी होती थी। क्योंकि पहले वह उनके सामने एक सम्मानजनक जीवन बिताया करता था। किस्सा यों है कि गाड़ी चर्ख-चूं करती हुई घिसटती जा रही थी।

बस्ती में पहुंचते ही गुरुद्वारे में सरदार बुध सिंह से उसकी भेंट हुई। यों ही बुध सिंह को उसकी बातों में दिलचस्पी पैदा हो गयी। शाम के समय बिसाखा सिंह के यहां चला जाता और उन्हें उन दुःखों के क़िस्से सुनाता जो उन्हें रास्ते में झेलने पड़े थे। बिसाखा सिंह के मन में एक क्षीण-सी आशा थी कि उसे बुध सिंह से कुछ न कुछ लाभ ज़रूर पहुंचेगा। इसीलिए उसने उसके यहां आवागमन जारी रखा।

बिसाखा सिंह के मन में बुध सिंह के प्रति बड़ा सम्मान था। एक तो बुध सिंह सूरत ही से बड़ा गुरमुख दिखाई देता था। उसका वह चौड़ा माथा, रोशन आंखें, सुदर्शन लम्बी दाढ़ी जिसके ज़्यादातर बाल सफ़ेद हो चुके थे, प्रेमरस में पगी हुई उसकी वे मीठी-मीठी बातें और उस पर तुर्रा यह कि सुबह व शाम पाठ किया करता था। देखने में ऐसा लगता था उसे सांसारिक माया-मोह से लेशमात्र सरोकार नहीं है। वह बिसाखा सिंह की व्यथा-कथा को बड़े ध्यान से सुनता। मालूम होता था कि बिसाखा सिंह का दुखड़ा सुन-सुन उनका दिल मोम की भांति पिघला जा रहा है। इस पर बिसाखा सिंह का दिल भर आता और रुंधे हुए कण्ठ से अपने लहलहाते हुए खेतों का ज़िक्र करता।

जहां हर साल सुनहरी बालियां हवा में झूमा करती थीं। वह गेंहू के उन भंडारों की चर्चा करता जो उसके घर के भीतर भड़ोलों में ठसाठस भरे रहते थे। अपने बैलों, अपनी भूरी और काली भैंसों, अपने मकान—ग़रज़ हर चीज़ की कहानी सुनाता। प्रकट में बुध सिंह बहुत प्रभावित दिखाई देता था। वह आदमी जिसकी बाबत कहा जाता था कि उसके पास लाखों रुपया नक़द मौजूद है, मकान है, कारख़ाने हैं लेकिन बिसाखा सिंह की बातें सुनने के बाद वह बड़ी गंभीर मुद्रा में सिर हिलाता और कहता, "बिसाखा सिंह जी पाठ किया करो।"

अतएव बिसाखा सिंह ने खूब पाठ करने शुरू कर दिये। खुद भी किये और पत्नी व बच्चों से भी करवाये। लेकिन जब इनका कुछ नतीजा न निकलता तो बिसाखा सिंह कहता, "सरदार साहब जी देखिए जवान लड़कियों का भी दिल पर किस क़दर बोझ होता है। संतो बड़ी हो गयी है। ऊपर से कलजुग का ख्याल कीजिए। मेरे पास तीन-चार सौ रुपया भी हो तो मैं किसी न किसी तरह बड़ी लड़की के बोझ से मुक्त हो जाऊं।"

"वाह गुरु! वाह गुरु!! " बुधसिंह जवाब देता, "बिसाखा सिंह जी नाम जपा करो नाम! नाम में बड़ी शक्ति है।"

बिसाखा सिंह ने नाम जपना शुरू किया। खूब जी भर के नाम जपे। यहां तक कि एक माला भी ख़रीद डाली। हर समय उंगलियों में मनके घूमते रहते थे। एक पहर रात बाकी होती कि वह जाग उठता। स्नान करता और फिर एक टांग पर खड़ा होकर माला जपने लगता......सारा दिन काम-काज की तलाश में मारा-मारा फिरता। बेटे अलग ख़्वार होते थे, लेकिन नतीजा वही सिफ़र का सिफ़र।

बिसाखा सिंह कहता, "महाराज जी! अगर मेरे पास कहीं से पांच सौ रुपया भी आ जाये तो मैं कोई छोटी-सी दुकान ही खोल डालूं।"

जवाब मिलता, "बिसाखा सिंह जी! गुरुद्वारे जाया करो। गुरू के घर में क्या नहीं है, जो मांगो सो मिलेगा। गुरु के घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है ख़ालसा जी!....लेकिन श्रद्धा होनी चाहिये। बिना श्रद्धा के कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अजी बाबा अभीख सिंह जी कह गये हैं कि श्रद्धा अवश्य फलवती होती है। चाहे वह फल दो, चार, दस, बीस, पचास बरस बाद ही क्यों न मिले......लेकिन श्रद्धा का फल मिलता ज़रूर हैं......"

अतएव अब गुरुद्वारे में माथा टेका जाने लगा। उसकी पत्नी उसकी इन चेष्टाओं से परेशान हो गयी। एक दिन बिसाखा सिंह ने आंखें मूंद कर बड़े प्रेम से कहा, "संतो की मां! श्रद्धा का फल ज़रूर मिलता है। चाहे दो, चार, दस, बीस या पचास बरस के बाद ही मिले।"

यह सुनकर दुःखों की भरी स्त्री ने अचानक अपनी मैली-मैली आंखें ऊपर उठाई, पहले कुछ क्षणों तक तो उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। फिर बड़ी

कठिनाई के साथ रूँधे हुए कण्ठ से बोली, "दस बीस, पचास बरस......?" और फिर उसकी कांपती हुई आवाज़ बंद हो गयी सिर हिला और उसके होंट कांप कर और नथुने फड़क कर रह गये......।

इसके बाद कुछ कहने-सुनने की ज़रूरत ही नहीं रही थी। क्या संतो और उसकी बहनें चालीस-पचास बरस तक श्रद्धा के फल का इंतज़ार कर सकती थीं? क्या उसके नौजवान बच्चे श्रद्धा के फल के इंतज़ार में बूढ़े न हो जायेगें? क्या दुनिया के किसी इनसान की इतनी बिसात भी है कि वह दस,बीस, चालीस....

बिसाखा सिंह के मस्तिष्क में खलबली-सी मच गयी।

उस रात दीये की मद्धम रोशनी में वह टांगें समेटे दोनों घुटनों को बाजुओं के कलौंचे में लिये दीवार से पीठ लगाये अपने विचारों में देर तक डूबा रहा। उसकी घनी भौंहों के नीचे काली पुतलियां बड़ी जिज्ञासा के साथ आस-पास का जायज़ा ले रही थीं। दीये की थरथराती लौ में घर के लोग हिलती-डुलती छायाओं की भांति दिखाई देते थे। दृष्टि की अंतिम सीमा तक रात के धुआं-धुआं से वातावरण में टूटे-फूटे मकानों के सिलसिले एक भयावह दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। जिस मकान में वह खुद रहता था उसका अधिकांश भाग गिर चुका था। शायद दंगाइयों ने ही उसे आग लगाई होगी। दीवारें और छत की कड़ियां कुछ जल जाने के कारण और धुएं लगने से बिल्कुल काली पड़ गयी थीं। घर में रहने वालों को हर समय उसके गिर जाने का खटका बना रहता था। उस दिन आटे के अभाव में खिचड़ी पकाई गयी थी और घर के सभी लोग उसी पर संतोष करने के लिए विवश थे। उसकी ऊपर-तले की तीन लड़कियां—वह उन्हें टकटकी बांधकर खोयी-खोयी आंखों से देखने लगा जैसे उसने उन्हें पहले कभी न देखा हो।......ये सूरतें कैसी हैं, कौन हैं, कहां से आयी हैं और सबसे अहम सवाल यह था कि वे जायेंगी कहां? उसके दोनों बेटे नंगे सिर बैठे खिचड़ी खा रहे थे। बार-बार निवाले के लिए मुंह फाड़ते थे। उनके जूड़ों में से निकल कर ऊपर को लहराते हुए बालों के गुच्छे मुर्ग़े की कलग़ी की भांति दिखाई देते थे। वे लगातार मुंह हिलाये जा रहे थे। बिसाखा सिंह अजब संवेदन शून्यता की स्थिति में था जैसे उसका इस वातावरण से कोई संबंध ही न हो। जैसे वह सबसे ऊपर और अलग बैठा इस दुनिया के खेल देख रहा हो। लेकिन वह ज़्यादा देर तक इस सपने की मनःस्थिति में खोया नहीं रह सका। उसे जल्दी ही इस बात का अहसास हो गया कि सब कुछ सपना नहीं था और न यह उनसे अलग था। कितनी विचित्र बात थी कि काले कोसों तक फैली हुई ज़मीन पर गेहूँ के सुनहरी बालियों से लदे हुए पौदे खड़े थे। विस्तृत आकाश के नीचे वाह गुरु अकाल पुरुष की विस्तृत धरती मौजूद थी लेकिन उसके बंदों का न खाने को अनाज मिलता था और न सिर छुपाने को जगह मयस्सर आती थी।......आश्चर्य! बुध सिंह के पास इतना रुपया है, मकान हैं, कारखाने हैं, बेफ़िक्री है, आनंद है.....

दूसरे दिन शाम के समय बिसाखा सिंह बस्ती में छुट्टा घूम रहा था। उसके मन में अजब झंझट थी। घरेलू परेशानियां दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थीं। उनका कोई हल दिखाई नहीं देता था। दंगों से पहले उसे कभी गहरे सोच-विचार की ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई थी। उसे याद था कि वे दो भाई थे एक बहन। उनका बाप उन सबको बहुत प्रेम करता था। उसका लड़कपन और जवानी के शुरू के दिन बड़ी बेफ़िक्री में बीते थे। खेल-कूद, गीत और अलगोज़ों और इश्क़-मुहब्बत के सिवा उसने किसी चीज़ के बारे में सोचा ही न था।

जब वह जवान हो गया तो बेफ़िक्री के कारण और कुछ न सूझा तो उसने चोरों और डाकुओं से याराना गांठा, दो-तीन वर्ष इन्हीं गतिविधियों में बीत गये। जब बाप ने देखा कि बेटा सीधे रास्ते से भटक कर अपनी ज़िंदगी ख़राब करने पर तुला हुआ है तो उसने उसकी शादी कर दी। वैवाहिक जीवन के बंधन कुछ ऐसे मज़बूत साबित हुए कि वह ज़िम्मेदार आदमियों का-सा जीवन बिताने लगा।

शादी के बाद बाल-बच्चे भी हुए। जीवन के कठिन उतार-चढ़ाव से होकर भी गुज़रना पड़ा। लेकिन उसे आज तक ऐसा कटु अनुभव नहीं हुआ था कि इनसान पेट की रोटी और तन के कपड़े के लिए ईमानदारी से काम करना चाहे तो उसे काम ही न मिले। आधुनिक आर्थिक जटिलताएं उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आती थीं। उसे ये सब चीज़ें नितांत अस्वाभाविक लगती थीं। लेकिन उसका मस्तिष्क इन तमाम समस्याओं का हल ढूंढ निकालने में अक्षम था।

वह गली-गली घूमता फिरा। गंदी-गंदी गलियां जहां रुके हुए पानी की नालियों से ऐसी दुर्गंध उठती थी कि दिमाग़ फटा जाता था। जाबजा गली-सड़ी सब्जियां, प्याज़ के छिलकों और कूड़ा-करकट के ढेर दिखाई देते थे। ऊंची-नीची गलियों में जाबजा टूटे-फूटे मकानों की ईंटें, मिट्टी, चूना और रोड़ी फैली हुई थी। मटियाले रंग की भद्दी और गंदी दीवारें मन में जुगुप्सा जगाती थीं। फटे-पुराने चीथड़े लटकाये छोटे-बड़े बच्चे चीख़ते और चिल्लाते हुए एक-दूसरे से आगे पीछे भाग रहे थे। मकानों में ज़्यादा तादाद ऐसे मकानों की थी जिनके दरवाज़े तक जल गये थे। उनके भीतर सेहन के दृश्य साफ़ दिखाई देते थे। ढीली रस्सियों वाली चारपाइयां, उन पर बैठी मैले-कुचैले दुपट्टों के आंचल उड़ाती हुई औरतें और उनके भूख से बिलखते हुए बच्चे जो चीख़-चीख़ कर मांओं की छातियों को टटोलते थे हालांकि उन छातियों में अब दूध कहां रह गया था! कई जगह हल्की-हल्की आंच पर तीन-तीन दिनों की बासी रोटियां उबाली जा रही थीं।

घूम-फिर कर बिसाखा सिंह, बुध सिंह के मकान के आगे पहुंच कर रुक गया।

शाम के समय बुध सिंह के दर्शन करना उसकी दिनचर्या का अंग था। बुध सिंह को (जिसे घर में बड़े सरदार जी के नाम से पुकारा जाता था।) गुरुवाणी की बातें करने और व्याख्यान देने का बड़ा चस्का था। अतएव वह उन लोगों से बहुत प्रसन्नचित्त

होकर मिलता था जो उसके आध्यात्मिक ज्ञान के क़ायल होकर उसकी बातें बड़ी निष्ठा से सुनना अपना कर्तव्य समझते थे। ग्रंथ साहब में से श्लोक पढ़े जाते और ज्ञान और मोक्ष की नदियां बहाई जातीं।

उसने ड्योढ़ी में से ऊपर को जाती हुई चौड़ी और साफ़ सुथरी सीढ़ियों की ओर देखा। जो अभी-अभी धोई गयी थीं। सीढ़ियों के ऊपर वाले दरवाज़े में से क्षितिज पर चमकते हुए सूरज की तेज़ रोशनी दिखाई दे रही थी। रोशनी का झरना था कि निचली सीढ़ियों तक बहता चला आ रहा था।

यह दृश्य देखकर उसकी आंखें चमत्कृत हो गयीं।

नौकर से मालूम हुआ कि बड़े सरदार जी घर में ही हैं। वह एक-एक क़दम सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। ऊपर के दरवाज़े की दाईं ओर सारा ख़ानदान रहता था और बाईं ओर के भाग में जिसमें दो कमरे और सेहन था, बड़े सरदार साहब रहते थे। बड़े भाग से छोटे भाग तक एक चौड़ा रास्ता था जिसके दोनों ओर फूलों के गमले धरे थे।

बिसाखा सिंह ऊपर पहुंचा तो उस समय सरदार साहब सेहन में चबूतरे पर आसन बिछाये विराजमान थे। पास ही चौकी पर पानी का लोटा और अंगोछा धरा था जिससे मालूम होता था कि अभी-अभी पाठ से निवृत्त हुए हैं.....सूर्य क्षितिज तक पहुंचा हुआ था और बादल का एक टुकड़ा उसे अपने आंचल में छुपा लेने की कोशिश कर रहा था।

वह आगे बढ़ा तो सरदार साहब ने पांव की आहट पाकर पीछे की ओर घूम कर देखा। उसने सतश्री अकाल का नारा लगाया। सरदार साहब की मूंछों तले होटों पर बड़ी मनभावन मुस्कुराहट पैदा हुई, "आइए आइए, बिसाखा सिंह जी, कहिए क्या हाल है?'

"कृपा है......अपनी कहिए!'

बड़े सरदार साहब ने सिर पर लपटी हुई छोटी पगड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "अभी-अभी रहरास का पाठ किया है।......ज़रा सामने के दृश्य का आनंद उठा रहा था।"

"दृश्य?"

बिसाखा सिंह ने गर्दन उठाकर देखा। उसे कोई ऐसा दृश्य दिखाई नहीं दिया जिससे वह आनंदित हो सकता। धूल से सने हुए वातावरण में टूटे-फूटे जले-भुने मकानों के सिलसिले और उनकी उनकी अंधेरी गंदी गलियों में तुच्छ कीड़ों की भांति रेंगने वाले दुःखी इनसान—इनमें से कोई भी ऐसा दृश्य प्रस्तुत नहीं करते थे जिससे आनंद की अनुभूति की जा सके।.....सचमुच बड़ों की बातें भी बड़ी ही होती हैं!

वह और समीप पहुंचा तो सरदार साहब ने कृपापूर्वक चौकी की ओर संकेत करते हुए कहा, "कड़वी और अंगोछा मुंडेर पर रखकर चौकी पर बैठ जाइए।"

बिसाखा सिंह ने आदेश का पालन किया ।

उसने अपने धूल से अटे हुए टूटे-फटे जूतों की ओर छुपी नज़रों से देखा और धूल से सने हुए टखनों को तहबंद के पल्लुओं से ढ़ांपते हुए पांव समेट लिये।

"वाह गुरु! वाह गुरु!!" सरदार साहब की घनी मूंछों में से आवाज़ निकली, "देखिए सरदार साहब करतार की लीला भी कैसी न्यारी है......मैं दिन-रात सोचा करता हूं कि आख़िर यह जग माया ही तो है। यह मकान, यह ज़मीन, ये आराम भोगने के सब सामान एक दिन धरे के धरे रह जायेंगे। धन्य हैं वे लोग जो रूखी-सूखी खाकर भी वाह गुरु के नाम का सुमरन करते हैं। स्वर्ग भी तो अकाल पुरुष ने ऐसे लोगों के लिए ही बनाया है। हम लोग तो गुनहगार हैं। पापी हैं......हे वाह गुरु......हे वाह गुरु"

इसके बाद उन्होंने एक गुरु भगत की कथा सुनाई। वह साधु था। राम नाम का प्यासा। उसका जी चाहा कि खीर खाये। बुद्धि ने कहा कि मूर्ख, तू साधू है संन्यासी है। तुझे इन व्यंजनों से क्या मतलब? मन नहीं माना तो उसने अपने प्रेमी के घर जाकर खीर खाई। इतनी खाई, इतनी खांई कि मन बस-बस पुकार उठा। लेकिन अब बस कहां? साधू तो मन को सबक़ सिखाना चाहता था।

यह कथा सुनाकर बड़े सरदार साहब ने भोली सूरत बनाई और आंखें मटका कर आकाश की ओर देखा उस समय रक्त की भांति लाल हो रहा था।

पहले जब बिसाखा सिंह उनकी बातें सुनता तो वह समाधि की अवस्था में आ जाता था लेकिन आज उसे ये बातें बड़ी अजीब मालूम हो रहीं थीं। और फिर सरदार साहब के मुंह से ये और भी अनौखी प्रतीत होती थीं। बिसाखा सिंह अब इस मर्म को समझ चुका था कि खाली पेट विस्तृत पाठ करना तो रहा एक तरफ़ इनसान के मुंह से एक शब्द 'वाह गुरु' तक निकलना संभव नहीं है। उसके मन में विचार आया कि इस व्यक्ति के उजले आवरण में हज़ारों हज़ार गरीबों की आकांक्षाओं के खून की लाली बड़ी चतुराई के साथ छुपा दी गयी है।

बड़े सरदार की बातों का सिलसिला जारी रहा।

धुएं के खंभे बस्ती से ऊपर उठना शुरू हो गये थे। वे इकट्ठे होकर बोझल बादलों का रूप लेने लगे थे। मकान के बड़े भाग की ओर से सफ़ेद और उजली दीवारों के सिलसिले में से हंसते, खेलते, बोलते, चहकते बच्चों और औरतों की खनकती हुई आवाज़ें आ रही थीं।

अचानक सरदार साहब बोले, "आइए, बिसाखा सिंह जी अंदर चलें। सर्दी बढ़ती जा रही है।"

सरदार जी कमरे की ओर बढ़े। उनके पीछे चलते हुए बिसाखा सिंह ने घूम कर देखा कि क्षितिज पर अस्त होते हुए सूर्य के सिर पर बदलियों के कुछ टुकड़े मचल रहे

हैं। और रक्त सने संगीन की भांति सूर्य की एक लम्बी किरण धूमिल आकाश के सीने के पार हो गयी।

दो कमरों में से एक में गुरूग्रंथ साहब का प्रकाश किया गया था। उस कमरे में मौत की-सी ख़ामोशी छाई हुई थी। गुरू ग्रंथ साहब ऊंचे चबूतरे पर रंगीन रूमालों में लिपटे हुए थे। उनके आगे दरी पर बिछे हुए रूमाल के दामन में कुछ रंगीन फूल दिखाई दे रहे थे। मक्खियां झलने की चवरी के सफ़ेद बाल घोड़े की अयाल की भांति एक ओर लटके हुए थे। दायें-बायें छोटे-छोटे गुलदान और उनमें बासी घास में कुछ फूल उड़से दिखाई दे रहे थे। चूंकि बिजली वहां अभी नहीं आयी थी इसलिए एक छोटा-सा खूबसूरत लैम्प चौकी पर धरा था।

बड़े सरदार साहब का कमरा भी बड़ा था। फ़र्श पर दरी और दरी पर दो छोटे-छोटे पुराने गालीचे बिछे थे। सरदार साहब उजले बिस्तर पर बैठ गये। सिरहाई के पास रखी हुई तिपाई पर एक बहुत बड़ा और खूबसूरत तेल का लैम्प रोशन था।

बिसाखा सिंह के लिए वही जाना-पहचाना माहौल था। एक तरफ़ दीवार पर गुरु नानक साहब की बड़ी सी तस्वीर थी। जिसमें वे नाम जपते दिखाये गये थे आंखें भक्ति रस में डूबी हुई, हाथ में माला, "नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रैन।" उन्होंने लोगों की गाढ़ी कमाई का रुपया-पैसा नहीं खाया था बल्कि उन्होंने सच्चा सौदा किया था। जिस पर बाप ने उन्हें बुरी तरह पीटा था। धार्मिक प्रसंगों से संबंधित और भी कई तस्वीरें लटकी थीं। एक ओर दीवार के साथ ड्रेसिंग टेबल रखा था जिस पर कंघे, ब्रश, तेल की शीशियां बेतरतीबी से धरी थीं। शायद बच्चे इन्हें वहां भूल गये थे।

सरदार जी ने गाव तकिया बग़ल में दबाया और क़रीब की अलमारी में से हरे रंग की जिल्द वाली एक मोटी-सी किताब निकाली। इसमें विभिन्न भक्तों की रचनाएं टीका सहित संकलित थीं। सरदार जी ने बड़ी तन्मयता के साथ रचनाओं का पाठ शुरू किया। बिसाखा सिंह कुर्सी पर भौंडे अंदाज़ से बैठा प्रकट में सुन रहा था लेकिन वास्तव में उसका इन चीज़ों में ध्यान नहीं था बल्कि कई बार ख़ुद सरदार साहब भी पड़ोस के कुम्हार के घोड़ों की हिनहिनाहट में पंक्ति भूल कर कहीं और जा पड़ते थे।

अंततः यह प्रोग्राम ख़त्म हो गया तो सरदार साहब ने किताब बंद करके तिपाई पर रख दी। आकाश पर इक्का-दुक्का तारे झिलमिलाने लगे थे।

अचानक सरदार साहब बोले, "आज मैंने एक पिस्तौल खरीदा है......"

"पिस्तौल?" बिसाखा सिंह का मुंह खुले का खुला रह गया।

"हां!" यह कह कर सरदार साहब अलमारी की ओर ताकने लगे।

"वह क्यों !" बिसाखा सिंह ने आश्चर्य के साथ पूछा।

सरदार साहब ने कुछ सोच-विचार किया और फिर एक चपटा डिब्बा निकाल कर लाये, "देखिए ना आजकल ज़माना बहुत ख़राब है। दुनिया में किसी का कोई धरम-ईमान

ही नहीं रहा। हम यहां रहते तो हैं। लेकिन हमेशा मन में डर समाया रहता है कि कहीं इधर-उधर के उचक्कों में से कोई घर में घुस आये तो क्या हो।......वाह गुरू......वाह गुरू......आजकल तो लोग बिना बात हाथापाई पर उतर आते है।''

यह कह कर उन्होंने पिस्तौल की झलक दिखाई। बिसाखा सिंह ने देसी बनक के पिस्तौल तो देखे थे लेकिन इतना अच्छा पिस्तौल देखने में नहीं आया था।

सरदार साहब कहने लगे, ''यह वेबले कम्पनी का बना हुआ है। बहुत अच्छी कम्पनी है। स्टैंड्र्ड चीज है......आटोमैटिक है।......अड़तीस बोर है।''

बिसाखा सिंह चुपचाप पिस्तौल की ओर देख रहा था।

''आप जानते ही हैं। आजकल ज़माना ख़राब है, कभी वक़्त-वेवक़्त इधर-उधर आना-जाना पड़ता है। रात को भी इसे तकिये के नीचे रखकर सोया जाये तो खासी बेफ़िक्री-सी महसूस होती है।''

बिसाखा सिंह ने गर्दन थोड़ा आगे बढ़ा कर पूछा, ''क्यों जी इसकी कीमत क्या होगी? ''

सरदार साहब ने लापरवाई से कहा, ''यह तो सस्ता ही मिल गया। अजी आजकल यह चीज बिल्कुल नायाब हो गयी है। मुझे तो चौदह सौ रुपये में मिल गया है।''

''चौदह सौ?......यानी एक हज़ार चार सौ में......''यह कहते बिसाखा सिंह का गला सूख गया। और उसकी आवाज़ भी फंस कर रह गयी।

''यह देखिए......इधर से कारतूसों की मैगज़ीन भीतर डाली जाती है। आठ कारतूस होते हैं एक मैगज़ीन में। एक के बाद दूसरे आठ गोलियां चल सकती हैं।''

बिसाखा ने देखने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। सरदार साहब ने पिस्तौल उसके हाथ में थमाते हुए कहा, ''ध्यान रहे, भरा हुआ है। घोड़ा दबाने की कसर है......उंगली लबलबी से दूर ही रहे......''

इसे लोहे के ठंडे हथियार को पकड़ते हुए पहले तो बिसाखा सिंह का हाथ कंपकपाया और फिर उसने उसे मज़बूती से पकड़ लिया। उसे इधर-उधर घुमाकर देखा। फिर दस्ता मुट्ठी में लेकर उंगली लबलबी पर रख दी।

सरदार साहब ने एकदम हाथ आगे बढ़ाया ''अरे चल न जाये......''

बिसाखा सिंह ने पिस्तौल वाला हाथ तुरंत पीछे हटा लिया और फिर उसने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया। उसके होंटों पर हलकी-सी मुस्कुराहट पैदा होकर धीरे-धीरे ग़ायब हो गयी। उसकी आंखें राख की भांति काली और बुझी हुई दिखाई दे रही थीं। सरदार साहब पीछे हट गये। उन के सिर पर मलमल की पीली-सी छोटी पगड़ी लिपटी हुई थी। दाढ़ी लटक रही थी। आंखों में अबूझे भाव उभर आये थे। उन्होंने सूखे होटों पर हाथ फेरते हुए कहा, ''खामोश क्यों हो? क्या तुम सोच रहे हो कि अगर इस वक़्त तुम्हारे दुश्मन तुम्हारे सामने हों तो तुम उन्हें चनों की तरह भून डालो?''

"कौन दुश्मन?" बिसाखा सिंह ने बेरस आवाज़ में पूछा और फिर समझ गया कि सरदार साहब के इस इशारे का क्या मतलब है?

वह उठ कर कुर्सी से अलग खड़ा हो गया। उसने भारी आवाज़ में कहना शुरू किया, "सुबह से शाम तक अपने माथे से एड़ी तक पसीना बहाने वाला कोई आदमी भी मेरा दुश्मन नहीं हो सकता । अब मज़हब सिर्फ़ दो रह गये हैं– एक दूसरों का ख़ून चूसने और उन्हें लूटने वालों का मज़हब और दूसरा अपना ख़ून देने वालों और लुटने वालों का मज़हब। इसके अलावा और कोई मज़हब नहीं है, आप समझे......आप न मालूम कौन से ज्ञान-ध्यान की बातें करते हैं वे बातें मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आतीं, शायद इसलिए कि मैं भूखा हूं, मेरे बच्चे भूखे हैं, मेरी बीवी भूखी है......मैं ज़िदंगी की छोटी-छोटी ज़रूरत के लिए तरसा हूं......"

फिर वह एकदम चुप हो गया। उसने दोबारा चौदह सौ रूपये वाले पिस्तौल की तरफ़ देखा और नज़रें सरदार जी की नज़रों से मिलायीं।

सरदार जी हड़बड़ा कर चारपाई से उठ बैठे। तिपाई को धचका लगा तो लैम्प नीचे गिर पड़ा......तेल बह निकला और ग़ालीचे को आग लग गयी।

बड़े सरदार साहब को बाहर जाने का रास्ता बिल्कुल बंद था। रास्ते में लम्बा-तड़ंगा बिसाखा सिंह खड़ा था। उसके चौड़े कंधे, मज़बूत टाँगें, मछलियों वाले भरपूर बाज़ू, तनी हुई गर्दन, चौड़े चकले हाथ......यों मालूम होता था कि उसके बदन में नसों के बजाय फ़ौलाद की तारें खींच दी गयी हैं......मज़बूत, मग़रूर, अटल—बड़े सरदार साहब दीवार से चिपके खड़े थे। रंग ज़र्द पड़ चुका था। सांस तेज़ी से चल रही थी। पिलपिला पेट नीचे ऊपर हो रहा था। माथे पर पसीने की बूंदें फूट पड़ी थीं। वह इतने आतंकित हो चुके थे कि गले से कोई आवाज़ तक नहीं निकल पाती थी। वह बुत बने पथराई हुई आंखों से उजड्ड किसान की तरफ़ देख रहे थे।

अचानक शोर-सा मचा। कुम्हारों के गधे ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाने लगे। उधर से रेलगाड़ी गड़गड़ाहट का शोर मचाती पुल पर से गुज़र रही थी और इधर इंजन अपने फुँके हुए सीने से भयानक चीख़ों की आवाज़ें वातावरण में बिखेर रहा था......

ग़ालीचे को लगी हुई आग पल-पल बढ़ती जा रही थी......

पहला पत्थर

– तब शास्तरी और फ़रेसी एक औरत को पकड़ कर लाये जो बदकारी में पकड़ी गयी थी और उसको बीच में खड़ा करके कहा :

–ऐ उस्ताद! यह औरत बदकारी करती पकड़ी गयी है।

–मूसा के क़ानून के मुताबिक़ ऐसी औरत को संगसार करना (पत्थर मारना) जायज़ है। सो तू उस औरत के बारे में क्या कहता है?

–जब वे उससे पूछते रहे तो उसने सीधे होकर उनसे कहा, "तुम में से जिसने कोई गुनाह न किया हो, वह पहले इसको पत्थर मारे।"

(यूहन्ना रसूल : आयत 3, 4, 775)

1

रंदा हाथ से रखकर बाज सिंह ने चौकन्ना तीतर की भांति गर्दन दरवाज़े से बाहर निकाली और एक नज़र शाही अस्तबल पर डाली.....कोई ख़ास चीज़ दिखाई नहीं दी। हालांकि उसे संदेह यही हुआ था कि घुक्की बडे दरवाज़े में खड़ी किसी को आवाज़ दे रही थी। वह यह सोच कर उठा था कि अंधेरे में घुक्की की एकाध चुम्मी ले लेना मुश्किल न होगा।

शाही अस्तबल दरअसल अस्तब्ल नहीं था बल्कि यह सरदार वधावा सिंह की शानदार हवेली थी जिसे बाज सिंह उर्फ़ 'बाज' और उसके चेले-चांटे शाही अस्तबल के नाम से पुकारते थे।

हवेली की सबसे बड़ी विशेषता थी उसका विस्तार। यह हवेली एक बहुत बड़े संदूक की भांति थी। छत की लम्बाई-चौड़ाई इतनी कि पूरी बारात के लिए चारपाइयां बिछाई जा सकती थीं। बड़े-बड़े हाल, कमरे, दरवाज़े आठ-आठ फुट ऊंचे। इन हाल कमरों में मोटे-ताज़े सरदार वधावा सिंह फ़ील पा (पैर हाथी की तरह मोटा होने की बीमारी) के कारण जख़्मी शेर की भांति ऐढ़-ऐढ़ कर चला करते थे। हवेली का एक भाग लेबल प्रिंटिंग प्रेस के लिए सुरक्षित था। इसके अलावा हवेली के भीतर की ओर बड़े दालान

के कोने में नानक फ़र्नीचर मार्ट के मालिक भी सरदार जी ही थे। फर्नीचर का कारखाना यहां था और शोरूम हवेली की दूसरी तरफ़ यानी ठीक सड़क से लगकर।

बाज हैड मिस्तरी था। हाथ की सफ़ाई और हरामज़दगी की 'चुस्ती' के कारण सब कारिंदों का, चाहे वे कारखाने के हों या प्रेस के, वह उस्ताद समझा जाता था।

हवेली के बग़ल में सड़क की ओर कुछ दुकानें थीं। मकान सहित ये सब सरदार जी की संपत्ति थीं। आख़िर उनके बाप-दादे जालंधर शहर ही में रहते आये थे। इसलिए इतनी-सी जायदाद का बन जाना कोई विशेष बात नहीं थी।

जब 1947 ई. के आरंभ में पश्चिमी पंजाब के मुसलमान भाइयों ने अपने कराड़ और सिख भाइयों का नाका बंद कर दिया तो रिफ्यूजियों की एक बड़ी तादाद पूर्वी पंजाब में आ गयी। उनमें घुक्की का बाप देवी दास भी था। वह पेशे से बनिया था। अतएव सरदार जी ने हवेली के बिल्कुल बग़ल वाला दुकान और मकान सदाशयता के साथ उन्हें किराये पर दे दिया और वह वहां पंसारी की दुकान करने लगा। मुसलमान भाइयों ने उसकी पत्नी की हत्या कर दी थी। लेकिन उसका अपनी तीन लड़कियों समेत सही-सलामत निकल आना किसी चमत्कार से कम नहीं था। इनमें सबसे बड़ी का नाम घुक्की, उससे छोटी का नाम निक्की और सबसे छोटी का सांवली था। सांवली अंधी थी।

घुक्की सुंदर और बांकी लड़की थी। मौक़ा पाकर सबसे पहले बाज सिंह ने उसकी चुम्मी ली थी। चुम्बन लेने के सिलसिले में खुल जा सिमसिम तो बाज ने की थी। लेकिन इसके बाद बाक़ी लोगों का भी रास्ता साफ़ हो गया। इसमें अमीर ग़रीब का भेद-भाव नहीं था। सरदार साहब के बेटे, उन बेटों के दोस्त और कारिंदे वग़ैरह सब एकाध चुम्मी की ताक में रहते। यह बात नहीं थी कि उनमें से हरेक का दाव चल ही जाता हो। कई तो दूर ही से चटख़ारे लेने वालों में से थे। क्योंकि घुक्की बक़ौल लेबल काटने वाले चरण के, बड़ी चलती पुर्ज़ी थी पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती थी किसी को। और तो और खुद बाज सिंह जो बड़ा निडर घुसड़म-घुसाड़ क़िस्म का आदमी था, चुम्मी से आगे न बढ़ पाया था। तो भला दूसरों को वह कहां पास फटकने देती थी।

निराश होकर बाज सिंह होंटों पर ज़बान फेरते हुए कारख़ाने के दरवाज़े ही में खड़ा हो गया। उसके बाज़ू कुहनियों तक बुरादे में सने हुए थे। पैंतालीस बसंत देखने के बाद भी उसका शरीर इकहरा और हृष्ट-पुष्ट था। सूरत घिनौनी होने से बाल-बाल बची थी। मूंछों के बाल झड़बेड़ी के कांटों की तरह हो गये थे। होंट मोटे। एक आंख में फूला। ऊंट की कूबड़ की तरह नाक के नथुनों में बाल बाहर निकल आया करते थे जिन्हें वह चिमटी से खींच डालता। आज से दस वर्ष पहले उसकी पत्नी मर गयी। पत्नी के छः महीने बाद उसकी इकलौती बच्ची भी चल बसी।

वहां खड़े-खड़े बाज ने देखा कि जिस हलचल का उसे अहसास हुआ था वह बिल्कुल बेमानी नहीं थी। क्यों कि हवेली के एक के बाद दूसरे चार दरवाज़ों से परे बाहर वाले बरामदे में बिजली की रोशनी हो रही थी। लकड़ी के छोटे से फाटक में कुछ सामान अंदर लाया जा रहा था। जिससे ज़ाहिर होता था कि ज़रूर कोई नया मेहमान आया है। जब से पश्चिमी पंजाब में गड़बड़ शुरू हुई थी सरदार जी के यहां काफ़ी मेहमान आ रहे थे। कुछ अर्से पहले उनके एक हिन्दू दोस्त अपने बाल-बच्चों समेत आ गये। उनका एक नौजवान लड़का था—चमन! उसकी गर्दन मोर की-सी थी और आंखें सुर्मीली । वह भी घुक्की को ललचाई नज़रों से देखता था। बाज के चेले-चांटों का ख़्याल था कि घुक्की भी उस पर मरती थी। बाज के मन में ईर्ष्या नहीं जागी। वह इन चीज़ों से ऊपर उठा हुआ था। कहता, "अरे हमारा क्या है? हमने आते ही घुक्की की चुम्मियां लेकर उसे कानी कर डाला । अब चाहे टुंडा लाट भी उसकी चुम्मी लिया करे हमारे......से।" यह कह कर वह अपनी एक साबुत और दूसरी फूलामारी आंख से सबके चेहरों का जायज़ा लेता।

जब चमन के घर वाले अलग मकान लेकर रहने लगे तो फिर भी सरदार जी के यहां चमन का आवागमन होता रहा। उधर बाज ने घुक्की से ज़्यादा उसकी छोटी बहन निक्की को अपने आकर्षण का केंद्र बनाया।

दरवाज़े पर खड़े-खड़े पहले तो बाज के दिल में आयी कि ज़रूर नये मेहमान को देखे। शायद कोई 'लुंडिया' भी उनमें शामिल हो लेकिन आजकल काम बहुत आया हुआ था जिसे जल्द से जल्द खत्म करना जरूरी था। "हटाओ" उसने मन ही मन में कहा, "सुबह सब कुछ सामने आ आयेगा।"

2

दूसरे दिन आंख खुली तो जलता-फुँकता सूरज अपने माथे पर चमकता हुआ पाया।

इधर यह हड़बड़ाकर उठा उधर सरदारनी प्रतिदिन की दिनचर्या के अनुसार भूरी भैंस की भांति कद्दू-कद्दू भर की छातियां थुलथुलाती, हेकड़ी दिखलाती आग जलाने के लिए बुरादा लेने के वास्ते छाज हाथ में पकड़े उसकी ओर बढ़ी।

बड़ी सरदारनी के शरीर का हर अंग अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था यानी जो चीज़ जितनी मोटी, जितनी भद्दी, जितनी फैली हो सकती थी, हो चुकी थी। चलती तो यों मालूम होता जैसे तन्नूर ढापने वाले चापड़ को पांव लग गये हों।

ऐसी डबल डोज़ सरदारनी भी सरदार जी के लिए नाकाफ़ी साबित हुई। अतएव उन्हें एक छोटी सरदारनी भी कहीं से उड़ाकर लानी पड़ी। लेकिन जबसे उनके अण्डकोशों में पानी भर आया था, तबसे उन्होंने सरदारनियों से ध्यान हटाकर हर दिन कई-कई घंटे गुरुवाणी का पाठ करना शुरू कर दिया था।

मौका मिलने पर बड़ी सरदारनी ज़रूरत से ज़्यादा देर तक बाज के पास खड़ी रहती। क्योंकि बाज अत्यंत भोलेपन के साथ कई बार कह चुका था, "परोढी सरदारनी आप बयालीस बरस की तो नहीं दिखाई देतीं जी......! जी, आप तो मुश्किल से तीस बरस की दिखाई देती हैं।"

इस पर बड़ी सरदारनी मन ही मन में चहक उठतीं और 'गैन' (उर्दू का एक वर्ण) की भांति मुँह बनाकर कहतीं, "हट वे परां! कौन कहता है मैं बयालीस बरस की हूं?"

इसके बाद वह दरवाज़े से कंधा भिड़ाये जमी खड़ी रहतीं। एक टांग सीधी रखतीं और दूसरी टांग को धीरे-धीरे हिलाती रहतीं। ढके हुए पपोटों तले दबी हुई पुतलियां बाज के चेहरे पर जमाये रखतीं।

बाज मन ही मन में सोचता कि घुक्की की कमर तो बड़ी सरदारनी की पिंडली से भी पतली होगी।

आखिरकार जब सरदारनी टूटे हुए छाज में बुरादा भर कर लौटीं तो उनके पिछवाड़े का नजारा देखकर बाज के मुंह से हठात् निकल गया, "बल्ले! बल्ले!" फिर अपने एक नौजवान साथी बोंगे को संबोधित करके बोला, "क्यों ओ बोंगया! अगर सरदार जी बिना ज़ंजीर के हाथी हैं तो सरदारनी भी वह चट्टान है जो जितनी ज़मीन से बाहर है उससे चार गुना ज़मीन के अंदर धंसी हुई है।"

यह कहकर उसने फुलाह की दातुन मुंह में डाली तो उसकी चरमराहट से उसका बदसूरत चेहरा और ज़्यादा भद्दा हो गया।

बोंगे ने जवाब दिया, "अबे तू सरदार जी को क्या समझता है? अगर सरदारनी चार गुना जमीन के अंदर है तो सरदार जी दस गुना ज़मीन में दफ़न हैं।"

बाज ने बैठे-बैठे मरियल बोंगे को लात रसीद करते हुए कहा, "ओये चल ओये मऊं दिया मुतराड़ा।" जो बात याद आयी तो फिर बोला, "पर बोंगया घुक्की की कमर तो सरदारनी की पिंडली से भी कम मोटी होगी......।".

"तो फिर?"

"ना.....ना......सोचो भला इतनी पतली कमर......बहुत पतली कमर है जार। इतना नाजुक लक।"

"ओ बई!" बोंगे ने बड़े अनुभवी की भांति कहना शुरू किया, "औरत की कमर में बड़ी ताकत होती है। मर्द की सारी ताक़त छाती में और औरत की कमर में होती है।"

"हछा!!" घाघ बाज़ ने गाल के अंदर ज़बान घुमाई।

इसी बीच चमन भी इधर आ निकला। वह हर समय चमकता रहता था। बाछों में से हंसी यों फूटी पड़ती थी जैसे वह रेवड़ियां खा रहा हो। चलता तो लहराके। बात करता तो बल खाके। बोंगे ने कहा, "ले भई! कन्हैया जी तो आ गये।"

"गोपी भी आयी ही होगी।" बाज ने अपने छिदरे दांत दिखाये और मुंह से टपकती हुई राल को बमुश्किल रोका।

बोंगे ने पहले तो चमन को दिल फेंक अंदाज़ से देखा और फिर एक आंख बंद करके दूसरी आंख बाज की बिना फूले वाली आंख से मिलाई और घी में डूबी हुई आवाज़ में बोला, "जार! जह लौंडिया भी गोपी से कम नहीं है।"

बाज ने एक और लात रसीद की, "बड़ा ठर्की है वे तू।"

बोंगे ने भाव बना कर गाना शुरू किया, "ओये भगत लबोब कबीर भी तो कह गये हैं कि ओये कच्चा मुंडा रन वर्गा"

ठीक उसी समय छोटी सरदारनी भी कूल्हे मटकाती धम-धम करती दरवाजे से निकलकर सेहन में आन पहुंची।

कहने को तो छोटी सरदारनी थीं लेकिन डील-डौल के लिहाज़ से बड़ी बीस थीं तो वह उन्नीस। यों मालूम होता था जैसे धुनिए ने मनों रुई धुन कर हवा में उड़ा दी हो। अलबत्ता नाक-नक़्श तीखे थे। रंग निखरा हुआ था, चेहरा चिकना-चुपड़ा। अगले दो दांतों में सोने की मेख़ें।

मशहूर था कि वह सरदारजी की ब्याहता नहीं थीं। बक़ौल बाज कुछ जबर-जबर मामला था। बावजूद मोटापे के छोटी सरदारनी की बोटी-बोटी थिरकती थी। बड़ी सरदारनी को परिस्थितियों ने ज़रा दार्शनिक बना दिया था, और परिस्थितियों ही ने छोटी सरदारनी को 'चल-चल चमेली बाग़ में मेवा......अल्ख़"[1] बना दिया था। यही कारण था कि बड़ी सरदारनी के सामने लौंडे-लौंडियां आपस में हंसी-ठठोल करने से कतराती थीं। लेकिन छोटी सरदारनी के सामने खुल्लम-खुल्ला छेड़ख़ानी का बाज़ार गर्म रहता। गर्मा-गर्मी में छोटी सरदारनी की कमर में भी एकाध चुटकी भर ली जाती। जिस पर वह नौजवान लड़की की भांति कुलबुलाती बल खाती और खिलखिलाती थीं। वह रंगीन महफ़िलों की जान थीं। उनकी उम्र हालांकि पैंतीस पार कर चुकी थी फिर भी सरदार जी अब भी उनकी निगरानी करते थे। क्योंकि छोटी सरदारनी चलती तो झुमकड़े के साथ, बैठती तो झुमकड़े के साथ। उसकी अनौपचारिक और खुली महफ़िलों में आंखें लड़ाने, चुटकियां लेने और हाय-हाय करने के मौक़े बड़ी आसानी से हाथ आ जाते थे। कभी-कभी वह एकाध बदतमीज़ी पर नाराज़ भी हो जाती थीं तो लड़के और लड़कियां उन्हें मनाने लगते। उनके बदन को सहलाया जाता। उनसे लिपट-लिपट कर ख़ुशामदें की जातीं और आख़िरकर वह मान जातीं।

अतएव अब जो वह सेहन में भीतर आयीं तो मानो कि सुबह की हवा की भांति आयीं और अपने साथ न केवल बाग़ की खुशबू लायीं बल्कि अपनी ओट में नर्गिस, नसरीन और गुलाब वग़ैरह भी लायीं। यानी घुक्की, निक्की और सांवली और अन्य

---

1. किसी बात को अधरा छोड़ देने पर अंत में 'अल्ख़' लिख देते हैं।

लड़कियां भी उनके पीछे-पीछे छुपी चली आ रही थीं। उनका उद्देश्य उपस्थित लोगों को सुखद आश्चर्य में डालना था। वही बात हुई कि अचानक 'ओये' के शोर से वातावरण गूंज उठा और कच्चे कुंवारे कहकहों के संगीत से सारा सेहन रसमसा गया।

उनसे दूर सड़क वाले कमरे में किसी जटाजूट संन्यासी की भांति पाठ करते हुए सरदार जी के कान भी इन आवाज़ों से थरथराये, माथे की लकीरें गहरी हुईं। उन्होंने जल्दी से अपने बड़े-बड़े दांतों पर होंट फिसलाकर बेचैनी से पहलू बदला और गुर्राकर कहा,

"वाह गुरु नाम जहाज़ है, जो चढ़े सो उतरे पार।"

3

दातुन की आख़िरी मंजिल पर पहुंच कर बाज ने बड़ा कनस्तर उठाया और सेहन के परले कोने में हाथ के नलके के पास पहुंचा।

अब वातावरण अपेक्षाकृत शांत था। कुछ लोग तो छोटी सरदारनी को घेरे थे। शेष अपने-अपने काम में मगन थे।

कनस्तर नलके के नीचे रखकर बाज ने दस्ती के दो-चार हाथ ही चलाये होंगे कि सामने से निक्की जल्द-जल्द क़दम उठाती हुई उसकी ओर आयी और आते ही बोली, "कनस्तर उठाओ तो......"

बाज की ख़ुशी का भला क्या ठिकाना था? दातुन चबाते-चबाते उसका मुंह रुक गया। आंखों के कोने कुटिलता के कारण सिमट गये, "नी कुड़िए की गल ऐ?"

"ऐ देख गल-वल कुछ नहीं। कनस्तर हटा झटपट।"

बाज ने दांत पीसकर हाथ फैंका। लेकिन मालूम होता है कि निक्की पहले से ही तैयार थी। झप से पीछे हटकर बदन चुरा गयी और इठलाती हुई चिल्लाकर बोली, "हम क्या कह रहे हैं। कनस्तर हटा ना!"

"अरी कनस्तर से क्या बैर है......हमारी हर चीज़ से बिदकती हो।"

"पानी पियेंगे।"

बाज ने कनस्तर हटा दिया, "लो जानी पियो और जियो। जियो और पियो।"

निक्की ने नल के नीचे हाथ रख दिया और कुछ प्रतीक्षा के बाद इंजन की सीटी की-सी आवाज में चिल्लाई, "ऐ है.....दस्ता हिलाओ!"

बाज ने उदासीनता दिखाते हुए जवाब दिया, "तुम ही हिलाओ ना दस्ती----"

"देखो तंग मत करो।"

"अरी नाम निक्की है तो इसका यह मतबल तो नहीं कि तू सममुच निक्की (छोटी) है।"

"छोटी नहीं तो क्या मैं बड़ी हूं?" निक्की ने निचला होंट ढीला छोड़कर शिकायत भरी निगाह उस पर डाली।

अब बाज ने बड़ी उदार हंसी हंस कर दस्ती हिलाना शुरू कर दी।

पानी पीकर निक्की भागने लगी तो बाज ने तुरंत उसकी कलाई दबोच कर हलका सा मरोड़ा दे दिया।

"उई!"

"क्या है?"

"मेरी कलाई टूट जायेगी।"

"यहाँ दिल जो टूटा पड़ा है।"

"छोड़ ना! कोई देख लेगा।"

"अरी कभी हमसे भी दो बात कर लिया कर!"

"कहा ना, कोई देख लेगा।"

"तो फिर आयेगी ना, हमारे पास?"

"मै नहीं जानती।"

एक और मरोड़ा। निक्की को सचमुच में बड़ी तकलीफ़ हो रही थी। जान छुड़ाने के लिए बोली, "अच्छा आ जाऊंगी।"

"पक्का वादा?"

"हाँ।"

"मार हाथ पर हाथ।"

हाथ पर हाथ मारा गया।

"अच्छा देख! अब कलाई छोड़ देता हूं, पर एक शर्त है......तू भागेगी नहीं।"

"अच्छा नहीं भागूंगी। छोड़ अब कोई देख लेगा।"

"बस दो मिलट बात कर ले हमसे। जाद रखिओ जो हमें धोखा दिया तो बांस पर लटका दूंगा।"

हाथ छूटने पर निक्की नन्ही-सी प्यारी नाक चढ़ाये और भौंहों पर बल डाले अर्ध स्वीकार के भाव से रुकी रही और जब कि वह इस दृश्य से आनंदित हो रहा था। वह ठुमक कर बोली, "कह अब?"

"बात करती हो कि ढेले मारती हो?"

"अब जो तुम समझो। जल्दी से बात कह डालो। इत्ता वखत (वक़्त) नहीं है।"

"बखत (वक़्त) नहीं है। क्या किसी जार से मिलने जाना है।"

"धत्! कोई सुन लेगा। तुम बड़े......"

"बड़े क्या?"

"बदमास हो।"

"हाय सरीपजादी! कभी-कभार बदमास से भी एकाध बात कर लिया कर......अच्छा निक्की यह बता कि तेरी उम्र क्या है? "

"सोलह बरस।"

"कैसी मीठी उमर है।"

"होगी.....बस जायें अब?"

"घुक्की की भला क्या उमर होगी?"

"मुझसे डेढ़ साल बड़ी होगी।"

"और सांवली....."

"चौदह की होगी,"

"लेकिन निक्की तू तो चौदह की भी नहीं दिखती।"

"दिखती कैसे नहीं? "

"जरा नजीक (नज़दीक) आना! "

"हट! "

"आजकल मस्ती झाड़ रही हो। पहली तो घुक्की ही थी। अब तुमने भी पर निकाल लिये हैं......। तुम क्या अब तो सांवली भी रंग दिखला रही है। "

"अरे देख, सांवली को कुछ मत कहो। वह बिचारी अंधी है। उससे बुरी-भली बात मत करना।"

"अरी निक्की जवानी बिन बोले बात करती है। उसको अंधी कहती हो। खुद मजा उड़ाती हो ---लो वह रही सांवली । चुपचाप दरवज्जे में बैठी है।"

सेहन के दूसरे कोने में दरवाज़े की दहलीज़ पर अंधी सांवली अलग-थलग चुपचाप बैठी थी।

निक्की ने उधर देखा तो बाज ने पूछा, "सांवली जनम की अंधी है क्या? "

"नहीं।"

"तो कैसे हुई अंधी?"

"देखो बेकार-बेकार बातें करते हो। हम जाते हैं।"

"भई हम कुछ नहीं जानते। लाला (बाप) कहता है कि वह बचपन में अंधी हो गयी थी। अब मैं क्या जानूं? लो हम चले।"

"अरे हैं दरवज्जे में सांवली के पास कौन खड़ा है?"

निक्की चलते-चलते रुक गयी, "हम नहीं जानते।"

बाज बाछों को ख़ूब खींचकर हंसा, "तुझे मालूम नहीं.....सभी तो तेरे जार हैं।"

"देख हम से बकवास मती कर हम उसे क्या जानें? रात ही तो आया है।"

"अरे रात वाला......अच्छा, अच्छा याद आया। मैंने अंदर से उस वक़्त सिर निकाला, सच निक्की मैं समझा तुम हो......लेकिन निक्की तुम......"

निक्की ने झुंझलाकर क़दम बढ़ाते हुए कहा, "लो हम चले।"

इस पर बाज ने ज़ोर से नाक साफ़ की और दस्ती हिलाने लगा।

4

लड्डो सरपट भागता हुआ आया और कारख़ाने के दरवाज़े के दोनों पट इतने धमाके के साथ खोले कि अंदर काम करते हुए बाज और उसके साथियों के हाथ रुक गये। वे थोड़ा हैरान होकर उसका मुंह तकने लगे कि लड्डो लेबलों की गड्डियां बांधनी छोड़कर बेवक़्त यहां कैसे आन पहुंचा।

अंदर पहुंच कर खुद लड्डो को इस बात का अहसास हुआ कि इतने धमाके से अपने आगमन को जताने के लिए उसके पास जो सूचना है वह पर्याप्त और उचित भी है या नहीं? बहरहाल उसने हांपते हुए गर्दन घुमाकर सबकी ओर देखा और बोला, "जारो, आज बड़े मजे की बात देखने में आयी।"

"मज़े की बात!!" इस समय ग्यारह बजने को थे। कारीगर लगातार काम कर रहे थे। इसलिए वे मज़े की बात सुनने के मूड में थे। उधर बाजसिंह ने सुबह बासी मट्ठे से सिर धोया था। उसके बालों से अभी सड़ी लस्सी की बसांध दूर नहीं हुई थी। उसने भी मौक़ा गनीमत जाना कि मज़े की बात सुनने के साथ-साथ वह बालों में कंघा करेगा। इस तरह जब उसके बालों के अंदर तक हवा पहुंचेगी तो बाल सूखने के साथ बसांध भी दूर हो जायेगी।

अतएव उसने अपना फावड़ा-सा कंघा उठाया और उसे दाढ़ी में उड़स कर बोला,

"अबे लड्डो माओं के मुतराड़, जब से पैदा हुआ है, आज तक तूने कोई मजेदार बात नहीं सुनाई लेकिन आज तो मेंढकी को भी जुकाम वाली मिसाल तुझ पर लागू होती है......अच्छा बोल बेटे बजूरे!'

समय अनुकूल पाकर बाक़ी कारीगर भी पिंडे खुजलाते हुए लड्डो के पास आ गये। उनमें मौनों (मुंडे हुए सिर वालों) ने बीड़ियां जलाकर दांतों में दाब लीं।

इस अप्रत्याशित स्वागत से लड्डो की जान में जान आयी। उसने खिखिया कर एक बीड़ी तलब की......जो थोड़ा नाक-भौं चढ़ाने के बाद दे दी गयी। अब लड्डो ने बड़े सम्हल कर बीड़ी को जलाया। यह अंतराल उपस्थित लोगों के लिए असहनीय होता जा रहा था। बाज ने दुलत्ती रसीद करने के अंदाज़ से पांव ऊपर उठाते हुए कहा, "ओये भैन के बैगन जल्दी से उगल डाल! साले हम तेरे बेबे के नौकर तो हैं नहीं कि बैठे मुंह तकते रहें तेरा......"

"जार आज बड़े मज़े की बात हुई।" लड्डो ने इस तरह बात शुरू की जैसे उबलते हुए पानी की केतली का ढंकना भक् से उड़ जाये, "आज सुबह जब बाज निक्की से......बाज निक्की से......"

बाज ने खूंख़ार तेवर बनाकर कहा,'' ओये तेरी बहन को चोर ले जायें.......हमारी ही बात मिली सुनाने को......''

''नई, नई जी!'' लड्डो ने ख़ालिस पंजाबी लहजे में हलक़ से घिसा कर आवाज़ निकाली, ''पादशाहो! आपकी बात नहीं है, वह तो घुक्की की बात है।''

एक कारीगर ने इशारा करके साथियों से कहा, ''यह चौंगा भी ठर्की है और घुक्की पर, ठरक झाड़ने वालों में शामिल है। हां तो बर्खुर्दार क्या बात है घुक्की की......?''

''ओ जी जब छोटी सरदार अख़बार में लगी हुई मास्टर तारासिंह की तस्वीर सबको दिखाल रही थीं तो घुक्की और चमन की नजरें मिलीं......मैं देख रहा था चुपके से......''

''तू तो देखा ही करता है घुक्की को पर साले चमन ने जितनी चुम्मियां ली हैं तूने उत्ती ठोकरें न खाई होंगी घुक्की की।''

इस पर लड्डो ने रूठने के अंदाज़ से मुंह बिसूरा तो किसी ने हमदर्दी जताई, ''भई ऐसा मत कहो बिचारे को। घुक्की की ठोकरों में क्या कम मजा है? कइयों ने तो ठोकर भी न खाई होगी उसकी......हां तो बोल बेटा बोल.....बोल बजूरे बोल......''

''बस फिर क्या था......आंखों ही आंखों में इशारे हुए, भौंहें हिलीं और फिर घुक्की बड़ी ऐंठ के साथ उठकर ठुमक-ठुमक कर चल दी।''

''कहां छत को? ''

''अबे नहीं......उस बक़्त तो वह अपने घर को गयी। थोड़ी देर बाद चमन ने कहा कि जरा पखाने जाऊंगा। सरदारे (सरदार जी का बड़ा लड़का) ने खांस कर कहा, बई, जल्दी आना। न जाने पखाने में बंद क्या करते हो? इस पर चमन बड़ी मीठी हंसी हँसता हुआ पिछले कमरे में चला गया। जहां से कि छत को सीढ़ियां जाती हैं।''

एक दो ने जम्हाई लेकर कहा, ''अबे लड्डो घिस्से। ये सब पुरानी बातें हैं, रोज का क़िस्सा है.....''

''अबे सुन तो'' लड्डो ने डांटते हुए कहा, ''सबकी नजर बचाकर मैं भी गया पीछे और बई जब ऊपर पहुंचा तो देखा कि सीढ़ियों का दरवज्जा बंद है। बस बई यह देख कर मेरी फूंक निकल गई।''

बाज हँसा, ''साले तेरी फूंक तो अच्छी तरह निकलना चाहिये। फूल के गुब्बारा हो रहा है।''

लड्डो ने सुनी-अनसुनी करते हुए अपनी बात जारी रखी, ''पहले तो मैं समझा कि दरवज्जे के पास ही खड़े होंगे, मगर कोई आवाज़ सुनाई नहीं दी। दराड़ में से झांका तो छत पर भी कोई सूरत दिखाई नहीं दी। फिर मैंने सोचा कि जरूर बरसाती के अंदर बैठे होंगे।''

''बड़ी जसूसी दिखाई तूने......''

लड्डो ने बीड़ी का कश लिया, "मैंने नीचे ऊपर से हाथ डाल कर चटकनी सरका दी। यह देखो मेरी बांह पर ख़ून जम गया है"

आगे बोल......"

"छत पर से होता हुआ मैं बरसाती की तरफ़ बढ़ा। ईंटों की जाली में से देखा कि वे दोनों अंदर चारपाई पर कुछ बैठे और कुछ लेटे हैं।"

एक कारीगर बोला, "लेकिन घुक्की वहां कैसे पहुंची? "

लड्डो को उसकी हिमाक़त पर बड़ा रहम आया। "जार, तुम भी बस......छत से छत मिली हुई जो है।"

"बई, तू बड़ा अकलबंद (अक़लमंद) है। अब आगे चल! "

"बस आगे क्या पूछते हो? बड़े मजे में थे दोनों, घुक्की का मुंह तो लाल भभूका हो रहा था। इत्ती प्यारी लग रही थी कि जी चाहा कि बस जाकर लिपट ही जाऊं।"

"वाह रे बजूरे!' बाज बोला, "अब तो एह बात पक्की हो गई कि मामला चुम्मी-चाटी तक ही नहीं है......अच्छा फिर क्या हुआ? "

"बड़े प्रेम से बाते हो रहीं थीं। चमन ने घुक्की के मुंह के आगे से बाल हटाकर खूब भींच भींचकर"

"अरे यह सब तो हुआ ही होगा। जह तो बता कि बातें भी हो रहीं थी कुछ? जह तो मालूम हो क्या इरादे हैं उनके?'

"फिर घुक्की ने बड़े प्यार से उसके गले में बांहें डाल कर पूछा, "चमन तुम सचमुच मुझसे प्यार करते हो?' चमन की तरह गर्दन हिलाई और बोला, "सचमुच।"

"मुझे इकीन नहीं आता।"

"जालम......जालम......अरी हम तो जान फिदा करते हैं।"

घुक्की ने यह सुनकर सिर नीचा कर लिया और गहरी सोच में डूब गयी। इस पर चमन ने फिर उसे समेट कर अपनी गोद में ले लिया और कहने लगा," कहो तो आसमान से तारे तोड़ लाऊँ----कहो तो अपनी छाती चीरकर......" घुक्की ने उसके होंटों पर उंगली रख दी और फिर ऐसे बोली जैसे सुफने में बोल रही हो, "तुम तारे मत तोड़ो......अपनी छाती मत चीरो......मुझे......अपनी दासी बना लो।"

"दासी! दासी? अरे तुम रानी हो रानी! दास तो हम हैं तुम्हारे।"

घुक्की कुछ देर चुप रही। फिर बोली, "तुम मेरा मतलब नहीं समझे। मुझसे सादी कर लो ना!'

"जह सुनकर चमन बिदक गया। जैसे घुक्की खूबसूरत लड़की नहीं, नागन हो और वह उसे बड़ी अजीब नजरों से देखने लगा। उस बख्त घुक्की का सिर झुका हुआ था। साली अपने ख्याल में मगन बोली, "मैं गरीब की लड़की हूं। हर कोई मुझे भूकी नजरों से देखता है। हर कोई मुझे खाना चाहता है घर से बाहर पांव रखना मुसकिल हो गया

है। फिर भी मैंने इज्जत बचा कर रखी। मगर तुम्हारे आगे मेरा कोई बस नहीं चला। सोचो अगर मुझे कुछ हो गया तो? ''

''जह कह कर उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। इस पर चमन ने उसका हाथ थाम लिया, ''अरी वाह रोती काहे को है? बेफिकर रहो। तुम्हें कुछ नईं होगा? प्रेम में ऐसी बातें दिन-रात होती रहती है। तुम बड़ी वहमन हो।''

''मगर मैं तुम्हारी हो चुकी हूं। सदा के लिए तुम्हारी। यह कह कर उसने अपने पीले रंग के कुर्ते से आंखें पोंछीं लेकिन आंसू नहीं थमते थे। हिचकियां भरती हुई बोली, ''चमन मैं उमर भर तुम्हारे पांव धो- धोकर पियूंगी। तुम्हारी नौकर रहूंगी। तुम्हारे इशारे पर नाचूंगी। लाला को मेरी बड़ी फिकर लगी है। मां है नहीं। मैं ही सब से बड़ी हूं। मुझे छोटी बहनों का भी खयाल करना है। मैं तुम्हारी मिन्नत करती हूं, मुझे छोड़ना नहीं।''

''ऐ है है, तुम्हें कौन छोड़ता है। पगली हुई हो क्या? ''

इस पर घुक्की ने भीगी आंखों से चमन की तरफ़ देखा और बोली, ''नई तुम वाद I करो कि मुझसे सादी कर लोगे......मैं बड़ी मुंह फट हूं। बेसर्मी माफ करो। मुझे अपनी बना लो। मैं खूब पढ़-लिख लूंगी और जैसा तुम कहोगे वैसा ही करूंगी।''

''जह कहते-कहते घुक्की का सिर झुक गया और उसने मद्धम आवाज़ में पूछा, ''कहो मुझी से सादी करोगे?'' और जब उसने फिर चमन की तरफ़ देखने को सिर उठाया तो चमन ने झट से उसका सिर दबा कर छाती से लगा लिया, ''हां हां भई, तुझी से सादी रचाऊंगा। अरी तुम में कमी किस बात की है। तुम सुंदर हो। हज़ारों में एक हो। लो अब चलें, तुम भी घर को जाओ नहीं तो नीचे वाले सक करेंगे......''

''जह सुन कर मैं बगटट भागा वहां से।''

5

दोपहर के समय गर्मी इतनी बढ़ जाती थी कि क्या कारख़ाने और क्या प्रेस के कारीगर सभी काम छोड़कर बैठ जाते थे। दिन का यह हिस्सा सबसे ज्यादा दिलचस्प होता था। फ़ुर्सत का समां होता था। हवेली खूब लम्बी-चौड़ी थी। छोटे-बड़े अनगिनत कमरे, उनमें ऊँची-ऊँची अलमारियां, कुर्सियां, मेज़ें, पलंग, संदूक – गरज़ आंख-मिचौनी खेलने का पूरा सामान मौजूद था।

बाजसिंह तन्नूर से रोटी खाकर लौटा तो सीधा हवेली में गया। बड़े सरदार के सिवा रोज़ की तरह सभी लोग मौजूद थे। लेकिन बड़ी सरदारनी सबसे अलग-थलग पहले बड़े कमरे में विराजमान थीं। दूसरे कमरे से हंसी-ठठोल और ख़ुशगप्पियों की आवाज़ें आ रही थीं।

आज तन्नूर पर रोटी खाने का बाज को कुछ मज़ा नहीं आया था। दाल में कंकड़, राशन के आटे में रेत। तन्नूर वालों की ऐसी-तैसी करके पेट भरे बिना ही लौट आया था। जब उसने हवेली में प्रवेश किया तो कुदरती तौर पर सबसे पहले सरदारनी पर पड़ी। आश्चर्य! आज वह पान चबा रही थी। छोटी सरदारनी तो ख़ैर हर खाने के बाद एक अदद पान कल्ले में दबा लेतीं। न जाने कहां से लत लगी थी उन्हें, बड़ी सरदारनी को पान चबाते हुए उसने पहली बार ही देखा था। उनकी बाछों और होंटों पर गहरे सुर्ख रंग की तह जमी हुई थी। बाज बिदक गया। लेकिन फिर सम्हल कर वहीं ईंटों के फ़र्श पर बैठ गया और अपने टख़नों और पिंडलियों पर से लकड़ी का बुरादा झाड़ने लगा।

बड़ी सरदारनी ने उनकी ओर चौकी धकेलते हुए कहा, "हाओ, हाय ! ज़मीन पर काहे बैठते हो, चौकी पर बैठो!"

"नहीं बड़ी सरदारनी! ईंटें ठंडी लग रही है, मजा आ रहा है। अच्छा करे हैं आप जो दोपहर को फर्श पर पानी फिखरा दे हैं। सच बड़ी सरदारनी दूर की सूझे है आपको......सच।"

यह सुनकर सरदारनी ने चाहा कि मारे खुशी के फूली न समाये लेकिन अब और फूलने की गुंजाइश ही कहां थी? अतएव उसने पहले तो बड़ी विनम्रता से सिर झुका दिया। फिर थोड़े भौंडे मस्तानापन से नज़रें उठायीं।

बाज को कोई बात सूझ नहीं रही थी। इसलिए उसने पगड़ी के अंदर दो उंगलियां डालकर सिर खुजलाया। सरदारनी स्नेहपूर्ण अधिकार के साथ बोलीं,

"रोटी खाकर आ रहे हो?"

"जहर मारकर के आ रहे हैं।"

बाज को नाराज़ पाकर सरदारनी बड़ी अतिशयता के साथ परेशान हो गयीं, "आखर माजरा क्या है?"

बाज ने माजरा सुनाया और नतीजा यह निकला कि, "रोटी! हाय रोटी! तो बड़ी सरदारनी आपकी होती है। मक्खन ससुरा रोटी की नस-नस में रचा जाता है। निवाला मुंह में रुकता ही नहीं, बताशे की तरह घुला और चला अंदर।"

बड़ी सरदारनी को प्रशंसा के ये फ़िक़रे हज़म करने के लिए ख़ासा प्राणायाम करना पड़ा। जब दम में दम आया तो एक ख़ास सुरताल में बोलीं, "कभी हमारे यहां खाते भी हो?"

"कभी खिलाती भी हैं आप?" चालाक बाज ने उसी सुरताल में तुरत जवाब दिया।

इस पर रौब में आकर बड़ी सरदारनी उठीं तो बाज को ऐसा लगा जैसे ज़मीन से आसमान तक ऊदी घटा छा गयी हो।

रोटी खाते-खाते बाज ने पूछा, "क्यों जी आज बड़े सरदार जी बैठक में किस से बातचीत कर रहे हैं?"

सरदारनी ने झालरदार पंखा झलते हुए जवाब दिया, "मालूम नहीं।"

घर में एक ही टेबल फ़ैन था बिजली का, और वह जिधर बड़े सरदार जी जाते उनका पीछा करता।

बाज ने नमक हलाल कर डालने के भाव से कहा, "क्यों मजाख़ करती हैं सरदारनी! भला यह कभी हो सकता है कि उधर बातचीत हो रही हो और आपको खबर न हो?"

सरदारनी ने बड़े-बड़े की तरह मुंह खोला लेकिन मुंह सिकोड़ कर बोली, "जसूस छोड़ रखे हैं, अभी मालूम हो जायेगा सब कुछ।"

इसी बीच में छोटी सरदारनी ने बग़ल वाले कमरे से निकल कर उनके कमरे में प्रवेश किया। बत्तीसी निकली पड़ती थी। सुनहरी कीलें चमक रही थीं। हमेशा की तरह लड़कियां उनके साथ थीं। जब लड़कियां साथ थीं तो क़ुदरती तौर पर लड़के भी साथ थे।.......

बड़ी सरदारनी को छोटी सरदारनी के ये लक्षण पसंद नहीं थे। और फिर इस मौके पर? अतएव उसने चुपके से नाक-भौंह चढ़ाकर हाथ को ज़रा स्लो-मोशन से घुमाकर अपनी अरुचि व्यक्त कर दी। उसे भरोसा था कि बाज भी इस मामले में उससे सहमत है लेकिन बाज ने बड़े निडर होकर अपने बेडौल दांत दिखा दिये और तर माल अपने सामने पाकर उसने मन ही मन में नारा लगाया, "जो बोले सो निहाल......"

छोटी सरदारनी कमसिन परियों और जिन्नात समेत धूम-धड़ाक से आगे बढ़ गयीं। उनके पहलू बा पहलू उनका हाथ झुलाती घुक्की चहकती फुदकती आ रही थी। घुक्की महज बांकी नहीं थी बल्कि उसे अपने बांकपन का अहसास भी था। उसके मुख या शरीर पर जो दृष्टि पड़ती; उसकी प्रतिक्रिया उसके भौहों के कम्पन, होंटों की फड़कन या शरीर की किसी चेष्टा से व्यक्त हो जाती।

इसके बाद निक्की......मुख की आकृति को देखते हुए घुक्की अद्‌भुत थी लेकिन शरीर के अंगों की सानुपातिकता के हिसाब से निक्की विलक्षण थी। उसकी नज़रें बड़ी बहन की तरह दूर तक नहीं पहुंचती थीं। वह उस व्यक्ति की भांति दिखाई देती थी जो वीराने में भटकता-भटकता अचानक मेले में आ निकले।

निक्की की चुंदरी का पल्लू अंधी सांवली के हाथ में था। उसका चेहरा ऊपर को उठा रहता। वह दोनों बड़ी बहनों से कम गोरी थी। रूप-रंग गोरा और चेहरा आकर्षक। उसे इस बात का तनिक भी अहसास नहीं था कि मुरली वाला उसके शरीर में उम्र के साथ-साथ क्या-क्या परिवर्तन कर रहा है? क्योंकि इस पहेली का पता तो लड़की को आंखें चार होने पर ही चल सकता है वहां एक भी देखने वाली आंख नहीं थी। इसलिए आंखे चार होने का विचार ही पैदा नहीं होता था

"बल्ले! बल्ले!!" बाज को अपने कान में आवाज़ सुनाई दी। देखा कि बोंगा भी उसे कारख़ाने में न पाकर वहां आन पहुंचा था और फिर राल टपकाते हुए बोला, "जार! घुक्की की कमर तो देखो। कैसी पतली कैसी लचकदार है आंख नहीं टिकती उस पर।......"

"ओये मैं जट्टी पंजाब दी
मेरा रेशम बर्गा लक......"

अनायास बाज ने बोंगे को कुहनी का टहूका देते हुए कहा, "देख ओये जल कुक्कड़!"

जल कुक्कड़ प्रेस में लेबल प्रिंट किया करता था। उसकी उम्र चौंतीस वर्ष के लगभग होगी। दो बच्चे भी थे। आश्चर्य! वह भी सींग कटाकर बछड़ों में शामिल हो गया था। यह रहस्य बाज की समझ में अब तक नहीं आया था। लेकिन आज उसने देखा कि कैसे जल कुक्कड़ ने जान बूझकर निक्की को धक्का दिया और कैसे निक्की ने प्रणयातुर होकर उसकी इस चेष्टा को सहन किया लेकिन आखिर जल कुक्कड़ में रखा ही क्या था? उसके हास्यास्पद चेहरे के कारण ही तो यारों ने उसका नाम जल कुक्कड़ रखा था......मगर औरत के दिल को कौन पा सकता है......

बोंगे ने कहा, "जार यह तो दूरमार तोप निकला कैसा मिश्कीन बनता था।"

आजकल जल कुक्कड़ ज़्यादातर रंगीन बुशर्ट पहने रहता था। जिसके कपड़े पर चीनी तर्ज़ के साँप जैसे चित्ते दिखाई देते थे।

सरदार जी के लड़के भी 'चल कबडी तारा, सुलतान बेग मारा' कहते हुए साथ-साथ चले आ रहे थे। और उनके पीछे वह नौजवान था। जो वहां इम्तहान देने के लिए नया-नया आया था। उसे देखते ही बाज ने पूछा, "ओये मां दिया मुतराड़ा! एह कौन है?"

"और जेह भी अपना मुंडा है। नवां दाखिल हुआ है, इसक दे मदरसे विच।"

"हछा......हछा......एह तो परसों ही आया है।"

"आ हो जी लौंडों की बातें छोड़ो। अब नारियों की बातें करो।"

परियों के उस क़ाफ़िले ने ज़मीन पर डेरे डाल दिये और उसकी चमक-दमक के बीच बड़ी सरदारनी अपने-आपको अकेला महसूस करने लगी।

"ओये, पर जी चमन कहां है।"

एक छोटा लड़का (शायद बड़ी सरदारनी का जासूस) जो बैठक से उसी वक़्त वहां आया था, बोला, "चमन उधर बैठक में बैठा है।"

बाज को अचंभा हो रहा था, यह क्या? गुल इधर और बुलबुल उधर? फिर इसी भाव से उसने घुक्की की ओर देखा। वह नज़रों ही नज़रों में सब कुछ समझ गयी। उसकी भौहें काँपी, पल्कें झपकीं, कमर लचकी, और फिर वह निश्चेष्ट हो गयी। बाज

ने दिल फेंक तेवर बनाकर आंखों ही आंखों में समझाया कि लो हम खोजबीन करते हैं और हुस्न के चोर को उसके सामने पेश करते हैं। अतएव उसने ऊंची आवाज़ में पूछा, "लेकिन बई, वह क्या कर रहा है?"

"उधर एक जर्नेल साहब बैठे हैं।"

बाज ने सोचा कोई फ़ौजी अफ़सर होगा। ये लौंडे हर ऐसे अफसर को एकदम जर्नेल बना देते हैं। फिर बोला, "चमन का वहां क्या काम?"

"चमन के वाबूजी भी बैठे हैं।"

इसका मतलब यह कि चमन को बाप के कारण वहां मजबूरन बैठना पड़ रहा है, "अच्छा तो बच्चों चमन को उन्होंने वहां किस लिए फांस रखा है?" बाज ने जिरह की।

"वह फौज में भर्ती हो रहा है।" लड़के ने टें से जवाब दिया।

अब बाज ने एक नज़र बड़ी सरदारनी पर डालना ज़रूरी समझा और फिर मुंह टेढ़ा करके एक कोने में से सांप की फुंकार की-सी आवाज़ निकालते हुए बोला, "ऐजी आपका जसूस तो बड़ा हुसयार निकला।"

तारीफ़ सुनकर सरदारनी हाथी की तरह झूमने लगीं और देर तक झूमती रहीं।

जब जसूस लौंडे को महसूस हुआ कि वह ऐसी बातें कह रहा है जिनमें सब रुचि ले रहे हैं तो और ज़्यादा जानकारी देते हुए बोला, "चमन माहाऊ जा रहा है।"

"ओये माहाऊ कौन जगह का नाम है? वहां तेरी माऊं (माँ) रहती है क्या?" बोंगें ने दबी ज़बान में कहा ताकि सिर्फ़ बाज सुन सके।

सरदारे ने कहा, "ओये, माहाऊ नहीं महू कहो महू।"

"क्या चमन महू जा रहा है" सरदार जी के छोटे लड़के ने सवाल किया और साथ ही पहले तो जादुई अचंभे के मारे दोनों टांगें खूब फैलाकर और पांव फ़र्श पर जमाकर बिल्कुल संवेदन शून्य और निश्चेष्ट खड़ा रहा। और फिर सिमट कर जो कूदा तो कमरे से बाहर और बैठक के अंदर!

"ओये चमन हमको छोड़कर महू जा रहा है और हमको ख़बर तक नहीं दी।"

'हम' शब्द से उसका संकेत घुक्की की ओर था। ये शब्द उसने खड़े होकर कहे। इस समय उसकी मैली कंछ का और भी ज़्यादा मैला इज़ारबंद उसके दोनों घुटनों के बीच में झूल रहा था और उसने घुक्की की ओर कनखियों ने साभिप्राय देखा। भला घुक्की को उसकी बात समझने में क्या मुश्किल आ सकती थी। उसके दिल में ऐसी गुदगुदी पैदा हुई कि वह पुलक-प्रफुल्लित भाव से उठकर छोटी सरदारनी के एक बाजू से उठकर उसके दूसरे पहलू में जा बैठी और अत्यंत सुरीली आवाज़ में बोली, "हमें पहले ही से मालूम था।"

घुक्की ने यह बात ज़्यादा ज़ोर से नहीं कही लेकिन यह इतनी ऊंची ज़रूर थी कि बाज उसे आसानी से सुन सके।

इस पर बाज ठंडा होकर ठंडे फ़र्श पर इस तरह बैठ गया जैसे गुब्बारे में से अचानक सारी हवा निकल जाये और फिर उसने भौंहे हिलाकर और मूंछें फड़का कर बोंगे के कान में कहा,

"जार! सचमुच यह लौंडिया बड़ी चलती पुर्जी है।"

6

एतवार!

आज सरदार जी के दोनों लड़के दस बजे का अंग्रेज़ी का शो देखने जा रहे थे। बड़े ज़ोर-शोर से तैयारियां हो रही थीं। न जाने कब की पुरानी नैक टाइयां निकाली गयीं। एक मसहरी लगाने के बांस के सिरे पर बंधी थी और दूसरी बड़े ट्रंक के पीछे से गेंद की तरह गोल मोल की हुई निकली।

चूंकि इस समय छोटी सरदारनी नहा-धो रही थीं इसलिए उनकी चेलियां बेजान-सी होकर इधर-उधर लटक रही थीं। निक्की बड़ी सरदारनी के साथ बावर्चीख़ाने में बैठी थी। सांवली परे नल के पास बैठी एड़ियों को रगड़-रगड़ कर धो रही थी। दस्ती हिलाने वाला नया नौजवान था। घुक्की हवेली के बड़े दरवाज़े के आगे बनी हुई कुछ पुख़्ता सीढ़ियों के बीच वाले हिस्से पर बैठी थी। उसकी दोनों कुहनियां उसके घुटनों पर टिकी थीं। और दोनों हथेलियों के बीच में उसका चेहरा फंसा हुआ था। उसकी आंखें उदास थीं। चमन को गये पच्चीस दिन बीत गये थे लेकिन घुक्की को उसका एक पत्र तक नहीं आया था। हालांकि दूसरों को उसकी चिट्ठियां आ चुकी थीं......।

एतवार के कारण छुट्टी थी। इसलिए कारीगरों की गहमा-गहमी नहीं थी। अलबत्ता बाज और बौंगा मौजूद थे। क्योंकि वे स्थायी रूप से वहीं रहते थे।

दीवारों की सफ़ेदी करने के काम में आने वाले पांच फुट ऊंचे स्टूल पर पांव के बल बैठा बाज दातुन चबा रहा था। स्टूल के साथ सटकर ज़मीन पर बैठा हुआ बौंगा आईने में देख-देख कर चिमटी से नाक के बाल नोच-नोच कर फैंक रहा था।

दूर बैठक की तरफ़ से एक बड़े शंख के-से स्वर में सरदार जी पाठ कर रहे थे। सरदार जी का पाठ और बाज की दातुन दोनों मशहूर चीजें थीं। इधर सरदार जी लगातार कई-कई घंटे पाठ करने में जुटे रहते। उधर एतवार की फुर्सत पाकर बाज अलस्सुबह ही मुंह में यह लम्बी दातुन उड़स कर बैठ जाता। पहले उसे चबाना फिर दांतों पर घिसाना। फिर चबाना और दांतों पर घिसाना। यहां तक कि दातुन ख़त्म हो जाती।

बौंगे ने अपने काम से निवृत्त होकर निश्चिंतता के साथ टांगें ज़मीन पर फैला दीं।

ऊंचाई पर बैठे बाज ने अपने तेज़ी से हिलते हुए मुंह को क्षण भर के लिए रोका और बौंगे को संबोधित करते हुए दबी ज़बान में फुंकार कर बोला, ''आज घुक्की कुछ उदास है। शायद छोटी सरदारनी का इंतजार हो रहा है।''

इस तरह बोलने से बाज की मूंछों में फंसे हुए थूक के कतरे उड़कर बौंगे के चेचक मारे चेहरे पर पड़े और उसने फड़क कर स्टूल को ज़रा-सा हिला दिया और छोटी-छोटी आंखें लाल चिनगारी बनाकर कहा, ''ओये अभी हिला दूं तो राज सिंहासन से सिर के बल नीचे गिर पड़े। हम पर थूकता है?''

स्टूल के थोड़ा हिल जाने पर बाज ने गिद्ध की भाँति बाज़ू फड़फड़ाये और उसकी और ध्यान दिये बिना बोला, ''क्यों यही बात है ना? मलकां (छोटी सरदारनी) का इंतजार हो रहा है।''

''ओये नई।'' बौंगे ने नथुने फैलाकर बड़े विद्वत्तापूर्ण ढंग से जबाव दिया, ''हीर को रांझे का। सस्सी को पुन्नूं का। गोपी को कन्हैया का इंतजार है, समझे।''

''समझा।'' बाज से भला क्या बात छुपी थी? उसने बौंगे को महज़ गर्माने और फिर उसकी किसी हरकतबाज़ी का मज़ा लेने अनजानपन का सबूत पेश किया था।

अब बौंगे ने सावधानी बरतते हुए इधर-उधर देखा और किसी को क़रीब न पाकर हलका-सा नारा लगाया, ''हाय!'' संकेत घुक्की की ओर था।

''क्या है?'' बाज ने पूछा। और समझ गया कि बौंगे को खरमस्ती सूझ रही है। ''दर्द।'' बोंगे ने जबाब दिया।

''कहां?''

''जह तो मैं मर जावां तां भी न दस्सां।'' बोंगें ने विशेष स्त्रैण स्वर में जवाब दिया फिर थोड़ा विराम लेकर गाने लगा—

'छोड़ गये बालम!

अकेली मुझ नूं छोड़ गये।'

बौंगें की टरटराती आवाज़ से वातावरण गूंज उठा।

अब दोनों छोटे सरदार तैयार होकर अंदर से निकले तो इस शान से कि पहले तो बड़े भाई ने अंदर से छलांग लगाई तो घुक्की के ऊपर से कूद कर सेहन में। वह समझने भी न पाई थी कि दूसरा भाई साफ़ कूद गया ऊपर से। घुक्की हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसका चेहरा लाल भभूका हो गया। चमक कर बोली, ''हमें नहीं अच्छा लगता ऐसा मजाख, अगर हमारी गर्दन टूट जाती तो?''

इस पर छोटे भाई ने पंजाब के मशहूर लोक नृत्य भंगड़ा के अंदाज़ में कुछ चकफेरियां लीं और गले की गहराइयों से अत्यंत घिघियाई हुई आवाज़ निकाल कर गीत का बोल दुहराया:

'छोड़ गये बालम!

उधर बौंगा भी बस तैयार ही बैठा था। तुरंत छाती पर दो हत्थड़ मार कर बेसुरी आवाज़ में गा उठा,

'अकेली मुझ नूं छोड़ गये।'

इस पर बाज ने जो क़हक़हे लगाये तो वे सीधे आसमान के उस पार पहुंचे। बड़ी सरदारनी निक्की सहित रसोई के दरवाज़े में आन खड़ी हुई। छोटी सरदारनी भी नहा-धोकर निकल आयीं। सांवली समझी, जरूर कोई मज़ेदार बात हो रही है। अतएव वह नल के पास बैठी ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी।

चलते-चलते छोटा सरदार वही बोल दुहराता गया और बौंगा भी गर्मी खाकर सीने पर दुहत्थड़ मारकर जवाब देता गया। सेहन में क़यामत का शोर सुनकर बड़े सरदारजी अंदर से कड़के तो छोटे सरदारजी बगटट भागे। बाज स्टूल से कूदा और बौंगे समेत कारख़ाने में जा घुसा। बड़ी सरदानी और निक्की ने भीतर से रसोई का दरवाजा भेड़ दिया और फिर गुसलख़ाने के अंदर......

7

देवीदास के मकान और दुकान के आगे सड़क के आर-पार कागज़ की रंगबिरंगी झंडियां लहरा रही थीं। बाजे बज रहे थे। घर के भीतर किसी अंधेरे कोने में कुछ औरतें बतखों की कें-कें की-सी आवाज़ में टूटे-फूटे गीत गा रही थीं।

घुक्की की शादी हो रही थी!

चमन के साथ? नहीं!

बारात आने वाली थी। महल्ले के लौंडे दौड़-दौड़कर दूल्हा की अगुवाई को जाते लेकिन बड़े-बुढ़ों की जबानी यह सुन कर कि अभी बारात नहीं आयी, तो निराश हो जाते हैं और चुपचाप चिड़वे रेवड़ियां चबाने लगा।

बैठक में बड़े सरदार जी और उनके कुछ इज़्ज़तदार और बुजुर्ग साथी काठ के उल्लुओं की तरह सुन्न बैठे थे। कभी एकाध बात हो जाती तो सब सहमति में सिर हिलाकर संतोष व्यक्त कर देते।

प्रेस के कारीगर सड़क की ओर बरामदे में खड़े तमाशा देख रहे थे। उधर कारखाने के कारीगर बगलें बजाते छत पर चढ़ गये। वहां से देवीदास की नीची छत साफ़ दिखाई देती थी। उसकी छत पर दस-पन्द्रह चारपाइयां बिछी थीं। क्योंकि ज़्यादा बरातियों के आने की उम्मीद नहीं थी। कुछेक बच्चे और औरतें बेजान रंगों के कपड़े पहने सुस्त क़दमों से इधर-उधर काम करती फिरती थीं। पास लगे पीपल के पेड़ की अंधेरी छाया छत पर फैल रही थी। और बाजे अलग कराह रहे थे।

छत वाले कारीगरों में से एक सिर हिलाकर बोला, "अब तक औरत की बेवफाई के बारे में सुना था लेकिन अपनी आंखों से देख ली।"

बौंगे ने नथुने फुलाकर उसकी ओर देखा और फिर कुछ कहने के लिए मुंह फैलाया—और फिर नथुने व मुंह दोनों सिकोड़ कर दूसरी ओर देखने लगा।

कारीगर को आश्चर्य हुआ। उसने बाज को कंधा मार कर कहा, ''कहो उस्ताद! आज बोंगें को क्या हो गया है।''

बाज ने पहले फूले मारी आंख दिखाकर उपेक्षा दर्शायी। लेकिन फिर साबुत आंख से चिनगारी बरसाकर कहा, ''औरत की बेवफाई नहीं मर्द की बेवफाई कहो।''

''यानी?''

''जानी जेह कि चमन को यहां से गये हुए तीन महीने गुजर चुके हैं। उसने एक सतर तक नहीं लिखी। घुक्की को......''

''और घुक्की ने?''

''उसने अपने हाथ से टूटी-फूटी हिंदी में उसे कई चिट्ठियां लिखीं लेकिन एक का भी जबाब नहीं आया।''

अब बोंगे ने भी बोलना शुरू कर दिया, ''चमन ने अपने चार दोस्तों को लिखा कि किसी न किसी घुक्की को चिट्ठी लिखने से रोका जाये। हर चिट्ठी उसकी इस बात से कि अगर मेरे पर होते तो मैं उड़कर आपके पास आ जाती, तंग आ गया हूं।''

''उधर कहीं चमन के पिताजी वहां जा निकले।'' बाज ने बात आगे बढ़ाई, ''उनकी मौजूदगी में कहीं कोई खत तो उन्होंने पढ़ लिया। पहले बेटे के कान मरोड़े और फिर यहां आकर बड़े सरदार जी को बताया।

सरदारजी ने देवीदास को बुलाया और कहा, ''ओये लौंडिया की सादी कर दे झटपट, पंद्रह दिन के अंदर। नहीं तो दुकान खाली कर दे और उठा बोरिया बिस्तर मकान से भी।'' ऐसे मुसकिल समय में भला देवीदास कहां जाता? हाथ जोड़कर कहने लगा, पर जी गरीब की लड़की की सादी भला इत्ती जल्दी कहां हो सकती है?'' चमन के बाप ने कहा, ''आखर तुम्हारी लौंडिया को ऐसे खत लिखने की हिम्मत कैसे हुई? जमीन की खाक सिर को चढ़े, बड़े सरदार जी ने डाँट पिलाई, अब मैंने कह दिया—ज्यादा रियायत ना हो सकती। पंद्रह दिन के अंदर-अंदर सादी कर डाल कहीं, नहीं तो मकान और दुकान दोनों से खारज।''

बातचीत इसी मंज़िल पर पहुंची थी कि बड़ी सरदारनी जी भी ऊपर आ निकलीं और आदत के मुताबिक़ बाज के पास खड़ी हो गयीं। अपने आगमन पर सबको चुप देखकर बोलीं, ''बारात न जाने कब आयेगी?''

उनकी बात खत्म भी नहीं होने पाई थी कि लोग-बाग चिल्ला उठे, ''बारात आ गयी, बारात आ गई!''

शहनाइयां और जोर से कांय-कांय करने लगीं।

थोड़ी देर बाद सरदारजी का छोटा लड़का दौड़ा-दौड़ा आया, ''ओये लुटिया डूब गयी। धत् तेरी की।''

''क्यों खैरियत! दूल्हा देखा? कैसा है?'' सबने एक ज़बान होकर पूछा।

लड़के ने बड़े वाहियात अंदाज़ से बाजू इधर-उधर फेंक कर जबाव दिया, ''धत् तेरी की......चिड़ीमार......बिल्कुल चिड़ीमार दिखाई देता है।''

8

अगस्त 1947 के दंगे ज़ोर-शोर से शुरू हुए तो हवेली के निवासियों और कारीगरों के समय का कुछ हिस्सा क़त्लो-ग़ारत, हिंदुओं और सिखों पर ढाये गये अत्याचारों और उनकी स्त्रियों के शीलहरण जैसे विषयों पर ख़र्च होने लगा। लेकिन वहां की रोजमर्रा की ज़िंदगी और चहल-पहल में कोई खास फ़र्क़ नहीं आया था। सिवाय इसके कि घुक्की की शादी को तीन-साढ़े तीन महीने बीत चुके थे। इन तीन महीनों के दौरान में चमन दो-चार दिन के लिए जालंधर आया। उन्होंने मकान का इंतजाम कर लिया था। फिर भी चमन सरदार जी के घर चोरी छुपे आता रहा। वह घुक्की से बच कर रहता था। खुद घुक्की ने भी विशेष रूप से इस बात की सावधानी बरती कि उसकी चमन से मुडभेड़ न हो।

चमन ने सरदार जी के लड़के को बताया कि महू में उसकी ज़िंदगी बड़े मज़े और चैन से कट रही थी। आसपास प्रेमिकाओं की भी कोई कमी नहीं थी। उसने एक नया आर्ट सीखा था। जिसका प्रदर्शन उसने सिगरेट के धुएं के छल्ले बना-बना कर किया। अगर घुक्की की कोई बात चलती तो कहता, ''हिंदुस्तानी लड़कियां भी बस अजीब होती हैं। जरा हंसकर बात कर लो तो गले का हार हो जाती हैं—फुलिश...... चाइल्डिश......!'

अंततः वह घुक्की से एक बात किये बिना ही वापस चला गया।

वैसे घुक्की पर इसकी कोई खास प्रतिक्रिया दिखाई नहीं दी। वह अब भी छोटी सरदारनी के साथ उठती-बैठती, हंसती-बोलती लेकिन उसके मन तें घुन लग चुका था। उसकी देह कोमल और दुर्बल तो पहले से ही थी। लेकिन अब तो बिल्कुल हड्डियों का ढांचा-सा होता जा रहा था। वह अत्यंत कोमल और विकसित फूल की भांति थी। अगर उसे अनुकूल परिस्थितियां मिलतीं तो निश्चय ही उसकी महक दूर-दूर तक फैलती। लेकिन अब वह अपना दर्द दबाकर चुप हो गयी थी। उसके चेहरे पर अब इतनी गंभीरता आ गयी थी कि किसी को उससे चुहलबाज़ी करने का साहस न होता था। उसे खांसी आने लगी थी। जब खांसी उठती तो वह अपने कमज़ोर सीने को छोटे-छोटे हाथों से थाम कर खांसते-खांसते बेहाल हो जाती। उसका चेहरा सुर्ख़ हो जाता। कई देखने वालों को उसकी हालत पर तरस आने लगता। लेकिन वह मुस्कुराती हुई अपने सुघढ़ सिर को पीछे की ओर फेंक कर उसे दांये-बांये दो चार चटखे देती और फिर बातचीत में व्यस्त हो जाती।

निक्की अलबत्ता अब उड़ निकली थी। उसे बात-बे-बात पर इस कदर हंसी छूटती थी कि बस लोट-पोट हो जाती। पहले घुक्की इन महफ़िलों की जान थी तो अब निक्की। घुक्की के व्यवहार में पहले भी गंभीरता थी। अब सीने पर ज़ख़्म खाकर वह और गंभीर हो गयी थी। मगर निक्की शुरू ही से चंचल थी। और अब मैदान साफ़ पाकर वह तड़पती हुई बिजली बन गयी थी। छेड़-छाड़ की उसमें बहुत सहनशीलता थी। इस लिए वह घुक्की से ज़्यादा पसंद की जाती थी। नाराज़ होना तो उसे आता ही नहीं था। सिमटना, बनना, बचना, झूठों ही भौहों पर बल डालना, पुट्ठे पर हाथ न रखने देना—यह सब दुरुस्त फिर भी वह नाराज नहीं होती थी। चाहे कुछ भी हो जाये उसकी चहक और महक में फ़र्क़ नहीं आता था।

अब सूझ-बूझ रखने वालों को यह भी कोई रहस्य की बात न रही थी कि निक्की का प्रिय पात्र प्रेस का वही आदमी था जिसे सब जल कुक्कड़ कहते थे। लेकिन समझ न आने वाली बात यह थी कि आखिर उसके पास ऐसी कौन सी गीदड़ सिंगी थी जिसके कारण निक्की सब को छोड़-छाड़ कर उसकी बगल गर्म करती थी।

एक दिन शाम के समय एक बहुत बड़े ज़मीन पर रोपे चूल्हे पर लोहे की कढ़ाही जमाई गयी जिसे देखकर सबके मुँह मे पानी भर आया। क्योंकि कुछ महीनों के अंतराल के बाद यह वह शाम होती जब बड़ी सरदारनी कढ़ाही में रेत गर्म करके उसमें मक्की, चना और चावल भूनतीं, गुड़ मिलाकर उनके मरोंडे तैयार करतीं और सबको जी भर कर खिलातीं। अतएव अंदर सब्बल चलाते हुए बाज सिंह को बौंगे ने खबर सुनाई कि आज सेहन में कढ़ाही जमा ली गयी है और बड़ी सरदारनी के क्या तेवर हैं तो उससे न रहा गया। वह सब्बल-वब्बल फैंक तुरंत बाहर निकला और देखा कि बौंगे ने, जो ज़्यादातर झूठ बोला करता था, अब के झूठ नहीं बोला।

बड़ी सरदारनी ने जब बाज को देखा तो इस अंदाज़ से मुस्कुराई कि जैसे पहले ही से विश्वास था कि बाज सब काम छोड़-छाड़ कर तुरंत बाहर आयेगा। आज सरदारनी ने जामुनी रंग का दुपट्टा ओढ़ रखा था। यों तो उसे कोई भी रंग नहीं फबता था लेकिन जामुगी रंग तो बहुत ही भौंडा लग रहा था। इस रंग के नीचे उसके पिलपिले होंटों पर मुस्कुराहट फैलती जा रही थी। बाज से आंखें चार होते ही उसने साभिप्राय ठुमक कर रसोई में प्रवेश किया।

धीरे-धीरे सब प्रकार के दाने भुन चुके तो फिर निक्की की मदद से बड़ी सरदारनी ने सौंधी-सौंधी गंध वाले दानों को गुड़ में मिला कर अलग-अलग किस्म के मरौंडे तैयार किये।

चरण मिनट-मिनट की ख़बर प्रेस में पहुंचा रहा था। कारख़ाने के कारीगर क्योंकि रसोई के ज़्यादा पास थे। इसलिए वे काम में मन लगा ही नहीं सके। वे इस बात की

प्रतीक्षा में थे कि कब सरदारनी अपनी लोचदार आवाज़ में उन्हें खाने की दावत दे और कब वे पिल पड़ें मीठे मरोंडों पर।

सबसे पहले सरदारनी ने घुक्की को आवाज दी। अब उसे घुक्की पर प्यार-सा आने लगा था। घुक्की दोनों कुहनियों घुटनों पर टिकाये और मुंह बाजुओं में छुपाये खांस रही थी। खांस चुकी तो उसने आदत के अनुसार सिर को पीछे की ओर फेंककर दांये-बाये दो चार झटके दिये और फिर हंसने लगी।......वह खूब खुलकर हंसती थी। लेकिन इसके बाबजूद उसके चेहरे पर विचित्र प्रकार के भाव दिखाई देते थे। अब उसके ऊपर पहले-सी आनंददायक प्रतिक्रिया नहीं होती थी। यों मालूम होता था जैसे वह खुद अपने लिए हंस रही हो...... ।......इसी तरह खिलखिला कर हंसती हुई वह आगे बढ़ी और उसने दोनों हाथ ऐसे फैलाये जैसे उसे मंदिर या गुरुद्वारे से प्रसाद मिल रहा हो।

बड़ी सरदारनी ने सबको नाम ले-लेकर बुलाया, ' वे बोंगया, वे चरन, नी सांवलिए, नी प्रेमो....." बाज अपने प्रिय स्टूल पर टंगा हुआ था।

उसे नहीं बुलाया गया।

नहीं, उसे नाम लेकर नहीं बुलाया गया। बल्कि सबकी नज़रें बचा कर सरदारनी जी उसे भौहों, आंखों और सिर के इशारों से बुलाती रहीं। यानी उसके लिए विशेष प्रकार के संदेश भेजे जा रहे थे। बाज भी एक काइयां था। जी में हैरान भी था कि कहीं ऐसा न हो कि सरदारनी किसी रोज़ बगलगीर हो जाये। कुछ देर सरदारनी की चेष्टाओं में रस लेने के बाद वह कुलांच भरकर स्टूल से उतरा और दूसरी कुलांच में वह सरदारनी के समीप पहुंचा । मरोंडे लेते समय उसने सरदारनी की पसलियों में कुहनी का एक टहूका भी दिया। क्योंकि......अब इतना अधिकार तो था ही सरदारनी का उस पर।

बौंगा आज बहुत लाड़ में आया हुआ था। बाज के पास बैठने के बजाय वह छोटी सरदारनी के पास जा बैठा और बंदर की भांति बड़ी अतिशयता के साथ मुंह आगे को बढ़ाकर और चप-चपा-चप की आवाज़ें निकालता हुआ मरोंडे चबाने लगा। इसी समय निक्की को एक विशेष भंगिमा के साथ उठते और थोड़ा अस्वाभाविक ढंग से चलते देखकर बौंगे ने छोटी सरदारनी को संबोधित करते हुए बड़ी बेबाकी से कहा:

"ओ जी! निक्की का पांव तो भारी दिखाई देता है।"

बाज ने भी यह बात सुन ली। उसने ध्यान से देखा तो उसे विश्वास-सा होने लगा। उसने सोचा, आख़िर बात क्या है? आज बौंगा सच ही बोले जा रहा है।

9

धीरे-धीरे निक्की का पांव और ज़्यादा भारी हो गया तो हवेली में कुछ कनबतियां होने लगीं और फिर अचानक निक्की गायब हो गयी। पहले तो यह अफ़वाह उड़ी कि

वह जल कुक्कड़ के साथ ग़ायब हुई लेकिन जल कुक्कड़ हमेशा की तरह काम पर आता रहा।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि जिस दिन निक्की ग़ायब हुई, उसके घरवालों ने बिलकुल चिंता व्यक्त नहीं की। तीसरे दिन घुक्की ने दबी ज़बान से यह स्वीकार किया कि मौसी गांव से आयी थी, वह उसके साथ चली गई थी। मौसी कब आयी थी? बस वह आयी और चली गयी। लेकिन निक्की ने कहीं जाने की इच्छा व्यक्त नहीं की थी।......इन सब सवालों का टाल-मटोल के सिवा कोई जवाब नहीं था। अगर कोई और ज़्यादा कुरेद कर पूछता कि घुक्की को खांसी उठ जाती। वह खांसते-खांसते बेहाल हो जाती । यहां तक कि बात आयी-गयी हो जाती।

अक्टूबर का महीना ख़त्म होने को था लेकिन अगस्त से जो दंगे शुरू हुए थे, ख़त्म होने में ही न आते थे। हवेली के लम्बे-चौड़े सेहन के आस-पास अनगिनत कोठरियां बनी हुई थीं। बहुत से कारीगर शहर के खतरनाक हिस्सों से निकल कर बाल-बच्चों सहित अस्थायी रूप से वहां बस गये थे। अतएव रात को कारखाने में काफी रौनक़ हो जाती। खाने से निपटकर कारीगर गयी रात तक आपस में गप-शप हांकते और पश्चिमी पंजाब में हिंदुओं और सिखों पर जो अत्याचार किये जा रहे थे उनकी जी भर कर भर्त्सना करते।

ऐसी ही एक रात थी।

खाना खाने के बाद कारीगरों का एक गिरोह कारख़ाने में घुसा गप-शप में डूबा हुआ था। ठंडी हवा चलने लगी थी। इसलिए भीतर से कुंडी चढ़ा दी गयी थी। बल्कि बौंगा तो सुलगते हुए उपलों की मिट्टी की अंगीठी जांघों में दबाये बैठा था। किसी ने हाँक लगायी:

"अबे बौंगे, अच्छी जवानी है साले, अंगीठी रानों में दाबे है।"

"जार! जिन अंगीठियों की गर्मी थीं, उनमें से एक की सादी हो गयी और दूसरी गायब......"

"हां भई डेढ़ महीना हो गया निक्की को गैब हुए।"

एक बोला, "जार, अच्छी बात याद दिलाई मुझे, आज एक आदमी मिला था जो निक्की के पास वाले गांव में रहता है।"

"क्या निक्की की कोई खबर मिली?' एक दो ने दिलचस्पी ली।

"हाँ!'

"क्या'?'

"उसने कुएं में छलांग लगा दी थी।"

"हरे राम!!'

"उसने जह भी बताया कि उसके बच्चा होने वाला था।"

"हो......ओ......फिर?"

"उसने बताया ज्यादा खबर नहीं। सुना था कि लड़की बच जायेगी।"

बाज ने राय दी, "मेरे खयाल में तो देवीदास ने उसकी हालत देखकर गांव भेज दिया होगा कि वहीं कहीं बच्चे से जान छुड़ाकर लौट आयेगी तो जल्दी से सादी कर दी जायेगी उसकी।"

इस दुःखद घटना से सब द्रवित हो उठे और हंसती-बोलती महफ़िल में सन्नाटा छा गया......इतने में दरवाजे पर दस्तक की आवाज़ आयी।

"कौन?" बाज ने पता किया लेकिन जवाब में फिर लगातार दस्तक की हल्की-हल्की आवाजें आती रहीं। सबको यह बात अजीब-सी मालूम हुई। बाज अपनी जगह से उठा लेकिन उसके दिल में खुद्‌बुद-खुद्‌बुद हो रही थी कि कहीं बड़ी सरदानी न हो। मौक़ा पाकर उसने चढ़ाई कर दी हो शायद। बाज ने कुंडी खोल दी।

बाहर से दरवाज़े को बहुत हौले-हौले धकेला गया।

चिराग की थरथराती हुई लौ की मद्धम रोशनी में एक लड़की अंदर दाख़िल हुई।

"सांवली।"

बाज दो क़दम पीछे हट गया।

उपस्थित लोगों में से सब की आंखें दरवाज़े पर लगी हुई थीं। सांवली को देखकर उनके मुंह से हठात्‌ तरह-तरह की आवाज़ें निकलने ही वाली थीं लेकिन बाज के इशारे पर वे उसी तरह चुपचाप बैठे रहे।

सांवली और आगे बढ़ी। उसका गोल चेहरा, नये-नये यौवन की आंच से तमतमाये हुए चेहरे की त्वचा, थोड़े मोटे और भरपूर होंट, चिकने गाल......इन सब चीज़ों के सौंदर्य को पहले किसी ने ध्यान देने योग्य नहीं समझा था। इन सब मनोहारी विशेषताओं के साथ-साथ उसके मुख पर दुधमुएं बच्चे की भांति भोलापन था।

लेकिन इतनी गयी रात को वह वहां क्या करने आयी थी?

सांवली ने हाथ फैलाकर उसकी ऊँची और भारी भरकम मेज का सहारा लिया। जिस पर बाज फर्नीचर बनाते समय लकड़ी के विभिन्न हिस्सों पर रंदा लगाया करता था। लड़की ने मुंह खोला और धीमे से बोली,

"बाज चाचा!"

सांवली ने इधर-उधर गर्दन हिलाकर कोई और आवाज सुनने की नाकाम कोशिश की। इस समय उसके अधखुले मुंह में दातों की पंक्तियों के पीछे उसकी जीभ छोटी-सी मछली की भांति थिरक रही थी। फिर उसने गोपनीयता के भाव के साथ पूछा, "तुम अकेले हो?"

यह सुनकर सबने गर्दनें आगे को बढ़ाईं। उनकी आंखें फैल गयीं।

बाज ने आवाज़ का लहजा बदले बिना जवाब दिया,

''हां, सांवली! मैं अकेला हूं।''

''कहां हो?'' यह कहती हुई वह बाहें फैलाकर हाथ हिलाती हुई आगे बढ़ी । फिर उसने उसे छू लिया।

''यह रहे तुम!'' वह उसे छूकर बहुत खुश हुई !

''सांवली! तुम इस बखत यहां क्यों आयी हो?''

''क्यों इस बखत क्या है?''

''इस बखत रात है......तुम......तुम जवान हो......किरीब......किरीब।''

''मेरे लिए रात और दिन एक बराबर है।''

''लेकिन इस बखत रात के ग्यारह बज चुके हैं......और फिर तुम अकेली हो।''

यह सुनकर सांवली के स्वच्छ मुख पर विस्मय के भाव उभर आये। वह साश्चर्य बोली,

''पर बाज चाचा! तुम्हारे पास आने में क्या बुराई हो सकती है? तुम तो देवता हो।''

बाज ठिठक कर पीछे हटा।

''तुम नहीं जानते चाचा'' सांवली ने फिर कहना शुरू किया, ''तुम्हारी दुनिया और है और अंधों की दुनिया और। चाचा तुम कितने अच्छे, कितने मेहरबान हो। जब मैं तुम्हारी आवाज सुनती हूं तो घंटों उसकी मिठास और प्यार के बारे में सोचती रहती हूं। जब कभी लाला(बाप) मुझे गुस्से होता है तो मैं सोचती हूं कि कोई बात नहीं मेरा बाज चाचा जो है। वह मुझे लाला से कम प्यार तो नहीं करता----- ठीक है ना?''

इस दौरान में बाज मूंछ का सिरा दांतों में हलके-हलके चबाता रहा। उसकी बात खत्म होने पर उसने सोच विचार किया और फिर उसके कुरूप चेहरे पर एक आकर्षक मुस्कान पैदा हो गयी और अपना खुरदुरा हाथ उसके सिर पर रख कर बोला, ''हां सांवली यह सच है......लेकिन.....इस बखत तुम जाओ......''

''नहीं, नहीं, चाचा मैं तुमसे बात करने आयी हूं।''

''अच्छी लड़की बनो सांवली! इस टेम जाओ। कल करेंगे बातें।''

''ओ नहीं चाचा, कल तक सबर हो सकता तो मैं बिस्तर से उठ कर क्यों आती?''

सब स्तब्ध थे।

कारखाने के कमरे में एक बार फिर सांवली की आवाज़ घंटी की तरह गूंज उठी। ''बाज चाचा, तुम समझते नहीं। मैं तुमसे बातें करने आयी हूं। इस बखत यहां कोई नहीं। जभी तो मैं तुम से बातें करना चाहती हूं।''

''क्या बातें करना चाहती हो?''

"बाज चाचा! कुलदीप बाबू बहुत अच्छे हैं.....वह कहते थे.....कि मेरी आंखें ठीक हो सकती हैं। मैं जनम की अंधी नहीं हूं ना! इसलिए......और.....वह......कहते थे कि तुमसे ब्याह.....ब्याह करूंगा।"

इस पर बाज ने अपनी दाढ़ी को मजबूती से मुट्ठी में पकड़ लिया, "कौन कुलदीप?"

"वह जो नये आये थे, वही ना।"

"क्या कहता था वह......."

"वह कहते थे कि सांवली तुम मुझे बहुत प्यारी लगती हो। मैं कहती मैं अंधी हूं, भला अंधी लड़कियां भी किसी को प्यारी लगती हैं। वह कहते, बावली ! प्यार किया नहीं जाता हो जाता है। मैं तुम्हें प्यार करता हूं और फिर तुम जनम की अंधी नहीं हो। तुम्हारा इलाज हो सकता है। तुम देखने लगोगी......पर चाचा। उनको गये पंद्रह दिन हो चुके हैं। लौट के नहीं आये.....और......और......"

यह कहते-कहते सांवली ने अपनी ज्योतिहीन आंखों को और फैलाया जैसे कुछ देखने की कोशिश कर रही हो और फिर झेंप कर बोली, "और मेरा पांव भी भारी है......"

बाज ने अचानक खुल जाने वाले अपने मुंह पर हाथ रख दिया।

सांवली कुछ देर के लिए ख़ामोश हो गयी और बुझे मन से दुःख भरी आवाज़ में उसने अपनी बात जारी रखी, "आज बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं सोच रही थी कि अगर वह न आये तो.....? लाला बहुत दुःखी है। वह कहता है पुक्की और निक्की दोनों खराब हैं एक को ऐसा रोग लग गया है जिससे बचना मुहाल है। दूसरी का पांव भारी---- सच बाज चाचा! लाला बेहद दुखी है। वह रात-रात भर रोता रहता है......वह मुझसे प्यार करता है। मुझे गले से लगाकर कहता है यह मेरी रानी बिटिया है। इसे पाप छूकर भी नहीं गया। लेकिन उसे नहीं मालूम कि मेरा पांव भी----- मैं सोचती हूं अगर कुलदीप बाबू न आये तो......लाला को मालूम हो जायेगा......यह सोचते-सोचते मुझे रोना आ गया। मुझे कुछ नहीं सूझता, जी का बोझ हल्का करने के लिए तुम्हारे पास चली आई......लेकिन वह जरूर आयेंगे......हैं ना चाचा! वह आयेंगें ना?"

सब लोग दम साधे बैठे रहे।

बाज ने एक बार फिर अपना भारी भरकम हाथ उसके सिर पर रखा और उसे तसल्ली देते हुए कहा, "हां सांवली ! कुलदीप आयेगा......वह जरूर आयेगा......"

थरथराती हुई मद्धम रोशनी में बाज ने देखा कि सांवली की सूनी आंखों के कोनों में आंसू दमक रहे हैं......

"और अब सांवली तुम्हें वापस जाना चाहिये।"

यह कहकर बाज ने धीरे-से दरवाजा खोला और सांवली की पीठ पर हाथ रखकर उसे आगे बढ़ाया। वे एक-एक क़दम चलने लगा।

बाज दरवाज़े ही पर रुक गया। वह सांवली को जाते हुए देखता रहा। हर ओर सन्नाटा था। तारों की मद्धम रोशनी में सांवली एक छाया की भांति दिखाई दे रही थी। उसके लिए अंधेरा-उजाला एक समान था। वह बिना किसी हिचकिचाहट के बढ़ती चली जा रही थी।

रसोईघर के कोने से गुज़र कर हवेली की शानदार लेकिन काली दीवार की और भी ज़्यादा काली छाया के नीचे से होती हुई जब वह बड़े फाटक पर बनी हुई उस ऊँची मेहराब के नीचे पहुंची जिसके नीचे से तीन हाथी ऊपर-तले बड़ी आसानी से गुज़र सकते थे तो बाज को मैले-कुचैले कपड़े पहने वह इकहरे बदन की हलकी-फुलकी अंधी लड़की बहुत दुर्बल, अस्तित्वहीन और निरुपाय प्रतीत हुई, जैसे वह कोई रेंगता तुच्छ कीड़ा हो।

बाज वहीं पर खड़ा रहा। उसने आकाश के विस्तार, हवेली की दीवारों, बेजान इमारतों के सिलसिलों फिर उस लम्बी-चौड़ी दालान पर निगाह डाली जिसके वातावरण में कई कच्चे-कुंवारे क़हक़हे गूंजते-गूंजते अचानक दर्दनाक चीख़ों में बदल गये थे।

रात, कोई रात इतनी काली उसके देखने में पहले कभी नहीं आयी थी......और तारे खून के छींटों की भांति दिखाई दे रहे थे।

10

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे थे, त्यों-त्यों सांवली से बहुत घुल-मिले कारीगरों, विशेष रूप से बाज की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। वे नहीं चाहते थे कि सांवली अपनी बहनों की तरह बर्बाद हो। नल के पास या दरवाज़े की सीढ़ियों पर या ऊँची मेहराब तले बैठी हुई अंधी सांवली की दशा उन्हें बहुत दयनीय लगती थी। आते-आते जब भी उनकी उससे मुठभेड़ होती तो सांवली ने उनसे या बाज से दुबारा उसके बारे में कुछ नहीं पूछा।

बीस दिन और बीत गये।

पंजाब बर्बाद हो रहा था। वारिसशाह का पंजाब, गेंहू की सुनहरी बालियों वाला पंजाब, शहद भरे गीतों वाला पंजाब, हीर का पंजाब, कूंजों और रहटों वाला पंजाब! और उसकी एक ज्योतिहीन आंखोंवाली तुच्छ-सी बेटी भी बर्बाद हो रही थी।

एक रात जबकि सब कारीगर खाने-दाने से निपटकर हमेशा की तरह कारखाने में बैठे बातें कर रहे थे तो स्वाभाविक रूप से सांवली की चर्चा छिड़ गयी। उन सबकी हार्दिक इच्छा यही थी कि काश! सांवली का अपनी बहनों का-सा हाल न हो। लेकिन वे इस बात को भली-भांति जानते थे कि यह असंभव है और यह सोचना परले दर्जे की मूर्खता है।

बाज खुले दरवाजे में खड़ा आसमान की ओर देख रहा था। बौंगे को सर्दी लगी तो उसने चिल्ला कर कहा, ''ओये मऊँ दिया मुतराड़ा दरवाजा बंद कर दे! साले तू तो सांड हो रहा है फूलकर, हम गरीबों का तो खयाल कर।''

और कोई मौका होता तो बाज बौंगे की गाली के प्रत्युत्तर में कोई भारी-भरकम गाली सुना देता। लेकिन इस समय उसने चुपके से दरवाजा भेड़ दिया और खुद बड़ी मेज़ पर हाथ टेक कर खड़ा हो गया।

सब उसे हंसने-बोलने के लिए उकसाते रहे लेकिन जब उसका मूड ठीक नहीं हुआ तो उन्होंने बड़े आग्रह के साथ पूछा, ''बई, आज क्या बात है?''

''मैं सोच रहा हूं!''

बौंगे ने सर्दी लगने के बावजूद उठकर झट से कबड्डी खेलने वाले खिलाड़ी का-सा पोज़ बनाया और पास आकर बोला, ''सच्चे पादशाहो क्या सोच रहे हो?''

बाज ने उसकी ओर दार्शनिक अंदाज़ से देखा तो उसे हंसी आ गयी। लेकिन बाज के तेवर वैसे के वैसे रहे। बौंगे को ठठोल के साथ अपनी ओर देखते हुए बाज ने कल्ले के अंदर जबान घुमाई और फिर सिर को झटका देकर उसने बौंगे और अन्य साथियों पर छा जाने वाली नज़रों से देखा और कहा,

''मैं एक बात सोच रहा हूं।''

''क्या?'' सबको उसका दार्शनिक मूड देखकर हंसी आ रही थी जिसे वे बमुश्किल रोके हुए थे।

बाज ने सिर को यों झटका दिया जैसे वह बहुत बुज़ुर्ग हो जिसने दुनिया देखी हो और फिर मेज को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ कर बोला,

''पंजाब में कित्ता जुलम हो रहा है। ऐसा खून-खराबा न देखा न सुना! ठीक?''

''ठीक।''

''और फिर हिंदू और सिख औरतों की जो बिज्जती (बेइज़्ज़ती) पश्चिमी पंजाब में मुसलमान कर रहे हैं। वह सब तुमको मालूम है ठीक?''

''ठीक।'' सबने जरा जोश में आकर जवाब दिया।

अब कुछ देर सोच-विचार के बाद धीरे-धीरे सिपाहियाना अंदाज में सीधा खड़ा हो गया और एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर बोला,

''पर मैं सोचता हू कि मुसलमान गुस्से में आकर जो ब्याकूफी (बेवकूफी) कर रहे हैं वही ब्याकूफी हम चंगे भले अपनी बहनों-बेटियों के साथ कर रहे हैं। बताओ मुसलमानों को दोष देने से पहले हमें खुद को शर्म महसूस नहीं होनी चाहिये।''

बैठक में सन्नाटा छा गया।

नन्हें-से चिराग की पतली सी थरथराती लौ की रोशनी में बाज ने अपनी मोटी और लम्बी उंगली उठाते हुए अपना कथन जारी रखा,

"ऐसे ही पाकिस्तान में पुक्की, निक्की और सांवली की हजारों-लाखों बहनें होंगी। तो फिर सवाल यह पैदा होता है कि हम या वे किस इज्जत के लिए लड़ रहे हैं? क्यों हम एक दूसरे को जांगली कहते हैं?"

इतने में दरवाज़ा बड़े धमाके के साथ खुला। सबने उधर निगाह डाली तो देखा कि सांवली दरवाजे के बीचों-बीच खड़ी है। उसे रूखे-सूखे बाल रूई के तरह धुने हुए हैं। उसकी बाहें फैली हुई हैं। उसके अंगों में कम्पन है। इससे पहले कि कोई बोलता वह ज़ोर से चिल्लाई,

"बाज चाचा! बाज चाचा!!

ज़िंदगी में पहली बार बाज का कलेजा धक से रह गया।

"बाज चाचा! बाज चाचा!!"

सांवली की आवाज़ वातावरण में दुबारा गूंजी।

"हां हां, सांवली बोल! घबराई हुई क्यों है तू? बोल....."

"वह आ गये!"

'कौन?'

"कुलदीप बाबू आ गये।"

"आ गया वह?" सब खुशी के मारे चिल्ला उठे।

"और आते ही वह मुझे डाकदार के पास ले गये। डाकदार ने कहा आंखें ठीक हो जायेंगी। लेकिन इलाज बहुत दिन करना पड़ेगा......"

बाज ने बढ़कर सांवली के दोनों कमज़ोर कंधों को अपने हाथों में दबोच लिया और उसे हिलाकर कहा,

"सच कब?"

"हां सच, उनकी माताजी भी साथ आयी हैं......"

"अरे तो वह इत्ते दिन कहां गैब रहा?"

"उन्होंने मुझे बताया कि पहले उनकी बात कोई नहीं मानता था। उन्होंने भूख हड़ताल शुरू कर दी। बड़ी मुश्किलों से उन्होंने उनकी बात मान ली। वह कहते हैं कि ऐसा रगड़ा-झगड़ा हुआ कि मैं खत भी न लिख सका। लिखता भी तो क्या लिखता......"

"ओ हो हो हो!" सब खुल कर हंसे।

सांवली ने झूम कर कहा, "वह मेरी मिन्नतें करने लगे, कहने लगे, सांवली मुझे माफ़ कर दो......अगर तुम्हें कोई दुख पहुंचा हो। हम कोई अमीर नहीं है लेकिन सब काम ठीक हो जायेंगे......हम तुम्हें दिल्ली ले जायेंगे"

सब लोग सांवली की तरफ़ बढ़े और अपने-अपने ढंग से ख़ुशी व्यक्त करने लगे। आखिर बाज ने दोनों हाथ उठाकर कहा,

"भाइयों, ठहरो! मेरे ख्याल में अब सांवली को आराम करना चाहिए। इसे रात के समय घर से बाहर नहीं रहना चाहिये। सांवली हम बोहत खुश हैं। अब कल बातें होंगी। चलो......अब तुम जल्दी से घर जाओ।"

सांवली के साथ किसी का जाना उचित नहीं था। क्योंकि वह घर वालों से चोरी-छिपे आयी थी।

सब उसे बड़े स्नेह के साथ कारख़ाने के दरवाजे तक छोड़ने गये।

आठ-दस मिनट बाद जब सारा टोला बाज़ार जाने का प्रोग्राम बनाकर निकला तो ऊंचे मेहराब के नीचे से गुजरते समय उन्हें दीवार के साथ एक मटियाली मूरत-सी दिखाई दी।

वे सब रुक गये।

बाज ने आगे बढ़कर ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि सांवली है।

"सांवली तुम अभी घर नहीं गयीं?"

सांवली ने शून्य में ताकते हुए कहा, "बाज चाचा! न जाने मेरे दिल को क्या हो गया है। कुछ सूझता ही नहीं कि क्या करूं? ज़रा दम लेने के लिए रुक गयी.....बाज चाचा.....सोचती हूं, ऐसी खुशी की बात कैसे हो सकती है? लेकिन चाचा तुम्हें मेरी बात पर इकीन है ना?"

बाज ने घूम कर अपने साथियों की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा, सब चुप थे। वह भी चुप रह गया।

सब को खामोश पाकर सांवली ने सवाल दुहराया, "आप सबको इकीन नहीं आता?"

बाज की आंख के कोनों में आंसू छलक आये। उसने हाथ बढ़ाकर सांवली के सिर पर रख दिया और फिर धीमी आवाज में बोला,

"हमें इकीन है.....और देखो तुम्हें बेबखत घर से बाहर नहीं रुकना चाहिये और फिर सर्दी पड़ने लगी है। कहीं तुम बीमार न हो जाओ।"

सांवली ने उसकी मजबूत कलाई को अपनी कमजोर उंगलियों से छूकर पूछा, "पर बाज चाचा आप सब लोग बेवख्त कहां जा रहे हैं?

"हम....." बाज ने पितृवत् स्नेह से कांपते हुए उसके गाल को छूते हुए जवाब दिया, "सांवली बेटी! हम इस खुशी में बर्फ़ी खाने जा रहे हैं!"

देश भगत

शाम हो चुकी थी। मैं छोटे भाई को चिट्ठी लिख रहा था कि इतने में चचा अंदर दाख़िल हो गये। बिना किसी भूमिका के बोले, "सुनो ! आज ज़रा ख़ास काम है। तुमको मेरे साथ चलना होगा।"

'ख़ास काम' वाले शब्द सुनकर मैंने सिरहाने से सफ़ाजंग[1] उठाई और उसे फ़र्श पर टेक उठ खड़ा हुआ!

"मुसलमानों का मोहल्ला है......मियां लोगों का ,समझे?......और फिर रुपये का मामला......"[2]

मेरी उनसे कोई रिश्तेदारी न थी। बस हमारे गाँव के रहने वाले, पिताजी से भी कुछ राम-राम थी। मुझ पर मेहरबान थे और काफी खुले हुए भी। मेरी उम्र लगभग बाईस वर्ष की थी। क़द जरा निकलता हुआ, चौड़ा सीना, सुडौल बाज़ू, मजबूत हाथ-पाँव, बावजूद चार बार कोशिश करने के भी एफ.ए. पास न कर पाया था। चचा का मंझौला क़द गेहुंआ रंग, खिचड़ी दाढ़ी, दुबले पतले मगर सख्त हड्डी के लगभग पैंतालीस-साला बुजुर्ग। उन्हें पंजाब छोड़े तीन साल हो चुके थे। इस जगह उनका एक ईंटों का भट्टा था। थोड़ा बहुत ठेकेदारी का काम भी मिल जाता था।

गुबार और धुंध के गहरे कफ़न ने शहर को ढाँप रखा था। बाज़ारों में कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी। इक्केवालों की हाँकें, उनकी गालियाँ, उनकी क़व्वालियां......दूर धुंधलके में मस्जिद के क़रीब किसी घर की छत पर सफ़ेद-सफ़ेद कबूतरों की टुकड़ियाँ हवा में उड़ान भरती दिखाई दे रही थीं।

हम घंटा के पास से होकर बेगम सराय की तरफ चल खड़े हुए।

नुक्कड़ पर बादशाह खान पठान की चाय की दुकान थी। इस जगह सूदखोर पठानों का जमाव होता था, बैठे चाय पीते या या कहवा उड़ाते । दो-तीन बेघर-बार छोकरे आग जलाने, प्यालियाँ धोने, चाय बनाने और फिर ग्राहकों के साथ हँस-हँस कर बातें करने का फ़र्ज़ निभाते और कभी रिकार्ड बजते :

---

1. एक प्रकार की कुल्हाड़ी, सिखों का एक हथियार
2. यह उनका बहुत घिसा-पिटा और व्यर्थ का बहाना था।

लड़म दे लड़म

वो मोरे रादो का लड़म दे लड़म

कभी कोई ख़ान अपनी शलवार ऊपर चढ़ा, टांगें जांघों तक नंगी कर किसी हिंदुस्तानी मोची से झगड़ने लगता और कहता,

"अमरा काबुल में चप्पल ओता, तुमरा देस में चप्पली!"

या फिर बगल वाली 'गर्म गर्म कलिया पराठा' की दुकान पर शाह साहब—एक बुजुर्ग हरे कपड़े पहने दाढ़ी मेंहदी से सुर्ख किये आन बैठते। ब्रह्मज्ञान के तेज से कबूतर के रक्त की भांति लाल आंखें, चेहरा सोने की भांति दमकता हुआ, बाल चिकने-चुपड़े और इत्र से सुगंधित। उनके आते ही श्रद्धालुओं के झुंड के झुंड जमा होना शुरू हो जाते— मजहर (मज़हर), शहर के बेताज बादशाह जुम्मन रंगसाज, कमर जिन्दसाज़ और लल्लू मालिक :

जाते कहां हो किस तरफ़ ख्याल है

घड़ियों का बस यही अस्पताल है!

वगैरह जैसी हस्तियां आन खड़ी होतीं, ग्रामोफोन को चाबी देकर मलका-ए-आलम का रिकार्ड चढ़ा दिया जाता और सब लोग तालियों के साथ "अल्ला हू, अल्ला हू, अल्ला हू" गाने लगते।

उस तरफ पैसा अखबार वाला चिल्लाता—"हिटलर की पेश कदम.....बरतानिया का मुंह तोड़ जवाब......जापान की बरतानिया को गीदड़ भबकी......एक पैसे में।"

यह सुनकर वह बुजुर्ग सब्जपोश सिर को ज़ोर के साथ घुमाकर नारा लगाते "या अली" और फिर "अल्ला हू, अल्ला हू"।

इधर यह हंगामा तो उधर खुजली के मारे हुए कुत्ते शामी कबाबों की गंध पाकर थूथनियां उठा-उठाकर हवा में सूंघा करते और कभी मौक़ा पाकर कुछ न कुछ ले भी उड़ते।

कुछ दूर जाने के बाद महगी पनवाड़ी की दुकान के आगे रुक गये। महगी की उम्र बत्तीस बरस पार कर चुकी थी। बदन की भारी, गोरा रंग, नाज़ो-अदा की कमी न थी। बड़ी-बड़ी आंखों में बेतहाशा काजल, होंटों पर मिस्सी की धड़ी। पान का बीड़ा बढ़ाती तो पहले तो अपनी नशीली और कटीली आंखें ग्राहक की आंखों से लड़ा देती। तब शरमा कर और मुस्कुराकर नज़रें झुका लेती और पिंडलियों को धोती से ढाँप कर अपनी चांदी की पाज़ेबों पर नज़रें गाड़ देती।

मैले-कुचैले चीथड़े पहनने वाले मज़दूर, डाकखाने के पास बैठने वाले ख़तनवीस मुंशी या होटलों के गाइड नशे की तरंग में आते और उसे देखकर मचल जाते। अपनी भीतर धंसी हुई नशीली आंखों से उसे देखते। कभी इतना कहने के लिए—"हाय री आज तो गजब का बनाव-सिंगार कर रखा है" कभी किसी कजरी का बोल, कसम से—

घर से निकली ननद भौजिया
जुलम दोनों जोड़ी रे, सांवरिया......

और कभी पान लेते वक़्त, उसकी हथेली को अपनी उंगली से खुजा देने की चाहत में एक पैसे के पान और एक पैसे की चार वाली परीमार्का सिगरेट खरीद लेते।

चचा को देखते ही उसने झुककर सलाम किया, "अरे पंजाबी बाबू! कौन देस रहत हो अब?"

· "महगी, बस क्या पूछो हो, तुम हमन को भूलत नांह।"

महगी सिर पर आंचल खींच संभल कर हो बैठी ओर पान लगाते हुए कहने लगी, "और वो हमरे लिए तुम चुंदरी लान को कहत रहे?"

चचा अनसुनी करके उसके लाल-लाल गालों की और ललचाई हुई आंखों से ताकते हुए बोले "अब लाओ, देओगी भी नहीं!"

महगी कुछ लजा गयी और मलामत भरी नज़रों से चचा की तरफ़ देखने लगी।

इतने में और ग्रहक भी आ गये। मैं ज़रा पीछे हटकर खड़ा हो गया।

बाईं ओर बरामदे में एक बुढ़िया किसी चालाक लोमड़ी की तरह सबको ताड़ रही थी। उसके पास ही टाट पर एक औरत बैठी थी। जिसमें सिवाय इसके कि वह जवान थी, और कोई खूबी नहीं थी। नौजवान औरत ने मजमे के आदमियों को अपनी तरफ छुपी नजरों से देखते हुए पाया तो झट से कमीज़ के बटन खोलकर गरेबान उलट-उलट कर लालटेन की रोशनी में खटमल पकड़ने लगी। और कभी साड़ी हटाकर अपनी टांगें खुजाने लगती।

कच्ची और स्याह दीवार पर पान की पीक के निशान ऐसे दिखाई देते थे जैसे भूत नाच रहे हों। कमरे के अंदर जापानी औरतों की अधनंगी फटी-पुरानी तस्वीरें नजर आ रहीं थीं। एक तरफ खाट पर बिस्तर बिछा हुआ था और उसके पास ही फर्श पर मटियाले रंग का उगालदान भी पड़ा था।

एक आदमी ने नौजवान औरत के बाजू की चुटकी लेते हुए कुछ पूछा तो बुढ़िया ने अंधेरे में आगे झुककर हलक में से आवाज निकालते हुए धीरे से कहा, "आठ आने!"

अंधेरी और टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में से होते हुए हम चले जा रहे थे। कभी-कभी किसी गली के नुक्कड़ पर सरकारी लैम्प की धुंधली रोशनी में सफ़ाजंग की चमक और मेरी घेरेदार शलवार से भयभीत होकर बच्चे घरों में घुस किवाड़ बंद कर लेते थे।

कुम्हारों के महल्ले के पास पहुंच कर चचा गंदे नाले की तरफ चल दिये। रास्ता घोड़ों और गधों की लीद से अटा पड़ा था। छप्परों वाले टूटे-फूटे कच्चे मकान थे। कुम्हारों की भारी भरकम औरतें कच्चे चबूतरों पर लेटी, रोते हुए नन्हें बच्चों को दूध पिलाकर चुप कराने की कोशिश कर रही थीं।

गंदे नाले के पुल पर गुज़रते हुए मैंने पगड़ी की कलगी से नाक ढाँप ली। इसके बाद हम बड़े तालाब के किनारे-किनारे चलने लगे। यहां शहर भर की गंदगी जमा थी लोग टट्टी भी यहीं फिरते थे। जब वे उठ कर चले जाते तो भंगियों के महल्ले से सुअर आकर मुंह मारने लगते। कहीं-कहीं कुत्ते दम तोड़ते नज़र आते थे। कहीं किसी गधे का पंजड़ पड़ा था और किसी तरफ घोड़े के जबड़े के पास कोई गिद्ध मरा पड़ा था। यह कच्चा तालाब बहुत बड़ा था। इसके अंदर कई इनसानों और जानवरों का पेशाब और गंदगी जमा थी। इसका पानी बहुत गाढ़ा, बेहद बदबूदार और स्याह रंग का था। चांद की चांदनी उसको और भी भयानक बना रही थी। इसकी सतह पर उबले हुए बुलबुले इस तरह दिखाई देते थे जैसे किसी व्यक्ति के शरीर पर जलने के घाव।

यहां से गुज़र कर बहुत देर तक हम दोनों चुपचाप चलते रहे। आखिरकार चचा एक टूटे-फूटे घर के आगे रुके और आवाज़ें देने लगे, "मजीद, ओ मजीदे!"

मैंने कहा, "चचा आपने व्यर्थ में इतना बड़ा चक्कर लगाया। यह गली वहीं नहीं जो स्टेशन से आने वाली सड़क से जा मिलती है।

चचा आंखें चमका कर बोले, "अरे मियां ! उधर जाते तो भला यह सैर कैसे होती बस तुम भौंदू ही रहे......ही ही......उधर क्या रखा था......ही ही.....अरे ओ मजीदे!

"हजूर गुलाम तो ईधर खड़ा है।"

मैंने घूम कर देखा कि एक लम्बा तड़ंगा, चौड़े कंधों वाला आदमी झुका फर्शी सलाम कर रहा है। बावजूद सर्दी के एक मैला-कुचैला तहमद कमर से लपेटे हुए था और जिस्म पर सिर्फ एक चादर।

"आइए, आइए......आका अंदर चले आइए।"

यह कह कर उसने टाट का गला-सड़ा पर्दा उठाया और हम अंदर दाखिल हो गये

"कुरान की कसम (बहन की गाली देकर) सालों ने जीना मुस्किल कर दिया है यह पुलिस भी बस खुदा की पनाह है।"

मैंने इधर-उधर देखा। सामने छोटे से सेहन के कोने में एक पायखाना, पास ही लकड़ियों का ढेर, गोबर से लिपी हुई कच्ची दीवारों पर उपले, एक तरफ खटमलों से भरपूर टूटी हुई खाट, उधर चुल्हे के पास मिट्टी के तेल की कुप्पी, उसकी छोटी-सी लौ अंधेरे से लड़ने की नाकाम कोशिश कर रही थी। चूल्हे के पास एक बुढ़िया ईंट पर बैठी एक बासी रोटी तोड़-तोड़ कर खा रही थी। हाथ में प्याज और फ़र्श पर चटनी का पत्ता।

मजीद चचा को बता रहा था कि कैसे उनके मुहल्ले में किसी ने एक हिंदू पर लाठी चला दी। जिससे उसका सिर तो बच गया मगर एक कान साफ उड़ गया। और किसी तरह वह चीखता-चिल्लाता महल्ला के नाके की तरफ भागा। और फिर ना

सेहन में बेहोश होकर गिर पड़ा था और कैसे पुलिस उसको (मजीदे को) नाहक दो घंटे से कोतवाली में बैठाये तंग करती रही थी और अब कहीं जाकर उसकी खलासी हुई थी। चचा ये बातें सुनकर कुछ परेशान हो गये।

मजीद चूल्हे की तरफ गया, पत्ते में से उंगली पर चटनी लगाकर चाटी, और चटखारा लेकर बोला, "काहे की है?"

"प्याज की।"

फिर वह छत से लटकी हुई हंडिया में हाथ डालकर टटोलने लगा, "तम्बाकू कहां है?"

पोपले मुंह वाली बुढ़िया बोली, "वो तबे के पीछे ।"

मजीद हुक्का पीने लगा। चचा को बताते हुए बुढ़िया की तरफ भौंह से इशारा करते हुए बोला, "मां है मेरी।"

इतने में पर्दा उठा। एक काले-कलूटे ने अंदर झांककर देखा, "कौ मजीद खां! पुलिस में का हुआ?"

चचा उसकी सूरत देखकर घबराये। उसका सिर उस्तरे से मुंडा हुआ, ये मोटी गर्दन, टूटे हुए कान चौड़े नथुने......।

चचा ने मेरा हाथ दबाया।

"बतलायेंगे।" यह कहकर मजीद उठा और उसके पास जाकर काना-फूसी करने लगा। खैर वह आदमी तो चला गया और मजीद फिर आकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

चचा ने माथे से पसीना पोंछा, खांसकर गला साफ़ करते हुए बोले, "अच्छा भई मजीद अब कुछ मामले की बात होनी चाहिऐ।"

"हां, हां" मजीद ने सिर घुमाकर कहा। फिर बुढ़िया की तरफ झुका, "क्यों माँ! (आँख मार कर) पखाने गयी क्या?"

बुढ़िया ने दबी ज़बान में कुछ जबाव दिया।

"धत् तिरी की माँ! तू भी अजब ऊल-जलूल है।"

उसने हुक्का रख दिया और "अभी आया" कहकर जाने लगा।

चचा घबराकर रख उठ खड़े हुए, "मजीद हम बाहर सड़क पर खड़े होते हैं तुम इसे उधर ही ले आना।"

"कसम अल्लाह पाक की, पंजाबी बाबू जिधर हुक्म हो ले आऊं।"

"अच्छा तो हम सड़क पर खड़े हैं।"

यह कह कर चचा भागम-भाग सड़क पर आ खड़े हुए और स्टेशन से आने वाले इक्कों को देखने लगे।

चचा, मजीद, एक नौजवान लड़की, बुढ़िया और मैं—कुल पाँच लोग एक पुराने बाग की चारदीवारी के पास खड़े थे।

मजीद ने कुछ विस्तृत बयान शुरू कर रखा था और लड़की की ओर देखते हुए चचा से कह रहा था......"रोज पूजा करन जात रही......मैंने समझाया, पगली पूजा से का मिली? चल पंजबी संग सादी करा दूंगा, बस पंजाब देस जा, गहना-कपड़ा पहन, खाना-पीना मजा उड़ाना......बस ऐसी धुप्पल में फांस लाया हूं, पंजाबी सरदार! लौंडिया का है, हीरा समझो, गरीब है कोयलों में रखा......तुमरे पास जाकर चमक बढ़वा ही करेगी।"

लड़की की उम्र मुश्किल से तेरह या चौदह वर्ष की होगी। गेहुंआ रंग, चौड़ी नाक, होंट जैसे संगतरे की फांकें, बड़ी-बड़ी जर्द आंखें, बाल सूखे बदबूदार, हाथों और कलाइयों पर मैल, दुबली-पतली, सहमी हुई कबूतरी की तरह एक मैली-सी फूलदार चादर ओढ़े खड़ी थी।

चचा लड़की को लेकर चंद कदम आगे नीम के एक पेड़ के नीचे जा खड़े हुए। थोड़ी देर खामोशी-सी छाई रही। फिर चचा की दबी-दबी आवाज़ आने लगी, "क्या नाम है? बताओ ना!.....अरे बताओ......हूँ? क्या कहा? अच्छा......अच्छा......वाह! खूब नाम है......हाँ हाँ!! सर्दी लगती है! अरे रे रोती हो......अच्छा जाने दो......रोती क्यों हो......लो न सही.....ओ.....ओह.....ओहो......अरे नहीं......"

"तुम का करत हो, छोटे पंजाबी?" मजीद ने मुझे संबोधित करते हुए पूछा।

"पढ़ता हूँ।"

"पढ़त हो?......हो हां हो......ही ही......बाबू हो जाओगे।"

चचा और लड़की वापस आ गये।

मजीद ने साक्षात प्रश्न बनकर चचा की ओर देखा। चचा बोले, "अभी झेंपती है......"

मजीद ने लड़की की ठोड़ी उठाकर कहा, "अरे छरमाती क्यों है......सोने के कंगन मिलेंगे......चुंदरिया मिलेगी......"

लड़की ने ज़र्द-ज़र्द आंखों से मजीद की तरफ देखा......और फिर लम्बी और गहरी सिसकी भरकर खामोश हो गयी।

बुढ़िया और लड़की को वापस घर की तरफ रवाना कर दिया गया। और हम तीनों ताड़ी खाना पहुंचे।

वह चचा के मेल-जोल का चमत्कार था कि हमें तीन लोहे की कुर्सियां और तीन टांग की एक मेज मिल गयी।

ताड़ी की गंध चारों ओर फैली हुई थी। सामने जहां दीवार पर एक "गंदी बीमारियों का शर्तिया इलाज" मोट-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था एक चाट वाले की दुकान थी।

मजदूर लोग ताड़ी के नशे में मस्त वहां बैंगन के पकौड़े दही डलवा-डलवा कर खा रहे थे। दीवार की छांव में गूंगी भिखारन बैठी थी। उसकी सूरत घिनौनी थी और बदन पर टाट के चीथड़े लटके हुए थे। जब कोई आदमी दही-आलू पत्ता नाली की तरफ फैंकता तो दुबले-पतले कुत्तों और उस गूंगी भिखारन के बीच पत्ता झपटने की कशमकश देखकर मज़दूर लोग मनोरंजन करते थे। वे खुश होते थे कि दुनिया में किसी के अभावों पर वे हंस सकते हैं। वे वहशियाना अंदाज़ से दांत निकाल-निकाल कर कहकहे लगाते और उछल-उछल कर अपने चूतड़ पीटते थे।

मजीद दो आबखोरों में ताड़ी और मिट्टी की चीनी में भुनी हुई कलेजी लाया। ताड़ी फरोश ने एक सुराही ताड़ी से भरकर हमारे सामने रख दी। अब दोनों ताड़ी पीने लगे।

लालटेन की धुंधली रोशनी में अजब-अजब लोग नजर आ रहे थे। नशे में चूर वाही-तबाही बक रहे थे। कहीं टूटे हुए आबखोरे, कहीं कोई चचोड़ी हुई हड्डी पड़ी थी------ और किसी तरफ कोई कुत्ता नशे में बेहोश शराबी का मुंह चाट रहा था।

चचा ने दोबारा आबखोरा भरकर कहा, "लेकिन उसकी टांगें बहुत पतली हैं......कमजोर है बिचारी......"

"अभी उम्र ही क्या है?"

बहुत देर तक दोनों में काना-फूसी होती रही। फिर मजीद ऊंची आवाज में बोल उठा, "अरे या बी -हाजिर......और हुक्म के गुलाम हैं......वो वो मिठाई खिलाऊंगा जो एक बारी याद भी करो तुम......"

"मगर जो बात हमने कही वह भूलना नहीं।"

"अरे नहीं साहब! जब कहो तबी हो जस..... .फिकर का है"

इतने में हमारा ध्यान एक शराबी की तरफ चला गया। वह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था "अरे कोई हमरी भी सुनो । देखों यह लौंडा......"

"अमां जाओ!" एक भारी भरकम पहलवान ने उसकी पीठ पर धौल जमाकर कहा......उसकी आंखें चढ़ी हुई थीं। वह हाथ में ताड़ी से भरा आबखोरा लेकर उठा, लडखड़ाते हुए कदमों के साथ—उसने छलकता हुआ आबखोरा हवा में बुलंद करते हुए कहा, "मैं देवदास हूं......देवदास!......(जोर से खाँसकर), दुख के......दुख के.......हा......हा !! दुख के अब दिन......"

इतने में नाई का लौंडा पहले शराबी से हाथ छुड़ाकर भागा......पहलवान ने उस आदमी के जोर की लात रसीद की, "अबे ओ......आ......इधर आ......चला आ......हां बेटे......हां तौबा कर......हाथ जोड़.....दुआ मांग......देख जैसे मैं मांगता हूं......:

"या इलाही ! दे लुगाई......और व ऊ ऊ ऊ दो।"

साथ ही उसका तहमद खुलकर ज़मीन पर आ रहा, उसके मुंह से कै का फव्वारा निकल पड़ा और उसकी उस्तरे से मुंडी हुई टांगों पर कै की बौछारें हो गयीं।

तीन चार दिन के बाद......मैं सिनेमा देखने के बाद दस बजे के करीब घर वापस जा रहा था। सोचा, चलो थोड़ी देर चचा से गप रहे।

चचा एक भोजनालय में सबसे ऊपर की मंजिल पर एक कमरे में रहते थे।

ऊपर पहुंचा। मगर दरवाजे के पास जाकर मैं ठिठक गया। अंदर से कुछ बातों की भनक सुनाई दे रही थी।

मैंने चुपके से दराज में से झांका, देखा कि वही लड़की खड़ी थी। चचा उसके मुंह पर हाथ रखे हुए थे। मजीद ने आगे झुककर कहा, "देख बहुत हरमजदगी करेगी तो हिलाल करके फैंक दूंगा......."

लड़की ने बड़ी ही बैचेनी की हालत में तड़पकर खुद को आजाद किया और दरवाजे की तरफ लपकी। वह चिल्लाना चाहती थी मगर मारे दहशत के उसके मुंह से आवाज न निकलती थी। चचा बड़े जोशो-खरोश के साथ झपटे, उन्होंने उसको दबोचा और पलंग पर पटक दिया।

थोड़ी देर बाद लड़की ने जद्दोजहद बंद कर दी।......

मजीद बड़े निश्चिंत भाव से गुरुनानक साहब की तस्वीर के पास खड़ा बीड़ी पी रहा था और तस्वीर को सम्मान की नजरों से देखने में मगन था।

दूसरे दिन छुट्टी थी। मेरा इरादा था कि चलकर स्टेशन के बुक स्टाल से कोई रिसाला वगैरह खरीदा जाये।

जब भोजनालय के पास पहुंचा तो देखा कि चचा सीढ़ियों पर से उतर रहे हैं। मुझे इशारा से बुलाया और पूछने लगे कि भाई इतने दिन कहां रहे, दिखाई नहीं दिये।

सीढ़ियों के पास ही पंडित जी की दुकान थी। पंडित जी पान भी बनाते और लस्सी भी बेचते थे। चचा को देखते ही उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "जै वाह गुरुजी की।"

"कहिए पंडित जी चित्त प्रसन्न है ना?"

चचा इस समय अकालियों वाली पगड़ी बांधे थे। खद्दर का लम्बा कुर्ता, गले में पीले रंग की साफी और फिर कृपाण।......

"सरदार जी, आज तो बहुत देर से उतरे।" पंडित जी ने सवाल किया।

चचा ने बड़ी विनम्रता से सिर झुकाकर जबाव दिया, "पंडित जी आज सुखमनी साहब का पाठ करते हुए देर हो गयी।"

इतने में कुछ और लोग भी आ गये। चचा और पंडित जी दोनों ने एक भिखारन को धुत्कारा। पंडित जी बोले, "माफ कर......माफ कर......हरामलादी......नखरे मत दिखा......बहुत देखे।"

औरत डर कर पीछे हट गयी। पंडित जी ने मूंछों को हटाकर गंगाजल की लुटिया मुंह से लगायी और फिर लोगों की तरफ मुखातिब होकर बोले, "जब अफगानियों ने भारतवर्ष पर हमला किया तो यही लोग थे जिन्होंने उनका मुकाबला किया, अबलाओं की रक्षा की, बहुत परोपकारी लोग हैं ये।"

चचा ने अपने दुबले-पतले कमजोर कंधों को हरकत दी और फिर अपनी नौ इंच तलवार को संभालते हुए बोले, "पेड़े हैं पंडित जी? दो गिलास लस्सी......"

"चचा मैं तो लस्सी पीकर आ रहा हूं। मुझे इजाज़त दीजिए।" मैंने कहा।

स्टेशन पर जाकर देखा तो इतनी भीड़ थी कि तिल धरने को जगह नहीं थी। प्लेटफार्म तक पहुंचना असंभव हो गया। लिहाज़ा बाहर से ही तमाशा देखता रहा। एक आदमी ने ऊंची आवाज में नारा लगाया, "बोलो राष्ट्रपति पंडित जवाहर लाल की जय।"

सारी जनता ने गला फाड़-फाड़कर कहा, "राष्ट्रपति जवाहर लाल की जय! महात्मा गांधी की जय!! भारत माता की जय!!!"

और जब जवाहर लाल जी बग्घी पर आकर बैठ गये। तो इतने में चचा हाथ में गेंदे के फूलों का हार लिये नमूदार हुए । उन्होंने बारम्बार प्रणाम करने के बाद हार पंडित जी के गले में पहनाया।

मजीद खां भी खद्दर का कुर्ता पहने कांग्रेसी स्वयंसेवक की हैसियत से इधर-उधर दौड़ता फिर रहा था।

यकायक 'हटो, बचो, बढ़ो, जै राम जी की, राम, राम, राष्ट्रपति हां-हां, नहीं-नहीं का शोर बुलंद हुआ और जुलूस शहर की तरफ रवाना हो गया। सब लोग देश प्रेम के जोश में बड़ी श्रद्धा के साथ गा रहे थे :

झंडा ऊँचा रहे हमारा

झँडा ऊँचा रहे हमारा.....झंडा......

चचा की आवाज़ सबसे ज़्यादा बुलंद थी । जब जुलूस मजीद के मुहल्ले के पास पहुंचा तो सड़क के किनारे भीड़ में मुझे वही मैली-कुचैली लड़की दिखाई दी। वह आश्चर्य के साथ फटी-फटी आंखों से इन झंडा ऊंचा रखने वालों को देख रही थी। वही धूल सने बाल, सहमी हुई बेज़बान सूरत, ज़र्द-ज़र्द आंखें।

उसी समय गली में से एक कुत्ता निकला और मजीद को देखकर बेतरह भौंकने लगा। वह भाग कर भीड़ में घुस गया।

एक हवा के झौंके से उस गली की ख़ाक उड़ी और चचा की चिकनी दाढ़ी धूल से अट गयी।

सूरमा सिंह

पिछली गर्मियों में जब तफ़रीह के लिए पहाड़ पर गया तो वहां लोगों का असाधारण रश पाया। कोई होटल, कोई मकान या धर्मशाला ख़ाली न थी। बहुत दौड़-धूप के बाद कहीं गुरुद्वारे में जगह मिली। एक मामूली-सा कमरा था और उसके साथ एक छोटी-सी रसोई। गुरुद्वारे में तीन दिन तक मुफ़्त रहने की इजाज़त थी और इसके बाद अगर कोई आदमी ठहरना चाहे तो फिर दक्षिणा ली जाती थी। जंग से पहले तो रोज़ के चार आने भी सधन्यवाद स्वीकार कर लेते थे। लेकिन अब जो पूछा तो दो रुपये प्रति दिन के हिसाब से अग्रिम दक्षिणा की मांग की गयी। चूंकि घर से पहाड़ पर एक-डेढ़ महीना बिताने के विचार से आया था तो लौट कर कैसे जाता। अतः दक्षिणा दे दी गयी।

इतने में या इससे ज़्यादा किराये पर अगर होटल में जगह मिल जाती तो वह और बात थी। वहां सेवा के लिए नौकर और दूसरी सुविधाएं होती हैं। लेकिन अब इस समय इसके सिवा कोई चारा ही न रहा।

मैं यह बताना भूल गया कि मेरे साथ मेरा छोटा भाई भी था।

कमरे में दो खिड़कियां थीं। इन खिड़कियों के सामने हमने अपनी चारपाई बिछा दी। एक नौकर भी मिल गया। रसोई में इकट्ठे दो मन कोयले डलवा लिये। दो वक़्त खाना भी पकने लगा। शुद्ध घी हम अपने साथ ही लेते आये थे। प्रोग्राम यह था कि दिन भर तो चारपाई पर लेटे-लेटे पढ़ा करता। शाम को चार बजे के क़रीब सैर के लिए निकल जाता। कुछ देर सैर करने के बाद किसी अंग्रेज़ी सिनेमा में कोई पिक्चर देख लेता। बस कमोबेश मेरी यही दिनचर्या थी। छोटे भई को दो चीज़ों का बहुत शौक़ था। घोड़े की सवारी करने का और स्केटिंग का । दिन का कुछ समय पढ़ने में बिताने के बाद वह स्केटिंग या घुड़सवारी के लिए चल खड़ा होता। कभी-कभी अगर वहां देखने के क़ाबिल कोई पिक्चर आती तो हम दोनों पिक्चर देखने के लिए चले जाते थे। इस तरह से हमारी ज़िंदगी गुज़र रही थी।

चूंकि मैं दिन भर कमरे ही में रहता था। इसलिए अगर कभी पढ़ते-पढ़ते थक जाता तो पहाड़ों के दृश्यों का आनंद लेने के लिए बाहर निकल आता। हमारे कमरे के आगे

बढ़ा हुआ छोटा-सा छज्जा भी था। मैं जंगले पर हाथ टेककर खड़ा हो जाता और एक-दूसरे के पीछे लपकने वाले बादलों का तमाशा देखा करता। हमारे कमरे के साथ ही एक और छोटा-सा कमरा था। वहां पर एक लम्बी दाढ़ी वाला सिख रहता था। उसके साथ एक-दो आदमी और भी आने रहते थे। हमारे कमरे के आगे एक बड़ा बरामदा था। चंद कोठरियां भी थीं। इस बरामदे में गुरुद्वारे की रसोई भी थी।

हमारे कमरे से ऊपर वाली मंज़िल पर भी अनेक कमरे बने हुए थे और नीचे की मंज़िल पर भी कमरे थे। यानी हमारा कमरा बीच की मंजिल पर था।

जब मैं अपने कमरे के आगे छज्जे पर खड़ा होता था तो मुझे इधर-उधर की बातें सुनने का मौक़ा मिल जाता था। गुरु की लंगर (किचन) केवल रसोई ही नहीं थी बल्कि उसे गुरुद्वारे का विश्वविद्यालय भी कह लीजिए या क्लब घर—बस दोनों का काम देता था। शायद इसी जगह मैंने पहले-पहले दो-तीन बार सूरमा सिंह का नाम सुना था।

जिस तरह मुसलमानों में अंधे आदमी को हाफ़िज़ जी कह कर पुकारा जाता है और हिंदुओं में सूरदास जी कहकर, इसी तरह सिखों में उसे सूरमा सिंह कहते हैं।

यों तो सूरमा के मानी बहादुर के होते हैं और बहादुर आदमी को लेकर इनसान यही कल्पना कर सकता है कि वह एक मज़बूत, ताक़तवर और रौबदार आदमी होगा। इसी तरह जिसे सूरमा सिंह नाम का कारण मालूम न हो तो वह किसी ग्रांडील सिख की कल्पना ही करेगा। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत थी। सूरमा सिंह एक छोटे-से कद और इकहरे बदन का आदमी था। उसके चेहरे पर चेचक के बहुत गहरे-गहरे दाग़ थे। उसकी आंखों में सफ़ेदी-ही सफ़ेदी थी। पुतलियां लगभग ग़ायब थीं। उसका मुंह ज़रा-सा खुला रहता था। उसके बालों का बड़ा-सा जूड़ा भी ऊंट के कूबड़ की तरह पगड़ी में से उठा हुआ दिखाई देता था। सिर के पीछे गुद्दी के पास के उससे सिमटते नहीं थे और उसकी पगड़ी में से निकल उलट कर गर्दन पर गिरे रहते थे। वह मुंह ऊपर को उठाये हुए चलता था।

वह ग़रीब था, मुहताज था, बेकार था और शायद यह कहने की ज़रूरत नहीं कि वह अविवाहित था।

वह कुछ समय से स्थायी रूप से गुरुद्वारे में रहता था। उसके निवास के लिए कोई कोठरी निश्चित तो न थी, जहां जगह मिलती पड़ रहता। किसी बरामदे में या इजाज़त मिलने पर किसी मुसाफिर के कमरे में या फिर हाल के कमरे में। उसे दो वक्त चाय और खाना लंगर से मुफ्त मिलता था। वह दिन भर हाथ में एक टेढ़ी-तिरछी लकड़ी लिये घूमा करता। मैंने उसे बाजारों में आते-जाते भी देखा था। पहाड़ों पर सायकिलें मोटरें, तांगे तो खैर होते ही नहीं। फिर भी घोड़ों, रिक्शाओं ओर पैदल चलने वालों ही की काफी भीड़ होती है। लेकिन वह इन सब बातों से निश्चिंत होकर बड़ी तेज़ी से चलता था। जैसे वह सबको यह जताने की कोशिश कर रहा हो कि वह अंधा नहीं

है और सच्चाई भी यही है कि दूर से उसे चलता देखिए तो कोई असाधारण बात दिखाई न देती थी। इस तरह वह तीन चार भयानक दुर्घटनाओं से बाल-बाल बच चुका था। लोग उसे मना भी करते थे लेकिन जवाब में उसके होंटों के कोनों की लकीरें और भी ज़्यादा गहरी हो जाती थीं।

एक रोज़ शाम के समय सारा दिन पढ़ने के बाद मैं थका-मांदा सैर करने की ग़रज़ से बाहर निकला। थोड़ी ही दूर गया था कि बारिश ने आन लिया। मेरे पास छतरी मौजूद थी। लेकिन बारिश की बौछार इतनी तेज थी कि मैंने और आगे बढ़ना उचित न समझा। अतएव लौट आया। जब कमरे के पास पंहुचा तो देखा सूरमा सिंह मेरे कमरे के आगे वाले जंगले के समीप खड़ा है।

उस रोज़ हम दोनों की पहली बार बातचीत हुई। सूरमा सिंह मेरे पड़ोसी सरदार साहब की प्रतीक्षा में था। चूंकि इस समय मैं भी अकेला था और सूरमा सिंह भी वहां खड़ा बारिश की आड़ी बौछार से बच न सकता था इसलिए मैंने उसे कमरे में बुला लिया। वह 'वाह गुरु वाह गुरु' करता अंदर आया और चूंकि मैंने उसे थोड़े सम्मान के साथ बुलाया था इसलिए उसने भी मुझे 'चंद पंद सूदमंद' कहकर संबोधित करना जरूरी समझा और फिर इसके बाद ज्ञान चर्चा शुरू हो गयी । संसार की नश्वरता, आत्मा की अमरता और कर्मफल पर उसने छोटा-सा लैक्चर दिया। मैंने बड़ी तन्मयता के साथ सुना। कबीर के दोहों ओर गुरु तेग बहादुर के श्लोकों के बाद उसने 'गोया' का एक शेर भी पढ़ा.......और फिर बुल्लेशाह की तसव्वुफ़ (अध्यात्म चिंतन) से ओत-प्रोत काफ़ियों पर आया। बाहर से आने वाली बारिश के तराड़ों की आवाज में उसकी दर्द भरी आवाज बुलंद हुई। सच्चाई यह है कि उसकी आवाज़ में एक खास करारापन और कसक-सी थी। बुल्लेशाह की काफ़ियों को सुनकर एक बार तो मुझ जैसे भौतिकतावादी को भी समाधि की-सी अनुभूति होने लगी। उस समय मैं सोचने लगा कि जीवन के मूल्य समय की अपेक्षाओं के अनुसार चाहे कुछ से कुछ हो जायें लेकिन ध्यानावस्था के एक क्षण के आनंद से क्यों वंचित रहा जाये? यह आत्म विस्मृति की दशा सचमुच वास्तविक लगने लगी। तो इसमें हर्ज ही क्या है? इस तरह सूरमा सिंह की दर्दनाक लय ने ऐसा समां बांध दिया कि एक बार तो मैं भी मार्क्सवाद के सीधे-सच्चे रास्ते से भटक गया। उसके चले जाने के बाद मैं देर तक इस बात पर ग़ौर करता रहा कि आध्यात्मिकता पूर्व की घुट्टी में पड़ चुकी है। जलवायु का असर कहिए या इसे एशिया वालों का विशेष स्वभाव समझिए। बहरहाल दुनिया भर के सबसे बड़े-बड़े नबी और आध्यात्मिक मार्गदर्शक एशिया ने पैदा किये। और इसकी थोड़ी-सी झलक पश्चिम ने भी देखी लेकिन उन्होंने इसे स्वभाव के विपरीत पाकर झटक कर परे फैंक दिया । इस तरह बहुत देर तक मेरा मन दार्शनिक कलाबाज़ियां खाता रहा।

मेरे साथ वाले कमरे में जो लम्बी दाढ़ी वाले सिख रहते थे, वे ख़ालिस पंजाबी नहीं थे। उनके पिता पंजाबी थे और मां यू.पी. की थी। बहुत संभव है। कि साइंस का कोई विशेषज्ञ उसकी सिर की बनावट और नाक की ऊचान या फैलाव से बता सके कि वह ख़ालिस पंजाबी नस्ल से नहीं था। लेकिन देखने में उसमें और दूसरे सिखों में कोई फ़र्क़ नहीं लगता था। उसकी दाढ़ी बहुत लम्बी थी यानी लगभग नाभि तक पहुंचती थी। अधेड़ उम्र का आदमी था। इसलिए दाढ़ी में सफेद बालों की तादाद भी कुछ कम न थी। चौड़ा माथा, छोटी-छोटी आंखें जिनके नीचे थैले लटके दिखाई दे रहे थे। मोटे-मोटे होंट, बड़ा-सा पेट, सिर पर ढीली-ढीली बेढब पगड़ी, गले में शेरवानी नुमा अजब बेढंगा कोट। उनके हालात से मेरा ज़्यादा परिचय तो नहीं था। बस इतना जानता था कि वे दिन भर घूम-फिर कर विभिन्न रोगों की दवाएं बेचते थे। अच्छे पैसे कमाते थे और रात को बिला नाग़ा शराब पीते थे और अगर किसी दिन बड़ी रक़म हाथ लग जाती तो फिर गुरुद्वारे में कढाह प्रसाद (हवला) करवाते और अड़ोस पड़ोस के लोगों में मिठाई बांटते।

जैसा कि मैं कह चुका हूं गुरुद्वारे का लंगरखाना एक क़िस्म का कलीसाघर भी था। बेघर-बार ग़रीब लोगों को दो-तीन दिन तक खाना भी मिलता था। इसलिए सूरमा सिंह के अलावा हर रोज़ नित नई सूरतें दिखाई देती थीं। ये वे लोग थे जिनके लिए सोसायटी में कोई जगह न थी। हर धर्म और हर जाति के, उनमें केवल एक बात मिली-जुली थी कि वे सबके सब भूखे थे।

लंगर का कुल प्रबंध दो निहंगों के सुपर्द था। निहंग बामानी मगरमच्छ। यों तो सिख लड़ाकू जाति है ही, लेकिन वे सिख होते हैं जो सिर पर कफ़न बांधे फिरते हैं। वे सामान्यतः गृहस्थी के चक्कर में नहीं फंसते। ज़रूरत से ज़्यादा कोई चीज़ अपने पास नहीं रखते। हथियारबंद रहते हैं और हर क्षण तत्पर। आम तौर पर नीले रंग के कपड़े पहनते हैं। सिर पर लम्बोतरी पगड़ी जिसमें कृष्ण जी के सुदर्शन चक्र की भांति लोहे के चक्र फंसे होते हैं। गले में लोहे के मनकों की माला, ये मोटे-मोटे लोहे के कड़े, तलवारें, बर्छियां और अन्य हथियारों से लदे-फंदे रहते थे। अतएव गुरुद्वारे के लंगरखाने में भी इसी तरह के दो निहंग सिख रहते थे। वे नौजवान थे और खूब मोटे-ताजे और तांबे की तरह सुर्ख थे। मुझे उनकी पिंडलियों के फैलाव और कलाइयों की चौड़ाई से ईर्ष्या होती थी।

वे लोग लगभग सारा-सारा दिन लंगरखाने में बैठे रहते थे। उन्हें खाना पकाने के सिवा कोई काम न था। शाम के समय लंगरखाने की रौनक़ बढ़ जाती थी। सूरमा सिंह सरेशाम ही भट्टी से कुछ दूर एक चौकोर तख़्ते पर बैठ जाता था। हालांकि उसकी कोई नहीं सुनता था। लेकिन वह उन्हें हिदायतें करने से कभी न चूकता था। दाल में नमक की उसे हमेशा ही बहुत सख़्त शिकायत रहती थी। दोनों निहंग सिख

उससे चिढ़ते थे। सच्चाई यह थी कि उन लोगों को खाना पकाने में कोई महारत हासिल न थी। वे लोग पहाड़ी के रास्ते से हेमकुंड जा रहे थे। हेमकुंड वह स्थान था जहां गुरु गोविंद सिंह जी ने पूर्व जन्म में तपस्या की थी। लेकिन गुरुद्वारे वालों ने उन्हें इस जगह रोक लिया। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि वे लोग सचमुच में हेमकुंड जा रहे थे या नहीं । लेकिन इतना ज़रूर है कि अब अगर वे ज़रा भी बिगड़ते तो हेमकुंड जाने की धमकी देते। चूंकि गुरुद्वारे वालों के पास इस समय कोई और आदमी नहीं था इसलिए उनकी मांगें मान ली जाती थीं।

इस लिहाज़ से दोनों निहंग वाक़ई बड़े लाड़ले थे। लेकिन सूरमासिंह उन्हें टोकने से कभी नहीं चूकता था। इस पर वे तैश में आकर कहते, "अबे यहां तेरी लुगाई बैठी है रोटी पकाने को?"

इस पर कई आदमियों के दांत निकल आते। इधर-उधर पथरीली ज़मीन पर बैठे हुए गरीब लोग बड़ी देग पर निगाहें जमाये निहंग सिखों की हर बात पर सहमति जताते और फिर इधर-इधर मंडलाने वाले कौवों को धुत्कारने लगते।

निहंग सिखों की ज़बान से लुगाई का ताना सुनकर सूरमा सिंह के मुख पर अचानक आध्यात्मिक तेज झलकने लगता । कहता, "मैं किसी औरत से बात तक करना पसंद नहीं करता......"

"हो-हो!" एक निहंग मूंछों पर ताव देते हुए कहता "तू बात करना पसद नहीं करता या औरतें तुझसे बात करना पसंद नहीं करतीं !"

वह इस बात को सहन नहीं कर सकता था। यह बात सुनकर प्रायः उसके कान सुर्ख हो जाया करते थे। और वह बड़ी उदासी से हाथ की मुट्ठी पर गात रखकर मुंह फेर लेता और निहंग सिंह भी बस कथा ही छेड़ देता। उपस्थित लोगों को संबोधित करके कहता, "अजी सूरमा सिंह इस मामले में बड़ा घाघ हैं अगर मेरे कहने का यकीन न हो तो देर-सवेरे आकर चुपके से देखो कि भला सूरमा सिंह क्या कर रहे हैं? अब यहां सेहन में औरतें धूप खाने के लिए बैठ जाती हैं तो यह भी सटक कर उनके पास जा बैठता है। इसे औरतों की बातें सुनने का बड़ा शौक है। क्यों सूरमा आखिर तुझे औरतों की बातों में क्या रस आता है......सेहन के परले कोने की तरफ सूरमा सिंह महाराज की खास निगाह रहती है। वहां औरतें कपड़े धोने के लिए बैठी होती हैं। ऐसे मौकों पर वे आधी नंगी ही होती हैं तो बस ये भी उनके पास मंडलाते रहते हैं। कभी किसी से छू जाते हैं। कभी किसी पर गिर पड़ते हैं। धन्य हो महाराज, धन्य हो!"

यह कहकर वह दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगता। दूसरा निहंग सिख कहता, "जी परसों ही की बात तो है। वह सजन सिंह के घर से है ना भई! वह खूब मोटी-ताजी दिखाऊ औरत है। वह बैठी कपड़े धो रही थी। हमारे सूरमा वहां से पानी लेने के

बहाने से गये और जान-बूझ कर फिसले और फिर औरत पर कुछ बेढब तरीके से गिरे कि बस उठने का नाम नहीं लेते थे। वह औरत भी एक लड़ाका ही है। उसने सरदार सूरमा सिंह की पगड़ी उतार कर जूड़ा पकड़ लिया और खींचती गुसलखाने से बाहर ले आयी और इनकी चंदिया पर तीन-चार स्लीपर जो दिये तो होश ठिकाने आ गये। इतने में औरत का खसम भी पहुंच गया। वह ठहरा खूनी आदमी । वह तो इन्हें परलोक का सीधा टिकट ले देता। लेकिन लोगों ने बीच-बचाव कर दिया......पुच-पुच सूरमा सिंह भई जरा पगड़ी तो उतार देखें कितने बाल बाकी बचे हैं.....''

इस पर आकाश गुंजाने वाले क़हक़हे लगते और सूरमा सिंह बुरी तरह खिसिया जाता। उसका चेहरा सुर्ख से सुर्खतर हो जाता।

उपस्थित लोगों में से कोई दबी हुई आवाज़ में कहता, ''जी आंखों से अंधा है इसे कुछ दिखाई तो देता नहीं, औरत इसके सामने अलिफ नंगी भी खड़ी हो जाये तो......?''

इस बात को कहने का उद्देश्य सूरमा सिंह की तरफदारी नहीं बल्कि निहंग सिखों को गरमाना होता था। अतएव वे बड़े रहस्य खोलने के ढंग में कहते, ''अजी नहीं! ये आवाज़ ही आवाज़ में सारा मज़ा ले जाते हैं ......ये औरत की आवाज से उसकी सूरत, उसके जोबन के उभार वगैरह सब चीज़ों का अंदाज़ा लगा लेते हैं।''

इस तरह निहंग सिंह उसकी खूब मिट्टी पलीद करते थे और वह भी जहां तक हो सकता था उनके खिलाफ़ ज़हर उगलता था। अतएव एक रात ग्यारह बजे के आस-पास मुझे एक भायनक चीख की आवाज़ सुनाई दी। मैं सोया हुआ था। यकायक आंख खुल गयी। इसके बाद फिर जिबह होते हुए जानवर की-सी आवाज़ वातावरण को चीरती हुई निकल गयी। मै तुरंत उठा......''लोगों बचाओ......मैं मर गया......मुझे मार डाला......''

मैंने टार्च हाथ में ली। एक निहंग नीचे के कमरे में से झपट कर बाहर निकलता और फिर पलक झपकते ही अंधेरे में गुम होता हुआ दिखाई दिया।

रात के सन्नाटे में चीखों की आवाज़ सुनकर और भी कई लोग जमा हो गये। कमरे के भीतर से सूरमा सिंह को बाहर निकाला गया और फिर उसे ऊपर बिजली की रोशनी में ले आये हालांकि उसके लिए हर तरफ अंधेरा था। वह डरा हुआ था। उसे अब भी इस बात का भय था कि कोई उसे मार न डाले। उस पर सवालों की बौछार हो गयी। मालूम हुआ कि रात के अंधेरे में एक निहंग सिंह ने उसे कमरे में जा दबोचा और उसका टेंटुआ दबा कर उसकी हत्या करने की कोशिश की । इस पर निहंग सिंह को बुलाया गया। अब तक कोठरी में छिपे रहने ही से साबित था कि दाल में कुछ काला ज़रूर है। निहंग सिंह ने कहा, वह उसे रोटी देने गया था। इस पर किसी ने कहा, साहब यह सूरमा सिंह वाकई इन्हें बहुत तंग करता है। बिचारे सारे-सारे दिन गुरुद्वारे की सेवा करें और फिर इस लाट साहब के बच्चे को कमरे में खाना पहुंचा कर आयें।

इस पर सूरमा सिंह ने कहा कि लंगरखाने में वे सब लोग उसका मजाक उड़ाते हैं और निहंग उसे हमेशा तंग करते हैं। कभी उसकी दाल में पेशाब कर देते हैं और कभी रोटियां जला-फूंक कर उसके मुंह पर दे मारते हैं। अब जो निहंग मुझे रोटी देने के लिए गया तो कहने लगा, ''अबे हरामज़ादे, हरामख़ोर......''

बहुत देर तक हंगामा मचा रहा। जितने मुंह उतनी बातें। गर्म-गर्म बातों के बाद अब सुलह की बातें होने लगीं। सूरमा सिंह खूब गला फाड़-फाड़ कर ऊंची आवाज़ में निहंग सिखों को गालियां दे रहा था। आखिर ज्ञानी जी ने उसे मना किया। कहने लगे, इस तरह बहुत चीखने से गला बैठ जायेगा और फिर दूसरे दिन वह गुरुद्वारे में शबद न गा सकेगा।

आखिर मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया।

रात के समय आठ बजे के आसपास हम सिनेमा देखकर आ रहे थे। रास्ते में छोटा भाई तो स्केटिंग हाल की तरफ़ चला गया और मैं क़दम-ब-क़दम सैर करता और पहाड़ों के उतार-चढ़ाव पर टिमटिमाती हुई बत्तियों का तमाशा देखता हुआ नौ बजे के आस-पास कमरे में पहुंचा ।

दूर ही से कुछ असाधारण कोलाहल सुनाई देने लगा था। पास पहुंचकर मालूम हुआ कि आज पड़ोस के सरदार जी के यहां जश्न हो रहा है।

अपने कमरे में आकर कपड़े बदले और तकिये पर सिर रखकर लेट गया। विचार था कि जो नावेल शुरू कर रखा था आज उसका बाक़ी हिस्सा भी पढ़कर ख़त्म कर डालूंगा।

लेकिन बहुत जल्द ही मुझे मालूम हो गया कि आज कुछ पढ़ना असंभव है। पड़ोस में ऐसी धमाचौकड़ी मची हुई थी और अलग-अलग लोगों की बेढंगी मिली-जुली आवाज़ों के शोर में ध्यान केंद्रित करना असंभव था। किताब सीने पर धरे मैं मानसिक उधेड़-बुन में डूबा आंखें झपक रहा था कि मेरे दरवाजे पर धड़ाक-धड़ाक दस्तक की आवाज़ आयी ।

उठा, दरवाज़ा खोला, देखा कि लम्बे दाढ़ी वाले सरदार जी हाथ में मिठाई का दोना लिये खड़े हैं। उन्होंने बताया कि आज उन्होंने मिठाई बांटी थी। यह मेरा हिस्सा था। मैंने धन्यवाद दिया और फिर यों ही बातचीत करता हुआ आगे बढ़ा। उनके दरवाजे में झांककर देखा तो दोनों निहंग सिंह, यहां तक कि दो-तीन और लोगों के अलावा वहां सूरमा सिंह भी विराजमान थे......आज सबने पी रखी थी। सुराही झूम रही थी और पैमाना वज्द (ध्यानावस्था) में आया हुआ था।

लम्बी दाढ़ी वाले सरदार साहब ने दाढ़ी लहलहाते हुए मुझे महफ़िल में शामिल होने की दावत दी। लेकिन मैंने तमाशाई बना रहना पसंद किया।

इस वक़्त के सूरमा सिंह और रोज़मर्रा के सूरमा सिंह में ज़मीन आसमान का फ़र्क था। पगड़ी सिर से उतर कर उसकी टांगों में उलझी हुई थी। दाढ़ी के बाल बिखरे हुए थे। सिर के बाल खुलकर कंधों पर आन गिरे थे। होशो-हवास ठीक नहीं थे। बैठा सांड की तरह डकार रहा था। हवा में हाथ-पांव चला रहा था। उसकी बेनूर आंखों के सामने आज परियां नाच रही थीं। सब लोग उसके आसपास घेरा डाले बैठे थे और बीच में बैठे हुए सूरमा सिंह ने लहक कर अचानक सीने पर हाथ मारते हुए कहा, "हाय मार गयी....." दूसरों ने पूछा, "सच्चे पादशाहो! कौन मार गयी?"

लेकिन सूरमा सिंह हर सवाल का जवाब ध्यान में अचेत व्यक्ति की भांति देता रहा, "हाय मार गयी......"

निहंग सिखों ने मनोविनोद के लिए उनकी खोपड़ी पर ठंडे पानी के छींटे देते हुए कहा, "अजी सूरमा सिंह वाह गुरु नाम का जांप कीजिए......बुल्लेशाह की काफियां सुनाइए......"

फिर बड़े विकल स्वरों में बुल्लेशाह की तसव्वुफ से युक्त काफियां सुनाने लगा......उसकी आवाज में वेदना न मालूम कैसे पैदा हो जाती थी। वह वेदना भी ऐसी कि अंधेरे और गंदे कमरे में बैठे हुए बेसुध शराबी सिर धुनने लगे......और फिर गाते-गाते सूरमा सिंह की आवाज भर्रा गयी। और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

दीये की लौ टिमटिमा रही थी।

रिमझिम मेह बरसने के बाद बारिश रुक गयी लेकिन अभी बादल छाये हुए थे। वातावरण बोझल था। दो बजे का समय था। अखबार एक तो यों ही देर से आता था, दूसरे उस दिन लगातार बारिश के कारण और भी देर से मिला। मैं जल्दी-जल्दी सुर्खियों पर नज़र भी दौड़ा रहा था कि अलग-अलग आवाज़ों से एक बार फिर गुरुद्वारे के वातावरण में हलचल पैदा हो गयी।

गर्म चादर लपेटे हुए कमरे में से बाहर निकला तो ठीक हमारे कमरे के नीचे वावेला मचा हुआ था। नीचे उतरा, मालूम हुआ वही सूरमा सिंह को लेकर कोई झगड़ा हो रहा था। ज्ञानी जी भी खड़े थे।

मालूम हुआ कि उस कमरे में दो-तीन दिन से कुछ मुसाफिर ठहरे हुए थे। एक शादीशुदा नौजावान औरत थी, एक उसका बड़ा भाई और एक छोटी-सी बहन और मां बाप। गुरुद्वारे के शेष कमरे रुके हुए थे। इसलिए उस छोटे-से परिवार ने सूरमा सिंह को अपने कमरे के अंदर कोने में अपनी बनी हुई छोटी सी कोठरी में रहने की इजाज़त दे दी थी। उन्होंने उस पर दया की और उसने.......

जब मैं वहां पहुंचा तो वहां यह दृश्य था कि नौजवान औरत का बाप तो घर पर न था। बाकी लोग बड़बड़ा रहे थे और बड़ा भाई सूरमा सिंह को चपत लगा रहा था। वास्तविक घटना यों हुई कि आम तौर पर सूरमा सिंह अपनी कोठरी में पड़ी चारपाई पर बैठा रहता था। लेकिन कभी-कभी कोई न कोई आपत्तिजनक हरकत कर देता।

उस दिन जब कि औरत का भाई भी बाजार गया हुआ था, मां रसोई में थी तो सूरमा सिंह ने औरत से पूछा, "अजी भला आपकी इस वक्त उम्र क्या होगी?"

इस बात पर झगड़ा हुआ। भाई बाजार से आया। यह बात सुनी तो सूरमा सिंह के मुंह पर तमाचे मारने लगा। मेरे सामने भी उसने दो-तीन चपत रसीद किये।

सूरमा सिंह की पगड़ी उतर कर उसके गले का हार हो रही थी। गाल मारे तमाचों के दहक रहे थे। और मसूढ़ों में से खून निकल आया था।

......और वह औरत......! वह औरत क्या थी गुलाब जामुन थी। खूब मोटी-ताजी, स्वस्थ, गेहुंआ रंग, गोल चेहरे के चिह्न सामान्य सही लेकिन मदभरी आंखें सुनी तो थीं लेकिन देखने का संयोग उसी दिन हुआ।......और जब उसने कुछ कहने के लिए मुंह खोला तो उसके सुरों के संगीत से कमरा गूंज उठा। मैंने एक क्षण के लिए आंखें मूंद कर उसकी आवाज को सुना।......वास्तव में ऐसी मनभावन आवाज़ वाली औरत की उम्र जानने की उत्कंठा किसे न होगी?

औरत की मां ने चिल्ला कर कहा, "......कलमुंहे, मुश्टंडे, तुझे शर्म न आयी। हमने सूरमा सिंह समझकर तुझ पर रहम खाया और रहने की इजाज़त दी......"

इस पर औरत के भाई ने एक और चपत रसीद की।

पलंग पर बैठी हुई नौजवान औरत बाजू उठा कर अपने रंगदार जूड़े को उंगलियों से घुमाकर ठीक करने लगी।

सूरमा सिंह मार खाने में बहुत माहिर था। उसने दर्द भरी आवाज में कहा, "माताजी......मैने यों ही पूछा था......"

माता जी ने चमक कर कहा, "निगोड़े अब बातें बनाता है। अगर सरदार जी यहां होते तो तेरी खाल खींच देते।"

इस पर सूरमा सिंह उचक कर नौजवान औरत के पास जा पहुंचा । और टटोल कर उसके दोनों पांव पकड़ लिये और अपना माथा उन पर रख दिया।

नौजवान औरत के भाई ने उसे जूड़े से पकड़ कर परे धकेल दिया। वे लोग क्रोध के मारे लाल-पीले हो रहे थे। लेकिन वह नौजवान औरत जो नई शादीशुदा दिखाई देती थी बिल्कुल सहज होकर बैठी थी। उसके ढंग से अजब बेपरवाई टपकती थी। न वह रुष्ट थी, न प्रसन्न, इस दौरान वह बड़े ठस्से से पलंग से पांव नीचे लटकाये बैठी रही।

ज्ञानी जी को बहुत कम गुस्सा आया करता था। वे अजब ढीले-ढाले और कोमल स्वभाव के आदमी थे। लेकिन औरत के पांव छूने पर उन्हें भी जैसे कोई चुभन-सी महसूस हुई हो, "सूर, पाजी कमीने......ऐं?"

धीरे-धीरे गालियां दे-देकर और मार-मारकर सब लोग थक से गये। आखिर में एक बार फिर सूरमा सिंह ने औरत के पांव पकड़ लिये और उन्हें बड़ी नर्मी से सहलाते हुए अपना गर्म-गर्म गाल उन पर रख दिया।

इस समय वह एक पालतू जानवर की भांति दिखाई दे रहा था। उसने बुल्लेशाह की काफियों की-सी दर्द भरी आवाज़ में कुछ अस्पष्ट-से शब्द कहे। औरतें रहम दिल होती हैं......अतएव उसका भाई जब एक बार सूरमा सिंह की तरफ झपटा तो वह बोली, "रहने दीजिए भाई साहब! और मत मारिए......बिचारा सूरमा सिंह है।"

इसके बाद औरत ने पांव पीछे हटाते हुए मीठी आवाज़ और ख़ालिस पंजाबी लहजे में कहा, "हट वे परे हट!"

काली तित्तरी

काली तित्तरी चरी विच बोले
ते उड दी नूं बाज पै गया

बड़े मज़े में मौला ने चिलम में तम्बाकू और उसके ऊपर सुलगते हुए उपले के दो टुकड़े जमा दिये और फिर मारे सर्दी के दांत किटकिटाता हुआ चारपाई पर चढ़ टांगों पर धुस्सा डाल मगन हो गया।

रोटी खाने के बाद उसे हुक्के की भारी तलब होती थी। अतएव उसने आंखें मूंदकर दो चार कश ही लिये होंगे कि दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़ सुनाई दी। यह दस्तक उसे बड़ी नागवार गुजरी। उसने तीखे लहजे में पूछा,

"कौन है?"

जवाब में फिर खटखट की आवाज़ सुनाई दी।

पुरवा ठठा— छोटा सा गांव था। ठीक उसके सिरे पर मौला का कच्चा मकान था। जहां वह अपनी बूढ़ी मां और एक विधवा बहन के साथ रहता था। गांव में घुसते समय उसका मकान चूँकि सामने पड़ता था इसीलिए राहगीर उसी से किसी मकान का पता या किसी अगले गांव का रास्ता पूछने के लिए दरवाज़ा आन खटखटाते थे। लेकिन इस समय आधी रात होने को थी और फिर सर्दियों के मौसम में तो गांव पर शाम से ही खामोशी छा जाती थी। न जाने असमय कौन आ धमका था। जब मौला को यक़ीन हो गया कि उसे उठना पड़ेगा तो उसने हुक्के की नै एक ओर हटाई और धुस्से को सम्हालता हुआ दरवाज़े की ओर बढ़ा।

दरवाज़ा खोला तो देखा कि बाहर अंधेरे में मंझले क़द का एक सिख खड़ा है। पगड़ी उसके सिर पर मोटे रस्से की तरह लिपटी हुई थी और उसके एक सिरे से उसने अपने चेहरे का, आखों के सिवा निचला हिस्सा छुपा रखा था। उसका रंग सांवलापन लिये हुए गेहुंआ था। भौहें मोटी, घनी और लम्बी थीं और नुकीली और कुछ खोजती हुई। उसकी नाक की जड़ के पास आंखों के नीचे बारीक और गहरी लकीरों का जाल-सा बुना हुआ था।

मौला अपशब्द कहते-कहते रुक गया। उसने भारी और रूखे लहजे में पूछा,

"तुम कौन हो?"

अजनबी ने क्षण भर उसकी तरफ चुभती हुई नज़रों से देखा और फिर गुस्से से बोला,

"मैं भंभोड़ी गांव से आया हूं।"

"भंभोड़ी ! वह तो यहां से बीस कोस की दूरी पर है। लेकिन तुम यों बात करते हो जैसे पड़ोस के गांव से आ रहे हो......"

अजनबी ने बेचैनी से पहलू बदलते हुए कहा, "मैं डाची पर आया हूं......"

मौला को उसके बोलने का ढंग पसंद नहीं आया। उसने बेपरवाई से कहा, "खैर मुझे इससे क्या गरज। सवाल तो यह है कि तुम मेरे पास क्यों आये हो?"

"मुझे बग्गा सिंह भंभोड़ी वाले ने भेजा है।"

यह सुनकर मौला चौकन्ना हो गया। उसने बढ़कर नवागंतुक का बाजू थाम लिया और जल्दी से धीमी आवाज में बोला,

"......तो यहां खड़े होकर क्या कर रहे हो? अंदर चले आओ ना?"

अजनबी एक छलांग में अदर आ गया। वह बड़ा मज़बूत आदमी दिखाई देता था। उसने बदन पर मोटा खेस लपेट रखा था

मौला ने ड्योढ़ी में झांककर भीतर की ओर देखा और बात को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हो गया कि उसकी बहन और मां सबसे पीछे के कमरे में लिहाफों में घुसी पड़ी हैं, तो उसने सेहन वाला दरवाज़ा बंद कर लिया और अजनबी से मुखातिब होकर बोला,

"मैंने दरवाजा बंद कर लिया है ताकि हमारी बातों की आवाजें अंदर तक न पहुंचें।"

अजनबी कुछ नहीं बोला। मौला ने तेजी से बाहर वाले दरवाजे में से झांक कर इधर-उधर निगाहें दौड़ाईं। फीकी चांदनी में दूर जोहड़ का पानी पिघले हुए सीसे की टिकुली की भांति दिखाई दे रहा था। हवा सुन्न थी । पेड़ और दूर-दूर खड़ी हुई झाड़ियां स्तब्ध थीं। यह देखकर मौला ने अपने दांतों में अटकी हुई हुक्के की नै को होटों में दबोच कर बड़ी निश्चिंतता से गुड़गुड़ी की आवाज़ बुलंद की और फिर दरवाज़ा बंद कर के लौटा। नवागंतुक ड्योढ़ी में अंदर बनी खुरली से टेक लगाये खड़ा था।

"भूख लगी हो तो बताओ खाने-वाने का कुछ बंदोबस्त करूँ?"

"नहीं मैं खाना खाकर आया हूं करीब के गांव से.....बस अब काम हो जाना चाहिये।"

"क्यों इत्ती जल्दी भी क्या है?"

"मुझे फौरन लौटना होगा।"

"क्यों?"

"बग्गे ने यही कहा था। मेरा यहां रहना मुनासिब नहीं। किसी ने देख लिया तो सक होगा खामखाह।"

"डाची कहां है?"

"डाची साथ वाले गांव में अपने एक दोस्त के यहां छोड़ आया हूं।"

"और बंदूख (बंदूक)?"

"बंदूख मेरे पास है।"

मौला को आश्चर्य हुआ कि इत्ती बड़ी बंदूक उसने कहां छुपा रखी है।

इस पर अजनबी ने थोड़ा झुंझलाकर खेस के नीचे से दुनाली बंदूक दिखाई जिसकी दोनों नालियां अलग करके उसने बट समेत अंगोछे में लपेट रखी थीं। और फिर उन पर एक रस्सी कस कर बांध रखी थी।

अब मौला समझा । सिर हिलाकर बोला,

"अच्छा तोड़ कर बांध रखी है।"

"हां, वैसे छुप तो नहीं सकती ना।"

"ठीक।"

"अब जल्दी करो।"

"और कारतूस?"

अजनबी के माथे पर बल पड़ गये।

"देखो मैं बिल्कुल तैयार होकर आया हूं.....बस अब मुझे मौके पर ले चलो।"

"अच्छी बात है" यह कहकर मौला ने हुक्के के दो-तीन खूब गहरे कश लिये। फिर धुस्से को बदन पर खूब अच्छी तरह लपेटा और मुस्कुराकर बोला, "उस्ताद तुम्हें मेरे घर का पता कैसे चला? किसी से पूछा था क्या?"

"मैं ऐसा कच्चा नहीं हूं कि किसी से तुम्हारे घर का पता पूछता फिरूं। इस तरह तुम पर शुबह किया जा सकता था। बग्गे ने मकान का ठीक-ठीक पता और तुम्हारा हुलिया बता दिया था और कहा था कि वह तुम्हारी राह देखता होगा।"

"हां, हां क्यों नहीं।" मौला हंस कर बोला, "बग्गू इस काम को किसी मामूली आदमी के सुपुर्द नहीं कर सकता था......अच्छा तो लो मैं चला......अभी दो-तीन आदमियों को और बुलाना है।"

"बुला लाओ......पर मैं उनको अपनी शक्ल नहीं दिखाऊंगा।"

"बेशक, बेशक! जरूरत भी क्या है?"

यह कर मौला चलने लगा तो अजनबी बोला, "हुक्का लिये जाओ।"

"क्यों?"

"हुक्का गुड़गुड़ाते चलोगे तो सक नहीं होगा, देखने वालों को।"

"यह तो वाकई खरी बात कही तुमने।"

मौला ने हुक्का उठाया। नै दांतों में दबाई और चिलम से बंधी हुई चिमटी झुलाता और तहमद लहराता ड्योढ़ी से बाहर निकल गया।

अजनबी ने उसके जाते ही दरवाजा अंदर से बंद कर लिया और सरकंडों का बना हुआ बालिस्त भर ऊंचा मोठा घसीट कर सुलगते उपलों से भरी हुई मिट्टी की अंगीठी दोनों टांगों के बीच रख कर बैठ गया।

मौला केंचुओं की तरह बल खाती हुई सुनसान और तंग गलियों में से गुज़रता हुआ आखिर में एक टूटे-फूटे मकान के आगे खड़ा होकर आवाज़ें देने लगा, ''सुदागरा! ओये सुदागरा!!''

कोई जबाब न मिलने पर उसने फिर हाँक लगाई।

''ओये सुदागरा! सुदागरा होए!!''

फिर वह इत्मीनान से हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगा। दिमाग़ में जो ठंडक पहुंची तो दिल अजनबी को दुआएं देने लगा। जिसने कि हुक़्क़ा उसके साथ भेज दिया था।

मकान का दरवाजा खुला। भीतर से घने और काले बालों वाला एक नौजवान निकला। पहले तो उसने मौला की ओर सपने की-सी आंखों से देखा लेकिन जब पहचाना तो उसकी आंखें पूरी तरह से खुल गयीं ।

मौला ने पीले-पीले दांत दिखाते हुए कहा, ''वाजें दे-देकर मेरा तो गला भी बैठ गया। कहां घुसा पड़ा था लाल के मोड़े!''

इस पर दोनों हंसने लगे।

सुदागर ने पूछा, ''हां वे बता।''

जवाब में मौला चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। फिर उसने कुटिलता के साथ भौंहें ऊपर उठाकर एक आंख इस तरह मारी जैसे ढेला खींच कर मार दिया हो।

सुदागर समझ गया।

''चलो।'' मौला ने कहा।

''ठहरो, मैं ओढ़ने के लिए तो ले आऊं कुछ अंदर से।''

वह भागा अंदर गया और काले रंग की लोई बदन पर पर लपेटता हुआ तुरंत वापस आ गया।

दोनों वहां से आगे बढ़ गये। गांव में सन्नाटा छाया हुआ था। कहीं-कहीं कोई खुजली मारी कुतिया दांत दिखाती हुई दुकान के एक तख्ते से निकलकर दूसरे तख्ते के नीचे दुबक जाती। या गारे से बने हुए कच्चे मकानों की दीवारों तले छछूदरें जान छुपाती फिरती थीं।

दबे-दबे लहजे में बातें करते हुए वे दोनों बढ़ते चले गये। उन्होंने मेला सिंह को उसके मकान से और लभू को मवेशियों के तबेले से बुलाकर अपने साथ लिया और वापस मौला के मकान पर पहुंच गये।

भीतर से अजनबी ने दरवाजा खोला। उसका चेहरा अब पगड़ी की कलगी में छुपा हुआ था। सुदागर, लभू और मेला सिंह अभी जवान थे। इन कामों में नये-नये दाखिल

हुए थे। अजनबी का नक़ाब के पीछे छुपा हुआ चेहरा, जिन की भांति घनी भौंहों के नीचे उसकी चमकती हुई आंखें देखकर उनके युवा शरीर में सनसनी की लहरें दौड़ गयीं।

अजनबी ने जल्दी से उनकी सूरतों का जायज़ा लिया फिर उसने खेस में से हाथ निकाल कर इशारा किया कि अब देर किस बात की है?

उसका हाथ भी काला था । उस पर मोटे-मोटे बाल उगे हुए थे।

मौला ने जवाब दिया,

"देर किसी बात की नहीं।"

"तो अब चलें?"

"जरूर।"

मौला न आगे कदम बढ़ाया और बाकी सब उसके पीछे-पीछे हो लिये । अजनबी के कदम बड़ी फुर्ती से उठ रहे थे। और उसकी पुतलियां दम भर को भी एक जगह पर नहीं रुकती थीं। माला के मोतियों की भांति खटाखट घूमती थीं।

दूर से कभी-कभार पहरेदार की अचानक चिल्लाने की आवाज यों सुनाई दे जाती जैसे वह कोई भयानक सपना देखकर हड़बड़ाकर उठा हो। इस आवाज़ और अपने बीच की दूरी रखते हुए वे बड़ी तेज़ी से चले जा रहे थे।

गांव से निकल कर लगभग पौन मील की दूरी पर स्थित पीरां वाले रहट पर पहुंच कर वे रुक गये। मौला के इशारे पर सुदागर ने रहट के पास वाले बाड़े में घुस कर एक मरियल बैल को बाहर निकाला और फिर वह उसे हांकते हुए ज़रा परे ले गये और गांव के एक बड़े सूदखोर के खेत में उसे छोड़ दिया और ओर वे खुद बबूल के पेड़ की छदरी छांव तले जाकर खड़े हो गये।

पूरा चाँद आसमान पर चमक रहा था।

अजनबी सिख ने अपनी बगल में से बंदूक का अंजर-पंजर निकाला। नालियों को बट से कड़क किया और नीचे की ओर चोबी खपची जमाई और हथेली की एक ही चोट से उसे अपनी जगह पर बिठा दिया। फिर उसने दोनों नालियों में ठोस गोलियों वाले कारतूस भरे और एक नज़र मरियल बैल की तरफ देखा जो ठंडी हवा में कान फड़फड़ाता और दुबली और कमजोर पूंछ को बड़ी लाचारी के साथ हिलाता घास पर मुंह मार रहा था। फिर उसने निशाना साधकर लबलबी दबाई। गोली खाते ही बैल बिना किसी संघर्ष के जमीन पर ढेर हो गया। यह गोली तो शेर को ठंड़ा करने के लिए काफ़ी थी। लेकिन अजनबी ने सावधानी बरतते हुए दूसरी गोली भी उसकी गर्दन पर चिपका दी।

बैल का काम तमाम होते ही अजनबी ने अपनी और भी तेज़ी से चमकती हुई आंखों से मौला और उसके साथियों की ओर देखा। फिर भारी आवाज़ में बोला,

"अच्छा अब मुझे चलना चाहिये। सुबह से पहले वापस पहुंचना जरूरी है।"

मौला ने हाथ बढ़ाकर कहा, "अच्छी बात है।"

अजनबी ने चारों से हाथ मिलाते हुए एक बार फिर भारी आवाज़ में कहा, "साब सलामत।"

"साब सलामत।"

अजनबी ने फिर अपनी बंदूक को तोड़-ताड़ कर उस पर कपड़ा लपेट दिया और फुर्ती से कदम उठाता हुआ कुछ-कुछ फीकी चांदनी में अदृश्य हो गया।

वे चारों उसे कुछ देर तक जाते हुए देखते रहे। फिर वे बैल की ओर बढ़े और देखा कि वह कतई मर चुका है।

अब वे जल्द-जल्द गांव की ओर बढ़े। और गांव के पास पहुंचकर उन्होंने अचानक 'पकड़ो-पकड़ो' का शोर बुलंद किया।

लोगों को डाकुओं का डर लगा रहता था। अतएव बड़ी तादाद में लोग घरों से बाहर निकल आये। तब उन्हें पता चला कि बेचारे मौला का बैल गोली से मार दिया गया है।

मौला देर तक गोली मारने वाले की मां और बहनों से अपना रिश्ता गांठता रहा और जब उसका गला बैठ गया तो सूरज निकलने से पहले-पहले वह छह कोस परे थाने में इस घटना की रपट दर्ज करवा कर गांव लौट आया।

(2)

पीर दा ठट्ठा गांव छोटा था। लेकिन यहां का सबसे अमीर घराना 'माहना' दूर-दूर तक मशहूर था। आस-पास देहात में उनकी असामियां मौजूद थीं। अब माहनों का दबदबा कुछ कम हो गया था। क्योंकि पीर ठट्ठे और आसपास के दूसरे गांवों के बदमाशों ने मिलजुल कर व्यर्थ ही मुकदमाबाजी में फंसाकर उन्हें खोखला बना दिया और इधर उनके लिए मौला ने एक नयी मुसीबत खड़ी कर दी थी।

सर्दियों का सूरज भी कुछ ज़्यादा नहीं चढ़ पाया था कि इलाके के थाने से एक लम्बा-तड़ंगा मुसलमान थानेदार घोड़े पर बैठा और दो साइकिल सवार सिपाही साथ लिये पीर के ठट्ठे में आन धमका।

गांव के बाहर एक बड़े और पुराने पीपल के पेड़ तले पहुंचकर थानेदार घोड़े पर से उतरा। सुनहरी टोपी पर लिपटी हुई उसकी खाकी रंग की कलफ लगी पगड़ी की लहराती हुई कलगियां दूर ही से दिखाई दे रहीं थीं। अतएव गांव भर के चमारों, भंगियों और किसानों के बच्चे और कुत्ते गांव में घुसते ही उनके पीछे हो लिये। और अब वे एक बड़ा-सा घेरा बनाये खड़े थे।

पीपल के नीचे बला की गर्द थी। जिसमें सूखते पत्ते और भूसे के तिनके मिले हुए थे। घोड़े की लगाम सिख सिपाही के हाथ में थमाकर थानेदार ने दोनों तरफ से वर्दी

को खींचकर अपने सुडौल बदन पर जमाया। उसका कद टोपीदार पगड़ी के कारण और भी ऊंचा दिखाई दे रहा था। उसका दमकता हुआ माथा खूब चौड़ा था और उसकी नाक जड़ ही से एकदम ऊपर उठ गयी थी। अपनी शानदार ऊँची नाक के कारण वह बड़ा सम्मानित और प्रभावशाली व्यक्ति दिखाई दे रहा था। अभी एक नौजवान की अनुभवहीनता उसके चेहरे से झलकती थी। लेकिन वह प्रतिभाशाली ज़रूर था। उसकी हरे रंग की पुतलियों के कारण बकौल देहातियों के वह 'अंग्रेज' जान पड़ता था।

पहले उसने खुली हवा में टहल-टहल कर दो तीन गहरे सांस लिये और फिर जेब टटोल कर एक खाकी रंग का कागज बाहर निकाला और ध्यान के साथ उस पर नजर दौड़ाने लगा।

इसी बीच गांव के लोग भी जमा होने शुरू हो गये। इधर सिख सिपाही ने घोड़े की लगाम पीपल की जड़ में बांध दी।

कहीं से नम्बरदार को खबर मिली तो वह बिचारा सिर पर पांव रखकर भागा। जब वहां पहुंचा तो हाल यह कि दम फूला हुआ और पगड़ी टांगों में उलझी हुई। थानेदार ने टांगें अकड़ा-अकड़ा कर नज़र ऊपर उठाई और घेरे में खड़े हुए आदमियों में से एक को पास आने का इशारा किया।

वह बिचारा घबराकर इधर-उधर देखने लगा।

थानेदार ने रौबाले अंदाज से कहा, "मैं तुम्हीं को देख रहा हूं।"

"जी मुझको?" उस आदमी ने अपने सीने पर उंगली जमाते हुए पूछा और संकेत में जवाब पाते ही उसने हास्यास्पद ढंग से आंखों की पुतलियों दायें-बायें घुमा कर इधर-उधर देखा और फिर पगड़ी संभालता हुआ थानेदार की ओर बढ़ा।

"तुम मौला का घर जानते हो?"

"आहो जी ओई-----"

"जाओ उसे बुलाकर लाओ!"

वह आदमी सरपट भागा लेकिन मौला हुक़्क़ा हाथ में लिये पहले ही से तहमद उड़ाता चला आ रहा था।

थानेदार से आंखें चार होते ही उसने दूर ही से हुक़्क़ा ज़मीन पर रख दिया और बहुत ज्यादा झुककर फर्शी सलाम किया और फिर आगे बढ़ा,

"मोतियां वालियो! मैंने दूर ही से आपको देख लिया था। बस हुक़्क़ा ताज़ा करने में देर हो गयी।"

यह कहकर मौला ने बड़े खुशमदाना अंदाज से हुक़्क़े की नै उसके नथुनों से भिड़ा दी।

नम्बरदार आते ही चारपाई का इंतजाम करने उलटे पांव वापस लौट गया। बैठने का कोई उचित स्थान न पाकर थानेदार एक मुगदर पर बैठने लगा तो मौला ने बढ़कर अपना खेस बिछा दिया उसपर और फिर ललकार कर कहा, "ओये म्यादे ओवा, भजकर मेरे घर से चारपाई और बिस्तर ले आओ।"

उसकी बात सुनते ही दो-तीन आदमी भाग निकले।

थानेदार ने पहले तो चुपचाप हुक्के के खूब गहरे-गहरे कश लिये ओर फिर मौला की ओर मुड़कर मुस्कुरा कर बोला, "सुना ओ वे भूतनी पलस्तर! बात क्या है आज चोरों के घर मोर पड़ गये।"

"तौबा! मेरी तौबा!!' कहते-कहते मौला वहीं उसके कदमों में बैठ गया, "जबर जस्तो! जभी तो कहते हैं कि बद अच्छा बदनाम बुरा।"

"हां खूब याद आया।" थानेदार ने सिपाही की ओर ध्यान देकर कहा, "ओये अजीब सीन्हा! जा, जरा राम लाल माहने ते ओह दे लड़के को तो बुला के लिया।"

पहले ही से सधाये हुए सुदागर ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ दिये और बड़ी निरीह आवाज में बोला, "खान साहब! बड़ा अनर्थ हो गया ऐ जी। बिचारे मौला की तो कमर ही टुट गयी। किसान को बैल का बड़ा सहारा होता है।"

मौला ने ठंडी सांस भरकर मुंह नीचे को लटका दिया।

इधर-उधर की बातें हो रही थीं कि राम लाल सफेद धोती और उस पर सफेद कुर्ता पहने आ पहुंचा। उसके साथ उसका बीस वर्षीय कोमल-सा लड़का हीरालाल भी था जो पतलून पहने था।

थानेदार ने बाप-बेटे को सिर से पैर तक देखा। बाप बिचारा अधेड़ उम्र का गंभीर व्यक्ति था। लेकिन थानेदार को लड़के के खड़े होने के ढंग से बगावत की बू आयी फिर भी उसने काफी सहनशीलता के साथ पूछा, "अबे लौंडे अपना नाम बताइओ?"

इस पर पढ़े-लिखे लड़के को भी कुछ गर्मी आ गई। गुस्सा खाकर अंग्रेजी में बोला, "यू शुड नाट बी सो रियूड।"

थानेदार को अंग्रेजी बस काम चलाऊ आती थी। इसलिए वह रौबदार लहजे में बोला, "देख ओये मुंडया! हमसे ज्यादा गिटपिट नहीं करना। जो कहना हो तो अपनी बोली में कहो ताकि सब लोग तुम्हारा बयान समझ सकें।"

नौजवान जरा तेज मिजाज था। बोला, "आप अफसर हैं। आपको जरा तमीज से बात करनी चाहिये।"

यह अप्रत्याशित उत्तर सुनकर थानेदार ने सिर ऊपर उठाया। उसकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। उसने इशारा से सिपाही को पास बुलाया और होंट काट कर बोला, "अजीब सीन्हा! इस मुंडे को थोड़ी तमीज़ दिखाओ।"

अजीब सिंह के दो-तीन झापड़ खाकर नौजवान के दांत हिल गये। थानेदार ने उसके चिकने बालों के गुच्छे को हाथ में दबोच कर कहा, "बेटा, मैं तुम्हारे ऐसे शरीफ बदमाशों को सीधे रास्ते पर लाना खूब जानता हूं।" फिर उपस्थित जनों की ओर ध्यान दिया, "देखो जी एक गरीब किसान का बैल गोली से उड़ा दिया और ऊपर से धौंस जमाते हैं। कानून हमारे हाथ में है। दूध का दूध और पानी का पानी अलग कर दिखाना हमारा काम है।"

उपस्थित जनों में से अधिकांश ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई। थानेदार गुर्राकर बोला, "ओये मौलया!"

"जी मोतियां वालियो!"

मौला बग़ल ही में से निकल कर हाथ बांधकर थानेदार के रू-ब-रू खड़ा हो गया।

"बैल कहां पर मरा पड़ा है?"

"शहनशाह जी! वह तो मानहो के खेत ही में मरा पड़ा था, बेचारा किस्मत का मारा बाड़े में से निकलकर उनके खेतों में जा निकला। बस उठा के गोली दाग दी उन्होंने । भला दो डंडे मार कर निकाल देते साले को। गरीब का बैल तो बच जाता।" यह कहते-कहते मौला ने रोनी सूरत बना ली।

मानहा यह आरोप सुनकर सकपका गया। लेकिन बेटे का हश्र देख चुका था, इसलिए चुप रहा।

"हम मरा हुआ मौके पर देखेंगे।"

"चलो मोतियां वालियो।"

अब आगे-आगे मोतियां वाला—साथ-साथ मौला, सुदागर, लभू वगैरह, उनके पीछे मानहे और आखिर में नाक सुड़सुड़ाते बच्चे और दुमें हिलाते हुए कुत्ते।

यह जत्था खेत पर खेत फलांगता हुआ जब मानहो के खेत में पहुंचा तो देखा कि सर्दी से अकड़ा हुआ बैल खेत में टागें पसारे पड़ा है......मौला ने सावधानी के तौर पर एक लड़के को वहां बैठा दिया था। ताकि गिद्ध और कुत्ते मुर्दा के पास न आयें।

ख़ान साहब (थानेदार) ने बैल की अगली टांगों के नीचे और गर्दन में लगी हुई गोलियों के निशानों को ध्यान से देखा। गांव के तीन-चार आदमियों को भी देखने का हुक्म दिया। फिर गांव वापस आकर पीपल की छांव तले बिछी हुई चारपाई पर बैठ गये। इस समय उनके लिए मक्खन और लस्सी का कटोरा तैयार था।

मक्खन का गोला निगल कर और ऊपर से लस्सी चढ़ाकर खान साहब ने झाड़न नुमा रूमाल से बाछें साफ करते हुए कहा, "हां बे मोलो! अब बता सारा किस्सा । तेरा बयान लिखा जायेगा अब।"

मौला ने खांस कर गला साफ करते हुए बताना शुरू किया कि कैसे पिछली रात को अपने बाड़े तक यह देखने के लिए गया कि वह लौंडा जो वहां मवेशियों की रखवाली के लिए रखा गया था वहां मौजूद भी था या नहीं क्योंकि उस कमबख्त का एक चमारन से याराना था। मौक़ा पाकर रातों को उधर भी खिसक जाया करता था।

"तुम अकेले थे या और भी कोई साथ था?"

"नहीं जी केला कित्थे? मेरे नाल सुदागर, मेलो और लभ्भू भी तो थे।"

"ये कब से तुम्हारे साथ थे?"

"बादशाहो ! ये तो हर रोज मेरे साथ होते हैं। खाने-दाने से फुर्सत पाकर कभी ये मेरे पास आ जाते हैं और कभी मैं उनके पास चला जाता हूं, गप उड़ाने के लिए।"

"अच्छा, अच्छा फिर क्या हुआ?"

"फिर शहनशाहो, अभी हम बाड़े से दूर ही थे कि धांय-धांय दो बार बंदूक चलने की आवाज सुनाई दी। हम तो जी डर के मारे खेतों में छुप गये....."

"अच्छा तो तुम डर गये!" खान साहब ने पूछा क्योंकि शकल से ही मौला उन आदमियों में से दिखाई देता था जिन्हें डर कभी छूता भी नहीं।

"आहो जी! हम डर गये।"

"हच्छा फिर?"

"आहो जी! हम डर गये!"

इतने में ये निक्का माहना गांव की तरफ भागता दिखाई दिया। पहले हम समझे किसी डाकू ने इस पर गोली चलाई है। पर जी इसके हाथ में बंदूक देखकर हम घबरा गये।"

"हूं......" खान साहब ने सहमति में यों, सिर हिला दिया जैसे वे इस मामले की तह तक पहुंच गये हों। "फिर?"

"फिर जी हम बाड़े की तरफ बढ़े। रास्ते में इन्हीं के खेत पड़ते हैं। वहां हमें सफेद सफेद चीज दिखाई दी। हम डरते-डरते करीब पहुंचे तो देखा कि मेरा बैल मरा पड़ा है। मैंने तो सिर पीट लिया और नजीक से देखा तो गोलियों के निशान दिखाई दिये।"

थानेदार साहब ने मौलो से बहुत से सवाल किये। फिर मेलो, सुदागर और लभ्भू की जिरह की गयी।

"अच्छा तो सुदागर तुमने अच्छी तरह पहचान लिया था कि वह रामलाल का बेटा हीरालाल ही था?"

"हाओ जी।"

इस तरह से सब लोगों ने अलग-अलग ढंग से पुष्टि की। अब खान साहब फिर हीरालाल की तरफ मुड़े, "देखो हीरा! सच-सच बता दो कि आखिर बात क्या है। वरना याद रखो कि मैं मुजरिमों का सख्त दुश्मन हूं। थाने पहुंच कर दो कानों में सिर कर दूंगा तुम्हारा।"

अब तो हीरालाल ताव में आने के मूड में नहीं था। अभी पहली मार ही से उसकी नाक जल रही थी और होटों पर सूजन आ गयी थी। उसने मद्धम आवाज़ में कहा, "यह इल्जाम बिल्कुल बेबुनियाद है। मैं तो खाना खाकर घर से बाहर तक नहीं निकला।" खान साहब ने उसके बाप की तरफ देखकर कहा, "लाला! तुम्हारा लौंडा जरा सख्त दाना मालूम होता है। मगर हमारा काम भी भूलों-भटकों को रास्ते पर लाना है। समझा लो अपने बेटे को। वरना एक बार मैंने हाथ उठा दिया तो याद रखो पहचान नहीं पाओगे कि इसका सिर किधर था और मुंह किधर को।"

रामलाल मुक़दमाबाज़ी से तंग आ चुका था। हाथ जोड़कर बोला, "खान साहब! अभी लड़का ही तो है, शायद......मैं बैल की कीमत देने को तैयार हूं।"

"बैल की कीमत?" मौला ने चिल्लाकर कहा। गरीब के बैल की जान ऐसी सस्ती नहीं होती कि जब जी चाहा मार दिया और फिर पैसे की धौंस जमाने लगे।"

खान साहब बोले, "चुप रहो तुम। बकवास बंद करो।"

"नहीं बादशाहो! मेरी क्या मजाल है।" मौला हाथ जोड़ कर अलग खड़ा हो गया।

"अच्छा लाला अपनी बंदूक तो मंगावाओ जरा।"

बंदूक हाजिर की गयी।

हीरा बोला, "देखिए बंदूक की नाली में ग्रीज लगाकर मैंने अलग रख छोड़ी थी।"

खान साहब ने हीरा की तरफ घूमकर देखा और जोर-जोर से सिर हिलाकर बोले, "सब समझता हूं यह ग्रीज तो आज की ही लगी हुई मालूम होती है।"

थोड़ी देर तक बंदूक का मुआयना किया गया। फिर उन्होंने सिपाही से कहा, "अजीब सीन्हा! कागज लाओ तो बंदूक की रसीद लिख दूं।"

इसके बाद सबके बयान पूरे किये गये और फिर थानेदार ने कहा, "बंदूक थाने में जमा होगी, बेटा! हीरा चलो थाने। फिर देखो मैं हीरा का बटेरा कैसे बनाता हूं।"

रामलाल बेटे के लिए सख्त परेशान था। हाथ बांधकर बोला, "खान साहब ! दया कीजिए।......मैं बैल की कीमत और जुर्माना देने को तैयार हूं।"

"ये तो बाद की बातें हैं......मालूम होता है कि तुम्हारी जेब में रुपये उछल रहे हैं लाला।"

रामलाल ने बमुश्किल थूक निगलते हुए पूछा, "क्या ज़मानत नहीं हो सकती ।"

"यह सब थाने पहुंचकर तय होगा।"

यह कहकर खान साहब घोड़े पर सवार हो गये। जब वे हीरा को लेकर चलने लगे तो रामलाल की आंखों में आंसू आ गये। वह जानता था कि लड़के ने जोश में आकर गुस्ताखी की है। इसलिए उसकी खैर नहीं। कुछ सोचकर आगे बढ़ा और हाथ जोड़कर बोला,

"खान साहब, एक बात अर्ज करूं?"

खान साहब ने घोड़ा रोक लिया।

''बात ये है कि मौला के बैल को गोली मैंने मारी थी।''

खान साहब ने हंसकर घोड़े को एड़ दी और बोले, ''लाला! लड़के को बचाने की खातिर झूठ बोल रहे हो। जरा गवाहों से तो पूछो। हम तो कानून के बंदे हैं।''

जब थानेदार साहब उनकी नज़रों से ओझल हो गये और बंदूक भी अपने साथ ले गये तो मौला ने अपने घर की ड्योढ़ी में मैं पहुंचकर पहले आसमान की तरफ देखा और फिर भारी आवाज़ में बोला, ''या मौला!' इसके बाद सुदागर से कहा, ''देख बे सुदागरा! अभी भसंगड़ी पर सवार होकर सीधा भंभोड़ी चला जा और बग्गा सिंह से कह दे धांय-धांय बोलने वाली चिड़िया पिंजड़े में बंद हो गयी।

3

अभी सूरज ढल ही रहा था कि अचानक इतनी भीषण आंधी चली कि ज़मीन से आसमान तक धुआंधार हो गया। यह मालूम होता था जैसे धरती का सीना फट गया है। आसपास के बादल पर बादल गगनस्पर्शी पहाड़ों की भांति झूम-झूम कर उठ खड़े हुए हैं और आसपास यह समंदर घास-फूस को उड़ाता, उमड़ता चला आ रहा है......सूरज अचानक छुप गया। चारों ओर धुंधलका और अंधेरा बढ़ता जा रहा था और गदले आसमान में आने वाली आंधी की खबर देने वाले चीलों के झुंड भी इस गहरे धुंधलके में विलीन हो गये।

लकड़ी के बने हुए भारी-भारी चरखड़ों वाले रहट के ऊपर छाये हुए फुलाह के बड़ों के झुंड में से कपूरा सिंह ठठेवाला एक लाल-भभूका थूथनी वाली सिर से पांव तक काली मजबूत घोड़ी पार सवार बाहर निकला। उसने पहले पीर के ठठे की ओर देखा और फिर दूर-दूर तक बिछे हुए खेतों पर निगाह दौड़ाई लेकिन उसकी नजर दूर तक नहीं जा सकी। क्योंकि आंधी पल-पल बढ़ती जा रही थी। खेतों की मेंढें धूल सनी हुई हवा के चलने से बड़े तालाब के मैले-गदले पानी की भांति लहरें लेती दिखाई दे रही थीं।

कपूरा ठठेवाला, जिसे आमतौर पर काला तित्तर कहते थे, उसे गांव से निकाल दिया गया था। कई वर्षों से उसने गांव में प्रवेश करने का साहस नहीं किया था लेकिन हफ़्ते पर पहले वह चोरी-छिपे अपनी बहन से मिलने के लिए गया। सिर्फ़ एक रात रह कर और यह मालूम करके कि ससुराल से लाये हुए गहने वह कहां पर रखती है। चुपचाप लौट आया था, आज उन गहनों और उसके साथ-साथ अड़ोस-पड़ोस वालों पर हाथ साफ करने का इरादा था।

वह बड़ा भीमकाय आदमी था—काला भुजंग, हरामीपन नस-नस में भरा हुआ था। उसके हृदय की संवेदनाएं मर चुकी थीं।

अभी वह दूर-दूर तक निगाह दौड़ा ही रहा था कि खेतों में से कुछ छायाएं उभरीं और उसकी तरफ बढ़ती हुई दिखाई दीं।

आंधी का ज़ोर बढ़ने लगा।

गांव के चारों तरफ फैली हुई धुंध पर पहले तो धूल की हल्की-सी चादरें लहराईं फिर धूल की भारी-भारी तहें एक के बाद एक ऊपर को उठने लगीं और जोहड़ के पानी के सरसराते हुए सांपों की तरह नन्हीं-नन्हीं लहरें बल खा-खाकर करवटें लेने लगीं। तोते, कौवे और दूसरी घरेलू चिड़ियां पीपल और घरेक के पेड़ों में जाकर छुप गयीं।

खेत-खेत चलते हुए वे आदमी जब पास पहुंचे तो कपूरे ने उन्हें पहचान लिया। आगे-आगे मौला था और उसके पीछे-पीछे सुदागर, लभ्भू और मेला सिंह।

उन्हें देखते ही कपूरा कड़क लहजे में बोला,

"तुम लोग कहां थे?"

"यहीं तो थे।" सुदागर ने हंसकर जवाब दिया।

कपूरे को सुदागर की हंसी पंसद नहीं आई। उसने उसकी ओर कड़ी नजरों से देखा। वह खुद बहुत कम हंसता था। लगता तो ऐसा था कि वह सुदागर के मुंह पर उलटे हाथ का झापड़ देगा लेकिन फिर खून का घूंट पीकर रह गया और मौला की ओर मुड़ गया,

"मौला!"

"हूँ!"

"सब ठीक?"

"हम तो सब ठीक ही हैं......तैयारी तो तुम्हारी होनी चाहिए।"

उसे मौला की हाज़िर जवाबी भी पसंद नहीं आयी थी। लेकिन यह गुस्सा करने का मौक़ा नहीं था। और कुछ नहीं तो डाके का मामला चौपट हो जाने का डर था। फिर वह तीखे लहजे में बोला,

"हमारी तैयारी से तुम्हारा क्या मतलब? तुम तो अपनी कहो।"

"हमारा काम तो कभी का हो चुका। गांव में बंदूक थी सो अब थाने में है।"

"किसी तरफ से कोई बात निकली तो नहीं?"

"नहीं।"

"कोई अफ़वाह, शक व शुबह?"

"कुछ नहीं।"

कपूरा की घोड़ी शायद आंधी में किसी चीज़ की गंध पाकर बेचैन हो-होकर बिदकती और बेचैनी से ज़मीन पर सुम झाड़ती थी। लेकिन वह उसी पर खूब जमकर बैठा था।

उन्हें कई साथियों का इंतजार था जो दूर-दूर यानी पटियाले तक से आने वाले थे। कपूरे ने सोचा कि अगर की यही कैफियत रही तो उन्हें अपनी कार्रवाई जल्द शुरू करनी होगी।

कपूरा बोला, "अच्छा अब मैं चलता हूं।"

"अभी बाकी लोग तो नहीं आये होंगे।"

"आ गये होगें। चलकर देखता हूं। तुम लोगों को तलाश करने में मेरा वक्त खराब हुआ।"

"हम तुम्हें देखते रहे। तुम कहीं दिखाई नहीं दिये।"

"रहट पर मिलने का वादा था। मैं सीधा उसी जगह पहुंच गया था।"

"पहले हम भी रहट पर गये थे। फिर हम खेतों में चले गये।"

"क्यों?"

"हमने सोचा कि कहीं कोई रहट पर हमें साथ-साथ न देख ले।"

"यह अच्छी हरकत की तुमने। ऐसी हरकतें करोगे तो तुम खुद भी फंसोगे और हमें फंसवाओगे। अगर कोई मुझे उस जगह देख लेता तो?"

मौला बोला, "अच्छा जो होना था सो हो गया। हम अपनी जगह से तुम्हें देखने की कोशिश करते लेकिन आंधी की वजह से तुम दिखाई नहीं दिये। भई! आगे को खयाल रखेंगे। ऐसी गलती नहीं होगी।"

इस पर कपूरा ख़ुश हो गया। बोला,

"देखो हम आकर पहले उसी जगह रुकेंगे। कोई ऐसी-वैसी बात हो तो हमें खबर कर देना।"

"अच्छी बात"।

"मौला! तुम्हारा घर तो बिल्कुल सामने पड़ता है?"

"हां!"

"तो फिर जरा नजर रखना ताकि जब हम यहां पहुंचें तो तुम में से एक आदमी हमें आन मिले। समझे!"

"लेकिन आंधी बढ़ती जा रही है। न जाने कब तक इसका जोर रहे.....थोड़ी देर में हाथ को हाथ तक सुझाई नहीं देगा। तुम लोग इत्ती दूर से कैसे दिखाई दे सकते हो?"

कपूरे ने थोड़ा सोच-विचार किया फिर बोला", यह भी ठीक है। लेकिन अब करें क्या?

"तुम ये बताओ कि सब को लेकर कब तक लौटोगे?"

कपूरे ने थोड़े सोच-विचार के बाद जवाब दिया "भई पटियाले और जींद तक से जवान आ रहे हैं। अगर सब पहुंच गये तो हम एक घंटे तक लौट आयेंगे।"

"अच्छी बात!"

"और क्या, अब रात भीगने का इंतजार तो करेंगे नहीं हम। आंधी से तो इतना अंधेरा छा जायेगा कि तबीयत खुस हो जायेगी।"

"ठीक है।"

"लो भई अब मैं चला।"

यह कहकर कपूरे ने घोड़े को एड़ दी और बगूले की-सी तेजी के साथ पल-प्रति-पल धुंधलाती हुई झाड़ियों में गुम गया।

(4)

एक घंटा बीतने भी न पाया था कि पीर के ठठे पर ऐसा गहरा अंधेरा छा गया कि पहले कभी देखने में नहीं आया था।

कपूरा और उसके साथी घोड़ों और सांडनियों पर सवार अंधाधुंध चले आ रहे थे। तेज हवा मानो कि उनके कपड़े नोचकर उनके बदन से अलग फैंक देना चाहती थी। उनकी दाढ़ियां और मूंछें धूल से अट गई थीं।......आंखों की पलकें चिपकी जा रही थीं। अगर कपूरा उनका मार्गदर्शन न करता तो कभी रास्ता न ढूंढ पाते।

उनमें हिंदू, मुस्लिम और सिख सभी शामिल थे। उनके पास दो कच्ची रायफलें थीं। जिनकी नालियों के दहाने उन्होंने कपड़ों की डांठों से बद कर रखे थे ताकि धूल अंदर न जाने पाये। लारी के स्टेयरिंग की नाली वाली एक बंदूक भी थी। इनके अलावा वे कृपाणों, छपुओं, लाठियों और सफाजंगों से लैस थे।

इस समय दूर से पीर का ठठा मरे हुए भैंसे की भांति दिखाई दे रहा था।

गांव से हटकर संत अवतार सिंह जी की टूटी हुई समाधि की ऊंची दीवारें अलग-थलग खड़े हुए देव की भांति दिखाई दे रही थीं। जर्जर दीवार के पास सड़े हुए पानी की एक खाई थी जिसकी सतह पर हरे रंग की काई जमी हुई थी। और दीवार की दरारों से जंगली बेलें लटक रही थीं और उनकी पत्तियां पानी की सतह को चूमा करती थीं।

मौला ने सुदागर को वादे के अनुसार मौक़े पर भेज दिया था। सुदागर रेत के एक टीले की ओट में सिर और कानों को धुस्से में लपेटे बैठा था। देखने के लिए उसने आंखों के आगे एक छोटा-सा सूराख खुला हुआ छोड़ दिया था। भले ऐसे अंधेरे में क्या दिखाई दे सकता था। नज़र ने तो कुछ काम नहीं किया। अलबत्ता कानों में घोड़ों के सुमों की टपाटप और सांडनियों के बलबलाने की आवाजें आयीं तो उसने चौकन्ना होकर गर्दन उठाई लेकिन पलक झपकते ही उसके सिर पर थे। उस अंधेरे में छवियों (एक हथियार) की धीमी-धीमी चमक और भी ज़्यादा भयानक दिखाई दे रही थी।

आंधी के शोर में आवाज़ गूंजीः

"कौन?"

"सुदागर!" सुदागरे ने जल्दी-से जवाब दिया। खुदा न करे कि जवाब देने में देरी हो और उसका सिर छवी के एक ही वार से कट कर अलग जा गिरे।

"सुदागर कौन?"

अब सुदागर के हाथ-पांव फूल गये। चिल्लाकर बोला, "ओये मैं......सुदागर ठठे वाला कपूरा कित्थे ऐ?"

ठीक उसी समय कपूरे की धोड़ी मचल कर आगे बढ़ी "सुदागर!"

"हा ओ कपूरया।"

ओये अपना ही मुंडा ऐ।" कपूरे ने साथियों से कहा। फिर सुदागर को संबोधित करके पूछा,

"मौला भी है?"

"नहीं......वह घर पर है।"

"बाकी सब ठीक है?"

"सब ठीक-ठाक है।

इसी बीच में धूल भरी हवा फर्राटे भरती रही। घोड़े और सांडनियां बेचैनी से नाच रही थीं।

नवागंतुक डाकुओं ने आपस में कुछ विचार विनिमय किया और फिर कपूरा सुदागर से बोला,

"सुदागर बच्चू! अब हमें रहट की तरफ ले चलो।"

सुदागर कुछ कहे बग़ैर उठा और रहट की तरफ़ रवाना हुआ। वे सब उसके पीछे-पीछे हो लिये।

कपूरे ने रहट के पास पहुंचकर पता किया, "सुदागर ! तवेला तो खाली है?"

"हा ओ बिल्कुल खाली है।"

"ऐसा न हो कि कोई बाहर का आदमी घुसा हो?"

"अरे नहीं।"

रहट पर पहुंच कर वे घोड़ों और सांडनियों से नीचे उतरे। जानवरों को तवेले में बंद करके सुदागर को रखवाली के लिए तैनात किया और खुद सारे सामान समेत गांव की तरफ बढ़े।

मौला के मकान का दरवाज़ा अधखुला था। उसने दरवाज़े में ईंटें फंसाकर तख्तों को एक जगह जमा दिया था। और वह खुद लभ्भू के साथ बैठा हुक़्क़ा पी रहा था। मेल सिंह अलग बैठ दाढ़ी कुरेद रहा था।

उन्होंने दरवाजे में से डाकुओं को पहचान लिया। जब वे पास आ गये तो उन्होंने देखा कि उनमें सब के सब बड़े मजबूत और तिरछे-तिलंगे आदमी शामिल थे। मौला तहमद झाड़कर उठ खड़ा हुआ। और बोला,

"साब सलामत।"

"साब सलामत ए जी!' दबी-दबी मिली-जुली आवाज़ें सुनाई दीं।

मौला बढ़कर देहलीज़ तक गया। उसने देखा कि उसके दरवाज़े के आगे भांत-भात की सूरतें खड़ी थीं। उन्होंने पगड़ी की कलगियों से चेहरे ढांप रखे थे। सिवाय आंखों के उनके चेहरे का कोई हिस्सा दिखाई न देता था। बदन से वे नंगे थे। उनके शरीर सरसों के तेल की वजह से न सिर्फ चमक रहे थे बल्कि तेल की हल्की-हल्की गंध भी फैल रही थी।

मौला ने लम्बी मूंछों पर चार उंगलियां फेरते हए कहा, "आज तां अल्लाह दा बड़ा फजल है जी।"

"हां।"

मौला ने कपूरे की नंगी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, "आ भा ! पानी-कांजी पी लो सुना रे।"

कपूरे ने जटा-झाड़ नारियल की भांति अपने सिर को इनकार के तौर पर हिलाते हुए कहा,

"नईं भई! बगत घट ऐ। पानी-कांजी की बात छड़!'

मौला ने इधर-उधर देखा,

"यारों सवारी बिना आ गये हो।"

"नईं घोड़े-डाचियां तवेले में छोड आये हैं।"

"पर भा! घोड़े कुछ नजीक रखो। भागते वक्त ज़रूरत पड़ेगी......और फिर कपूरया! तुम्हें किसी ने पिछान लिया तो आफत आ जायेगी। तू अपनी घोड़ी नजीक रखना"

कपूरे को मौला की बात पसंद आयी। उसने झुककर एक साथी के कान में कुछ कहा और वह 'हा ओ' कह कर तवेले की तरफ रवाना हो गया।

कपूरे ने मौला से कहा,

"मौलया! अब देर मत करो! बस चलो। ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं आयेगा।"

"बोत हेच्छा !'

मौला ने फूंक मार कर दीया बुझाया तो उसकी लम्बी-लम्बी मूंछें फड़कीं!

अब वे एक लम्बी कतार के रूप में एक दूसरे के साथ लगे-लगे बढ़ने लगे। गोबर के ढेरों, जोहड़ और अरोड़ियों के पास से होते हुए वे गली में घुस गये।

आंधी के कारण बड़ा शोर हो रहा था। ऐसे मौके भी तन्नूरों में दुबके हुए थे। एकाध ने दबी-सी भौं की आवाज़ निकाली भी तो वह आंधी के शोर में दब कर रह गयी......

उनकी रायफलें भरी हुई थीं। उन सबके हथियार बिल्कुल तैयार थे। हर महत्वपूर्ण मोड़ पर कपूरा एक आदमी खड़ा कर देता।

मौला की अभी तक बग्गा सिंह से कोई बात नहीं हुई थी। बग्गा मितभाषी था। मौला इस सच्चाई को जानता था। इसलिए उसने भी कोई बात नहीं की। वह बग्गे के कंधे से कंधा मिलाये चला जा रहा था। उसकी आंखों भीतर धंसी हुई थीं। लेकिन उनमें वहशी जानवर की-सी चमक और तीखापन था। वही उन सबका सवार था।

डाकू लम्बे-से खजूर की भांति दीवारों से लगे बढ़ रहे थे।

बग्गे ने मौला से पूछा,

''मकान है कहां?''

''गांव के बीचों-बीच।''

यह सुनकर बग्गे की भौंह में बल पड़ गया। बग्गो ने दबी जबान में कहा,

''अगर लोग-बाग जाग पड़े तो इस अंधेरे और आंधी में गांव से बाहर निकलने के लिए बहुत सावधानी और होशियारी की ज़रूरत है।''

मौला ने कुछ लापरवाई से कहा,

''ओये भा! तुम लोगों के सामने कौन टिका रह सकेगा.....चाहे सौ आदमियों से मुक़ाबला क्यों न हो जाये।''

बग्गे पर मौला की इस बड़ का कोई असर नहीं हुआ। वह जानता था कि वे लोग गांव वालों का बखूबी मुकाबला कर सकते हैं। लेकिन वह बड़ा अनुभवी आदमी था। इस समय सवाल मुकाबला करने या न कर सकने का नहीं था। बल्कि असल समस्या यह थी कि गिरोह का हर आदमी बचकर निकलना चाहिए। वरना एकाध भी पुलिस के हत्थे चढ़ गया तो सारे गिरोह की आफ़त आ जायेगी। ऐसी आंधी, अंधेरे और शोर में इस काम को सकुशल संपन्न कर लेना कोई आसान बात नहीं थी, जैसा कि मौला को लगता था।

इसके साथ ही बग्गो एकदम रुक गया और उसके पीछे सब के सब डाकू रुक गये।

अंधेरे में उन्हें एक काली छाया दिखाई दी......मालूम होता कि कोई आदमी जल्द-जल्द कदम उठाता हुआ चला आ रहा है।

वे सब तत्क्षण दीवारों के साथ लगकर खड़े हो गये।

वह आदमी बदन पर काली चादर लपेटे तेजी से बढ़ता चला आ रहा था। वह पल-पल उनके पास आता जा रहा था।

डाकू दम साधे खड़े थे। संयोग से उस दीवार पर एक छज्जा बढ़ा हुआ था। इसलिए वे पूरी तरह से अंधेरे में डूबे खड़े थे।

यों सहज से पास खड़ा आदमी भी दिखाई न देता था। यह तो सिर्फ बग्गो की गिद्ध-सी आंखों ने ही अजनबी को आते देख पाया था।

कुछ क्षणों बाद वह अजनबी उनके पास से गुज़रने लगा। उस ग़रीब को इस बात का तनिक भी अहसास नहीं था कि वह हथियारबंद डाकुओं की छवियों (एक हथियार) के साये तले से गुज़र रहा है। कहीं उसके मुंह से चूं की आवाज़ निकल जाती तो उसका सिर तन से अलग हो जाता।

डाकुओं पर मौत की-सी खामोशी छाई हुई थी। वे उस मरियल से आदमी की छाया को अपने पास से गुजरते देख रहे थे। खुदा-खुदा करके वह उनकी क़तारों से आगे बढ़ गया। उसके जाने के बाद सबने इत्मीनान की सांस ली। क्योंकि इस समय खून-खराबा नहीं करना चाहते थे। अगर कहीं उसकी बहुत तेज़ चीख़ निकल जाती और उस चीख को सुनकर गांव में शोर मच जाता तो उन्हें खाली हाथ वापस भागना पड़ता।

गांव के अंदर वाले चौराहे पर पहुंचे तो देखा कि ऊंचे चबूतरे वाले बड़े कुए की मुंडेर पर पानी निकालने की ऊंची-ऊंची चर्खियां सिर झुकाये उदास खड़ी हैं और उन चर्खियों के कदमों में ऊबड़-खाबड़ पैंदों के लोहे के डोलचे हवा के ज़ोर से हिल-हिल कर 'डंगा-डिंग' का शोर मचा रहे हैं। और चबूतरे के पास खड़े मसोड़ियों के पेड़ मानो कि उन्हें गुस्से भरी निगाहों से देख रहे हैं।

वे सब तुरंत पेड़ों के झुंड तले चले गये ताकि आपस में परामर्श कर लें।

कपूरे ने छू-छूकर सबकी तादाद मालूम की फिर निश्चिंत होकर उसने कहा,

"इस जगह कम से कम तीन जवान खड़े रहना चाहिये।"

"वह क्यों?" उनमें से एक ने, जो लुधियाने के इलाके का जरा हथछुट जवान था, आपत्ति की।

कपूरे को उसकी यह आपत्ति अच्छी नहीं लगी। उसने भौंह पर गहरे बल डालकर उसकी ओर देखा और फिर गहरी सांस लेकर उसने अपने गुस्से को दबाया और अपनी बात को स्पष्ट करने लगा।

"इस जगह से सिर्फ एक तंग गली आगे को जाती है जो मकानों के अंदर ही ख़त्म हो जाती है। हमारे भाग निकलने का सिर्फ यही एक रास्ता है।"

"ओये आपा नूं पर्रा नहीं ऐ। आपां नाल कौन मुक़ाबला कर सकता है।" नौजवान ने बाजू हवा में लहराकर बेपरवाई से ऊंची आवाज़ में कहा।

अब तो कपूरे का जी चाहा कि उसकी गर्दन मरोड़ कर रख दे। उसके ये तेवर देख नौजवान भी बिफरने लगा। नौजवान मजबूत और जोशीला ही सही लेकिन कपूरे के मुक़ाबले में खड़ा होना तो सरासर हिमाक़त थी उसकी।

शायद उनके दो-दो हाथ हो जाते लेकिन बग्गे ने नौजवान को आंख दिखाई तो वह ठंडा पड़ गया। फिर बग्गा ने कपूरे को संबोधित करते हुए कहा,

"हां तो क्या कह रहे थे तुम?"

"उधर जो तंग गली तुम देख रहे हो, उसी के अंदर हमें जाना है। वे मकान जिन पर हमारी नज़र है किले की मानिंद हैं, हर आफ़त से बचे हुए हैं। पहले तो वहां पहुंचने का किसी डाकू को हौसला ही नहीं हुआ। हमारी यह पहली कोशिश है। अगर हम वहीं कहीं घिर गये तो अजब मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। हमारी खैरियत इसी में है कि हम यहां से सब के सब सही-सलामत निकल जायें.....सिर्फ यही एक खुली जगह है। खतरे के मौके पर हमारा एक आदमी फौरन अगली गली के अंदर आकर हमें खबर कर सकता है। हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि पहले तो हमें मुकाबला करना ही न पड़े लेकिन ऐसा हो भी तो यहां खुली जगह में हो।"

बग्गे ने सिर हिलाया।

कपूरे ने फिर कहना शुरू किया,

"यह आंधी हमारी मदद भी कर सकती है और हमारा नुकसान भी कर सकती है। अगर कुछ गड़बड़ हो गयी तो इस हुल्लड़बाजी, आंधी, और अंधेरे में हम अपने साथियों की गिनती भी न कर पायेंगे।"

बग्गा उससे पूरी तरह सहमत था।

अतएव तीन आदमी वहां पर छोड़कर वे लोग आगे बढ़ गये।

तंग गली में पहुंच कर उन्हें ऐसा लगा जैसे वे क़ब्रें हों। आंधी और हवा का ज़ोर कम था। अलबत्ता क़यामत के शोर कानों के पर्दे फाड़े डालता था।

बग्गा अचानक रुक गया। उसके साथ ही सबके क़दम रुक गये और वे अपनी थूथनियां उसके पास ले आये ताकि उसकी बात सुन सकें।

बग्गे ने साहंसी की तरफ देखकर पूछा,

"बांस नहीं लाये?"

"ओ, वो तो भूल गये।"

"वाह ओय......भक्ष......तू क्या अब......के सहारे चढ़ोगे छत पर"

"बांस कौन दूर है। मौला के घर ही से तो लाना है। मेलू जार तू भाग कर जा और मौलो की ड्योढ़ी के अंदर सेहन के कोने में एक लम्बा बांस धरा होगा।......बस उठा के फौरन वापस आना......"

मेलू ने थूथनी घुमाई और नाक की सीध में लम्बे-लम्बे डग भरता चला गया।

वे सब आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर गली बांये हाथ को घूम गयी थी। मोड़ से कुछ क़दम आगे दाहिने हाथ को एक अधूरा मकान था। जिसकी बुनियादें भरने के बाद न जाने उसे क्यों छोड़ दिया गया था। अब वहाँ बड़े-बड़े सूखे झाड़ और मंछटी (कपास की छड़ियां) के अंबार अगले मकान की दीवार के साथ टिके हुए थे। जब किसी कुतिया को बच्चे जनने होते तो वह चीखती-कराहती यहीं आनकर शरण लेती। एक कोने में भड़भूंजे का चूल्हा था। जिसमें इस समय रेत भरी थी।

वहां रुककर उन्होंने उस मकान के पिछवाड़े का जायज़ा लिया जिसमें उन्हें सबसे पहले प्रवेश करना था।

छत से परे बिजली चमक-चमक कर आंखें दिखा रही थी। घनघोर घटाएं अपने काले आंचल को लहराती हुई आकाश के विस्तार में फैलने लगीं। आंधी के ज़ोर में कमी तो न आयी थी। अलबत्ता हवा में अब पहले की-सी धूल नहीं रह गयी थी।

कपूरे के इशारे पर वे फिर रुक गये। उनकी दाढ़ियां फिर एक दूसरे के पास आयीं। उसने कहा,

"सब लोग यहीं पर रुकें। मैं बग्गे को लेकर मकानों को अगली तरफ़ से देख लूं ज़रा।"

कुछ दूर चल कर वे दोनों सबकी आंखों से ओझल हो गये।

साहंसी ने मकान की ओर देखा और फिर मन ही मन अनुमान किया कि इस पर बांस की मदद से चढ़ना संभव है भी या नहीं ? उनमें से एक बोला,

"भऊ! मकान जरा ऊंचा मालुम होता है।"

"हां---- है तो।"

"अगर तुम बांस के जोर से फलांग कर उस पर न चढ़ सके, इधर-उधर से ऊपर जाने का रास्ता या सहारा दिखाई नहीं देता......फिर तो आगे वाले दरवाजे से जाना पड़ेगा।"

साहंसी चुपचाप दांतों तले मूंछ का एक सिरा चबाता रहा। फिर यों बोला, जैसे स्वयं को ही संबोधित कर रहा था,

"मैं आगे बढ़कर दीवार के नीचे से ठीक अंदाज लगा सकता हूं।"

यह कह कर वह आगे बढ़ा और दीवार के पास पहुंच मनछटी के एक अंबार की ओट में गुम हो गया। अंधेरे के कारण अनुमान लगाना कठिन था।

कुछ मिनट बाद बग्गा और कपूरा भी वापस आ गये। बग्गा बोला,

"पहले तो कपूरे की बहन पर हाथ साफ करना होगा। इसके बाद पड़ोस के कुछ घर भी अच्छे हैं उन पर भी जल्दी से हाथ फेर दिया जाये, अपना साहंसी यार कहां गया?"

"वह दीवार की तरफ गया है। आता ही होगा। अंधेरे में उसे भी कुछ सूझ नहीं रहा।"

कुछ अन्य लोगों के बाद साहंसी भी आ गया।

उसे देखते ही बग्गे ने कहा,

"मकान तो ऊंचा है भऊ "

"हां भा!" साहंसी ने फिर एक मकान की तरफ नजर डाली और थोड़ी बेचैनी से हाथ मलने लगा। शायद उसके हाथ बांस पकड़ने के लिए व्यग्र हो रहे थे।

"फिर?" बग्गे ने सवाल किया।

साहंसी ने उसकी ओर देखे बिना जवाब दिया।

"कोशिश करने में क्या हर्ज है?"

बग्गे को उसके जवाब से संतोष नहीं हुआ। लेकिन उसके हाथ में इस समय कोई दूसरा चारा भी न था।

इतने में मेलो लम्बा बांस लिए यों आया जैसे बड़े मूज़ी जानवर को कंधे पर लादे जा रहा हो।

साहंसी ने बढ़कर बांस थाम लिया। पहले उसे लचका-लचका कर उसकी मजबूती को परखा और रास्ता टटोल-टटोल कर आगे बढ़ा और फिर उसने मकान की छत की ओर नजर दौड़ाई। मटियाले आकाश पर काले बादल गदले धब्बों की भांति दिखाई दे रहे थे।

अब साहंसी ने अपनी कमर के आस-पास लम्बा रस्सा लपेटा और ज़मीन पर हाथ मार कर दो ढेले ढीले कमरबंद में ठूंस लिये और सिर घुमाकर धीमी आवाज़ में साथियों से कहा,

"अच्छा, अब मैं कोशिश करता हूं......छत पर सही सलामत पहुंच गया तो ये दो ढेले तुम्हारी तरफ फेंकूंगा।"

इस सबके बाद उसने लम्बे बांस को सम्हाला, उसे दोनों हाथों में तौला और फिर दो चार बार पांव के पंजों पर नाच कर तेज़ी से भाग निकला।.......

......धीरे-धीरे उसके क़दमों की आवाज बंद हो गयी।

सबने उसे पर फड़फड़ाते चमगादड़ों की तरह हवा में उठते देखा। अनुमान से लगता था कि वह छत पर पहुंच गया है।

अगर बिजली चमक जाती तो वे उसे देख ही लेते......वरना.......तड़ाख से दो ढेले उनके पास गिरे । एक तो मेलो की टांग पर लगा।

"ओय......मियादया!" वह टांग पकड़ कर बैठ गया। लेकिन बिल्कुल मामूली चोट थी। ढेला कच्ची मिट्टी का था।

अब बग्गे ने कुछ आखिरी हिदायतें देते हुए कहा,

"देखो ! अब हमें यह सारा काम जल्द से जल्द खतम करना है। इस गांव में कुछ अच्छे लड़का जवान रहते हैं। जो जान की बाजी लगा सकते हैं। इसलिए हमें चुपचाप और फुर्ती से अपना उल्लू सीधा करके नौ और दो ग्यारह हो जाना चाहिये। समझे?"

"हां भऊ!" सबने एक स्वर से जवाब दिया।

कपूरे ने मेलो के कंधे पर हाथ रखकर धीमी आवाज़ में हिदायत दी कि वह सब नौजवानों को लेकर मकान के दरवाज़े पर पहुंच जाये।

वे लोग उधर चले गये तो कपूरा बग्गे को साथ लेकर पिछवाड़े वाली दीवार के पास पहुंचा। अभी उनके कदम रुकने भी न पाये थे कि छत पर से रस्सा लम्बे नाग की तरह फनफनाता और लहराता हुआ नीचे गिरकर झूलने लगा।

बारी-बारी दोनों रस्से की मदद से छत पर पहुंच गये।

छत की मुंडेर मुश्किल से चार-छह अंगुल ऊंची होगी। भीषण आंधी के कारण उन्हें ऐसा लगा जैसे उनके क़दम उखड़ जायेंगे। इसलिए वे सेहन से आने वाली सीढ़ी पर बनी हुई ममटी की तरफ झुके-झुके बढ़े। यह और खुशी की बात थी कि ममटी का दरवाज़ा खुला था। नहीं तो उन्हें कूद-फांदकर नीचे जाना पड़ता। इसलिए यह ज़ाहिर होता था कि घर के लोग अभी सोये नहीं थे। सच्चाई यह थी कि अभी सोने का कोई समय भी न था।

कपूरे के हाथ में रायफल थी। बग्गो के हाथ में चमकती हुई छवी (एक हथियार) और साहंसी हमेशा की तरह लम्बा सा छुरा थामे था।

उन्होंने एक बार फिर अपने-अपने चेहरों को पगड़ी की कलगियों में छुपाया। सिर्फ आंखों और भवों को नंगा छोड़ दिया और फिर फूंक-फूंक कर कदम रखते हुए सीढ़ियां उतरने लगे।

वे काफी नीचे जा चुके थे कि अचानक मोड़ से टिमटिमाती हुई रोशनी दिखाई दी। वे तुरंत समझ गये कि कोई आदमी हाथ में लालटेन या दीया लिये सीढ़ियों पर चढ़ता चला आ रहा है.....वे ठिठक कर रुक गये। रोशनी फैलती जा रही थी।

अभी वे कुछ तय भी न कर पाये थे कि दीये के पीछे दो ज़नाना पांव दिखाई दिये और उनकी आंखें एक तेरह-चौदह वर्षीय लड़की से मिलीं जो दीये को अपने दोनों हाथों के घेरे में लिये हुए थी ताकि वह बुझ न जाये।

उन्हें देखते ही लड़की का रंग फक हो गया। उसने यह बड़ी ज़बान बाहर निकाल हलक से दिल दहलाने वाली चीख निकालने की कोशिश की लेकिन डर के मारे उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। मिट्टी का दीया उसके हाथ से गिर कर चकनाचूर हो गया।

बग्गे ने फुर्ती से आगे बढ़कर उसे थाम लिया। वह बेहोश हो गयी। उन्होंने उसके मुंह में उसकी चुंदरी ठूंस-ठास कर उसके हाथ पैर बांधकर वहीं कोने में डाल दिया।

सेहन में पहुंचे तो देखा कि एक तरफ ड्योढ़ी है और दूसरी तरफ मकान का पसार है। मालूम होता था कि जिस दरवाजे से निकल कर लड़की आयी थी उसका कुंडा उसने बाहर से चढ़ा दिया था। ताकि हवा की तेज़ी के कारण दरवाज़ा न खुले। भीतर रोशनी हो रही थी और घरवालों की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं।

बग्गा और साहंसी दरवाजे के दोनों तरफ अपने-अपने हथियार सम्हाल कर खड़े हो गये। और कपूरा बाकी साथियों के लिए गली का दरवाजा खोलने के लिए ड्योढ़ी की

ओर बढ़ा। ड्योढ़ी में मवेशी बंधे थे। एक बैल तो उसे इतना पसंद आया कि बरबस जी चाहा कि इसे भी अपने साथ लेता जाये पर उस रात यह एकदम असंभव था।

ड्योढ़ी का दरवाजा खोलकर उसने गली में झांका तो कुछ नज़र न आया। अतएव उसने बैल हांकने के अंदाज में टिटो-टिटो करके दी-तीन आवाजें निकालीं तो बहुत सी छायाएं उसकी ओर बढ़ीं। जैसे काली दीवारों ने उन्हें जनम दे दिया हो।

कपूरे ने एक जवान को बंदूक समेत घर के पिछवाड़े मनछटी के अंबारों के पास खड़े रहने के लिए भेज दिया और बाकी लोगों को भीतर ले आया।

दो घड़ी बाद वे सब लोग दरवाज़े के सामने खड़े थे।

बग्गो ने छवी बढ़ाई और दरवाज़े के कुंडे में उड़स कर टहोका जो दिया तो कुंडा बड़ी आवाज़ से खुलकर गिरा और तड़ातड़ बजने लगा।.....दरवाज़े के दोनों तख्ते ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगे।

घर के लोग समझे कि लड़की ममटी का दरवाजा बंद करके लौटी है। वे कुछ देर तक उसके भीतर आने का इंतज़ार करते रहे। लेकिन जब कोई सूरत दिखाई नहीं दी तो एक आदमी जल्दी से बाहर निकल आया। पहले वह दरवाजे के दोनों ओर खड़े हुए बग्गो और साहंसी को नहीं देख पाया.....जब उसने लड़की को सेहन में न पाकर गर्दन घुमाई तो बग्गो और साहंसी की सूरतें दिखाई दीं। उसने घबराकर पूछा,

''आप कौन हैं?''

इसी बीच बाकी आदमी भी ड्योढ़ी में घुस आये और दरवाज़े में से उनकी गंदी सूरतें दिखाई देने लगीं। वे दोनों चुपचाप खड़े रहे। पीछे से कपूरे ने उसकी गुद्दी पर उलटे हाथ का ऐसा धप दिया कि वह लड़खड़ाकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

यह सब कुछ देखते ही देखते हो गया। उन सबने तुरंत मकान में प्रवेश किया। लालटेन की रोशनी में उनके हथियार जगमगा उठे। जान के डर से घर के किसी आदमी ने शोर नहीं मचाया। इसका भी वही इलाज किया गया जो पहली लड़की का किया गया था।

कपूरा जरा छिपा-छिपा ही रहा ताकि कोई उसे पहचान न ले। वह बग्गे को अंदर वाले कमरे में ले गया और उनकी तरफ इशारा किया। दम के दम सब कुछ समेट लिया गया। फिर वे सब सेहन में आ गये.....बग्गे ने एक नज़र में साथियों की गिनती कर ली और वे फिर दो हिस्सों में बंट कर पड़ोस के मकानों की ओर बढ़े। जिनके सेहन एक दूसरे के साथ मिले हुए थे।

इतने में बाहर से गोली चलने की आवाज़ सुनाई दी। उनके कदम रुक गये। फिर धड़ाधड़ गोलियां चलने की आवाज़ें सुनाई दीं। इसके साथ आंधी के शोर में आदमियों की ललकारों की आवाज़ें ऊंची उठीं।

मौके की नज़ाकत समझते हुए वे बाहर की तरफ़ भागे।

जिस नये निशानेबाज़ जवान की कपूरे ने बंदूक़ समेत मकान के पिछवाड़े ड्यूटी लगाई थी उसने हड़बड़ाहट में ये गोलियां चला दी थीं। हुआ यह कि आंधी के जोर से मनछटी और झाड़ के ढेर हिलने डुलने लगे और लुढ़कते हुए उसकी तरफ बढ़े और उसने घबराहट में न जाने क्या समझ कर एक के बाद एक तीन गोलियां चलाईं।

इसी बीच गांव के अलग-अलग छोरों से खतरे की आवाजें उठीं। चर्खड़ियों वाले कुएं की तरफ से एली-एली की आवाजें आने लगीं। जिसका मतलब यह था कि उनके साथी उन्हें खतरे से आगाह कर रहे हैं।

अब उन्होंने मेलो को आगे लगाया और सरपट भागे।

चर्खड़ियों वाले कुएं तक पहुंचे तो वहां अंधाधुंध लाठियां चल रही थीं। गांव के मनचले भी जल्दी में जैसा हथियार मिला, लेकर मुक़ाबले पर आन डटे थे। लेकिन अंधेरा और आंधी ने उन्हें कुछ करने न दिया।

उधर बग्गो के सधाये हुए साथी गांव वालों से कंधों से कंधों भिड़ाते हुए बड़ी सफ़ाई के साथ इधर-उधर बिखर गये और सुरक्षित निकल गये।

इतने में कपूरे को अपनी काली घोड़ी दिखाई दी। वह फ़ौरन फलांग कर उसकी पीठ पर सवार हो गया।

उसका खयाल था कि जब वह अपनी मुंहजोर घोड़ी को एड़ देगा तो वह गांव की भीड़ को काई की तरह चीरती हुई निकल जायेगी। लेकिन ऐन उस वक़्त बिजली चमकी तो गांव वालों में से कुछ ने उसे पहचान लिया और आंधी के भयानक शोर में 'काला तित्तर' 'काला तित्तर' की वहशियाना आवाजें घुल मिल गयीं।

एड़ दिये जाने पर घोड़ी सिमट कर जो उछली तो गांव के मनचले जवान ने उसकी लगाम पर झपट्टा मारा। इस पर घोड़ी हिनहिनाकर पिछले पैरों पर खड़ी हो गयी। उसकी अंखड़ियां फट गयीं, कान फड़फड़ाये और अयाल लहराई। सवार ने होंट काट कर अपने लम्बे दस्ते वाली कुल्हाड़ी ऊपर उठाई। लेकिन घोड़ी के अगले पांव ज़मीन पर लगने भी न पाये थे कि एक छवी चमकी और कपूरे के पेट की आतें उधेड़ती हुई उन्हें पेट से बाहर ले आयी।

वह बड़े मगरमच्छ की तरह बल खाकर औंधे मुंह ज़मीन पर गिर पड़ा। पेट से खून का फव्वारा छूटा और पल भर में ज़मीन उसके गाढ़े खून से सुर्ख़ हो गयी।

फिर बारिश की मोटी-मोटी बूंदे गिरने लगीं।

गुमराह

सुबह के वक़्त मैं हजामत बना रहा था।

सामने बड़ा-सा आईना, हाथ में सेफ़्टी रेज़र और चेहरे पर साबुन का झाग। कौन नहीं जानता कि ऐसे मौक़े पर चेहरा कैसी-कैसी सूरतें अख़्तियार करता है। तभी मेरा मुंह का दहाना एक विशेष ढंग से खुला तो मेरा सेफ़्टी रेज़र वाला हाथ रुक गया। अपने मुंह का खुला हुआ दहाना देखकर किसी बात की याद ताज़ा हो गयी।

ख़ुदाया! क्या बात थी वह!

कुछ क्षणों तक मेरा मस्तिष्क अजीब उलझन में फंसा रहा। मेरे मुंह के इस ढंग से खुलने का किसी घटना से सम्बन्ध था।.....वह घटना क्या थी?

धीरे-धीरे मन के धुंधलके में मुझे एक और खुला हुआ मुंह नजर आने लगा। वह चेहरा मुझसे ज़्यादा उम्र का था। नाक पिलपिली-सी, बाछों के दोनों ओर झाड़-झंखाड़ की भांति पीतिमायुक्त सफेद मूंछें लटक रही थीं। मुंह में दांत हाज़िर कम ग़ायब ज़्यादा थे। यह मास्टर जानकी दास जी का चेहरा था। पिछली शाम मैंने जब उनका मुंह इस ढंग से खुला देखा तो किस्सा अलीबाबा में चालीस चोरों के ग़ार का नक़्शा खिंच गया। मेरे सामने उनका मुंह इस ढंग से तीसरी बार खुला था।

मिस्टर जानकीदास मुझसे छह-सात बरस बड़े होंगे। वह किताबों का कीड़ा था, मैं फाइलों का। उम्र में ज़्यादा अंतर नहीं था और न मेरा जीवन कष्ट मुक्त था। फिर भी उनका चेहरा ज्यादा थका हुआ बूढ़ा दिखाई देता था। शायद आर्थिक दृष्टि से जानकीदास की दशा मुझसे ज्यादा खराब थी। लेकिन यह विषय कभी चर्चा के बीच नहीं आया। एक महल्ले में रहते हुए भी मैं उनके बारे में इतना ही जानता था कि वह रमेश के क्लास टीचर थे। और वे केवल इतना जानते थे कि मैं उनके इस शिष्य का पिता हूं। मास्टर जानकीदास ने पिछली शाम मुझे तीसरी बार सूचना दी थी कि रमेश स्कूल से अक्सर ग़ैर हाज़िर रहता है। व्यस्तता के कारण मैं इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दे सका था । मास्टर जी ने इसे मेरी उदासीनता समझा। अतएव तीसरी बार यह शिकायत करने के बाद आखिर में उन्होंने मुंह इसी विशेष ढंग से खोलकर मानो कि मुझे सचेत किया, ''जनाब अगर यही हालत रही तो आपका बेटा गुमराह हो जायेगा।''

उन्होंने 'गुम' और 'राह' पर अलग-अलग ज़ोर दिया। इन शब्दों को कहते हुए उनके चेहरे पर पीड़ा के भाव उभर आये। बात समाप्त करने के बाद भी उनका मुंह ज्यों का त्यों खुला रहा। मुझे महसूस हुआ कि जब मुझे संभावित त्रासदी की गंभीरता का तीव्रता के साथ अहसास न हो जाये तब तक मास्टर जी अपने खुले हुए मुंह को बंद नहीं करेंगे। लेकिन मुझे उनकी शक्ल हास्यास्पद-सी लगी।.....यही महसूस हुआ कि समस्या उतनी गंभीर नहीं थी जितनी कि वे अपनी सूरत से ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहे थे।

कल शाम और आज फिर मुझे महसूस हुआ कि 'गुमराह' शब्द कितना भारी था। यह बात मैंने अपनी पत्नी से कही। उसने मुझे सहमति व्यक्त नहीं की। उसका विचार था कि मास्टर जी की शिकायत उचित थी। 'गुमराह' शब्द का इस्तेमाल भी उचित था। यहां तक कि मुझे इस ओर जल्द से जल्द ध्यान देना चाहिये।

आइने में अपनी सूरत को खुद मैंने डांटते हुए कहा, "अबे गधे कहीं के! सवाल यह नहीं था कि 'गुमराह' शब्द ज़रूरत से ज़्यादा भारी भरकम था या नहीं, बल्कि सवाल लड़के के भविष्य का था। संतान के पथभ्रष्ट होने का परिणाम मां-बाप को भी भुगतना पड़ता है।"

शेव के बाद नहाते समय मैंने निश्चय कर लिया कि इस बात की खोज करूंगा कि रमेश स्कूल की बजाय कहां जाता है। नाश्ते के बाद मैं दफ्तर को चला तो संयोग से रमेश किताबों का बैग कंधे पर लटकाये जाता नजर आया। कुछ दूर तक हम इसी तरह आगे-पीछे चलते रहे। फिर स्कूल की तरफ जाने की बजाय वह एक दूसरी सड़क पर हो लिया।

सुनी-सुनाई बातों से मैं ज़्यादा प्रभावित नहीं हुआ। लेकिन अपनी आंखों से साहबज़ादे की यह हरकत देखकर मैं क्रोधित हो उठा। अतएव मैं दफ्तर का रास्ता छोड़कर उसके पीछे-पीछे हो लिया।

सड़क से हटकर शीशम के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के नीचे बाजीगर करतब दिखा रहे थे। लम्बे-लम्बे बांसों की दो कैंचियों के बीच एक भारी-सा रस्सा तना हुआ था। बायें सिरे पर काले रंग की एक औरत महाराष्ट्री ढंग से साड़ी पहने हुए खड़ी थी। उसके दुबले-पतले चेहरे की तुलना में उसका शरीर भरा-भरा दिखाई दे रहा था। सुडौल पिंडलियां दमक रही थीं। उसने एक बड़ा-सा थाल रस्से पर टिकाया और उसमें दोनों पांव जमाकर खड़ी हो गयी। हाथों में लम्बा-सा बांस थाम लिया। संतुलन बनाये रखते हुए उसने उछल-उछल कर थाल समेत आगे बढ़ना शुरू किया। तमाशाई दम साधे हुए खड़े थे। एक बाज़ीगर नीचे खड़ा ज़ोर-ज़ोर से थाली बजा रहा था। धीरे-धीरे वह औरत रस्सा पार करके दूसरे सिरे पर पहुंच गयी। वातावरण तालियों से गूंज उठा। क्षण भर के लिए मेरा ध्यान रमेश से हट गया। घड़ी पर नज़र डाली, दस बजने में आठ मिनट

शेष थे। सोचा, अब रमेश को कान पकड़कर स्कूल को जाने वाले रास्ते पर डाल दूं। निगाह उठाई तो रमेश अपनी जगह मौजूद नहीं था......क्या उसने मुझे देख लिया था?

नहीं! वह चालीस-पचास कदम के फासले पर बड़ी निश्चिंतता से चला जा रहा था। अगर उसे मेरी मौजूदगी की जानकारी होती तो इतनी बेपरवाई से मटरगश्त करता हुआ न चलता। पहले आवाज़ देने की सोची। फिर यह इरादा बदल दिया कि शायद वह किसी दूसरे रास्ते से स्कूल की ओर मुड़ जाये।

मेरा अनुमान ग़लत निकला, वह शहर के बाहर की ओर जा रहा था।

हमारे शहर के बाहर कोठियों और बंगलों वाला इलाका बड़ा ही मनोरम था। उससे परे हरी-भरी पहाड़ियां नज़र आती थीं। उन पहाड़ियों से भी आगे ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की बर्फ से ढंकी चोटियां, नीले-नीले धुएं में तैरती हुई-सी लगती थीं। ज़्यादातर बंगलों के चारों ओर हरी-भरी बाड़ें मौजूद थीं। उनके अंदर लीची और आमों के पेड़ और इनके साथ-साथ फूलों की क्यारियां नजर आती थीं।

रमेश उन तंग लेकिन साफ-सुथरी पक्की सड़कों पर बढ़ता चला जा रहा था। अब साढ़े दस बजने को थे। मैं भी दफ्तर न पहुंच सका। बेटे का इस तरह मटरगश्त करना मुझे बड़ा रहस्यपूर्ण लग रहा था। मैं मशहूर जासूस जेम्सबांड (007) की तरह कदम नापता हुआ उसका पीछा कर रहा था। लेकिन मैं जानना चाहता था कि वह क्या करता है? किससे मिलता है? कहा है उसकी मंज़िल?

वह लाल-पीली धारियों वाली कमीज़ पहने हुए था। पांव में बेडौल बूट और उनमें से भूरे रंग के छोटे-छोटे मोजे बाहर झांक रहे थे। उसकी उम्र बाहर-तेरह बरस की थी। नेकर के ओछे पायचों में से उसकी दुबली-पतली जांघें, नीचे मोटे घुटने और पतली-सी पिंडलियां नज़र आ रही थीं। दर अस्ल उसका बदन बिल्कुल हड्डियों का ढांचा नहीं था। अलबत्ता उसकी हड्डियां मोटी और क़द लम्बा होता जा रहा था। उसके कंधे फैले हुए और रीढ़ की हड्डी सीधी थी। सिर के झब्बे-से बाल फूले फूले-से थे। शायद हवा बालों में दाखिल होकर उन्हें गुब्बारे की तरह फुला रही थी।

उसने एक बार भी पीछे की ओर मुड़कर नहीं देखा। वह सीटी बजाता, कुछ बल खाता और लहराता हुआ बढ़ा जा रहा था। कभी-कभी रुककर पेड़ों पर बैठे हुए बंदरों और परिंदों को देखने लगता और फिर किसी पत्थर को बूट की ठोकर मार कर आगे बढ़ जाता। सूअर का बच्चा! भला वह जाने कि उसके ये बूट खरीदने के लिए उसके बाप को सुबह से शाम तक दफ्तर में फायलों से कितना माथा फोड़ना पड़ता है।

पेड़ों के नीचे नर्म घास पर अब भी ओस की नन्हीं-नन्हीं बूंदें चमक रही थीं।

दूर से बरसाती नदी का खूब चौड़ा पाट नजर आने लगा था। नदी के उस पार चाय के बागात और चीड़ के जंगल थे। आसमान पर बदलियां जमा हो रही थीं। यों

लगता था जैसे नीले, पीले, हरे, गुलाबी, ऊदे और न जाने कैसे-कैसे रंग के परिधानों में सुशोभित परियों का मेला लगने वाला था।

युग बीत गये। मैं भी कभी लड़कपन में इधर मटरगश्त के लिए आया करता था।

आगे सपेरों का डेरा लगा हुआ था। उनके फटे-पुराने तम्बुओं के आसपास अनगिनत कपड़े जो धुलने के बाद और भी गंदे लग रहे थे, सूखने के लिए या तो घास पर बिछा दिये गये थे या झाड़ियों पर लटका दिये गये थे। रूखे-सूखे बालों और लटकी-लटकी मूंछों वाले सपेरे बेदिली से इधर-उधर घूम फिर रहे थे।

रमेश उनके डेरों के पास पहुंचा तो पांच-छह कुत्ते बड़े ज़ोर-शोर से भौंकते हुए उसकी तरफ लपके। मैं डरा कि कहीं उसकी टांगें न नोंच डालें। मगर नज़दीक पहुंचते ही कुत्ते चुप हो गये और दुमें हिलाने लगे। इसका मतलब था कि वे हज़रत को पहचानते थे।

सपेरों के लड़के-बाले दौड़ते हुए आये और उसे घेर कर खड़े हो गये। मैं परे पेड़ की ओट से यह तमाशा देखता रहा। न जाने बच्चों के बीच क्या बातें होती हैं। फिर देखता क्या हूं कि एक लड़के ने चार-पांच सांप रमेश के गले में डाल दिये। मेरा कलेजा धक् से होकर रह गया। स्वयं पर नियंत्रण न रख पाने की स्थिति में एक क़दम आगे बढ़ गया। लेकिन बेटे को इत्मीनान से हंसते देखकर मैं फिर पेड़ की ओट में हो गया। दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कता रहा। आखिर सांपों का क्या भरोसा! धीरे-धीरे सांप उसके गले से सरक कर बदन पर आ गये और फिर बल खाकर घास पर लहराने लगे।

दस मिनट इसी क़िस्म के चुहलों के बाद रमेश.....रमता जोगी आगे नहर की तरफ़ बढ़ गया।

छोटी-सी नहर थी, बमुश्किल चार-साढ़े चार फुट चौड़ी और डेढ़ फुट गहरी। दोनों किनारों पर तंग पटरियां । पानी की चादर के साथ-साथ एक अंगुल से बालिश्त भर ऊंची घास का गोया जंगल-सा खड़ा था। जिसमें पीपरमिंट और ब्राह्मी बूटी के पौदे भी मौजूद थे। यह नहर बरसाती नदी के इस पार से पुल बनाती हुई उधर पहुंचती है। पहले सात फुट ऊंची झाल के आकार में नीचे गिरती और फिर मधुर गीत की तरह सम्हल-सम्हल कर बह निकली।

उस समय कुछ बंगाली और गवानी कुछ-कुछ फासले पर केकड़ों की ताक में नहर के किनारे बैठे थे। हाथ में लम्बी मजबूत छड़ी, जिसके साथ बंधी हुई डोरी का दूसरा सिरा केंचुए का चारा सम्हाले पानी में डूबा हुआ। कभी-कभी गुड़ाप की आवाज सुनाई देती। छड़ी एक झटके के साथ पीछे को हटती, डोरी चाबुक की तरह झटका खाती और एक केकड़ा बाहर आ गिरता-गिरते ही वह पानी की तरफ भागता......लेकिन शिकारी लकड़ी से उसकी टांगें तोड़-ताड़कर उसे थैले में डाल लेता।

रमेश पटरी पर बैठा यह तमाशा देख रहा थ। उसके चेहरे से ज़ाहिर होता था कि वह समझ नहीं पा रहा था कि केकड़े क्यूंकर बाहर आकर गिरते थे। फिर भी वह इस क़दर मगन था कि उसे मेरे पास पहुंच जाने की ख़बर तक नहीं हुई।......शहर से दूर घर की गहमागहमी से अलग-अलग शांत वातावरण में रमेश मुझे एक अजनबी-सा लग रहा था। उसकी कुछ बेडौल और निकलती हुई टांगें, गोल मटोल हाथ, सांवली लेकिन अंगूर की तरह खिली हुई गर्दन और जाफ़रानी रंग के नर्म-नर्म बाल!.....तभी मेरे मन ने मौन की भाषा में पुकार कर पूछा, "तुम कौन हो?"

उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में कितनी जिज्ञासा थी! वह वहां की हर चीज़ से प्रायः एकात्म हो चुका था। एक मैं था जो बरसों से दुनिया की हर चीज़ से उखड़ा-उखड़ा-सा महसूस कर रहा था। संघर्ष का नाम ही जीवन है, किस विद्वान ने उपदेश दिया था? और मैं दुनिया से लड़ते-लड़ते आखिरकार उदासीन हो कर रह गया था। लेकिन इस लड़के ने इन चीजों से, इस वातावरण से, इस घास-फूस से मित्रता कर ली थी। वह इनसे प्यार करता था और ये उसको चाहते थे, अपनाते थे।

तभी रमेश की नज़र मुझ पर पड़ी। मुझसे आंखें चार होते ही उसका चेहरा उतर गया। मुंह पर दहशत के साथ अजीब-सी मुर्दनी छा गयी।

उसकी यह हालत देखकर मैं खुद भी डर गया।.....क्या मैं इतना भयानक था?

रमेश को और कुछ नहीं सूझा तो उसने यों ही हाथ फैलाकर कहा,

"पया! ये लोग केकड़े पकड़ रहे हैं।"

दरअसल खुद उसे इस बात का अहसास नहीं था कि वह क्या और क्यों कर रहा था?

मैं भी पसर कर उसके पहलू में बैठ गया। और सवाल किया, "जानते हो कि केकड़े इनके हाथ लगते कैसे हैं?"

उसकी मोटी-मोटी आंखें जिज्ञासा के कारण और भी बड़ी हो गयीं। मैं विस्तार से उसे शिकार की बारीकियां समझाता रहा।

उसके स्कूल का जिक्र हुआ न मेरे दफ्तर का। न मैंने उससे पूछा कि वह वहां क्यों चला आया था और न उसे इस बात की परेशानी रही कि मैं वहां कैसे पहुंच गया था? कुछ मिनट में उसका सारा डर दूर हो गया। हम दो दोस्तों की तरह बेतकल्लुफी से इधर-उधर की हांकने लगे।

उसका जी भर गया तो वह उठकर खड़ा हुआ और नदी की तरफ हाथ फैलाकर बोला,

"आओ पया उस पार चलें।"

मैं तुरंत तैयार हो गया।

मीलों दूर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर बारिश हो चुकी थी। फिर भी नदी भर नहीं सकी। मटियाले पानी के चौड़े-चौड़े निशान साफ-साफ दिखाई दे रहे थे। किनारे पर पहुंचे तो वह अपने बूटों के तस्मे खोलने लगा। मैंने उसे रोककर कहा, "नहीं बेटे! पांव और टांगें भीग जाने से तुम्हें जुकाम हो जायेगा।"

कम से कम मेरे दिल में यही डर बैठा हुआ था। मुझे अपने पम्प शू उतारने मे देर नहीं लगी। मैंने उसे अपनी पीठ पर बिठा लिया उसकी दोनों टांगों को बाजुओं में समेट लिया। उसने मेरे पम्प शू हाथों में लेकर बाहें मेरे गले में डाल दीं। इस तरह मैं अपने शू के चमड़े की गंध सूंघता हुआ नदी पार करने लगा।

उसकी झिझक बिलकुल दूर हो चुकी थी। वह तोते की तरह बोले जा रहा था, "पया! नदी के उस पार एक बूढ़ा लकड़हारा रहता है। वह सारे दिन कुल्हाड़े से लकड़ियों फाड़ता रहता है।.....पया! वहां एक स्वामी जी भी हैं.....जटाधारी, और पया! चाय के बाग के पास सिखों का गुरुद्वारा है। जहां हलवा खाने को मिलता है, कड़ाह प्रसाद कहते हैं उसे....."

नदी पार लकड़हारा तो दिखाई नहीं दिया, अलबत्ता स्वामी जी मौजूद थे। उनकी आंखों में तेज था। जिसे देखकर मन को शांति मिलती थी। हम दोनों को एक साथ देखकर उन्होंने पूछा,

"यह आपका बेटा है।"

"जी! स्वामी जी!'

"बड़ा सयाना और भोला लड़का है, बड़ा होकर आपका नाम रोशन करेगा।"

उनकी इस औपचारिक बात से मुझे बेहद खुशी हुई और स्कूल से भागे हुए बेटे पर गर्व-सा महसूस होने लगा।

गुरुद्वारे से आते हुए दाढ़ियों वाले सिखों को देखकर यों लगा जैसे दूर-दराज़ हिमालय की गुफाओं में से साधु-महात्मा कमीज़ और पतलून पहनकर अचानक हमारे संसार में आ गये हों।

अब हम चाय के बागों में पहुंच चुके थे। बीचो-बीच गहराई में वही नदी सोयी हुई-सी बह रही थी। दायें-बायें चाय के बेशुमार पौदे थे। कहीं-कहीं चीड, देवदार और सफेदे के पेड़ भी नजर आ रहे थे। लम्बी-लम्बी टोकरियां पीठ पर टिकाये पहाड़ी लड़कियां चाय की पतियां तोड़ रही थीं। उनके कानों से चांदी की खूब बड़ी-बड़ी बालियां लटक रही थीं। वे लड़कियां भी रमेश को चाहती थीं। जो भी उसे देखती, मुस्कुरा देती।

हमें छोटे-छोटे बरसाती नालों से भी गुज़रना पड़ा। बाग़ ख़त्म हुए तो खेत शुरू हो गये। वही नहर इन खेतों में से होकर गुज़र रही थी। कहीं-कहीं झोंपड़े भी बिखरे हुए

थे। उन्हीं में से एक झोंपड़े में रहने वाली तीस-बत्तीस साला किसान औरत रमेश को देखकर हंस दी, "बहुत दिनों बाद आये।"

रमेश ने लाड़ से मेरे गले में बाहें डालकर कहा, "आज पया भी मेरे साथ हैं।"

औरत लजा गयी। शायद वह समझी कि मैं उसे विशेष रूप से देखने के लिए आया था। मैंने उसकी बेचैनी दूर करने के लिए इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं। रमेश की यह सीधी-सादी मौसी हमें कुछ खिलाने पिलाने का आग्रह करने लगी तो मैं बड़ी मुश्किल से क्षमा मांगकर आगे बढ़ गया। आध मील आगे जाकर हमने वे पराठे खाये जो रमेश स्कूल ले जाया करता था।

रमेश रास्ते भर अपने किस्से सुनाता रहा। यहां तक कि हम दीनापुर के क़स्बे में पहुंच गये। यहां से शहर को जाने वाली बसें मिल जाया करती थीं। चार बज चुके थे। आसमान पर छायी घटा यकायक बरस पड़ी। हमने कस्बे की एक दुकान में शरण ली। भूख फिर चमक आयी थी। दुकान से भुने हुए चने और अंदरखी (चटपागड़) खाकर पेट की भूख कुछ कम की। गर्म-गर्म चाय के दो प्याले लेकर हम चुस्कियां भरने लगे। मैंने सिगरेट मुंह में दबाया। उसे माचिस दिखाते हुए धुआं उड़ाते हुए बोला, "बेटा मैं सिगरेट पीता हूं लेकिन यह बुरी आदत है।"

रमेश बोला, "हां, पया! अच्छे आदमी सिगरेट नहीं पीते।"

यह कहते ही उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। तुरंत संशोधन करके बोला, "पया! अच्छे लड़के सिगरेट नहीं पीते।"

उसके अवसरानुकूल संशोधन पर मैंने हाथ बढ़ाया और उसके नर्म घने बालों में उंगलियां उलझा दीं।

सारा दिन रमेश को स्कूल से न भागने की नसीहत करने की सोचता रहा। लेकिन ऐसा करने को जी नहीं चाहा। आखिर तय किया कि फिर कभी सही।

तेज़ बारिश में भीगी हुई कुछ जवान-जहान लड़कियां बारह सिंहों की तरह कुलांचे भरती हुई उधर से गुजरीं। मुझ पर नज़र पड़ी तो रुख़ फेर लिया। मैं बदमज़ा नहीं हुआ क्योंकि वे मेरे मासूम बेटे को कनखियों से देख-देख कर मुस्कुराती रहीं।

आख़िरकर पानी थम गया। हम अड्डे पर पहुंचे और टिकट कटाकर बस में पहुंच गये।

शहर में पहुचे तो बादलों के कारण समय से पहले अंधेरा गहरा हो गया। सड़कें और हमारे महल्ले की गालियां भी भीगी-भीगी थीं। घर पहुंचे तो देखा कि मेरी पत्नी व्याकुल अवस्था में दरवाज़े पर खड़ी थी। रमेश आगे-आगे था। मां की नज़र अपने बेटे पर पड़ी तो चिल्लाकर बोली, "अरे कहां था। अब तक मैंने सारा महल्ला छान मारा....."

रमेश मां की डांट खाकर पलटा और मेरी ओट में हो गया। मैंने पत्नी से कहा, "इसे क्या कहती हो, यह मेरे साथ था सारे दिन।"

वह आंखें निकाल कर बोली, "ओ हो, पहले तो बेटा ही भागा करता था अब आप भी दफ्तर से भागने लगे?"

महल्ले के बाबू गोपीनाथ मेरे ही दफ़्तर में काम करते थे। उन्हीं की जुबानी मेरी ग़ैर हाज़िरी का पता चल गया होगा।

हम, बाप-बेटा, बैठक में चले गये। बाहर सेहन में पत्नी कुछ देर चिल्लाती रही। उसका गुस्सा भी बेजा नहीं था। आज बाप-बेटा दोनों ही सारा दिन ग़ायब रहे।

सहमा हुआ रमेश मेरी गोदी में बैठा रहा। लेकिन इस अंदाज़ से जैसे वह मुझे गोद में ले लेना चाहता हो। वह इस बात को शिद्दत से महसूस कर रहा था कि उसी के कारण मुझे भी डांट पड़ रही है। न जाने कितने लम्बे अर्से के बाद वह मेरी गोद में बैठा मुझे बड़ी अजीब नज़रों से देख रहा था। शायद मेरे मन में सोये हुए बचपन के जाग जाने से उसके भीतर काल्पनिक पिता का दुलार जाग उठा था। उसे और कुछ नहीं सूझा तो अपनी पतली-पतली बाहें मेरे गले में डालकर मुझसे लिपट गया और फिर कुछ क्षणों के बाद ज़रा पीछे हट कर बोला, "पया! मैं आपके कमरे में बैठ कर पढ़ा करूंगा।.....ठीक है ना?"

कई महीने बीत गये। अब वह बाक़ायदा स्कूल जाने लगा था। स्कूल से ग़ैर हाज़िर रहने पर उसे मास्टर जी और उसकी मां ने कई बार डांटा था। उस पर असर न हुआ। लेकिन जब उसके कारण मुझे भी डांट पड़ी तो वह बहुत प्रभावित हुआ।......उस रोज़ से वह हर रात मेरे कमरे में पढ़ता है। मास्टर जी खुश हैं। उसकी मां खुश है। और मैं......

पहले-पहल मुझे भी गहरी खुशी का अहसास हुआ था। क्योंकि मेरी डांट के बिना वह सुधर गया था।......लेकिन धीरे-धीरे......

रात के नौ बजे हैं......बारिश हो रही है। कभी-कभी खिड़की में से बिजली चमकती दिखाई दे जाती है। रमेश पढ़ाई में डूबा हुआ है। उसकी मां निश्चिंतता से बुनाई का काम कर रही है। अलबत्ता मैं अनमना हूं। मेरा जी चाहता है कि रमेश एक बार फिर स्कूल से और मैं दफ्तर से भागकर, सारी दुनिया को ठेंगा दिखाकर, उसी दिन की तरह आवारागर्दी करें......यह बात उससे कह नहीं सकता। दिल की घुटन बढ़ती जा रही है.......पहले वह गुमराह था, अब मैं गुमराह हो रहा हूं।

सोचता हूं कि मेरा बेटा सुबह के उजाले में सीधा रास्ता भूल गया था, इसलिए लौट आया......जो रात के अंधेरे में रास्ता भूल जाये वह कैसे लौट सकेगा?

नहीं, मैं कभी वापस नहीं लौट सकूंगा। मैं हमेशा गुमराह रहूंगा।

निहालचंद

हालांकि मैंने पुरानी किताबों की दुकान इसलिए बंद कर दी थी कि उसकी आमदनी बहुत कम थी और लोग पुरानी किताबों की दुकान को ज़्यादा वक़्त देने को तैयार न थे। लेकिन असल बात एक ही थी। जिसके कारण मैं एकाग्रता के साथ काम नहीं कर पाता था और वह थी मेरे मन की स्वच्छंदता।

मैंने कई तरह के धंधे अपनाये लेकिन कुछ अर्से के बाद छोड़ दिये। कश्मीर का आकर्षण श्रीनगर ले गया। वहां बड़े ज़ोर-शोर से पुरानी नायाब किताबों का कारोबार शुरू किया। कश्मीर की जी भर कर सैर की। लेकिन एक नयी उम्र के व्यक्ति को जिस चीज़ की तृष्णा होती है वह वहां इतनी सस्ती न थी। इसलिए मन जल्दी ही उचाट हो गया और कारोबार बंद करके वापस लाहौर जाने की ठानी।

गुलमर्ग में बर्फ़ गिरनी शुरू हो गयी थी। इस डर से कि कहीं बर्फ़ और ज़्यादा न पड़ने लगे और रास्ता बंद हो जाने के कारण लाहौर पहुंचने से ही रह जाऊं। मैंने दुकान का सामान औने-पौने में बेचा और एक सुहानी सुबह को लारी में सवार होकर शाम को रावल पिंडी पहुंचा और वहां एक रात काट कर दूसरी शाम लाहौर जा उतरा।

पिता की मृत्यु हो चुकी थी। अब बड़े भाई ही परिवार के मुखिया थे। शाम को मैं घर पहुंचा तो उन्हें मौजूद न पाया। माता जी मुझे देखकर बेहद खुश हुईं। उन्होंने मेरी बलाएं लीं और पराठे पकवा कर खिलवाये। भाभी-नाक भौं चढ़ाये मुंह से तो कुछ न कहती थीं अलबत्ता फ़र्श पर ज़ोर-ज़ोर से पांव मारती हुई घूमती रहतीं।

रात को भाई साहब आये और उन्होंने अपनी नाराज़ी छुपाने की तनिक भी कोशिश नहीं की.....''क्या अभी तक तू अपने-आपको दूध पीता बच्चा समझता है? अब तेरी उम्र बाईस बरस की हो चुकी। तू किसी काम के नज़दीक तक नहीं फटकता। मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आखिर तू है किस ख़याल में? तू समझता है कि मैं तुझे सारी उम्र घर बिठाये खिलाये जाऊंगा।'' और इसके बाद उन्होंने वह पुरानी कहावत दुहरा दी कि काम प्यारा होता है दाम प्यारा नहीं होता। ''मैं बाल बच्चेदार आदमी हूं और तुझे मालूम होना चाहिए कि बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, उनके खर्च बढ़ते जाते हैं लेकिन तेरे कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। अगर तू मेरी या माता जी और बहनों की

कुछ मदद नहीं कर सकता तो कम से कम अपना पेट तो पाल। अब तक तूने कम मज़े लूटे हैं। ज़रा पूछ तो माताजी से मैंने किस उम्र में काम शुरू किया था।'' और इस तरह भाई साहब बहुत देर तक बकते-झकते रहे। यहां तक कि मुझे नींद की झपकी-सी आने लगी। माताजी टांगों में दहकती हुई अंगीठी लिये बैठी थीं। ''अच्छा अब रहने दे बेटा। बिचारा थका मांदा आज ही तो आया है।''

इस पर भाई साहब और भड़क उठे, ''तो माताजी कौन-से पहाड़ फलांग कर आया है? एक तो आपके इस बेजा लाड़ ने इसे बिगाड़ दिया है।''

भाई साहब की कड़क सुनकर, घर की बिल्ली जो मजे से म्याऊं-म्याऊं कर रही थी बिदक कर भाग गयी। माताजी ने दबी जबान से कहा, ''बच्चा ही तो है ना! आप समझ जाएगा।''

इस बात पर भाई साहब का पारा और भी चढ़ गया। लेकिन मेरी आंखें बंद हुई जा रही थीं और उनकी बातों की आवाजें पल प्रतिपल मध्यम होने लगीं। जैसे वे कहीं दूर चले गये हों।

दूसरे रोज़ जो मेरी आंख खुली तो अच्छा-खासा दिन चढ़ आया था। मुझे खूब गहरी और मीठी नींद आयी थी। तबीयत बाग-बाग थी। धीरे-धीरे रात की बातें याद आने लगीं। इसलिए कि मैंने उन बातों से प्रभावित होने से असहमति व्यक्त कर दी थी। लेकिन अब जो उन बातों का ध्यान आया तो अचानक मेरा स्वाभिमान जाग उठा। यह नहीं कि भाई साहब को खरी-खरी सुनाऊं बल्कि यह कि आज कोई न कोई काम ढूंढ ही लूं और काम नहीं तो कम से कम कोई नौकरी-वौकरी ही कर लूं।

भाई साहब, भाभी, बच्चे-बहनें घर के सभी लोग बावर्ची खाने में बैठे थे। जब मैं जागा तो माता जी बिस्तर ही में मुझे चाय और मट्ठियां दे गयीं और हिदायत कर गयीं कि जब तक भाई साहब दफ्तर न चले जायें, मैं बावर्ची खाने में न जाऊं

मैं कपड़े पहनकर भाई साहब से पहले घर से निकल खड़ा हुआ। अब फिर अपना लाहौर था और वही जानी-पहचानी जगहें, बारौनक़ सड़कें, तांगों, मोटरों, साइकिलों की रेल-पेल। वही दुल्हन की तरह सजी हुई दुकानें। क़तार-दर-क़तार माल रोड के किनारे-किनारे.....

रास्ते में कोई न कोई परिचित मिल ही जाता था और दो-चार मिनट सड़क के किनारे खड़े होकर हलकी-फुलकी बातचीत हो जाती और फिर मैं आगे बढ़ जाता। इसी तरह घूमते-फिरते मैं राबिन रोड की तरफ जा निकला। इस जगह अब कुछ नयी दुकानें भी बन गयी थीं। मैं लगभग डेढ़ साल के बाद आया था। इसलिए मुझे तो इस जगह का नक़्शा ही नया नज़र आने लगा। यहां मेरे एक पुराने परिचित निहालचंद की फोटोग्राफी की दुकान थी। निहालचंद की उम्र पचपन बरस पार कर चुकी थी। बाल लगभग सब के सब सफेद हो चुके थे। रंग सुर्ख व सफेद था। लम्बी-लम्बी मूंछें,

तेज़ चमकती हुई आंखें, इकहरा बदन और छोटा क़द—यह थे निहालचंद। इनके स्वभाव पर उम्र और ज़िंदगी के झमेलों का कोई असर नहीं पड़ा था। मुझे अच्छी तरह याद था कि जब कभी उनसे मिलने का संयोग हुआ, उन्हें हमेशा प्रसन्नचित्त पाया। उस व्यक्ति से मेरे गहरे संबंध कभी नहीं रहे थे। अलबत्ता हम एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित ज़रूर थे। मुझे यक़ीन था कि अगर वह मुझे देख पाये तो ज़रूर खुश होगा। बड़े मज़े का आदमी था, सोचा, उससे मिलता चलूं।

जब मैं उसकी दुकान के क़रीब पहुंचा तो देखा कि हज़रत अपनी आदत के मुताबिक दुकान के चबूतरे पर पांव के बल उकड़ू बैठे गन्ना चूस रहे थे। मैं करीब पहुंचा तो उम्मीद के मुताबिक़ उसने फ़ौरन मुझे पहचान लिया। बड़े तपाक से मिला और दुआ सलाम के बाद अपने पास ही चबूतरे पर बैठने का इशारा किया और जड़ की तरफ से गन्ने का बालिश्त भर टुकड़ा मुझे दिखा कर खास अंदाज़ में हिलाते हुए कहा, " लो चूस लो ।" उसकी आंखों में शरारत की चमक थी। वह उम्र और रुत्बे का लिहाज रखे बिना हर किसी से बेतकल्लुफ़ हो जाता और फिर मज़ाक़ करने से भी न चूकता।

मैं उसके चेहरे का जायज़ा लेने लगा। डेढ़ बरस के अर्से में उसकी सूरत में कोई स्पष्ट अंतर नहीं आया था। वही थिरकती हुई भौंहें, चमकती हुई आंखें, फड़कते हुए होंट, बेचैन तबीयत, वही हंसी, वही ठठोल। मैंने उसे अपनी आवारगी की कुछ चटपटी घटनाएं सुनायीं और उसने उनमें कुछ ऐसी दिलचस्पी ली जैसी कोई मेरा हमउम्र दोस्त ले सकता था। बात-बात पर 'ला उस्ताद हाथ!'

आध-पौन घंटा इधर-उधर की बातों में बीत गया। फिर उसने पूछा, कहो बर्खुरदार! अब यह मटरगश्त कैसी?

मैंने जवाब दिया, "बस यूं ही घूमते-फिरते इधर आ निकला। आपको भूला नहीं था, सोचा दर्शन ही कर लूं।"

वह हंसा, "तो अब आगे क्या काम करने का इरादा है?"

मैं कुछ सोच में पड़ गया और फिर एक बात जो सूझी तो कहा, "काम-वाम क्या अब तो नौकरी करेंगे।"

"नौकरी कैसी?"

"कोई भी हो।"

"जैसे?"

"जैसे.....आप ही के यहां। आपको तो मालूम ही होगा कि मैं फ़ोटोग्राफ़ी का काम भी बहुत अच्छा जानता हूँ। याद है ना, वो मेरे हाथ के बने निगेटिव?"

उसकी भौंहें सिकुड़ गयीं। "ओ हां-हां.....मगर.....बात यह है कि मुझे तो मुलाज़िम की ज़रूरत ही नहीं है।"

यह कह कर वह अपनी ज़बान मुंह में घुमा कर उसे मसूढ़ों पर फेरने लगा। मैं जानता था। बूढ़ा भी एक ही घाघ है। शीशे में परी उतारना चाहता है मैं ख़ामोश रहा।

फिर उसने खुद ही मौन भंग करते हुए कहा, "खैर भई, अब तुम हो भी बेकार!.....और भई सच बात तो यह है कि मुझे भी तुमसे कुछ लगाव-सा हो गया है। कहो मानते हो कि नहीं.....। अच्छा यह तो बताओ लोगे क्या?"

मैंने कुछ रुक कर कहा, "बंदा परवर! चालीस पर मान जाऊंगा।"

वह हंस दिया, " देखो बर्खुरदार! यह चालीस-बालीस की बात तो है झूठ......क्या समझे.....कहो बीस पर काम करोगे?"

मैंने यह बात अस्वीकार कर दी।

"तो भई पच्चीस पर मान जाओ। हटाओ अब तुम्हें पच्चीस ही दे डालूंगा। जो हो, सो हो। आखिर तुम कौन पराये हो?"

"अरे साहब तौबा कीजिए। मैं चालीस से एक पाई भी कम न लूंगा।"

अब उसने अपने कंधों को हरकत देकर कहा, "तो भई तुम्हारी मर्जी।"

इसके बाद कुछ इधर-उधर की बातें होने लगीं जब मैं उठकर चलने लगा। तो उसने मेरी तनख्वाह तीस तक पहुंचा दी। लेकिन मैं न माना।

जब मैं वहां से लौटा तो रास्ते में इसी पर गौर करता रहा कि अगर वह चालीस तक मंजूर कर ले तो फिर कुछ न कुछ ऊपर की आमदनी भी हो सकती है। मेरा काम चल निकलता । हर महीने भाई साहब की हथेली पर भी कुछ रुपये रख देता तो वे खुश भी हो जाते और कभी आड़े वक़्त पर काम भी आते। इतना तो मैं जानता था कि भाई साहब भाभी की लगाई-बुझाई के बावजूद मुझसे प्रेम करते हैं और मेरी बेहतरी चाहते हैं।

सोचते-सोचते मुझे एक बड़े मज़े की चाल सूझी। उस वक़्त मेरे पास रुपये भी बहुत कम थे। लेकिन मैं अपनी तुच्छ पूंजी दांव पर लगाने को तैयार हो गया। अतएव मैं तत्काल माल रोड की तरफ चल दिया। वहां पहुंच कर मैं फग्गामल एण्ड संज की मशहूर फर्म के आगे रुक गया।

फग्गामल का लड़का मक्खन राम मेरा लंगोटिया यार था। इन लालों के नाम भी अजीब थे। बाप फग्गामल और बेटा मक्खन राम!

दो-तीन मैमें दुकान से बाहर निकल रही थीं। मैं उनकी चिकनी पिंडलियों को देखता हुआ उनके लिए रास्ता छोड़कर अलग खड़ा हो गया और जब वे चली गयीं तो मैं अंदर दाखिल हुआ। वही पुराना वातावरण था। जहां हम काउंटर के पीछे छुपकर ताश खेला करते थे। मेरी आंखें मक्खन राम को ढूंढ रही थीं और मक्खन राम बड़ी मेज़ के आगे कुर्सी पर बैठा हुआ था। उसने मुझे देखा तो मारे खुशी के हांपने लगा।

मक्खन राम बस मक्खन का पेड़ा ही तो था। मज़े में कुर्सी पर ढेर हो रहा था। उजले पिलपिले मांस का ढेर।

"अरे यार कहां? इतनी मुद्दत......" उसने अपनी बारीक आवाज़ में चीख़ कर पूछा। "आंखे तरस गयीं। तुमको टके का कार्ड भी तो नहीं भेजा।"

वह कितना पुलकित दिखाई दे रहा था। लेकिन उस रोज़ मुझे जीवन में पहली बार इस बात का अहसास हुआ कि हद से ज़्यादा मोटे आदमी को अपनी भावनाएं व्यक्त करने में कितनी कठिनाई होती है।

मुझे कुर्सी पर बिठाया गया। बड़े आग्रह से आइसक्रीम सोडा पिलाया गया और फिर पान का बीड़ा खिलाने के बाद हाथ में एक अदद आला किस्म का सिगरेट थमा दिया गया।

मैंने एक लम्बा कश लगाया और धुआं छोड़कर जो अलिफ लैला की दास्तान शुरू की......तो दो ढाई घंटे आंख झपकते में गुजर गये। आखिर मैंने अपना उद्देश्य स्पष्ट किया। राबिन रोड पर उसकी अपनी कई दुकानें मौजूद थीं मैंने सारी स्थिति स्पष्ट करके कहा कि मुझे अस्थायी तौर पर एक दुकान दिलवा दो।

उसने जवाब दिया कि यह काम फौरन हो जायेगा। दुकान मिल गयी।

मेरी दुकान सड़क के दूसरी ओर थी। लेकिन निहालचंद की दुकान से इस दुकान की दूरी पचास साठ क़दम थी। मैं अपनी दुकान से निहालचंद को दुकान में घुसते या बाहर निकलते बखूबी देख सकता था। उसके चेहरे का उतार-चढ़ाव न दिखाई देने के बावजूद उसकी हरकनों से अंदाज़ा लगा सकता था कि उसके दिल पर क्या गुज़र रही है।

मैंने कपड़े के एक बहुत बड़े टुकड़े पर मोटे अक्षरों में यह इबारत लिखवाई– "यहां डेवलपिंग मुफ्त की जाती है।" और उसे अपनी दुकान के आगे लगा दिया। घर से कुछ गिरी-पड़ी पुरानी फिल्में भी उठा लाया और उन्हें यों ही इधर-उधर लटका दिया। अपने यार दोस्त भी कई एक थे। उन्हें भी साज़िश में शामिल कर लिया और नतीजा यह कि मेरी दुकान में ग्राहकों का तांता-सा बंधा रहता। तीन-चार रोज़ ही यह तमाशा हुआ होगा कि एक दिन दोपहर के वक़्त लाला निहालचंद पीठ पर हाथ बांधे हौले-हौले मेरी दुकान पर आ पहुंचे। मैंने बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। कुर्सी पर बिठाया। पान मंगवाया......सूरत से मालूम होता था कि वे काफी डरे हुए से हैं।

"कहो भाई, यह क्या तमाशा है?"

मैंने विनम्रता से सिर झुकाकर कहा, " बस साहब सोचा कुछ करना तो है ही......चलो दुकान ही खोल डालें अपनी......"वह चुपचाप मुंह हिलाता रहा और यों ही हवा में घूर-घूर कर देखने लगा।

उसने पीक थूक कर मुंह पोंछते हुए कहा, "और भई, वो नौकरी करने का जो इरादा था तुम्हारा......"

"अजी झाड़ू मारो नौकरी-वौकरी पर। मैं बाज़ आया......।"

अब निहालचंद ने जबड़े हिला-हिलाकर मसूढ़ों पर चिपके हुए लबदे को हटाया लेकिन सूरत से ज़ाहिर था कि गहरी सोच में था और फिर कुछ खांसकर हलक साफ करते हूए बोला, "देखो बखुर्रदार! नये सिरे से काम चलाना कोई खाला जी का घर नहीं है, क्या समझे! और भई यह तो कहो कि मेरी दुकान को तुमने पराई समझा......क्या तुम्हारी खोपड़ी में कौड़ी भर गूदा भी नहीं है?

अगर तनख्वाह ही की बात थी तो मुझसे कहा होता......अच्छा जो हुआ सो हुआ......चलो तुम जीते मैं हारा।......अब तुम्हारी बात ही रहे"

मैंने जी ही जी में खुश होकर चेहरे पर गंभीरता ओढ़ते हुए कहा, "देखिए हुजूर......अब वे दिन हवा हुए क्या समझे आप!.....मैं और चालीस पर मान जाऊं, तौबा, बंदा तो अब नौकरी करने पर तैयार ही नहीं है।"

निहालचंद ने भौंहें सिकोड़कर मेरी तरफ देखा "अच्छा......बनने लगे अब......!"

"नहीं......यह सच है। अपने काम की बात ही कुछ और है......मैं गवर्नमेंट कालेज में गया था। वहां सब लोग मेरे जानकार हैं। प्रोफेसर प्रेमचंद चोपड़ा कहते थे कि आयंदा सारा काम तुम्हीं को दिया करेंगे। दयालसिंह कालेज में भी तीर निशाने पर बैठा है! और हां। एस.डी. कालेज भी गया था।" इस बात पर वह चौंका। मुझे याद था कि जब मैं पहले दिन उसे मिलने के लिए उसके यहां गया था तो एस. डी. कालेज के कुछ छात्र उसके यहां आये हुए थे और उसके ढीलेपन की शिकायत कर रहे थे। अतएव मैंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "तो लड़कों के सेक्रेटरी ने कहा, निहालचंद बहुत सुस्त आदमी है। उसका काम तसल्लीबख्श नहीं है इसलिए हम सारा काम आयंदा तुम्हें ही दिया करेंगे......और तो और कल मुझसे मुक्ति फौज......वाली मैम साहब ने कहा कि निहालचंद खराब काम करता......आगे से हम तुमको देना मांगता......"

निहालचंद ने अब हथियार डाल दिये और आतंकित होकर बोला, "बर्खुरदार! जानता हूं तुमने मुझे परेशान करने के लिए यह दुकान खोली है। यह भी ठीक, तुम खुद तो काम किया करोगे, अलबत्ता मेरी चलती में रोड़ा अटका ही दोगे......अच्छा कहो तुम क्योंकर मेरी जान छोड़ोगे?"

मैंने अकिंचन अकिंचन बनते हुए कहा, "मैं तो आपका दास हूं.....ज्यादा लालच तो है नहीं। बस पचास रुपये पर मान जाऊंगा।"

इस पर हज़रत बुरी तरह तड़के, "यह सरासर चार सौ बीसी है......। चार सौ बीसी क्या आठ सौ चालीस है......याद रखना......यह कहा और मुट्ठियां कसकर मेरी ओर

देखा। मैं अदब में सिर झुकाये खड़ा था।.....फिर गुब्बारे में से जैसे हवा निकल जाये। ''अच्छा उस्ताद मान लिया तुम्हें। कल से काम शुरू कर दो।''

''इकरार नामा लिखा जायेगा।''

और जब वह लौटकर प्रसन्न भाव से जाने लगा तो मेरी कमर में हाथ डालकर बड़ी आत्मीयता जताते पूछने लगा, ''हां यार कहो तो वह मुक्ति फ़ौज की ढड्डो ने वाकई यह बात कही थी कि......निहालचंद खराब काम करता......और......आगे से हम तुमको देना मांगता ''

उसकी घनी भौंहों के नीचे उसकी चंचल आंखें चमक रही थीं।

दूसरे दिन से मैं उसके यहां नौकरी करने लगा। इकरारनामा लिखा गया और सावधानी के तौर पर उसमें एक शर्त मैंने यह भी शामिल करवा दी कि अगर उसने मुझे नौकरी से निकाल दिया तो एक माह की तनख्वाह ज्यादा देनी पड़ेगी।

उसकी दुकान में दो नौकर पहले ही से मौजूद थे। एक उसका शागिर्द और दूसरा प्रिंटर। प्रिंटर अधेड़ उम्र का आदमी था और उसके घर में कोई न कोई ज़रूर बीमार रहता था। इसलिए वह हमेशा बीमारियों और दवाओं के खर्च का रोना रोता रहता। निहालचंद का शागिर्द अजीब रूखी-सी तबीयत का एकांतप्रिय नौजवान था। उसका मुंह थौड़ा फूला हुआ सा था जैसे वह सब से रूठा हुआ हो।

दुकान का काम अजीब तरीके से चल रहा था। सामान इधर-उधर बिखरा हुआ, गर्द उड़ती हुई, दीवारों पर छिपकलियां मक्खियों पर झपटती हुई और कोनों में मकड़ियों के जाले लहराते हुए। दुकान में कभी फोटो का काग़ज़ न होता, कभी मसाला नदारद और कभी लोशन ख़त्म।

निहालचंद अपना काम चलाने के लिए असाधारण संघर्ष करता था। वह उसे बस चालू रखता था। उसने फोटोग्राफी में काम आने वाली चीजें कभी एक ही बार में लाकर नहीं रखीं। हाल यह था कि इधर काम आया पड़ा है, उधर छोकरे काग़ज़ के लिए भगाया जा रहा है।

दुकान में काम बिल्कुल ख़त्म हो जाने पर वह दो-ढाई घंटे के लिए दुकान से चला जाता। शहर के कालेजों और कोठियों के चक्कर लगाता और अंततः कुछ न कुछ काम ले ही आता। यह एक बिल्कुल अलग बात है कि अनेक बार बहुत ज़्यादा काम मिल ही जाता था और उसे खासी आमदनी हो जाती थी। मगर अपनी तरफ़ से उसने काम बढ़ाने के लिए ज़्यादा ज़ोर कभी नहीं लगाया। बल्कि अगर काम काफी मौजूद हो तो हर आदमी उसे हड़का सकता था। मसलन कोई दिन ऐसा है, कि जेब में पैसा नहीं, काम भी कम मिला है तो ग्राहक के तक़ाज़ा करने पर उसकी बातचीत के ढंग में दुनिया भर की मुलायमत जमा हो जाती थी ''बंदा परवर......! यह हाथ में थोड़ा-सा काम है। बस इसके बाद फौरन आप ही का काम शुरू किया जायेगा।

ग्राहक रूठकर कहता, ''देखिए ! आप मुझे बहुत परेशान करते हैं। परसों का वादा था। आपने काम करके नहीं दिया। कल आया आपने इनकार कर दिया......और फिर आज......''

''हुजूर......आज का क्या ज़िक्र है। आज तो अभी शुरू ही हुआ है। खत्म तो नहीं हो गया। रही परसों की बात सो आपको मालूम ही है उस रोज़ होली की छुट्टी थी और जनाब कल यों ही बादल घिरे रहे......अब देखिए सिर से बला टालने वाला काम तो हम करते नहीं। आप ही कहिए कि आसमान पर बादल छाये हों......''

''जी यह तो ठीक है लेकिन......लेकिन आपको ग्राहकों का भी ध्यान रखना चाहिए......''

''अरे आप ग्राहक हैं!'' यह कहकर अपने खास अंदाज में हंसने लगता, ''नहीं साहब, हम तो आपको ग्राहक नहीं समझते '' फिर मुझे वह आवाज़ देता, ''देखिए बाबू योगराज जी......ये हैं हमारे......अब क्या कहूं बस ग्राहक के सिवा कुछ भी समझ लो......हमारे करम फर्मा......और सुनिए कान खोलकर। आज इनका काम इन्हें मिल जाना चाहिए... क्या समझे? चाहे कुछ भी हो। गवर्नमेंट कालेज वालों का काम जहां तक किया है, बस वहीं छोड़ दो। कोई ज़रूरत नहीं उसके करने की, जब तक कि आपका काम ख़त्म न हो जाये!''

इस किस्म की चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर ग्राहक खुश हो जाता और निहालचंद मौके के हिसाब से अनेक बार ग्राहक की कमर में हाथ डाल लेता और कभी-कभी अदब से बार-बार सिर झुका लेता......और जी बंदा परवर......जी बंदा परवर की रट लगाये जाता।......यह किस्सा बस इसी जगह खत्म नहीं होता था बल्कि ग्राहक पर वह कुछ ऐसे डोरे डालता कि विदा होने से पहले वह दो-चार रुपये भी दे जाता।

जब कभी निहालचंद की जेब गर्म होती तो उसका रवैया बिल्कुल अलग होता था। ऐसे मौके पर जब ग्राहक आता, निहालचंद दुकान के चबूतरे पर अपनी तरंग में आंखें आधी खोले बैठा होता या गन्ना चूसने में व्यस्त होता या संगतरे की फांकें खाने में मगन......ग्राहक आता......

''हमारा काम हो गया? पहली बार सवाल होने पर वह प्रायः चुप रहता। दुबारा सवाल किये जरने पर खासा जवाब दे देता, ''अभी नहीं हुआ।''

''तो फिर?''

''बस हो जायेगा।''

''कब?''

इस पर वह कुछ गर्म होकर कहता, '' बस हो जायेगा। मैं लिखकर तो नहीं दे सकता कि कब हो जायेगा?''

इस पर ग्राहक शिकायतों की झड़ी लगा देता। लेकिन वह चुप ही रहता। ग्राहक पूछता, "तो फिर कब आऊं?"

"कह दिया ना......कल आ जाइएगा।"

"यह नामुमकिन है मुझे आज ही शाम चाहिये। वाह साहब यह भी खूब रही।"

इस पर वह चमक कर कहता, "बंदा परवर! हम भी इनसान हैं। जानवर या मशीन तो हैं नहीं। एक तो हमारे पास काम ज़्यादा और फिर सभी ग्राहक बेहतरीन काम करवाना चाहते हैं। इसके लिए तो कुछ वक़्त चाहिए। उन भाड़े के टट्टुओं की तरह नहीं कि बस अपना उल्लू सीधा करके बिचारे ग्राहक को चलता किया।"

इस पर ग्राहक सहम कर वापस चला जाता। वह रोज़ की आमदनी बिना नागा घर ले जाता और जहां तक मेरा ख़याल है वह कुछ भी पैसा जमा नहीं करता था। जो आया चट। खुद अव्वल तो वह ही बड़ा चटोरा था। सारा दिन मुंह हिलाये जाता और फिर घर में उसका जवान बेटा, जो कॉलेज में पढ़ता था, नई नवेली बहू और आठ माह की पोती, नौकर वगैरह—इधर दुकान के खर्च अलग थे, तीन नौकरों की तनख्वाहें, दुकान का किराया और बीसियों बखेड़े। इसलिए जाहिर है कि ऐसे खुले खर्च के बाद उसके पल्ले क्या पड़ता होगा? हर रोज़ जब दुकान पर आता तो जेब खाली—बिल्कुल बाइबिल की इस उक्ति के अनुसार कि "ऐ खुदा हमारी आज की रोटी आज हमें दे।" मगर था किस्मत का धनी। आम तौर पर हर रोज़ उसे एक अच्छी खासी रक़म मिल जाती थी। आमदनी के कमोबेश होने के साथ-साथ उसका रवैया न केवल ग्राहकों से बदल जाता था बल्कि घर वालों से बर्ताव में भी फ़र्क़ आ जाता था।

उसके घरेलू नौकर का रोज़ का नियम था कि वह हर शाम को बीबी जी यानी बुड्ढे की बहू के आदेशानुसार दुकान पर निहालचंद से यह पूछने के लिए आता कि रात को खाने के लिए क्या चीज पकाई जाये।

अगर उसकी जेब में खूब-सी रकम होती तो दूर ही से नौकर को आता देखकर उसकी बाछें खिल जातीं। गालों पर लाली छलकने लगती। नौकर पास पहुँचता तो इससे पहले कि वह कुछ कहे, वह खुद ही हंस कर कहता, सुना अबे मंडू! आज तू इतना खुश कयों हैं बे।"

नौकर तेरह-चौदह वर्ष का लड़का ही था लेकिन बड़ा चलता-पुर्ज़ा। निहालचंद को खुश देखकर वह खुद भी खूब दांत निकल कर हंसता

"जी कुछ भी नहीं।"

"अबे कुछ नहीं के बच्चे, झूठ मत बोल। बता कोई लौंडिया तो नहीं फंसा ली। और अब तो साले तेरी चटकीली कला भी आ गयी......। जब वह ननिहाल गयी थी तो सूअर ऐसा रोया, ऐसा रोया......कि बाबू योगराज जी......"

इस प्रकार की मनोरंजक भूमिका के बाद वह घर वालों का अलग-अलग हाल पूछता......"और मुन्नी क्या कर रही थी।"

"जी हंस रही थी। जब ही तो मैं आया ना?"

"हंस रही थी हा हा! हां तो आज क्या पकेगा रात को?"

"आप ही बताइए?"

"अजी नहीं, आज तो आप ही बताइए।"

मंडू इस बात पर शरमा जाता। आखिरकार खुद ही कहता, "अच्छा तो आज गोश्त ले......जा। क्या समझे......नर्म हो। थोड़ा सा पर्दे का भी डलवा लेना। मेरे लिए। और इसमें मटर भी डालना मेरे लिए। मटर देसी ले जाना, शिमले के नहीं। देसी मटरों में मिठास ज़्यादा होती है और मुन्नी के लिए हार्लिक्स की बोतल ले जाइओ......हार्लिक्स? समझे नहीं? अबे हार्लिक्स......हारलिक्स कहना। ला मैं तुझे लिखे देता हूं......और नन्हें के लिए संगतरे, नन्हें से अभिप्राय उसका वह शादीशुदा बेटा लड़का जो एक बच्ची का बाप भी था।

इसके बाद बालाई और बीबी के लिए मूंग के दही बड़े और पकौड़ियां। और जब शाम के वक़्त खुद घर जाता फल और फूलों के गजरे ले जाता। नौकर को खूब चटखारे ले-लेकर सब चीज़ों के नाम गिनवाने के बाद कहता, "बाबू योगराज......अरे भाई इसे दस रुपये का एक नोट तो दे दो।"

मैं ऊपर वाले कमरे में फिल्में डेवलप करने में जुटा होता और जब मंडू मेरे पास आता तो मैं और कुछ नहीं तो कम से कम उसकी बीबी की कुशलता तो जरूर पूछ लेता और मंडू भी दिल खोलकर सब हालात बयान करता। अगर मैं कुरेद-कुरेद कर बीबी की बाबत सवाल करता तो वह भी जवाब देने में कंजूसी न करता। मेरे पास पहुंच कर मंडू का रंग कुछ और हो जाता था, "कहो मंडू यार क्या बातें हो रही थीं लाला जी से?'

फिर मैं पूछता, "तुम्हारी बीबीजी क्या करती हैं दिन भर......"

"कुछ नहीं!' मंडू अपनी भोली-सी आवाज में जबाब देता, "बस पांव फैलाकर लेटी रहती हैं और हाथ उठा उठाकर अंगड़ाइयां लेती रहती हैं।"

इस कदर दिल तड़पा देने वाला जवाब सुनकर मैं मंडू की तरफ चौंक कर देखता लेकिन उसकी बहुत बड़ी खूबी यह थी कि वह भीगी बिल्ली बना चुपचाप खड़ा रहता। ऐसी बातें करते समय वह कम ही मुस्कुराता था। बड़ी गंभीरता से बातचीत करता। अगर मैं मामूली-सी बात भी पूछता तो वह पूरे विस्तार के साथ हालात बयान करता। मैं पूछता, "जब तू आने लगा था उस वक़्त बीबी जी क्या कर रही थीं?'

"जी कुछ नहीं बस नहाने लगी थीं।"

"बेवकूफ यह बता कि वे नहा रही थीं या नहाने के लिए तैयार हो रही थीं।

"जी कुछ नहीं, उस वक्त वे अंगिया पहने आंगन में घूम रही थीं।"

मैं फिर पूछता, "अबे वो तुझसे शर्मातीं नहीं क्या? वो कोई बड़ी-बूढ़ी तो है नहीं......"

"जी नहीं अभी उनकी उम्र बहुत कम है। एक रोज मुझे कहती थीं......वे मंडू मैं तुझसे चार पांच बरस ही तो बड़ी हूं......लेकिन वो मुझसे शर्माती नहीं है। जब वो चारपाई की ओट में नहाती हैं तो मुझसे कहती है......वे मंडू मेरा तौलिया पकड़ा दे! वे मुंडू मेरी अंगिया तो लाइयो।"

मंडू सीधे-सादे सवाल भी रोचक ढंग से देता। लेकिन सूरत बिल्कुल भोली बनाये रखता और कहने के लहजे में भी ठंडक होती थी।

कभी-कभी मंडू को दो-चार आने इनाम भी दे देता। मंडू समझता कि ये पैसे मेरी जेब से निकलते हैं। हालांकि ये उसी लाला की जेब से निकलते थे।

जिस रोज निहालचंद को अहसास होता कि आज आमदनी नहीं हुई उस दिन तमाशा देखने लायक होता था मुंडू हमेशा की तरह शाम के समय आता था। लेकिन निहालचंद आंख उठाकर भी उसकी तरफ न देखता था। मंडू अपना सवाल दोहराता लेकिन जवाब नदारद। मंडू मेज का सहारा लिये चुपचाप खड़ा रहता और इस रहस्यपूर्ण चुप्पी में निहालचंद अपने काम में व्यस्त रहता और अपनी एक मूंछ दांतों में चबाये जाता। आखिर धीरे से पूछता, "घर में दाल-वाल नहीं।"

"जी नहीं।"

"और वो जो मैं मसूर की दाल लाया था?"

"बहुत थोड़ी सी है।"

"और वो माश की ?"

"बहुत ही कम है।"

"वो चने की दाल?"

"थोड़े से दाने बचे हैं।"

इस पर वह चिल्ला कर कहता, "अबे उल्लू सबको मिलाकर पका लो। घुली-मिली दाल। कमबख्त कुछ अपना दिमाग भी लड़ाया कर।"

फिर मंडू सिर झुकाये ज़मीन की तरफ देखता हुआ वापस चला जाता।

निहालचंद को अपने लड़के से, जिसे वह 'नन्हा' कहकर पुकारता था, बड़ा स्नेह था। नन्हा विवाहित था। एक बच्ची का बाप था। लेकिन एक अर्से से कालेज में बी.ए. का छात्र था। कई वर्ष से वह परीक्षा पास नहीं कर पाया था। बी.ए. पास न कर पाने का कारण यह नहीं था कि वह फेल होता रहा हो बल्कि उसने कभी परीक्षा ही नहीं दी थी और परीक्षा न देने का कारण यह था कि जब नन्हा बाप के पास दुकान पर आता, बाप पूछता, "बेटे तुम लोगों के इम्तिहान कब शुरू होंगे?"

"जी अप्रैल में।"

''अप्रैल में?'' निहालचंद मुंह फैलाकर पूछता।

''जी।'' भोला सा जवाब मिलता।

''अप्रैल में तो बहुत ज्यादा गर्मी हो जाती है बेटे।''

''जी''

''अच्छा तो बेटा! अव के इम्तहान मत दे। फिर दे देंगे। आखिर जल्दी भी क्या है?'' इसके बाद निहालचंद मुझे संबोधित करके कहता, ''क्यों बाबू योगराज ! अभी बच्चा ही तो है?''

मेरे पल्ले से भला क्या जाता था? मैं तुरंत जवाब देता, ''जी और क्या? जी अभी तो 'नन्हा' बच्चा है। खेलने कूदने के दिन हैं। इम्तिहान का क्या है और फिर इस कदर गर्म मौसम......''

इस दौरान में उसका लहीम-शहीम 'नन्हा' सिर नीचे डाले खामोश खड़ा रहता। मेरी यह बात सुनकर निहालचंद फूला न समाता, ''हां, और क्या......मत दो इम्तिहान बेटे......जाओ खेलो।''

इस पर भी नन्हा अपनी जगह खड़ा रहता। निहालचंद उसकी पीठ थपथपा कर कहता, ''बेटे कुछ और चाहिये?''

इस पर नन्हा खड़े-खड़े यों ही फर्श को पांव से कुरेद डालने की नाकाम कोशिश करते हुए अपना धड़ अजब बेढंगे तरीके से हिला-हिलाकर इधर-उधर झूमने लगता, ''जी......यों ही......मैं बायस्कोप जाऊंगा।''

''बायस्कोप जाओगे?......जाओ बेटे......जाओ बाबू योगराज नन्हे को बायस्कोप के लिए पैसे दे दो।''

''और पिताजी......'' नन्हा लाड़ से मुंह फुलाकर अपनी बात जारी रखते हुए कहता, ''मेरे साथ मेरे चार दोस्त भी हैं। वे कहते हैं, हमें भी ले चलो।''

जितने रुपयों की ज़रूरत होती, निहालचंद उसे दे देता। इस तरह उसका बेकार लड़का दूसरे तीसरे दिन दुकान पर आ जाता था। असल में वह बड़ा लाडला और सीधा-सादा सा नौजवान था..... अगर वह कभी धूप में चला आये तो चाहे सर्दियों का मौसम ही क्यों न हो, निहालचंद हमेशा उससे रुष्ट होता कि धूप में इतनी दूर क्यों चला आया?

निहालचंद खुद भी खाने-पीने का शौकीन था। बाहर से घूम-फिर कर दुकान पर वापस आते ही मुझसे कहता, ''बाबू योगराज कहो कुछ पैसे-वैसे आये या नहीं?'' और फिर तिजोरी में से निकाल कर उन्हें गिनने लगता और गिनते-गिनते मेरी आंख बचाकर दो-तीन रुपये उड़ा लेता। .....इस बारे में वह मुझसे नामालूम क्यों डरता था। रुपये उड़ा लेने के बाद हंस-हंस कर मुझसे बातें करता और फिर खांसता हुआ दुकान के बाहर वाले कमरे में जा खड़ा होता। थोड़ी देर के बाद फल वाले की आवाज़ आती,

"मैंगों वाला, हजूर मैंगो वाला!" भला निहालचंद को सब्र कहां? क्या मजाल जो कोई भी ख्वांचेवाला उधर से गुज़रे और निहालचंद की राल न टपके। चुनांचे वह दिन भर फल, आइसक्रीम, आलू की टिकियां और पापड़, पकौड़ियां खाता रहता। लेकिन खाते वक़्त मुझे ज़रूर बुला लेता।

ग्राहकों के हिसाब-किताब का यह हाल था कि रुकी हुई रक़में दरवाज़े पर या कुर्सी के बाजू पर या दीवार पर लिख लेता था। ज़बानी भी इसी तरह हिसाब रखता था कि फलां बादामी रंग की पगड़ी वाले सरदार से तीन रुपये सवा चार आने लेने हैं। फलां रंग के जम्पर वाली करनटी से दो रुपये और फलां मक्खी-की-सी मूंछों वाले आदमी से दो रुपये सात आने और मुक्ति फौज वाली मेम से......

मुक्ति फौज वाली मेम से उसे बहुत लगाव था। वह मेम अक्सर दुकान पर आया करती थी। यों तो सुघड़ और चाल-ढाल वाली औरत थी लेकिन उम्र कुछ ज़्यादा हो चुकी थी। शरीर भी भारी हो गया था। गहरे नीले रंग की आंखें बड़ी कटीली थीं। अभी वक्ष भी कसा हुआ था और कद में निहालचंद से चार अंगुल बड़ी ही थी। निहालचंद उसके सामने बिछा जाता था। खूब लहक-लहक कर और कभी लटक-लटक बातें किये जाता था। जिस समय मेम साहब दुकान में प्रवेश करतीं वह सब ग्राहकों को मेरे सुपुर्द करके खूब उससे बातें करने लगता। यूरोपियन लोग वैसे भी हंस कर बात-चीत करना बुरी चीज़ नहीं समझते। और फिर जिन लोगों के बीच धार्मिक प्रवचन करना, उनसे घुल-मिल जाना अपने उद्देश्य के लिए उपयोगी समझते हैं। इसलिए वह मेम भी ज़रूरत से ज़्यादा दुकान में ठहरी रहती। शायद निहालचंद ने उसे भी कोई झांसा दे रखा हो। अन्यथा उसकी आम की-सी सूरत ऐसी न थी कि मेम उस पर रीझ जाती।

इस तरह दिन बड़े आराम से गुज़रते रहे। निहालचंद ने दुकान का स्याहो-सफेद मुझे सौंप रखा था और मैं भी उसके विश्वास का अनुचित सीमा तक लाभ नहीं उठाता था। अलबत्ता पान-सिगरेट के लिए चंद आने इधर-उधर कर देने में कोई हर्ज भी नहीं समझता था। जिस दिन चाहता छुट्टी भी मना लेता था। एक बार जब निहालचंद दिन के ग्यारह बजे के करीब दुकान से बाहर जाने लगा तो मैंने उससे कहा कि वह दोपहर को दो बजे से पहले वापस पहुंच जाये। मुझे खुद चंद दोस्तों के साथ सिनेमा का मैटिनी शो देखने जाना था। मैंने बार-बार ताक़ीद की कि वह ज़रूर वक़्त पर पहुंच जाये ताकि मेरे दोस्त बायस्कोप पर मेरा इंतजार करते न रह जायें। उसने भी मुझे यक़ीन दिलाया कि मैं वापस ज़रूर चला आऊंगा। अतएव मैं आश्वस्त हो गया लेकिन हज़रत भला कहां पहुंचने वाले थे? हर घड़ी यही गुमान होता कि शायद अब आ जायें लेकिन उसे न आना था न आया। यहां तक मैं निराश हो गया और फिर आया तो सात बजे के आस-पास जब भी दूसरे शो का समय भी बीत चुका था। मुझे बड़ी

झुंझलाहट हुई। जी चाहा कि उसका मुंह नोंच लूं। लेकिन वह मुझसे बात किये बिना दुकान के चबूतरे पर जा बैठा। इधर से काबुली चनों वाला गुज़रा तो उसने उसे बुलाया और मुझे भी आवाज़ दी। मैंने इनकार कर दिया। लेकिन जब उसने बड़ा आग्रह किया तो मैं उसके पास चला गया। उसने एक उचटती हुई निगाह मुझ पर डाली। मेरा मुंह मारे गुस्से के फूल रहा था। चने खाने के बाद उसने बड़ी भोली सी आवाज़ में कहा, "बेटा योगराज....." वह बुजुर्ग था, कभी बेटा भी कह लेता था। "सुनो भाई अब तुम्हें असल बताता हूं। आज मैं यों ही घूमता हुआ लारेंस गार्डन चला गया। वहां एकांत कोने में चुपचाप बैठ गया।" यह कह कर उसने एक हल्की-सी ठंडी आह भरी। जानते हो क्या हुआ? बस मुझ पर एक अजीब सी कैफियत तारी हो गयी। .....मैं सोचने लगा यह दुनिया क्या है? यह इनसान क्या है? यह परमात्मा क्या है? यह मिट्टी का पुतला क्यों बनाया गया? इस दुनिया में आखिर किसी को रहना तो है नहीं..... उफ कैसा एकांत था वहां पर! पूरी खामोशी। मैं इस प्रकार की बातें सोचने लगा। यहां तक कि मेरी आंखों में आंसू आ गये।" यह कह कर उसने एक और गहरी सांस लेकर ठंडी आह भरी। उसकी यह दशा देखकर मेरा जी पसीजा और जब मैंने शाम के धुंधलके में उसकी बुझी-बुझी आंखों, झुर्रियों वाले चेहरे और नीचे को लटकी हुई सफ़ेद-सफ़ेद मूंछों की तरफ देखा तो मैंने हथियार डाल दिये। उसकी भोली सूरत मेरे मन में अंकित होकर रह गयी और संसार की नाशवानता का चित्र आंखों के सामने फिरने लगा। मैंने सोचा बिचारे बूढ़े को अपने बीते हुए दिन और खोयी हुई जवानी याद आ गयी होगी। इस प्रकार की बातें सुनकर मेरे मन से न सिर्फ सारा मैल दूर हो गया बल्कि मैं उसे उलटा सांत्वना देने लगा। जीवन के दर्शन पर थोड़ा-बहुत जो मैं कह सकता था, मैंने कहा। वह ध्यान से मेरी बातें सुनता रहा। लेकिन मुंह से कुछ न बोला। बस बीच-बीच में हलकी-सी ठंडी आह खींचकर रह जाता।

दूसरे दिन मुझे एक अन्य व्यक्ति से पता चला कि हज़रत उस रोज़ सारा दिन घुड़दौड़ के मैदान में बाज़ी लगाते और मुक्ति फौज की मेम साहब के साथ इधर-उधर मटरगश्त करते और चहकते रहे थे। मुझे विश्वास न हुआ तो वह सज्जन कहने लगे कि मैंने निहालचंद को खुद अपनी आंखों से देखा है और मैं यह उसके मुंह पर कहने को तैयार हूं। मैं दुकान जा रहा था। वह सज्जन भी मेरे साथ हो लिये। उन्हें भी इसी रास्ते से जाना था। निहालचंद दूर से चबूतरे पर बैठा दिखाई दिया। हम दोनों को साथ-साथ देखा तो दुकान के भीतर घुस गया। खैर सज्जन तो आगे निकल गये और मैं दुकान के भीतर चला गया। मैंने एक निगेटिव को सामने रखते हुए कहा, "लाला जी मैंने आपकी एक शिकायत सुनी है।"

मैंने जवाब देने के लिए उनकी तरफ़ देखा तो वह तिनके से दांत कुरेदते हुए चंचलता के साथ कुछ इस तरह मुस्कुराया कि और कुछ कहने की ज़रूरत ही न रही।

मैंने वहां तीन-चार महीने तक नौकरी की। आखिर मैं अपनी आदत के अनुसार इस नौकरी से ऊब गया। एक दिन किसी छोटी-सी बात पर बिगड़ कर अपने घर जा बैठा और दूसरे दिन दुकान पर भी नहीं गया।

मुझे अपने दोस्त से मालूम हुआ कि उसने जब निहालचंद से पूछा कि बाबू योगराज कहां तो उसने जवाब दिया कि मैंने उसे निकाल दिया है। मुझे यह सुनकर बड़ा रोष आया। तुरंत वकील से परामर्श करके उसे नोटिस भेज दिया—"क्योंकि तुमने मुझे निकाल दिया है और इस का प्रमाण भी मौजूद है, इसलिए अब तुम इकरारनामे के अनुसार न सिर्फ मेरी पिछले महीने की तनख़्वाह दो बल्कि माह की ज़्यादा तनख़्वाह भी अदा करो।"

नोटिस मिलते ही उसने तुरंत कुल रकम मुझे भेज दी। इसके बाद एक दिन बाजार में मिला तो कहने लगा कि मैंने कब कहा था कि योगराज को निकाल दिया है? मैंने कहा, "गवाह पेश करूं?" इस पर बड़े प्यारे अंदाज़ में मुस्कुराया......"और अगर मैंने कहा भी हो, क्या तुम मेरे बेटे नहीं हो?"

उसकी मुस्कुराहट और बूढ़ी आंखों की चमक में विचित्र आकर्षण था। मैंने कहा, "अब सारी तनख़्वाह कौन वापस करे?" वह तुरंत बोला, "तो आधी पर ही मान जाओ।" मैंने आधी तनख़्वाह के रुपये उसे वापस कर दिये।

भाई साहब ने मुझे ज्यादा अर्से तक बेकार न बैठने दिया। बम्बई में कारोबार की सूरत निकल आयी। मेरी भी बम्बई देखने की इच्छा थी। तुरंत तैयार हो गया। भाई साहब उतार-चढ़ाव समझाकर दफ़्तर को चल दिये। मैं स्टेशन पर पहुंचा।

वहां मुझे निहालचंद दिखाई दिया। न जाने उसे कैसे मालूम हो गया कि मैं जा रहा हूं। मुझे अलविदा कहने के लिए प्लेटफार्म पर आन पहुंचा। जब मैं गाड़ी पर सवार हो गया और गाड़ी ने सीटी बजा दी तो उसने एक छोटी-सी पोटली बढ़ाते हुए कहा, "लो इसमें आलू के पराठे हैं......अचार भी है और प्याज़ भी। भूख लगेगी तो रास्ते में खा लेना।"

मैंने पोटली ले ली। गाड़ी एक धचके के साथ चल दी। मैंने पोटली टटोलते हुए शरारत से कहा, "क्या वाकई ये पराठे हमारी भाभी के नाजुक हाथों के पके हुए हैं?"

यह सुनकर उसने पांव जमीन पर मार कर कहा, "खड़ा तो रह......पाजी......" और फिर उसके होंठों पर वही पुरानी चंचल मुस्कान खेलने लगी।

गाड़ी बढ़ती जा रही थी और सफ़ेद शलवार और तुर्रेदार पगड़ी में गुड्डा-सा निहालचंद अलविदाई रूमाल हिला रहा था।

खुद्दार

जिन दिनों सूबा बिहार में बाढ़ आयी, मैं असम की एक छोटी-सी रियासत में एक इंजीनियर के रूप में नौकरी करता था। बाढ़ के बाद जब राहत कार्य शुरू हुआ तो मैंने भी नौकरी के लिए हाथ-पांव मारे। रियासत का मंत्री एक मिलनसार व्यक्ति था। उसके साथ मेरे अच्छे संबंध थे। अतएव मुझे नौकरी मिल गयी। मेरा काम बहुत संतोषजनक था। जल्दी ही एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर बनाकर मोतीहारी भेज दिया गया।

यहां पहली बार प्राकृतिक प्रकोप देखने का अवसर मिला। हमारा दफ़्तर मेरी कोठी के पास ही था। दफ़्तर की इमारत अभी निर्माणाधीन थी। तीन-चार कमरे हमारे अधिकार में थे। सिवाय मेरे कमरे के बाक़ी कमरों में सफ़ेदी भी न हुई थी। फ़र्श की भद्दी ईंटों को छुपाने के लिए दरी बिछा दी गयी थी। मेरे कमरे में दो बड़ी खिड़कियां और दरवाज़े थे। एक दरवाज़ा बड़े कमरे में खुलता था। यहां क्लर्क काम करते थे। इस वक़्त अम्ले में आठ के लगभग लोग थे। चपरासी उनके अलावा।

बाढ़ ने एक ओर जहां खानदान के खानदान तबाह कर दिये थे, वहां बेकारों के लिए रोज़ी के दरवाजे भी खोल दिये थे। कई लोगों के लिए यह विनाश धनार्जन का अवसर लेकर आया था। जब शाम के समय हम लोग सैर के लिए बाहर निकलते तो जगह-जगह धरती माता को निहंग की भांति मुंह खोले पाते। बच्चे आश्चर्य से उन अथाह दरारों में झांकते।

सर्दियों की एक सुबह जब मैं दफ्तर में पहुंचा तो रघुनाथ ने काग़ज़ों का बड़ा-सा पुलिंदा मेरे सामने रख दिया। पिछली शाम को मैं दौरे से वापस आया था। तीन-चार दिन के काग़ज़ात जमा हो गये थे..... पहले रघुनाथ काग़ज़ रखकर तुरंत दूसरे कमरे में चला जाता था। लेकिन आज वह हाथ सहलाता हुआ मेरी मेज़ के पास ही खड़ा रहा। यह सोचकर कि शायद वह मुझे कुछ कहना चाहता है, मैंने उसकी ओर देखा। उसके उतार-चढ़ाव से मालूम होता था कि वह किसी गहरी मानसिक उलझन में डूबा हुआ है।

इससे-पहले कि वह कुछ कहे, चपरासी ख़बर लाया कि पंडित देवी दयाल अंदर आने की अनुमति चाहते हैं। मैं उस चापलूस व्यक्ति से मिलना नहीं चाहता था। लेकिन

मेरी अनुपस्थिति में वह कई बार मेरी कोठी के चक्कर काट चुका था। बच्चों के लिए फल और मिठाइयां भी दे गया था। मैंने उसको बुला लिया। इस पर रघुनाथ दूसरे कमरे में चला गया।

देवी दयाल सिनेमा के पास लाया था। वह शहर का एक धनवान रईस था। इसके बावजूद वह मेरी इतनी ज़्यादा चापलूसी कर रहा था कि जी चाहता था कि धक्के देकर बाहर निकाल दूं। मेरी उपेक्षा को ध्यान में न लाते हुए उसने संकेतों में अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया। वह चाहता था कि मैं ठेकेदारों से उसके भट्ठे की ईंटों की सिफारिश कर दूं.....

मेरा ध्यान रघुनाथ की ओर था। रघुनाथ हमारे अमले में सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति था। बल्कि दूसरे तो सबके सब नौजवान थे। दसवीं पास स्टेनोग्राफर, उठने-बैठने में सलीकामंद, बातचीत में होशियार लेकिन मुझे रघुनाथ पर भरोसा था। वह रुक-रुक कर हमेशा धीमी आवाज़ में बात करता। उसे देखकर कहा जा सकता था कि वह एक ज़िम्मेदार व्यक्ति है। इस कारण उसे काम भी ज़्यादा करना पड़ता था।

नौकरी के लिए वह सीधे मुझसे मिलने के लिए आया था। दोपहर के समय खाना खाने के बाद आराम के लिए पलंग पर पांव रखा ही था कि नौकर ने रघुनाथ का विजीटिंग कार्ड लाकर दिया। मैंने उसके असमय आगमन को महसूस किया। नौकर से मालूम हुआ कि नौकरी के लिए आये हैं। मैंने जवाब दिया कि दफ्तर में मिलें ।

संयोग से उस समय में ड्राइंग रूम में एक किताब लेने के लिए गया। सोने से पहले किसी पत्रिका या किताब के पन्ने उलटना मेरी आदत-सी बन गयी थी। खिड़की में से मुझे रघुनाथ वापस जाता हुआ दिखाई दिया। खद्दर का एक नील लगा हुआ पायजामा, इंगलिश ट्विड का एक पुराना गर्म कोट, सिर पर काले रंग की गोल टोपी। घुटने के पास उसके पायजामे में एक उभार-सा पैदा हो गया था। उसे देखकर मुझे ध्यान आया कि बिचारा बूढ़ा आदमी है। इसे बुला लेना चाहिये। अतएव नौकर से मैंने उसे बुलवा लिया।

जब मैंने उसके चेहरे पर विशेष रूप से उसकी नीचे को लटकती हुई मूंछों पर निगाह डाली तो मुझे अपना जवाब याद करके अफ़सोस हुआ। उसने आते ही असमय आगमन के लिए क्षमा याचना की। उसने कहा कि वह मेरा ज़्यादा वक़्त ख़राब नहीं करेगा। वह नौकरी के लिए आया था, टाइप करना जानता था। हर प्रकार के कार्यालयीय पत्र-लेखन में कुशल था।

मैंने उसे शाम तक बिठाये रखा। वह उसी स्थान का निवासी था। मैं उससे तरह-तरह की बातें पूछता रहा। उससे आंखों देखी घटनाओं का हाल रुचि के साथ सुनता रहा। बातों-बातों में मैंने उसके निजी हालात भी मालूम कर लिये। पहले वह एक धनवान आदमी था। उसने अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाई। बड़ा बेटा वेटरेनरी डॉक्टरी

पास करके सरकारी नौकरी में आ गया। उसके नौकर हो जाने पर घर वालों को कुछ तसल्ली मिली। क्योंकि उसकी कमाई का अधिकांश भाग इन्हीं की पढ़ाई और लड़कियों की शादियों पर खर्च हो चुका था......लेकिन जब बुरे दिन आते हैं तो आंख झपकते ही भाग्य का पांसा पलट जाता है। भरा-पूरा घर बुरी तरह तबाह हो गया। लड़के छुट्टियों में घर आये हुए थे। विवाहित लड़कियां भी मां-बाप से मिलने के लिए घर आयी हुई थीं। मालूम होता था कि विधाता ने यह षड्यंत्र रचा था कि इस घर के सभी सदस्यों को एकत्र करके कुचल दिया जाये। विधाता की कठोरता—कि अब घर में रघुनाथ की आधी पागल पत्नी, उसकी विधवा बहन, उसका तीन वर्षीय पोता रह गये थे। सिर्फ बड़ा लड़का बचा था। लेकिन वह भी क्षय रोग से ग्रस्त होकर घर पहुंचा। बाप ने रही-सही पूंजी उस पर खर्च कर दी। लेकिन उसे मौत के चुंगल से मुक्त न करा सका......उसकी आपबीती सुनकर मन को विश्वास नहीं होता था कि विधाता इतना निर्मम हो सकता है। लेकिन यह एक सच्चाई थी।

शाम को चाय के बाद जब वह विदा होने लगा तो मैंने कहा, "रघुनाथ जी इतनी विपत्तियां झेलने के बाद भी आपके साहस को देखकर मैं आपकी बहुत इज़्ज़त करने लगा हूं।"

वह अपनी छड़ी से ज़मीन कुरेदने लगा। "कृपा है आपकी......" कुछ मौन के बाद मुझसे नज़र कतराते हुए बोला, "लेकिन मेरी स्मरण शक्ति कमज़ोर हो गई है। मैं भूल जाता हूं कई बातें।"

उसके चले जाने के बाद में देर तक उसकी बाबत सोचता रहा।

मेरी सिफ़ारिश पर वह दफ्तर में हैड क्लर्क नियुक्त हो गया। उसकी उपस्थिति मुझे सुखद लगती थी। मुझे तसल्ली इस बात की थी कि दफ्तर में कम से कम एक ज़िम्मेदार आदमी मौजूद था। क्योंकि मैं खुद एक मेहनती और ज़िम्मेदार आदमी हूं इसलिए ऐसे लोगों को पाकर खुशी-महूसस करता हूं। गैर ज़िम्मेदार क्लर्कों का मुझे कटु अनुभव है। कई बार मुझे रघुनाथ से परामर्श भी करना पड़ा। बहुत बार ऐसा हुआ कि मैं ज़रूरी काम पड़ने पर दौरे पर चला जाता। लेकिन मेरी अनुपस्थिति में दफ्तर के काम में गड़बड़ न होती थी।

अपनी मेज के आगे बैठे-बैठे मेरा दिल रघुनाथ की तरफ़ खिंचता रहता। उसकी कई हरकतों से मेरा मन बहुत प्रभावित होता। जैसे, उसके कोट का कालर गर्दन के पास फट गया था। वह कमीज़ के कालर को उस पर चढ़ाकर उसे छुपाये रखता। कभी ऐसा भी होता कि फाइल लिये मेरे कमरे की तरफ बढ़ता। पर्दे के पास पहुंच कर एकदम रुक जाता। मुझे मालूम हो जाता कि इस समय वह कोट के कालर पर कमीज का कालर चढ़ा रहा है..... कभी-कभी उसकी कमीज़ के जीर्ण-शीर्ण कफ कोट की बांह से बाहर निकल आते। वह ज़ख़्म छुपाते हुए कबूतर की तरह उंगलियों से कफ को

कोट की बांह के अंदर कर देता। भले ही वह ये हरकतें इस ढंग से करता कि मुझे पता न चले लेकिन मेरी चौकन्नी निगाहों से उसकी कोई हरकत छुपी न रहती।

देवी दयाल बातें किये जा रहा था। लेकिन मेरा ध्यान दूसरी तरफ था। अतएव जितने जल्द हो सका, मैंने उसको टाला। फिर थोड़ी देर तक मैंने रघुनाथ की प्रतीक्षा की। लेकिन वह अपने काम में व्यस्त था। दो-तीन बार बिना प्यास के चपरासी से पानी मंगवा कर पिया। खिड़की के आगे खड़ा होकर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश लेता रहा ताकि रघुनाथ को मालूम हो जाये कि मैं इतना व्यस्त भी नहीं, वह चाहे तो आकर मुझसे बात कर ले। इसके बाद मैं कुछ देर काग़ज़ात देखता रहा..... खाना भी दफ्तर में ही मंगवा लिया..... लेकिन वह न आया।

शाम को दफ्तर का समय समाप्त होने के बाद अमला मेरी रवानगी के इंतज़ार में था। मैंने चपरासी से कहलवा दिया कि मेरा इंतज़ार न करें। खिड़की में से मैं उन लोगों को टूटी-फूटी ईंटों के ढेरों के पास से होकर जाते हुए देखता रहा। वे स्कूल के लड़कों की तरह एक-दूसरे पर लपकते-झपकते हुए चले जा रहे थे लेकिन उनमें रघुनाथ शामिल न था। चपरासी ने बताया कि बाबू रघुनाथ अभी काम कर रहे थे। मैंने सिगरेट सुलगाया और काग़ज़ात पर झुक गया।

दस-पंद्रह मिनट बाद रघुनाथ अंदर आया। मैंने क़लम एक तरफ रखकर उसकी तरफ देखा। वह मुस्कुराकर बोला, "क्या आपका काम खत्म नहीं हुआ? आज आपने दोपहर के समय आराम भी नहीं किया। अगर मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये....."

मैं जवाब में हंस पड़ा। हमेशा की अपेक्षा कुछ ज़्यादा अनौपचारिक ढंग से बोला, "आप बुजुर्ग हैं, सेवा करना तो हमारा कर्तव्य है......आप अभी तक घर क्यों नहीं गये। अगर कुछ काम बाकी रह गया हो तो कल हो सकता है.....

"जी बस अब चला जाऊंगा......आप, क्या आप अभी तशरीफ़ रखेंगे? कहिए तो कुर्सियां निकलवा दूं।"

मैं रघुनाथ के सामने ज़यादा अफ़सराना शान नहीं बघार सकता था। कुछ इसलिए और अपनी उम्र के तक़ाज़े से मजबूर होकर वह कभी-कभी पितृवत स्वर में बातें करने लगता था।

"नहीं रघुनाथ जी, मैं ज़रा ये काग़ज़ात देखूंगा।"

अनुमान से मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाहता था। लेकिन कुछ असमंजस की स्थिति में था। वह दफ्तर की अधूरी इमारत, फर्नीचर, ठेकेदारों, एक हद से ज़्यादा रिश्वतख़ोर ओवरसियर की बातें करता रहा......बिल्कुल उसने कुछ कहने के अंदाज़ से मेरी तरफ़ देखा......मैं पूरे ध्यान से सुन रहा था। अच्छा......तो अगर आप इजाज़त दें......मैं जा सकता हूं।"

उसने खांसकर छड़ी उठाई। टोपी को सिर पर ठीक करते हुए वह रुक-रुक कर दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा।

"रघुनाथ जी!"

"जी!" वह वापस चला आया। मेरे सामने मेज़ के पास खड़ा हो गया।

मैंने सिगरेट का लम्बा कश खींचकर उसके चेहरे को ध्यान से देखा, "क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?"

वह खामोश खड़ा । फिर वह यों ही कमरे के कोने की तरफ देखने लगा। उसके होंटों से एक दबी-सी आवाज़ निकली।

"कहिए ना?"

"मैं......मैं......" उसने उचटती हुई नजर मुझ पर डाली। "मुझको......"

वह कुछ घबरा-सा गया। मैंने इशारा करते हुए कहा, "रघुनाथ जी आप कुर्सी पर तशरीफ रखिए।"

वह बैठ गया। मुझे प्रतीक्षारत देखकर वह धीरे से बोला, "मैं बहुत शर्मसार हूं।"

मैं खिलखिलाकर हंस पड़ा। "रघुनाथ जी आज तो आपने औपचारिकता की हद कर दी......तौबा।"

लाठी से फर्श को बजाते हुए बड़ा साहस जुटाकर बोला, "मुझे एक रुपया चाहिए......"

"एक रुपया ?" मैंने आश्चर्य से अपेक्षाकृत ऊंची आवाज में पूछा।

उसने फिर मेरी ओर उचचटती हुई नज़र से देखा। शायद वह मेरे चेहरे पर अपनी बात की प्रतिक्रिया देखना चाहता था।

उसने धीमी आवाज़ में कहा," शायद आपको याद होगा। आपने एक बार मुझसे एक रुपया लिया थाा। यह तीन-साढ़े तीन महीने की बात है...... ।"

"एक रुपया?......वह कब? मैं दिल ही दिल में सोचने लगा। मेरे मुख पर स्मृति में डूब जाने के अनुभाव देखकर उसने फिर कहा, "उस दिन बैंक का चपरासी आया था। आपके पास दस से कम का नोट नहीं था। आपने मुझसे एक रुपया लिया था। आपने यह भी हिदायत दी थी कि अगर आपको याद न रहे तो मैं आपको याद दिलाकर रुपया वापस ले लूं ।" वह फीकी हंसी हंसा। "और मैने जवाब में कहा था कि एक रुपया भी कोई बड़ी रकम थी जो मैं याद दिलाता फिरूं......सच पूछिए तो मैं भूल चुका था। आप जानते ही हैं मेरी स्मरण शक्ति कमज़ोर है......लेकिन शाम न मालूम मुझको यह बात कैसे याद आ गयी। मुझे उम्मीद है आप भूले नहीं होंगे।"

हां मुझे याद आ गया। रघुनाथ पर मुझे अविश्वास नहीं था। लेकिन अफसोस इस बात का था कि मैं रुपया वापस करना भूला क्यों? वह रुपया......लेकिन मुझे ध्यान पड़ता है, मैंने रुपया वापस कर दिया था, उसी दिन शाम को। निश्चय ही मैंने वापस

कर दिया था। रघुनाथ इस दुस्साहस के लिए क्षमा याचना करता रहा। मैंने चुपके से अपनी नोट बुक निकाली । अक्टूबर की सात तारीख़ को रघुनाथ से एक रुपया लिया गया था। मैंने स्मरण के लिए नोटबुक पर लिख लिया था और उस शाम को रुपया वापस करने के बाद मैंने उसके आगे अंग्रेजी में 'पेड' लिख दिया था।

रघुनाथ को मैं विश्वास दिलाना चाहता था कि मैं ऐसा ग़ैर ज़िम्मेदार और सिद्धांतहीन आदमी नहीं हूं कि उसका रुपया लेकर भूल जाता। रघुनाथ जी मैंने वह रुपया.....''

''मैं फिर करबद्ध क्षमा याचना करता हूं......भरोसा कीजिए......शर्म के मारे मेरी नज़र नहीं उठती......ज़रूरत ही कुछ ऐसी आन पड़ी......वरना मैं एक रुपया के लिए तक़ाज़ा न करता।''

मैं खामोश हो गया। रघुनाथ पानी-पानी हुआ जाता था। उसकी नज़रें फ़र्श पर गड़ी हुई थीं जैसे वह मारे शर्मिंदगी के ज़मीन में समा जाना चाहता हो।

''नहीं, नहीं रघुनाथ जी मामूली बात है।'' यह कहकर मैं मुस्कुराया और कुर्सी पर पीछे की तरफ झुक गया। ''शर्मिंदा तो मैं हूं। माफ़ी का तलबगार तो मुझे होना चाहिए।''

कृतज्ञता के आंसू उसकी आंखों में झलकने लगे ''आपसे क्या छुपाना......कल से रोटी नहीं पकी......आटा खत्म है वरना एक रुपये की हैसियत ही क्या? मैं हर्गिज़ आपको इसकी याद न दिलाता।''

मैंने उसका हाथ थाम लिया। ''आपको कित्ते रुपयों की ज़रूरत है......मेरा मतलब है वेतन मिलने पर मुझे वापस दे दीजिएगा।''

उसके मुख पर पीड़ा के भाव उभर आये, ''मैंने आपको घर की हालत इसलिए बताई थी कि आप एक रुपये के लिए मुझे ओछा या नीच न समझेंगे।'' यह कह कर उसने मेरी तरफ ऐसी नज़रों से देखा जो मैं उम्र भर न भुला सकूंगा, ''मैं एक सिद्धांतवादी और सम्मानित व्यक्ति हूं। हालांकि यह अशिष्टता है कि आप मुझ पर कृपा करना चाहें और मैं अस्वीकार कर दूं। लेकिन चूंकि मैंने न आज तक किसी के सामने हाथ फैलाया और न किसी का एक कौड़ी का क़र्ज़मंद होना स्वीकार किया इसलिए अंतिम अवस्था में अपने सिद्धांत से गिरना नहीं चाहता......''

मैंने चुपके से एक रुपया निकाल कर मेज़ पर रख दिया। उसने कांपते हुए हाथों से उसे उठाकर अपनी मुट्ठी में भींच लिया। माथे से पसीना पोंछते हुए पर्दा हटाकर लड़खड़ाते क़दमों से कमरे से बाहर निकल गया।

समझौता

वे नये मकान में छोड़ दफ्तर को चल दिये।

सामान अभी बिखरा हुआ ही था। मैं एक कुर्सी लेकर बैठ गयी। सोचा ज़रा सुस्ता लूं तो कपड़े बदल कर सामान ठिकाने से रखूं।

अजीब सुनसान मकान था। शहर की यह एक नयी आबादी थी। मकानों की तादाद न सिर्फ कम थी बल्कि जो थे, वे भी दूर-दूर। मुझे तो उनके दोस्त के यहां और ज़्यादा ठहरना दूभर हो रहा था। मकान की समस्या भी आजकल एक पहेली से कम नहीं। उन्होंने कूचे-कूचे की खाक छानी, हर परिचित से कहा। हजार मुसीबतों के बाद यह मकान मिला। उनका खयाल था कि सरकारी क्वार्टर्ज में कोई न कोई क्वार्टर मिल ही जायेगा। लेकिन दुर्भाग्य से कोई क्वार्टर खाली नहीं रहा। अगर उन्हें मालूम होता कि आवास के लिए मकान मिलने में इतनी कठिनाई होगी तो वे मुझे हर्गिज साथ न लाते।

मर्द आपस में गुजारा कर ही लेते हैं लेकिन औरतों का निबाह संभव नहीं। जिसके यहां हम इतने दिनों तक ठहरे रहे, वह दरअसल उनका दोस्त न था। बस यही कि वह दफ्तर में उनके नीचे काम करता था। बिचारे का वेतन कम और हमारी हैसियत भी अफ़सराना थी। हमारे कारण उन्हें कष्ट भी उठाना पड़ता था। अपने घरों में तो हर कोई गुजारा कर ही लेता है। मैंने भरसक कोशिश की कि घर के कामकाज में मेज़बान औरत का हाथ बटाऊं । लेकिन वह बिचारी मुझे ऐसा करने की इजाज़त क्योंकर देती। एक तो मैं उसके पति के अफसर की पत्नी, दूसरे नयी-नवेली दुल्हन, फिर पढ़ी लिखी भी। इधर मैं संवेदनशील, इन सब बातो को सोचती और मन मसोस कर रह जाती। उनके मन की दशा परमात्मा ज़ाने।

उधर वो भी परेशान, अभी नई उम्र के ही तो हैं। नई-नवेली प्यारी-प्यारी पत्नी से चौबीस घंटों में एक क्षण के लिए भी खुलकर बात करने का मौका न मिलता। मर्दाने में बैठे गप हांक रहे हैं। कभी ताश खेलते हैं, कभी शतरंज। मगर मन में पत्नी की कल्पना—सौ-सौ बहानों से आते हैं। दबी जबान से कुछ पूछते हैं, मैं शर्माती हूं। आखिर दूसरों के सामने शर्माना ही पड़ता है। हूं-हां करके टालती हूं। कभी-कभी गुस्सा आने लगता है। क्यों बार-बार बेमतलब की बात पूछने या कहने के लिए आ जाते

हैं। लेकिन फिर सोचती हूं करें भी क्या? हमारे मेजबान भी स्थिति से अनभिज्ञ न होंगे। लाचार थे। जगह तंग और कुनबा बड़ा।

अब जो नये मकान में आये तो दफ्तर जाने से पहले मुझे गले से लगाया और मेरा मुंह चूमा।

मैं चौंकी, आखिर अब ये नये विचार मन में क्यों आने लगे। हाथ उठाकर लम्बी-सी जम्हाई ली। फिर उठी। कमरों का जायज़ा लेने के बाद सोचने लगी कि इन्हें बांटा क्यों जाये? दो बड़े कमरे थे। एक छोटा, एक गुसलखाना, एक किचन और पाखाना सामने की छत पर, सामने का हिस्सा मालिक मकान का था। लेकिन संतोषजनक बात यह थी कि मालिक ने उस हिस्से को गोदाम बना रखा था। अन्यथा जिस मकान में मालिक खुद भी रहे वहां मुझे रहना पसंद नहीं क्योंकि ज़रूर झगड़े की कोई सूरत निकल आती है।

कमरों को लेकर तो मैंने यही तय किया कि एक बड़ा तो उनके लिए निश्चित हो गया। दूसरे में सामान और हमारे पलंग और छोटा कमरा गोदाम का काम दे। चलो छुट्टी हुई। दिल में क्या-क्या अरमान थे। लेकिन मकान मिलते कहां थे?

शाम के पांच बजे स्टोव पर पानी उबल रहा था। सोचती थी, वे आयें तो चाय डालूं। उनको देखने के लिए छत पर चढ़ गयी। एक बात से मैं बहुत खुश थी। वह यह कि हालांकि जगह सीमित थी लेकिन थी हवादार। एक तो दूसरी मंजिल पर, दूसरे शहर से बिल्कुल बाहर। परे खेतों की हरियाली तक नज़र आती थी। सोचा वे आयें तो खेतों की हवा खाने चलें। सामने लकड़ियों और कोयलों की टाल थी। दो-चार काश्मीरी कुल्हाड़ी हाथ में लिए घूम रहे थे। हमारे साथ ही धोबियों के मकानों की कतारें थीं। बांये हाथ पर बड़ा-सा मैदान था। फिर मकानों के सिलसिले। सबसे नज़दीकी मकान हमारे पिछवाड़े था। इस मकान में रहने वाले ही हमारे पड़ोसी थे। उन्हीं से कुछ बातचीत हो सकती है। हालांकि मैं ज़्यादा झिक-झिक पसंद नहीं करती। आम हिंदुस्तानी औरतों की सोहबत मुझे रास नहीं आती। लेकिन क्या किया जाये आखिर हमारी बहनें ही तो हैं, और आखिर इनसान कहां तक चुप साधे रखे। किताबें पढ़े तो कहां तक, सीना-पिरोना करे तो कब तक? आखिर दो बातें करने को जी चाहने लगता है। "कोई बड़ा कुनबा होगा?" मैंने पड़ोसियों के मकान का जायज़ा लेते हुए सोचा। लगभग आधा हिस्सा इधर से नजर आता था और बाकी आधा हमारे मकान के ठीक पिछवाड़े था और हमारी छत को सीढ़ी तक न थी। अन्यथा दूसरा हिस्सा भी देखा जा सकता था। सामने दो कमरे थे। दरवाज़े के आगे चिकें पड़ी थीं। तीसरी मंज़िल पर दो कमरे नज़र आ रहे थे। उनके बीच छोटा-सा सेहन था। लकड़ी के चौड़े-चौड़े तख्तों वाली सीढ़ी सबसे ऊपर वाले कमरे की छत पर चली गयी थी। नीचे का सेहन काफी लम्बा चौड़ा था। सेहन में हमारी तरफ को एक दस्ती नल भी लगा हुआ था।

मालूम होता था कि घर के लोग घर में नहीं थे। कोई सूरत न दिखाई देती थी।

मैं फिर उनको देखने के लिए गली की तरफ़ को झुक गयी। अभी तक न लौटे थे, गुस्सा आने लगा। पांच से ऊपर वक़्त हो गया। आखिर उनको इतना भी खयाल नहीं कि घर में अकेली घबराती होगी। कुछ खास काम पड़ गया होगा। अन्यथा बिचारे तो पर लगाकर मुझ तक पहुंच जाते।

मैं इस समय सीढ़ियों में खड़ी थी। हवा सुहानी थी। सीना फुला-फुला कर गहरे सांस लेने लगी जैसा कि हमारे स्कूल में हमें सिखाया गया था। इतने में मुझे अहसास हुआ कि कोई व्यक्ति मेरी ओर देख रहा है। नज़र उठाई। हमारे साथ वाले मकान के लम्बे-चौड़े सेहन में एक साहबज़ादे खड़े थे। नजरें मिलते ही उन्होंने बड़े सम्मान के साथ झुककर फ़र्शी सलाम किया। मैं बौखलाकर भागती हुई सीढ़ियों से उतरी और उधर से हो-हो की आवाज़ें आयीं और मुंह से बिल्लियों के लड़ने जैसी आवाज़ें निकाली गयीं।

मारे शर्म के फ़र्श पर गड़ी जा रही थी। आखिर मैं कैसी बेशर्म दिखाई देती हूंगी। बाल खुले हुए। दुपट्टा नीचे लटका हुआ। और मैं सीना फुला-फुला कर गहरे सांस ले रही थी। फिर हाथ से अपने पेट को दबा-दबा कर यह देख रही थी कि पेट कितना दबता है? इसी पर बस नहीं की, बल्कि मैं अपना हाथ छातियों के ऊपर से पेट तक फेरती जा रही थी और दिल ही दिल में अपने फेफड़ों के फुलाव पर अपने आपको मुबारकबाद भी देती जा रही थी। लेकिन क्या मालूम था कि कोई व्यक्ति मुझे इसी मुद्रा में देखता होगा?

इतने में सबसे ऊपर वाले कमरे की छत पर से कोई पुकार कर बोला,

"लो भई, मुबारक, पूरे पांच महीनों के बाद हमारा पड़ोस आबाद हुआ।"

फिर नीचे के बड़े सेहन से जवाब में किसी की तेज-सी आवाज सुनाई दी।

"खुदा हमेशा आबाद रहे। कुंवारों की भी खुदा ने सुनी।"

"कुछ न पूछो ग़ज़ब है ग़ज़ब।"

.....और मैं स्तब्ध।

दूसरे दिन 'उनके' दफ्तर चले जाने के बाद, मैं घर के काम धंधों से निवृत्त होकर, मोजे लेकर बैठ गयी। बरामदे में ठंडक थी। सोचा धूप में ही बैठूं। फिर ध्यान आया कि अगर धूप में बैठी तो संभव है, पड़ोस से फिर कुछ 'दाद' मिलने लगे। अपनी जगह से उठकर मैंने पड़ौसियों के मकान पर नज़र डाली, वहां कोई न था। इस बात का तो कल ही पता चल गया, कि वहां बेघर-बार वाले ही रहते हैं। सोचा, संभव है, अपने-अपने काम पर गये होंगे। चार बजे से पहले तो वापस न आते होंगे।

मैंने सेहन के बजाय चौड़ी दीवार पर बैठना ज़्यादा मुनासिब समझा। वहां धूप सामने की थी। सावधानी से दीवार पर चढ़ गयी और धीरे-धीरे खिसकती हुई उस जगह

पहुंची जहां से दीवार ऊपर को उठ गयी थी। मैं मौंढ पर दीवार से टेक लगा कर बैठ गयी। एक तरफ से ऊंचाई इतनी ज्यादा थी कि देखने में डर लगता था। मैं चुह तो चालाक लड़की थी कोई भद्दी-मोटी औरत तो थी नहीं। यहां बैठकर मैं ऐसे महसूस करती थी जैसे हिमालय पर्वत की चोटी पर बैठी हूं। पहले तो इधर-उधर के दृश्यों का आनंद लेती रही। फिर पांव शलवार के पायंचों से ढंककर मैंने टोकरी में से बजाय मोंजों के किताब निकाली और पढ़ने लगी।

खांसने की आवाज आयी।

चौंकी। देखा, कोने के सबसे ऊपर वाले कमरे में से एक साहब निकले और बगलों में हाथ देकर खड़े हो गये। आपकी दाढ़ी बेतरतीब थी। सिर के बाल उलझे हुए, मोटे भद्दे से। आपने मुझे देखकर बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया। हाथों के इशारे से ज़मीन की सतह और मेरे बीच के फ़ासले को नापा, फिर भौंहों के इशारे से इस खतरनाक हरकत का कारण पूछा, फिर हाथों को झटकाकर, कंधों को हिलाकर आश्चर्य व्यक्त किया और कुछ देर बाद ग़ायब हो गये।

मैंने छोटा सा घूंघट निकाला और मुंह फेर कर बैठने लगी। इतने में आप एक टूटा-फूटा मौंढ़ा लिये नमूदार हुए। अपने सेहन की दीवार पर रख दिया। फिर निचले बड़े सेहन से ऊपर तक के अंतर की ओर संकेत करते हुए मौंढ़े पर बैठ गये। एक मोटी-सी किताब निकाल कर घुटनों पर रख ली और बड़े डूबकर पढ़ने लगे।

मैंने प्रकट में उनकी हरकतों पर कुछ ध्यान न दिया।

"अरे मर जायेगा, भई मर जायेगा।" कहीं से आवाज आयी।

"मरने दो हमें, जीते रहे तो क्या मिल जायेगा। किसी की नज़र में समा जायेंगे क्या?"

मैं बड़ी जिच हो गयी। एक के बाद एक अजीब बात! खैर इसी में समझी कि खिसक जाऊं। बोरिया-बिस्तर सम्हाल कर घिसटती-घिसटती अपने सेहन तक आयी "अरे पकड़ना भई पकड़ना......"।

मैं धड़ाम से छलांग लगाकर कमरे के अंदर।

दो तीन आदमियों के नारे "क्या बात है, भई क्या बात है! अरे जो बात है भई खुदा की कसम लाजबाव है।"

इसके बाद भारी हो-हुल्लड़। वही मुंह से बिल्लियों के लड़ने की सी आवाजें।

ये थे हमारे पड़ोसी। सब के सब सिख थे, रंग-ढंग से मालूम होता था कि ज़्यादातर विद्यार्थी थे या क्लर्क। सुबह-शाम धमा-चौकड़ी मची रहती। दिन के समय थोड़ी शांति रहती। शाम को फिर वही हंगामा।

नाममात्र के लिए ही सही लेकिन सुबह के समय थोड़ा-बहुत पाठ करना मेरी दिनचर्या का अंग था। लेकिन अब वह भी न रहा। इधर भोर हुई, उधर पड़ोसियों में से किसी

एक ने मोटी-सी गाली से सुबह का ऐलान कर दिया। फिर अजब-अजब आवाज़ें, भांत-भांत के लहजे, गंदे-गंदे लतीफे—फेफड़ों की पूरी शक्ति के साथ दोहराये जाते और वह भी इस शान से कि बोलने वाला सबसे ऊपर वाली छत पर, और सुनने वाले नीचे के सेहन में खड़े 'हाय-वाय' के नारे लग रहे हैं।

फिर दातुन करके ज़ोर-ज़ोर से खांसते, हंसते। "ही ही......हाऊ हाऊ......खि खि खि खि......ऐसी बेहूदा हंसियां मैंने कभी नहीं सुनी थीं। बदन पर मालिश की जाती। डंड पेले जाते। बैठकें लगाई जातीं। अगर कहीं मेरी झलक देख पाते तो फिर जोश में उलटी-सीधी कलाबाजियां खाने लगते। सीटियां बजाते, चीखते और आवाजें कसते।

कोई ख्वांचे वाला, सब्जी-फरोश या अखबार वाला ऐसा न गुज़रता जिसकी आवाज़ की वे नकल न उतारते हों। उस खुले मैदान में अगर कोई मर्द पेशाब करने बैठ जाता तो उस पर ढेले फेंकते और गालियां देते, "अरे शर्म करो, यहा औरतें रहती हैं।"

जैसे खुद तो औरतों का बड़ा सम्मान करते थे।

शाम के समय दूसरी सभा बैठती। एक दूसरे पर फ़िक़रे चुस्त किये जाते। बेहूदा गाने गाये जाते।

फिर बगलें बजाते। दस आशिकों के कारनामे माशूक़ा की ज़बानी सुनाये जाते और दसवें आशिक की कारस्तानी पर 'हो हो' का शोर मचाते, बेढंगेपन से नाचते, आंखें मटकाते, ऐसे मौकों पर उनके सिर के बाल बिखर जाते, दाढ़ियां बेतरतीब हो जातीं, गाल दहकने लगते और वे पसीने में तर हो जाते..... तब कोई न कोई गाली की एक फुलझड़ी छोड़ता और इसके बाद अशालीनता की सीमाएं टूट जातीं।

एक छोटे से झरोखे में उनके सेहन का आधा हिस्सा भी नज़र आता था। अब मैं इनकी सूरतें भी पहचानने लगी थी। उन्होंने एक-दूसरे के नाम भी धर रखे थे। एक तो वह मोटे कद्दू से हज़रत जो मेरे सामने दीवार पर बैठे थे। दाढ़ी कैंची से कतरी हुई, मूंछें कभी ढीली, कभी तनी हुईं। चेहरा गोल, आंखें छोटी, सिर के बाल प्रायः कधों पर गिरे रहते। उनमें चिकनाई नाम को भी न होती। मालूम होता था कि न कभी बाल धोते हैं, न तेल लगाते और न कंघी करते हैं। गर्दन मोटी और लम्बाई न होने के बराबर। जब हंसते तो दरो-दीवार हिल जाते। कई क़िस्म की हंसियां हंसने में माहिर थे। आवाज़ कड़ी कटखनी, बदजबानी, बेहूदगी, गपबाजी में सबके सरदार। अक्सर भैंसा कहकर उन्हें चिढ़ाया जाता था। काफी बेशर्म थे। लेकिन ज़्यादा चिढ़ाने पर चिढ़ भी जाते। कभी मैं उनके सामने आ जाऊं तो बड़ी बेतल्लुफी से राज़दाराना लहजे में पूछते, "सुबह से दर्शन नहीं हुए थे......हमने भी खाना नहीं खाया आज।"

उनके ठीक सामने एक साहब थे लम्बे तड़ंगे, दुबले-पतले सूरत से पीलिया के मरीज, आवाज बारीक, छदरी दाढ़ी, सिर पर छोटा-सा जूड़ा और उसके बीचों-बीच से बालों का एक गुच्छा ऊपर को हवा में लहराता हुआ। उनको 'कुक्कड़' यानी मुर्गा कहा जाता

था। हर आने जाने वाले पर रौब डालते, फब्तियां कम कसते लेकिन बक-बक पर उतर आयें तो शैतान पनाह मांगे। शरीर सुडौल था। यानी भैंसे की तरह बेडौल न थे। मुझे देख पाते तो कुछ न कहते, आँखें मटकाते, पहले सिर हिलाते, फिर कंधे, तब कमर और कूल्हों का कंपन टांगों से होता हुआ पांवों में गायब हो जाता। क्लासीकल नाच की धज्जियां उड़ाते। उस समय 'भैंसा' आम तौर पर सितार बजाते। सितार भी ऐसी कि उसके तीन-चार तार हमेशा नीचे लटके होते थे।

एक गोरा बिल्ली की-सी आंखों वाला लड़का भी था। उसके बाल सुनहरे थे, दाढ़ी बाल बड़े बारीक और शायद मुलायम, उसका कद भी 'प्रेमिका' की भांति छोटा, उसका एक दांत सोने का था। वह हमेशा एक मुलायम-सी हंसी हंसता रहता। अपनी दोनों कुहनियां दीवार पर रखे, हथेलियों पर ठोड़ी टिकाये, वह मुझे देखा करता, देर तक मेरी तरफ़ देखा करता और कभी-कभी बड़े भावपूर्ण ढंग से एक आंख बंद करके आह भरता और फिर ब्रश हाथ में लेकर धीरे-धीरे चित्र बनाने लगता।

एक थे बाकर टीज, आम फ़हम ज़बान में उन्हें बकरा कहा जाता था। उनके सिर के बाल बहुत लम्बे थे। जूड़ा इतना बड़ा था जैसे भैंसे ने सिर पर गोबर कर दिया हो। हंसते तो बड़े-बड़े दांत साफ तौर पर दिखाई देते। इस विलक्षण मुद्रा के कारण उन्हें 'दांतों' भी कहा जाता था। गालों पर लकीरें भी बहुत पड़ती थीं। दाढ़ी देखकर सिर पीट लेने को जी चाहता था। यानी सिर्फ ठोड़ी पर चंद बाल, झुकी हुई गर्दन, बहरहाल सांस का आना-जाना बना हुआ था। सबसे ज्यादा शरीफ़ और नेक दिल थे। आसमान की बादशाहत उन्हीं की थी। मुझे चिक के पीछे से देखने के आदी थे।

एक और 'ढुलमुल-सा' आदमी था। उसकी दाढ़ी आम तौर पर बंधी हुई रहती थी। रंग सांवलापन लिये हुए गेंहुआ, बड़ी संगीतमय आवाज में बोलते। सूरत से गंभीरता टपकती थी। गाल फूले हुए, प्रायः बड़े सम्हल-सम्हल कर क़दम उठाते, बात करते तो ज़रा गंभीरता के साथ। मुझे निहारने की बाकायदा कोशिंश करते थे। देख पाते तो खूब मुंह फाड़कर हंसते। फब्तियां न कसते, होंटों ही होंटों में अपनी भावनाएं व्यक्त कर देते। कनखियों से मुझे देखते रहते।

कहीं परे कोने के कमरे में एक साहब और थे। उनकी छवि मेरी आंखों में स्पष्ट नहीं थी और न ही मैं उनको समझ सकी। बक़ौल मोपासां सबसे ज़्यादा दुःखी व्यक्ति वह है जिसे कोई समझ न सके। कभी वह सिख हैं तो कभी बाल अंग्रेजी तर्ज पर और दाढ़ी सफाचट और फ्रेंच कट भी, कभी एक मूंछ गायब है तो कभी दूसरी, सिर पर कभी टोपी कभी पगड़ी, कभी हैट, हर आन गिरगिट की तरह रंग बदलते थे। बात कम करते, हंसते ज़्यादा और हंसने से भी ज़्यादा शर्माते। कमरे से बाहर उन्हें कम ही देखती थी। जब निकलते तो शर्माते हुए। 'भैंसा' सबसे ऊपर की छत पर खड़े हुए उनके 'शर्माने' की पैरोडी करते। उधर 'भैंसा' शर्माने में सौ-सौ ढंग से मुंह बनाते, कंधे

उचकाते, न हिल सकने वाली कमर को हिलाते-डुलाते, कभी पहलू बदलते, इधर हंसी के मारे पेट में दुखन लेकिन शर्माने वाले को इस पैरोडी से ज़रा भी सबक़ नहीं मिलता, वह शर्माये ही जाते। मुझे कम देखते, फब्तियां बिलकुल न कसते। लेकिन मालूम होता था कि मुंह में जबान रखते हैं।

दो लड़के और भी थे, घोड़े के बछड़ों की तरह कभी दुलकी चाल से इधर आते, कभी उधर जाते, मुझे देखकर बड़ा मचलते थे, 'हाय-हाय मार डाला, मार डाला' के नारे लगाते।

वे लोग मुझसे इश्क़ चलाते वक्त अपनी सूरत आईने में देखने की ज़रूरत न समझते थे। सब के सब बीच खेत, डंके की चोट मेरे इश्क़ के जाल में फंसे रहते।

मालिक मकान का बूढ़ा नौकर कहता, "अब तो ये कुछ ज़्यादा ही शोर मचाने लगे, वरना पहले इतनी वक़्त बेवक़्त धमा चौकड़ी न मचती थी।" लेकिन मुझे कुछ लगाव-सा हो गया।

एक बार मैं उनकी निगाहों की मार से हटकर सेहन में एक तरफ़ को बैठी थी। 'भैंसा' छत पर से पुकार कर बोले, "भई एक बात पूछूं? फ़र्ज़ कर लो तुम औरत हो।"

"मैं औरत हूं?"

"अहा..... भई फ़र्ज़ कर लो।"

"फ़र्ज़ कर लिया।"

"..... और हम तुमको देखने के लिए बेकरार हैं।"

"बेशक!"

"तो हम देखा करें, तुम्हारा क्या लेते हैं। यानी (मुंह फाड़कर), सोचो।"

मुझ पर चोट थी।

भई पड़े देखें, पड़े चिल्लायें, छत पर न जायें, सब्जी के छिलके मैदान की तरफ न फैंके, कपड़े न पहनें?

एक दिन मालिक की अम्मा चली आयीं। इधर-उधर की बातों के बाद मैंने दीवारों पर सफ़ेदी के लिए कहा, पानी की नाली की मरम्मत की ज़रूरत का अहसास दिलाया, वह हामी भरती गयीं। मैंन चाय पिलाई। संयोग से हम सेहन के उस हिस्से में में चले गये जहां से वे मुझे देख सकते थें कपड़े भी ज़रा चटख रंग के पहन रखे थे।

"बेटी अगर दिल न लगे तो हमारे घर आ जाया करो। वह कोने पर तो घर है।"

"जी नहीं, दिल का क्या है? फुर्सत ही कहां, व्यस्त रहती हूं।"

आवाज़ आयी, "भई, हे! हे! धरम से हद हो गयी। आज तो नज़र नहीं टिकती।"

मैं बिदकी।

बुढ़िया ने आवाज़ सुनी या नहीं। लेकिन चेहरे से उसने कुछ ज़ाहिर नहीं होने दिया। मेरा दिमाग़ खौल रहा था। न मालूम बुढ़िया क्या सोचती होगी? यही कि आखिर दिल क्यूं न लगे? मेरी व्यस्तताओं की सच्चाई भांप गयी होगी।

उसके जाने के बाद जुनून की-सी कैफियत तारी होने लगी। यह वह मरज़ था जिसका कुछ इलाज न था। कहीं निदान न हो सकता था। धैर्य मन से जाता रहा। मैं खुद को रोक न सकी। बड़ी ही आसाधरण अवस्था में उनके सामने जा खड़ी हुई। वे आश्चर्य से मेरी ओर घूरने लगे। गुस्से के मारे मेरे हाथ-पांव कांप रहे थे। मुट्ठियां कस कर रोष भरी आवाज में चिल्लाई, तुम लोगों को वाकई शर्म नहीं आती......मैं आप लोगों के पांव पड़ती हूं।''

मैं रो पड़ी। रेत के घरौंदे की तरह गिरने लगी। लेकिन बमुश्किल सम्हल कर हट गयी।

बड़ी देर बाद चित्त शांत हुआ। मुंह हाथ धोये। इतने में 'वह' भी आ गये। लेकिन मैंने उस बात का जिक्र नहीं किया। आखिर उन लफंगों का क्या बिगाड़ा जा सकता था। यही न! मर्दों में तू-तू मैं-मैं हो जाये तो फिर बेपर की बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हो।

दूसरे दिन मैं पानी का लोटा लेकर छत पर गयी। मुझे देखकर किसी ने चूं तक नहीं की। आती बार भी कोई न बोला। मैंने उस तरफ़ देखा ही नहीं। नज़रें झुकाये कमरे में चली आयी।

दिन गुज़रने लगे।

ऐसा मालूम होता था जैसे हमारे पड़ोस में इनसानों की बस्ती नहीं, मरघट है। रोज़ की तरह सुबह होती, शाम होती। लेकिन कोई कंटीली फब्ती, कोई अपशब्द न सुनाई देता। हाय दिल, जिगर की आवाजें बिल्कुल बंद। न नाच होते, न लतीफे कहे जाते। न बाज़ारी गाने गाये जाते। न मुंह से बिल्लियों के लड़ने जैसी आवाजें निकाली जातीं।

पहले-पहल मन को कुछ सांत्वना सी मिली। लेकिन धीरे-धीरे मन उचटने लगा। क्या ये अशिष्ट लोग नैतिकता के इतने कायल हो गये हैं? वह अकेलेपन की कौन-सी अनुभूति थी जिसके कारण वे पहले दिन से ही मुझसे इतने अनौपचारिक हो गये थे? पांच महीनों के लम्बे अंतराल के बाद पड़ोस के आबाद हो जाने पर पहले-पहल उन्होंने इतनी खुशियां क्यों मनायी थीं। तादाद में इतने होते हुए भी उनमें जीवन का उत्साह इतना क्षीण क्यों हो गया था? वे इतना एकाकीपन क्यों महसूस करते थे? वह कौन-सी रिक्तता थी, जो भरने से रह गयी थी? ये कैसे आशिक़ थे? इनमें कोई दूसरा रक़ीब न था। वे सब जानते न थे कि मैं उनके हाथ नहीं आ सकती? उनको मालूम न था कि पूर्वी विशेष रूप से हिंदुस्तानी लड़की किन मर्यादाओं में बंधी होती है और उसका क्या धर्म है? फिर उन सबको मुझसे बिना किसी झिझक के अत्यंत प्रेम था।

अब वे भूत दिखाई देते थे। वे किसी और ही दुनिया के प्राणी मालूम होते थे। अब वे शरीफ़ थे। अब मैं अपने पड़ोसियों पर गर्व कर सकती थी। उनकी उम्र कितनी ज़्यादा लगने लगी थी। बूढ़े!......बूढ़े......!!

जैसे सदियां गुजर चुकी थीं, जब वे जवान थे।

एक रविवार को हम दोनों 'उनके' एक दोस्त के यहां चले गये। वहां से सिनेमाघर में पहुंचे। सारा दिन हंसी-खुशी गुजारने के बाद लौटे। घर के पास ही वह महल्ले के एक आदमी से बात करने लगे। मैं चली आयी। ......पड़ोसियों के यहां आज कुछ शोर-सा सुनकर मेरी खुशी की कोई सीमा न रही।

झरोखे से झांककर देखा। दो बड़ी-बड़ी चारपाइयों पर सबके सब बैठे थे। वह भैंसा, वह कुक्कड़, वह बछड़े, वह बाकर टीज़ आदि कैसे मासूम दिखाई देते थे। इस आसमान तले चंद बंदे थे परमात्मा के.....भैंसा धीरे-धीरे सितार टनटना रहे थे।

जी चाहा वे मुझे भी शामिल कर लें। कुछ फब्तियां ही कस लें। कुछ शोरो-गुल ही कर लें। कुछ उलटी कलाबजियां ही लगा लें.....

है बेशर्मी की बात, मैं बाहर सेहन में इस ढंग से खड़ी हो गयी कि उन्हें दिखाई दे सकूं। दूर खेतों की ओर देखने लगी। इससे भी ज्यादा बेशर्मी की बात यह कि मेरे सिर से मेरा रंगीन दुपट्टा खिसक कर कंधों पर आ रहा। लेकिन मैंने सिर नहीं ढांपा।.....

इसी बीच बातें बंद हो गयीं। मैंने छुपी नज़रों से देखा । वे आंखें झुकाये सेहन के उस हिस्से की तरफ लपक रहे थे जिधर न वे मुझे दिखाई दे सकते थे और न मैं ही उनको नज़र आ सकती थी। शाम के धुंधलके में मैली-मैली चादरें लपेटे, आगे-पीछे से चारपाइयां उठाये और फिर मौत की-सी खामोशी छा गयी।

टूटन के कारण मैंने अपना सिर थाम लिया और लगभग लड़खड़ाती हुई वापस कमरे में चली आयी। बड़े कमरे में कुर्सी पर बैठी क्या गिर पड़ी। जब मैंने आईने में अपनी सूरत देखी तो मुझे यूं महसूस हुआ जैसे मेरी आंखों की शराब ग़ायब है और होंटों की मिठास गुम, गालों की सुर्खी नदारद, सीने की कशिश खत्म और मैं बूढ़ी खूसट हो चुकी हूं......बुढ़िया......बुढ़िया!

रात को जब 'वह' वापस आये तो मैंने कहा कि मैं यहां नहीं रह सकती। घर जल्दी ही बदल लें।

"क्यों?'

"मेरा जी नहीं लगता"।

तय पाया कि अगले इतवार को हम यह घर छोड़ देंगे क्योंकि इस समय एक क्वार्टर मिल सकता था।

दूसरे इतवार को हमारा समान ठेलों पर लद रहा था।

उनकी सूरतें रंजीदा हैं, चादरें लपेटे काहिली से इधर-उधर टहल रहे हैं। मालिश नहीं करते, नाचते नहीं, उलटी कलाबाजियां नहीं लगाते, सबसे ऊपर की छत पर 'भैंसा', नीचे कुक्कड़, बकरा नल से पानी भर रहा है, वह बिल्ली की-सी आंखों वाला गोरा-सा लड़का उदास नज़रों से दूसरी तरफ़ को देख रहा है......

हम तांगे पर बैठे हैं। तांगेवाला घोड़े को चाबुक दिखाता है।

मैं महसूस करती हूं, जैसे चाहिए था कि उनको अपनी हिफ़ाज़त में ले लेती जैसे मैंने ही उनको जनम दिया था, जैसे मैंने ही उनको पाल पोस कर......

पेपरवेट

वह कितना खुश था! आख़िर छब्बीस बरस की उम्र भी क्या होती है! उसे तरक़्क़ी देकर अब बैंक मैनेजर बना दिया गया था। आहा! उसके हर्ष का भला क्या ठिकाना था? वह दफ्तर से घर उड़ कर पहुंचा। जब उसने मदन मेंशंस के सेहन में प्रवेश किया तो अचानक उसकी खुशी गायब हो गयी। उसकी पत्नी आज फिर ड्राइंग रूम की खिड़की खोले ठीक उसके सामने कोच पर बैठी थी.....

उसने फ़र्हत को बार-बार मना किया था कि इस तरह खिड़की खोलकर न बैठा करे। सामने के फ्लैट में शायद कालेज के कुछ छात्र रहते थे। जो अक्सर ताक-झांक करते रहते थे। फ़र्हत की उम्र मुश्किल से बीस बरस होगी। काश्मीरी मां की बेटी थी। कौन था जो उसे बेपर्दा अपने सामने पाये और फिर दिल मसोस कर न रह जाये और छात्र देखने में बड़े शरीफ़ बनते थे। कभी कोई बदतमीज़ी न करते थे। लेकिन खयाल था कि ज़रूर ताक-झांक करते हैं। अगर वे सेहन में ग्वाले से भी बातें करते तो उसे यही संदेह होता कि फ़र्हत की तरफ़ कनखियों से देख रहे हैं। और अगर फ़र्हत को समझाता तो वह कहती, देख लेंगे तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। क्या मैं अंदर दम घोंट कर मर जाऊं। और जब नाराज़ होता तो कहती, अच्छा अब आयंदा नहीं बैठूंगी।......लेकिन वादों के बावजूद आज फिर वहां बैठी थी।

वह भारी कदमों से सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। उसका फ्लैट दूसरी मंज़िल पर था। रास्ते में वह सोचता रहा कि आखिर इसका क्या इलाज हो? दरवाजे पर पहुंच कर उसने दस्तक दी। अंदर से शहद में डूबी हुई आवाज़ आयी, "चले आइये, दरवाज़ा खुला है।"

उसके कानों में पत्नी की मीठी आवाज गूंज रही थी। इस मिठास ने उसका मन प्रसन्न कर दिया। अतएव जब उसने अंदर कदम रखा तो पत्नी पर एकदम बरस पड़ने का खयाल भी कमजोर पड़ गया।......लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पत्नी की इस हरकत को वह और ज़्यादा समय तक सहन करने के लिए तैयार हो। आज दो-टूक फ़ैसला कर देना चाहता था।

उसने हैट उतारा और बेपरवाई से घुमाकर कुर्सी पर फैंक दिया। फिर टाई की गांठ ढीली करते हुए उसने कुपित दृष्टि से पत्नी की तरफ़ देखा। लेकिन वह डबल रोटी के टुकड़े काटने में लगी हुई थी। उस समय ऐसा वातावरण था कि अगर पैंतरा बदलकर हंसने-खेलने लगता तो भी कुछ हर्ज न था। आज खुशी का मौक़ा भी था। लेकिन वह इस बात पर तुला हुआ था कि अब इस मामले में ज़्यादा ढील न देगा।

वह मुंह फेर कर दूसरी खिड़की के सामने खड़ा हो गया और पतलून के दोनों सिरों को पकड़ कर ऊपर की तरफ़ खींचा। उसकी कमर पतली थी और चूतड़ों का उभार भी बराय नाम था। नीचे को ढलक-ढलक जाती थी। फिर वह उलट-पुलट कर अपने हाथों को देखने लगा। उसके हाथ भी छोटे-छोटे हलके-फुलके से थे। उंगलियां पतली और नाजुक। एक तो उसमें यह बड़ी कमी थी कि उसके तेवर मर्दाना नहीं थे। न उसकी आवाज़ भारी और रौबदार थी। अतएव चाहे वह किस क़दर भी ग़ज़ब की हालत में हो देखने पर ख़ाक रौब न पड़ता था।

खिड़की के सामने खड़ा-खड़ा वह उंगलियां चटखाता रहा। एक बार फिर उसने भौंहों पर बल डालकर पत्नी की तरफ़ देखा। लेकिन वह बच्चों की-सी लगन के साथ अपने काम में व्यस्त थी। यह भी एक बड़ी दिक्क़त थी। आखिर वह बच्चा ही तो थी। वह संकेतों से कुछ न समझती थी। वह मूर्ख नहीं थी। बस उसके स्वभाव में बच्चों की-सी सहजता थी। अगर कोई बात कहो तो निहायत भोलेपन से कोई सवाल पूछती। उसका जवाब तो फिर कोई और सीधा-सादा सवाल पूछ बैठती। अब वह महज़ लड़की न थी। शादी हुए लगभग एक साल हो चुका था। लेकिन उसे इस बात की भी ख़बर न थी कि मर्द किन भूखी नज़रों से ख़ूबसूरत औरतों को देखते हैं। उसे अगर यह बात समझाइए तो बस एक ही जवाब देती......"देखते हैं, तो देखने दीजिए......" उसने जब देखा कि फ़र्हत का ध्यान उसकी तरफ़ नहीं है तो उसने मुंह फेर लिया और सोचने लगा कि अब वह बातचीत की शुरुआत क्यूंकर करे। अगर वह देख लेती तो उसे मालूम हो जाता कि वह नाराज़ है। अब वह समझ रही है कि पति कपड़े बदल रहा है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों नाराज़ होने की संभावना कम होती जा रही थी। दरअसल झगड़ा तुरंत शुरू हो जाना चाहिए था। इस तरह सोच-सोच कर नाराज़ होने में कोई असर पैदा नहीं किया जा सकता। अतएव उसने और अधिक देरी को उचित न समझते हुए पत्नी की तरफ़ पीठ फेर ली और कहा, "फ़र्हत!"

फिर वह अपनी आवाज़ की स्थिति पर गौर करने लगा कि वाक़ई उससे दिल की नाराज़गी व्यक्त होती है या नहीं......लेकिन वह कुछ फ़ैसला न कर सका।

"जी।" फ़र्हत की आवाज़ से यह प्रकट नहीं होता था कि उसे किसी असाधारण बात का अहसास हुआ है।

अब उसने फ़ैसला किया कि उसे निहायत ड्रामैटिक अंदाज़ में घूम कर उसकी आंखों में आंखें डाल देनी चाहिए। और उसे देर हर्गिज़ नहीं करना चाहिए। लेकिन जल्दी ये मानी भी नहीं कि उसके चेहरे से क्रोध के हाव-भाव ही अदृश्य हो जायें। इस सोच-विचार में कुछ देर भी हो गयी। वह घूमा तो चेहरे से भाव तो भली भांति प्रकट हो रहे थे लेकिन उतावलेपन में वह उन जोशीले शब्दों को भूल गया जो कि उसे इस मौक़े पर कहने चाहिए थे। कुछ क्षण तक वह पत्नी की आंखों से आंखें मिलाये रहा लेकिन उचित शब्द न मिलने के कारण वह भावों की तीव्रता को क़ायम न रख सका। वह जानता था कि अब उसे कुछ न कुछ कहना चाहिए, "फ़र्हत आज तुम फिर खिड़की में बैठी हो।"

यह सुनकर फ़र्हत ने बड़े बचकाना ढंग से दांतों तले ज़बान को दबाया और खिड़की से ज़रा हटकर दूसरी कुर्सी पर जा बैठी। वह सोचने लगा, फ़र्हत कहीं मोटी तो नहीं हो रही? उसे पतली औरत पंसद नहीं थी। वह ज़रा गदराये हुए शरीर वाली औरत को ज़्यादा पसंद करता था। इस समय फ़र्हत का शरीर आइडियल शरीर था लेकिन अब उसे और ज़्यादा मोटापे की ज़रूरत नहीं। आज उसके हाथ और पांव मेंहदी से रंगे हुए थे। सुबह उसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया था। उसके शरीर की रंगत पर मेंहदी का रंग खूब खिलता था।

पति को चुपचाप घूरते देखकर फ़र्हत ने कहा, "अब तो मैं खिड़की से हट गयी हूं।"

उसे अचानक याद आया कि उसे नाराज़ होना चाहिये और इस झगड़े का हमेशा के लिए फ़ैसला कर देना चाहिए। लेकिन कितनी मुश्किल आन पड़ी । फ़र्हत को गलती का अहसास तक नहीं। तो फिर उसे इस हरकत से क्यूंकर बाज़ रखा जाये। आजकल की लड़कियां सातों आसमानों की खबर रखती हैं। एक फर्हत थी जो कि लड़कपन क्या बचपन छोड़ती ही न थी। सूरत देखो, बातें सुनो, उसके कार्यकलापों का अध्ययन करो, क्या मजाल जो गहरे सोच-विचार की हवा तक लगी हो। अभी तक जैली और क्रीम की शौकीन है। बंदर-बंदरिया का तमाशा देखती है। अगर कहीं कोई बुद्धू पति मिला गया होता तो इसे आटे-दाल का भाव मालूम हो जाता।

फिर उसने सोचा, यह नयी रोशनी का ज़माना है। मुझे अपनी पत्नी के मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन करना चाहिये। तभी उसे सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है। अतएव एक गहरी बहस की मानसिकता बनाकर उसने कहना शुरू किया, "देखो फ़र्हत! अब मेरे कहने से तुम हट गयी हो लेकिन यह है कि तुम वहां बैठती ही क्यों हो?"

फ़र्हत ने अपने नाखूनों की सुर्खी को देखते हुए कहा,

"मैं तो यों ही बैठ जाती हूं। अंदर रोशनी कम होती है। इधर रोशनी भी खूब है। खिड़की खोल देने से हवा भी खूब आती है।"

"तुम हवा का बहाना गढ़ती हो हमेशा......" फिर उसने सोचा 'बहाना' शब्द उपयुक्त नहीं है यहां पर। इसका तो यह अर्थ हुआ कि मुझे अपनी पत्नी के चाल-चलन पर संदेह है। हालांकि चाहे कुछ भी हो फ़र्हत के कैरेक्टर पर शक नहीं किया जा सकता। "मेरा मतलब है कि बार-बार उस बात को दोहराती हो। मैं कहता हूं कि गैरों को देखने का बहाना मिल जाता है। और वे तुम्हें देखते रहते हैं......" फिर उसने सोचा कि फ़र्हत कहेगी कि अगर देखते तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे।......"देखो ना दुनिया की ज़बान नहीं पकड़ी जा सकती......अब यह नाखुनों का देखना बंद करो......जो मैं कहता हूं, वह भी सुन लिया करो गौर से......"

"मैं तो सुन चुकी इतनी बार......"

इस बार उसने बड़े आवेश में कहा, "अगर सुना होता तो अमल न करतीं......"

"मैं तो हमेशा ग़ौर से सुनती हूं।"

"तो क्या कह रहा था मैं?"

फ़र्हत ने आंखें झुकाते हुए लाड़ से मुंह फुला-फुला कर कहा, "आप कह रहे थे कि दुनिया की ज़बान पकड़ी नहीं जा सकती।"

"हां तो मैं....."

फ़र्हत उठकर उसके पास आ गयी और उंगलियां बढ़ाकर बोली, "लाइए मैं आपकी ज़बान पकड़ लूं।"

"खुदा की क़सम मैं मार बैठूंगा......इतना भी तो समझो कि जब तुम खिड़की खोलकर सामने जा बैठती हो तो दूसरे क्या समझेंगे?"

"तो अब वहां कौन बैठा है?"

"गुड़ खुला पड़ा हुआ तो क्या मक्खियों को आते देर लगती है?"

"आती हैं। मक्खियां तो आया करें हमें डर है किसी का?"

"हां तुम तो यही कहोगी..... लोग इस तरह बात को नहीं टालते।"

"तो वो क्या कहते हैं?"

"कहते क्या हैं, यही कि औरत की ख़्वाहिश है कि लोग उसे देखें। वरना ख़्वाम-ख़्वाह खिड़की में आकर क्यों बैठे......"

"तो गोया आपका मतलब है कि मेरा दिल चाहता है कि लोग मुझे देखा करें......"

"तौबा मेरी......भई मैं नहीं कहता, लोग कहते हैं।"

"आपने किसी को कहते सुना?"

"फिर यही बात......भई कहने की किसी की मजाल भी है लेकिन मैं तुम्हें समझाना चाहता हूं कि आखिर शरीफ़ औरत......"

वह चुप हो गया। फ़र्हत एक फूल बालों में उड़स कर खिडकी के शीशे में उचक-उचक कर देख रही थी कि कैसा मालूम होता है। इस तरह देखते-देखते मुंह फेर कर उससे मुखातिब होकर बोली,

"आप चाय नहीं पियेंगे। आज स्लाइस नमकीन अंडों में तले जायेंगे।"

"और मैं जो बात कह रहा था। तुमने बीच ही में काट दी।"

"मैंने कब काटी बात! आप खुद ही चुप हो गये। मैं समझी बात खत्म हो गयी।"

वह थक कर कुर्सी पर बैठ गया। उंगलियों से कनपटियां दबाने लगा।

"क्या सिर में दर्द है?" फ़र्हत ने परेशान होकर पूछा'।

उसने 'न' में सिर हिला दिया।

"तो चाय मंगवाऊं?"

"नहीं मैं चाय नहीं पियूंगा।"

"वाह कैसे नहीं पियेंगे।" यह कह दोनों हाथ पीठ पीछे किये वह मटक-मटक कर आगे बढ़ी। उसकी आंखों में शरारत नाच रही थी।

अब बड़ा नाजुक वक़्त आ रहा था। बस अभी फ़र्हत उसे गुदगुदायेगी, गले में बाहें डालकर लटक जायेगी लेकिन वह अपनी गंभीरता बनाये रखना चाहता था। वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ और इस अंदाज़ से जैसे उसने उसकी तरफ देखा ही न हो। रुखाई से बोला, "अच्छा जल्दी से मंगवा लो। मुझे बहुत ज़रूरी काम से बाहर जाना है।"

नौकर चाय लेकर आया। चाय पीते समय उसने गंभीरता को हाथ से नहीं जाने दिया। दिल ही दिल में वह सोचता रहा कि फ़र्हत को क्यूंकर समझाये? चाय पीने के बाद उसने तौलिए से मुह पौंछते हुए फ़र्हत की तरफ़ गहरी नज़रों से देखा, "सच्चाई यह है कि तुम अपनी हरकतों से मुझे बहुत दुःख पहुंचाती हो। मैंने तुम्हें प्यार से समझाया। नाराज़ हुआ। लानत-मलामत भी की लेकिन न मालूम तुम किस मिट्टी की बनी हुई हो?"

इतने में नौकर ने सूचना दी कि रशीदा की बाजी मिलने आयी हैं......यह सुनकर फ़र्हत के चेहरे पर खुशी की लहर-सी दौड़ गयी। उसकी सूरत से ज़ाहिर होता था कि वह दिल की बहुत ही शुक्रगुजार थी......उससे पीछा छुड़ाकर वह ज़नाने में चली गयी।

फ़र्हत का इस ढंग से चले जाना उसे बिल्कुल नहीं भाया। वह दार्शनिक ढंग से सोचने लगा कि विवाहित व्यक्ति की खुशी का दारो-मदार उसकी पत्नी पर होता है। वे भी कैसे सुनहरे दिन थे जब वह कुंवारा था। इसी फ्लैट में वह अकेला रहता था। चिंताओं को पास नहीं फटकने देता था। उस समय खुश रहना एकदम अपने बस में था। अब पत्नी से पाला पड़ा है। वे अलबेले दोस्त भी विदा हुए और पत्नी घर की रानी बन बैठीं। रात को घर आने में ज़रा देर हो जाये तो जबाब तलब करती। रूठ जाती बल्कि ठुनकने लगतीं......अब उसका खुश रहना पत्नी के हाथ में था और पत्नी

को इस बात का अहसास तक न था। वह पत्नी से मार पीट भी नहीं कर सकता था। जब कभी अत्यंत आवेश में आकर उसे मारने पर तुल भी जाता तो फिर सोचने लगता कि पत्नी के शरीर के किस भाग पर चपेत मारे और वह कोई फ़ैसला न कर पाता।

उसकी कितनी इच्छा थी कि फ़र्हत से उसके मधुर संबंध बने रहें। लेकिन उसने तो जैसे उसे न समझने की क़सम खा रखी थी। उफ़ किस उपेक्षा से उठकर चली गयी हरामज़ादी—रशीदा की आपाजी को मिलने के लिए। उसे अपने आप पर दया आने लगी। वह कितना बेबस था। आज की शाम बेकार जाने पर उसका दिल बिल्कुल ही टूट गया। उसका विचार था कि मैनेजर बन जाने की ख़ुशी में फ़र्हत को जैकब वालों के यहां की जेली और क्रीम खिलाऊं और वह कितनी ख़ुश होगी और चटोरी बिल्ली की तरह उंगलियां तक चाटने से बाज न रहेगी। लेकिन कमबख़्त ने ख़ुद ही काम बिगाड़ दिया। उसके मन में और मेल-जोल से रहने की जितनी तीव्र भावना थी अगर उस भावना का दसवां भाग भी फ़र्हत के मन में होता तो भी आपस में संबंध बहुत मज़बूत हो सकते हैं.....लेकिन वह यों समझने वाली नहीं। अगर कल वह मर जाये तो कमबख़्त को उसकी क़दर मालूम हो।

अपने मरने के विचार से उसे कुछ सुकून मिला। फ़र्हत के सुंदर चेहर पर फैले हुए बालों, उसकी सुर्ख़ नाक और दिल चीर देने वाली चीख़ों की कल्पना से उसके मन में ढाढस बंधी......और फिर उसकी आंखों में आंसू आ गये......

वह मेज पर टाइमपीस के पास खड़े हुए तांबे के बारहसिंघे को हाथ में उठा कर देखने लगा......

फ़र्हत, रशीदा की आपा से हंस-हंस कर बातें कर रही थी। अपने पति की मनोदशा से बेख़बर कैसे मज़े-मज़े से गप उड़ाने में मगन थी..... फिर अचानक एक विचार उसके मन में बिजली की तरह कौंध गया......वह घर से चला गया, किसी अज्ञात स्थान पर, फिर वापस नहीं आयेगा......मौत की तुलना में यह विचार अच्छा था। मरना मुश्किल था और यह आसांन भी था और परिणाम मौत जैसा ही प्राप्त हो सकता था। उसने सोचा कि कल सूरज उगने से पहले बल्कि साढ़े चार बजे वाली गाड़ी पर वह सवार हो जायेगा और कभी वापस नहीं आयेगा। सुबह के समय जब वह जागेगी तो इधर-उधर भागी-भागी फिरगी। नौकर से पूछेगी। तार दिलवायेगी। पागलों की तरह हरकतें करेगी। उस समय वह ख़ुद न मालूम किस जगह पहुंचा होगा।

यह विचार ठीक था। रशीदा की आपा भी रात के साढ़े नौ बजे तक बैठी रही बल्कि फ़र्हत ने जान-बूझ कर बिठाये रखा होगा......यह सोचकर उसे और भी गुस्सा आ गया। उसके चले जाने के बाद फ़र्हत ने खाने के लिए कहलवा भेजा। उसने मना कर दिया। फिर मालूम हुआ कि उसने अकेले ही खाना खा लिया है। इस पर उसे गुस्सा तो बहुत आया लेकिन ख़ैर कोई हर्ज नहीं अब वह उससे सब बातों का बदला

लेगा। फिर नौकर से मालूम हुआ कि फ़र्हत सोने की तैयारी कर रही है और उसे कहलवा भेजा है। उसने कह दिया कि काम कर रहा हूं।

फिर उसने सोचा कि जाने की तैयारी अभी से कर लेनी चाहिए । उसने नौकर को भेजकर अपना सूटकेस मंगवा लिया..... नौकर सूटकेस ले आया तो उसने पूछा कि बीबी जी ने कुछ कहा तो नहीं? नौकर बोला, कुछ नहीं कहा।

उसने सूटकेस तैयार कर लिया। बिस्तर बांध दिया और नौकर को हिदायत दी कि सुबह जल्दी ही उठना होगा और तांगा लाना होगा।

इसके बाद उसने तीन बजे का अलार्म लगा दिया।

नौकर चला गया। अब पूर्ण एंकात था। छोटे फ्रेम में उसकी पत्नी की तस्वीर रखी थी। वह उसे देखता रहा। फिर उसने अलविदाई चिट्ठी लिखने की ठानी। कागज़ और कलम लेकर बैठ गया।

''जान से प्यारी फ़र्हत......'' यह ठीक नहीं सिर्फ ''डियर फ़र्हत'' काफी होगा। बल्कि सिर्फ 'फर्हत' लिख दिया जाये तो और अच्छा होगा।

फिर उसने एक दर्दनाक सा मज़मून बनाया। मैं तुमसे तंग आकर जा रहा हूं और हमेशा के लिए जा रहा हूं। मुझे तलाश करने की कोशिश न करना। अब मैं मिल नहीं सकता। देखो शौहर को खुश न रखने का यही नतीजा निकलता है......वगैरह।

चिट्ठी लिखकर उसने मेज पर इस अंदाज़ से रख दी कि उस पर फ़ौरन नज़र पड़ सके।

रात इसी तरह सोफ़े पर सोते-जागते काटी। घड़ी का अलार्म बजते ही उसने नौकर को जगाया जो मुंह धोकर कपड़े पहनने लगा। नौकर से कहा कि तांगा ले आओ और सामान रख दो।

फिर उसने कमरे पर अलविदाई नज़र डाली। कुछ क्षणों तक इधर-उधर घूमता रहा। फिर सोने के कमरे के पास से गुज़रा तो उसने दरवाज़े को यूं ही थोड़ा-सा धक्का दिया कि देखें दरवाज़ा खुला है या नहीं। दरवाजा खुला था। इसका मतलब है कि उसकी पत्नी उसका इंतज़ार करती रही थी।

उसने अंदर की तरफ झांका। बड़ी खिड़की के पास उसकी पत्नी सोयी पड़ी थी। उसने सोचा कि आखिरी बार पत्नी को देख लिया जाये।

उसकी पत्नी बस बच्चा ही थी। सोते में रज़ाई इधर-उधर खिसक जाती लेकिन उसकी नींद ऐसी गहरी थी कि उसे कुछ खबर तक न होती। अतएव अब फिर रज़ाई खिसक गयी थी।

पास पहुंचा तो खिड़की के शीशों में से आने पाली चांदनी में उसकी पत्नी बहुत सुंदर दिखाई दे रही थी। शायरों के क़ौल के मुताबिक़ उसके होंट खिले हुए थे। उनमें

से दांत मोतियों की लड़ी की तरह दिखाई दे रहे थे। बंद आंखें जैसे दो पैसों से ढंकी हुई हों। गरेबान के बटन भी खुले थे और कमीज़ भी इधर-उधर खिंच गयी थी और......

उसने रज़ाई के दोनों कोने पकड़कर ऊपर को खींचे । हर रात उसे इस तरह करना पड़ता था।......ऐसा न हो बेचारी सुबह सर्दी से अकड़ जाये। रज़ाई ऊपर खींचकर उसने उसके सिरे फ़र्हत के पहलुओं में दबाये ताकि शरीर हर तरफ़ से ढंका रहे।......फिर वह जाने लिए मुड़ा......मैं जा रहा हूं प्यारी फ़र्हत मेरी जान से अज़ीज़......उसने सोचा कि जाने से पहले उसके माथे का हल्का-सा चुम्बन ले लिया जाये। उसे इस बात की खबर तक न होगी......

और वह ओवर कोट को समट कर धीरे-से नीचे को झुका। फर्हत की नींद की माती आंखें आधी खुल गयीं। उसने पति को देखा तो होंटों पर हल्की सी मुस्कान खिल उठी। पति ठिठका। फ़र्हत ने नींद ही में अंगड़ाई के लिए बाहें उठायीं और कोमलता के साथ लिपट कर बड़ी उमंग से अपनी तरफ़ खींचा और वह बावजूद इनकार के खिंच गया......फ़र्हत ने उसे जूतों समेत रज़ाई में छुपा लिया।

नौकर की आवाज़ आयी, "जी सामान तांगा में रख दिया है......"

फ़र्हत ने नींद में डूबी हुई आवाज़ में कह दिया, "सामान उतार कर ऊपर ले आओ......" और वह कुछ नहीं बोला।

दीमक

चाबी का गुच्छा ज़ैनू के मैले आंचल से बंधा लटक रहा था। वह फूंकें मार-मार कर आग जलाने में जुटी हुई थी। मुंह लाल, आंखे पानी-पानी, बालों में राख। ख़ालिद हाथ में यूकलिप्टस की कुछ हरी पत्तियां लिये अपनी मां को उनकी खुशबू सुंघाने की कोशिश कर रहा था......जब आलूओं के कत्ले मसाला और घी में खूब लथपथ हो गये तो उसने पतीली में पानी डालकर ढक्कन से ढंक दिया। पानी डालने से जो सूं की आवाज़ निकली तो ख़ालिद 'सूं सूं' करके उसकी नक़ल उतारने लगा। उसके बाल आगे को गिरे हुए थे और आंखें बमुश्किल दिखाई देती थीं।

नाजी आठ वर्षीय बच्ची मणिपुर नाच नाचती हुई रसोई में आयी। पीछे-पीछे उसका बड़ा भाई मज्जू छोटे कनस्तर का मृदंग बजाता अंदर आया। नाजी ने दोनों हाथों की उंगलियां एक दूसरे में फंसा कर बाजू उठाये और आंखों पर हाथों का साया करके आंखें मटकाने लगी। कभी एक नथुने में से नाक बहती लेकिन 'सरड़' की आवाज के साथ गायब हो जाती। नाजी गर्दन को खास अंदाज में घुमा-घुमाकर कूल्हों को भद्दे ढंग से झटके दे-देकर लट्टू की तरह जो चक्कर खाने लगी तो उसका पांव रपट गया और वह औंधे मुंह बाल्टी में जा गिरी। खालिद हंस कर आगे को झुका। उसकी टेढ़ी कमज़ोर टांगें उसका बोझ न सम्हाल सकीं। संतुलन बिगड़ गया। वह नाक के बल गिरा तो दो तीन थालियां भी लुढ़क गयीं। एक हंगामा मच गया। मज्जू ने मृदंग बजाना बंद करके अंग्रेजी नाच शुरू कर दिया। जब वह पतली-पतली टांगें उठाकर नाचता तो उसके घुटने गले में लटके हुए कनस्तर से टकरा-टकरा कर कानों के पर्दे फाड़ देने वाला शोर पैदा करने लगे।

ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार

हाऊ आई वंडर वाट यू आर

ट्विंकल ट्विंकल......

मां की ललकार सुनाई दी। बच्चों को शोर करने से रोकने के लिए वह खुद उनसे भी ज़्यादा जोर से चिल्लाने लगती थी।

"मैं कहती हूं तूने मेरी रीडर कहां रख दी! नाजी की बच्ची !' सबसे बड़ी बहन नज्मी आन चिल्लाई। उनके नथुने फड़क रहे थे। गर्दन की रगें बोलते समय उभर आती थीं।

नाजी को मां पुचकारने लगी। उसके होंट से खून बह रहा था। वह रोये जाती थी। मां ने दिलासा देते हुए दो आने का लालच दिया । ताकि वह चुप हो जाये लेकिन वह तैयार न हुई। "नहीं, मैं दो आने नहीं लूंगी। मैं तो वह लाल-लाल फूलों वाला फ्राक पहनूंगी।" जैसे कि यह नाच न था, एक साज़िश थी। जिसमें अम्मा को फंसाकर दरअसल फूलदार फ्राक ऐंठने का इरादा था।

"नज्मी मरदूद तू सारस की तरह लम्बी-लम्बी टांगें निकाले बेशर्मी से इधर-उधर भागी फिरती है। तुझको अक्ल कब आयेगी?"

"हाय अल्लाह मैं कहां जाऊ? मेरी रीडर जो छुपा दी है नाजी की बच्ची ने।"

बच्चों के अब्बा आये, "पानी गर्म हो गया क्या?"

"हो रहा है। देखिए ना! बच्चों ने क्या गदर मचा रखा है?"

"अरे कमबख्तों! तुमको नाच पढ़ने के लिए नहीं जाना है क्या? क्यों बे खालिद तू जितना छोटा उतना ही खोटा। अपनी मां को काम नहीं करने देता। हर वक़्त उसका आंचल पकड़े रहता है। गधे के बच्चे।" अपनी गाली पर खुद ही मुस्कुराकर उसने कनखियों से पत्नी की तरफ देखा! "तेरा बाप गधा और तेरी अम्मा गधी।"

"हटाइए भी !' जैनू बिगड़ी, "सुबह सवेरे अल्लाह का नाम लीजिए ना। बच्चे क्या तमीज़ सीखेंगे?"

ज़ैनू को खालिद बहुत प्यारा था। वह उसे भाग्यवान समझती थी। इतना बड़ा हो गया था मगर वह मां का दूध पिये जा रहा था और वह पिलाये जा रही थी। उसने घसीट कर खालिद को गोद में ले लिया। कमीज़ उठा, छाती उसके मुंह में दे दी और ऊपर दुपट्टे का साया डाल दिया।

"भई यह क्या हरकत है? सौ मर्तबा समझाया कि अब इसे अपना दूध न पिलाया करो।"

"कहां पिलाती हूं। यह तो कभी-कभी चुप कराने का हीला है।"

"लाओ पानी!'

"ज़रा सब्र कीजिए ना! बैठ जाइए घड़ी की घड़ी।"

और स्टूल पर टिड्डे की तरह टांग पर टांग रख कर बैठ गया।

जैनू ने पानी में उंगली डाली। "नज्मी यूं तो बड़ी शौकीन बनती है। एक की बजाय दो-दो चोटियां लटकाये फिरती है लेकिन सिमटते हैं तुझसे? देख तो बालों की लटें कैसी उलझ रही हैं?'

"शौक़ीन, शौक़ीन, कहां हूं मैं शौक़ीन? आप जब तब मुझ पर ही इल्ज़ाम धरती हो। दो चोटियां न करूं तो करूं भी क्या? इतने घने बाल एक चोटी में सिमटते ही कहां हैं?" बड़बड़ाती जमीन पर ज़ोर-ज़ोर से पांव मारती हुई वह चली गयी।

"मज्जू जा मेरा बेटा! चचा से कहो, खाना खा लें आकर। आज तो यों भी देर हो गयी है।"

ज़ैनू का देवर बी.ए. आनर्ज का विद्यार्थी था।

मज्जू चचा को बुलाने गया। चचा कितनी देर से बैठा उबल रहा था। अब उसने पक्का इरादा कर लिया था कि भूखा ही पढ़ने चला जायेगा ताकि उसका भाई भाभी पर नाराज़ हो और आयंदा वह उसे एक मामूली हस्ती समझ कर खाना तैयार करने में देर न लगाया करे। अतएव उस तरफ से मज्जू ने कमरे में प्रवेश किया और दूसरी तरफ से चचा कमरे से बाहर "चचा, अम्मां कहती हैं खाना खा लो।"

"अब इतना वक़्त कहां है? खाना खा लीजिए अब!....." और वह होंटों पर ज़बान फेरता हुआ चल खड़ा हुआ। उसने अपने चेहरे को ऐसा पीड़ित-सा बना लिया जैसे उसे इस घर में हफ्ते भर से खाना न मिला हो और न आंयदा हफ्ते भर तक कोई उम्मींद हो।

मज्जू ख़बर लाया, "चचा चले गये। वो कहते थे, "अब वक्त नहीं है।"

"हाय मैं मर गयी। बिचारा भूखा चला गया। सारा दिन भूखा रहेगा। अच्छा लो, लड़के के हाथ खाना कालेज ही भिजवा दूंगी।"

"कालेज क्या करोगी भिजवाकर। उसने सौ मर्तबा कहा है कि उसका खाना कालेज मत भेजा करो। सबके सामने खाने से उसको शर्म महसूस होती है। लाओ मुझे पानी दो कहीं मैं दफ्तर से न रह जाऊं।"

"यह लीजिए, पानी तो हो गया गर्म..... अच्छा तो मैं कहती हूं दोस्त को बुला लो। खाना खा ले उसे भी जाना होगा।"

"बहुत अच्छा, पकाओ रोटी।"

वह उठा, स्टूल अंदर के कमरे में रखा और एक कुर्सी खिसका दी।

"मज्जू मेरा अच्छा बेटा। जा, नाजी को साथ ले जा। अपना मुंह भी धो और छोटी बहन का मुंह भी धो डाल। फिर आकर खाना खा लो। तब मैं तुमको अच्छे कपड़े पहनाऊंगी।"

"कमबख़्त नौकर कहां हैं?"

"वह दूध लेने गया है। जहां जाता है, बैठ जाता है। आप नहा लिये क्या?"

"साबुन का पता नहीं, तौलिया मिलता नहीं।"

"ठहरिये मैं निकाले देती हूं नया तौलिया।" ख़ालिद को छाती से हटाया तो वह ठिठकने लगा। "अरे हट बेटा! मां को नोच कर खा ही जायेगा। क्या?"

पति को साबुन और तौलिया देने के बाद वह फिर चूल्हे के आगे आन बैठी। मज्जू और नाजी भी मुंह धो के आ गये।

''शाबाश, शाबाश ! कितने अच्छे बेटे हैं। लो बैठो अब खाना खा लो......मज्जू बेटा तुम्हारी आपा कहां है?''

''आपा नज्मी अंदर के कमरे में कपड़े सीने की मशीन से लिपटी रो रही हैं।''

ज़ैनू ने जल्दी से उनके आगे खाना रखा।

''मज्जू छोटे भैया को भी बिठा लो अपने पास। उसको बहुत छोटा लुक्मा शोरबे में खूब भिगो-भिगो कर देना। झगड़ना नहीं। रोटी की ज़रूरत हो तो रकाबी में से ले लेना......मैं अभीं आई।''

अंदर वाला कमरा, जहां 'आपा नज्मी' कपड़े सीने की मशीन से लिपटी रो रही थीं अपेक्षाकृत अंधेरा था। वहां बहुत बड़े-बड़े ट्रंक पड़े थे। जो ज़ैनू को लगभग चौदह बरस पहले शादी के मौके पर जहेज़ में मिले थे। इनके अलावा क़ीमती कपड़ों के ट्रंक, लोहे की पेटी, गहने नक़दी वगैरह सब कुछ इसी कमरे में रखा जाता था। मज्जू के बक़ौल आपा नज्मी सिसकियां भर-भर रो रही थी। उसकी गदराई हुई टांगें फैली हुई थीं। वह औंधे मुंह पड़ी थी। चेहरा बालों की घटाओं में छुपा हुआ था। उसने अम्मां की पदचाप सुनी लेकिन सिर ऊपर न उठाया और न रोना बंद किया। वह लगातार हिचकियां लेती रही। जब वह गहरी-गहरी सिसकियां लेती तो उसकी बाहों और कमर में कंपन पैदा हो जाता। ज़ैनू चुपचाप उसके पास खड़ी हो गयी। क्षणिक मौन के बाद वह बैठ गयी। और उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया। वह और तीव्रता से रोने लगी। ज़ैनू उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

''नज्मी रानी क्या बात है? मेरी बच्ची तू मेरे कहे का बुरा मानेगी। तू तो मेरे जिगर का टुकड़ा है। मेरी आंखों का नूर है। पगली तुझे इतना भी मालूम नहीं तुम्हारी अम्मा तुझे कितना प्यार करती है। मेरी रानी! तेरे ही दम से तो इस घर की रौनक़ है। तुझे क्या तकलीफ़ है ? तेरे पास अच्छे-अच्छे कपड़े नहीं या खर्च करने के लिए पैसे नहीं या खूबसूरत गुड़िया नहीं..... कोई लड़की है? अड़ोस-पड़ोस में जिसके पास तुझसे ज़्यादा कपड़े हों। तू मेरी सयानी बेटी है। तू उस दिन फ़ातिमा की अम्मां से कह रही थी कि हमारी अम्मां जी हमको फुज़ूल प्यार नहीं करतीं, वह तहे दिल से हमसे मुहब्बत करती हैं। बता तो मेरी लाड़ली, आज तुझ पर क्या वहम सवार हो गया है कि तेरी अम्मां तुझको प्यार नहीं करती! क्यों तू इस काल कोठरी में पड़ी फूट-फूट कर रो रही है? तेरे रोयें दुश्मन। तेरी बला जाने यह रोना-धोना क्या होता है? क्या अब तू यह समझने लगी कि तेरी अम्मां बेइंसाफ़ है? कठोर है? बेरहम है?''

नज्मी सिसकियां भरती रही।

जैनू ने घसीट कर बेटी को गोद में ले लिया, "मेरी लाडली अब तू सयानी हो गयी है। जानती है अब तेरी उम्र क्या है? अब तुझको तेरहवां बरस शुरू हो चुका है। मैं पंद्रह बरस में ब्याही गयी थी। तुझे क्योंकर समझाऊं? तु खुद ही समझ ले। अब तू दूध पीती नहीं रही। अच्छा तू ही बतला कि तेरी उम्र की लड़की एक तंग-सी फ्राक और एक जांघिया पहने, जांघों तक लम्बी टांगें निकाले घूमती अच्छी मालूम होती है? माना कि तू अपने घर में रहती है लेकिन अब तेरी उम्र घर में इस तरह घूमने की नहीं है। मेरी बच्ची ! ये बातें मां-बाप को इशारों-कनाओं में कहनी पड़ती हैं। अक्लमंद और सुघड़ बेटियां थोड़े कहे को बहुत समझती हैं। भौंह के इशारे से मतलब को पा लेती हैं—अपने बाल देख, रानी! बालों की देखभाल किया कर! कितने लम्बे, कितने काले, कितने घने और कितने बोझल हैं तेरे बाल! मैं तुझको दो चोटियां गूंधने से मना नहीं करती और न मैं इसको बुरा समझती हूं। सुन मेरी लाड़ली, यह भी तो ठीक नहीं कि तेरे बाल हर पाबंदी से आज़ाद हवा में लहराते रहें और तू सिर पर चुनरिया तक न रहने दे। तू कुंवारी है। तू अब कमसिन भी नहीं कि तेरी हरकतों को नज़र अंदाज़ कर दिया जाये। इतनी सी बात थी जो मैंने तुझसे कही। मैं समझती थी कि मेरी बेटी मेरा कहना मान जायेगी। लेकिन तू बजाय मेरी नसीहत पर अम्ल करने के रोने लगी।"

नज्मी ने अपनी बाहें मां के गले में डाल दीं।

"अरी देख तो, अब तू मेरे बराबर होने को है। अब तो तेरे बोझ तले मेरी टांगें दुखने लगती हैं। जब बेटी मां के बराबर हो जाये तो वह बेटी नहीं रहती बल्कि बहन बन जाती है। मेरी नाज़ों पली बेटी! तुझको चाहिए कि अब तू हर काम में मेरा हाथ बटाये। घर के मामलों में अपनी राय दे। मैं अब थक गयी हूं। मेरा जिस्म खोखला हो चुका है। तू पराई दौलत है। लेकिन जब तक मेरे पास है उस वक़्त तक तो मेरा सहारा बनकर रह। मैं तो तुझसे इन बातों की उम्मीद रखती हूं और तू न मालूम कौन-सी दुनिया में बसती है। अब तो सयानी बेटी बन!'

जैनू की जांघें सचमुच दुखने लगीं। नज्मी को देखकर उसे डर लगता था। किस कदर बढ़ गयी थी कमबख्त! डील-डौल में पूरी औरत मालूम होती थी और दो-ढाई बरस तक तो उस पर नजर ही ठहर सकेगी। वह नज्मी के शरीर को ग़ौर से देखने लगी। कितनी भरी हुई, लचकदार, निर्दोष, तनी हुई त्वचा, महकी हुई देह जैसे खेत की साफ़-सुथरी नमदार मिट्टी की गंध या जैसे जंगल में अपने-आप उगी हुई हरी-हरी घास की सौंधी-सौंधी सुगंध! वह उसके शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। कितनी सुंदर और सुदर्शन, बाल बल खाते और लहराते हुए जैसे सिर की त्वचा में फव्वारे की भांति फूटकर लावे की सी तेज़ी के साथ बह निकले हों। जैसे वे आगे ही बढ़ते चले जायेंगे..... उसकी बाहों में जकड़ा हुआ नज्मी का शरीर कितना जानदार, कसमसाया, बल खाता और लचकता हुआ-सा था। इस बात की अनुभूति से कि यह शरीर उसी

के खून से बनी एक रचना है, उसे विचित्र सुख मिला। जब उसने नज्मी के लगभग आधे बाल अपनी मुट्ठी में लिये तो उसकी मुट्ठी भरपूर हो गयी। वह उनको मुट्ठी में धीरे-धीरे दबाती रही......उसने नज्मी का मुंह ऊंपर उठाया और उसके कोमल-गालों पर अपने होट रख दिये। कितना सुखद स्पर्श था! वह गर्व करने लगी। उसी ने इस शरीर को अपनी कोख से जनम दिया है।......वह नज्मी को नये सिरे से देखने लगी। जैसे उसने उसे ज़िंदगी में पहली बार देखा हो। उसके लिए वह एक अजूबा थी। एक तिलिस्म थी। ज्यों-ज्यों नज्मी जवान होती जा रही थी, त्यों-त्यों अपनी मां के दिल के करीब होती जा रही थी......वह अपनी कुंवारी बेटी की अछूती देह को चूमने लगी। जब उसने उसकी गर्दन पर अपने होंट रखे तो वह कसमसाकर हंसने लगी, "मुझे गुदगुदी होती है।"

"नटखट कहीं की! ले अब उठ, मैं और काम भी कर लूं।"

"नहीं, मैं नहीं!' यह कह नज्मी मां के गले से लिपट गयी और जैसे मां के कान में जादू फूंक रही हो, "अम्मी अब मैं कभी नहीं रोऊंगी। न अब कभी सारस की तरह टांगें निकाले फिरूंगी और न सिर को नंगा रहने दूंगा।"

"मेरी लाडली बेटी! मेरी लाडली बेटी!!'

"और अम्मी! आप नाजी और मज्जू के कपड़े निकाल दें। मैं उनको पहनाऊंगी।"

"मेरी सयानी बेटी! अच्छा तू चल मैं तुझको कपड़े निकाल दूं!'

"और अम्मी!' नज्मी ने और भी लिपटते हुए कहा, " आज मेरे लिए दो अंडे मंगवा लेना। जब मैं स्कूल से वापस आऊंगी तो अंडों की सफेदी मै दूध मिलाकर अपने बालों को घुंघराले बनाऊंगी।"

घर के बीसियों छोटे-छोटे कामों से निवृत्त होकर जैनू दसोती, धागा और पिटारी सम्हाल ड्राइंग रूम में कोच पर जा बैठी। दसोती पर झुके-झुके वह रोने लगी।

"चची आप रो रही हैं? क्यों?'

उसने आंसू पौंछ डाले, "आ सलमा! मेरे पास बैठ जा! तू कब आयी चुपके से दबे पांव, मुझे तो पता भी न चला।"

"आप रोने में इतनी डूबी हुई थीं कि मरे आने की खबर भी न हुई।"

"ओह ! मैं छोटी बहन को याद करके रो रही थी बिचारी......"

सलमा के चेहरे की सबसे ज्यादा दिलकश चीज उसकी आंखें थीं। वह आंखों से हंसती, आंखों से रोती, आंखों से सुनती और आंखों से ही बातें करती......अतएव अब उसने आंखें झुका लीं।

जैनू ने बात का रुख़ बदलना उचित समझा।

"तम्हारी अम्मां क्या कर रही थीं?'

"कुछ भी नहीं, बस लेटी थीं।"

"हमारे यहां क्यों नहीं चली आयीं?"

"न जाने?"

कुछ क्षणों का मौन।

"सलमा अब मेरा जी नहीं लगता।"

"क्यों?"

"न मालूम?"

सलमा फ़र्श की तरफ़ देखने लगी, जैसे उससे कोई गुनाह हो गया हो।

"मेरा जी चाहता है कि......"

"क्या जी चाहता है आपका?"

"यही कि तुम जल्दी दुल्हन बनकर हमारे यहां आ जाओ।"

सलमा ने शरमा कर बुर्के के आंचल में चेहरा छुपा लिया सिवाय आंखों के। हालांकि उसे चाहिए था कि आंखे छुपा लेती। बाक़ी चेहरा चाहे खुला रहने देती। ज़ैनू के देवर से उसकी मंगनी हो चुकी थी।

ज़ैनू हमेशा की तरह सलमा को दुल्हन के रूप में जांचने लगी। सलमा और ज़ैनू एक दूसरे को चाहती थीं। सलमा ने अपनी अम्मां को जता दिया था कि वह ज़ैनू चची ही के यहां दुल्हन बनकर जायेगी।

"जब तू मेरे पास आ जायेगी सलमा! तो मेरे आधे दुख दूर हो जायेंगे। तू आकर इस दुख को सम्हाल ले। फिर मैं आराम से खाट पर पड़ी रहा करूंगी। रानी अपने घर की आप देखभाल कर लिया करेगी।"

सलमा को चची की बातचीत का यह ढंग बहुत पसंद था। उसकी मीठी बोली और प्यारी हरकतों पर वह फ़िदा थी।

थोड़े अंतराल के बाद सलमा बोली, "चची अब तो नज्मी भी जल्दी ही दुल्हन बनेगी।"

"देख तो कितनी बढ़ गयी है। कमबख्त! खुदा मेरी लाडली को बुरी नज़र से बचाये। उसकी जवानी है या जवार भाटा। अल्लाह सबकी आबरू रखने वाला है। सलमा बेटी अब तू भी खैर से जवान है, सेहतवर है। लेकिन वह मुई हाथ-पांव की कितनी मज़बूत, कितनी तेज़ और तीखे मिज़ाज की है। उसके लिए तो कोई ऐसा दुल्हा चाहिए जो उसको हर तरह से काबू में रख सके वरना वह सबका नाक में दम कर देगी......लेकिन मेरी बेटी दिल की बुरी नहीं!"

"हां चची! यूं तो बात बेबात पर मुझसे उलझ पड़ती है। लेकिन चची सच कहती हूं अगर कभी मैं नाराज़ हो जाऊं तो फिर सौ-सौ तरह से मनाती है मुझको......हम दोनों साथ-साथ खेली हैं। शादी होने पर न मालूम कहां जायेगी, हमारी नज्मी!"

"बेटी यही दस्तूर है दुनिया का। कैसी-कैसी सहेलियां थीं मेरी । मैं कल्पना में सबकी सूरतें देख सकती हूं। कैसी चंचल, खिलंडरी, हंसमुख, अलबेली—हाय एक बार बिछड़ कर फिर हम सब एक मर्तबा भी पहले की तरह इकट्ठी न हो सकीं। अपने-अपने धंधों में फंसकर रह गयीं सब, उनको याद करती हूं तो दिल में एक हूक-सी उठती है। वो झूले, वो चर्खे......"

"एक बात और कह दूं चची! आप अभी बिल्कुल नौजवान दिखाई देती हैं। नज्मी ने तो यूं ही बढ़कर आन लिया। सच्ची बात तो यह है कि आप उसकी मां तो मालूम ही नहीं होतीं। आप तो उसकी बड़ी बहन दिखाई देती हैं।"

ज़ैनू हज़ार संजीदा और सुघड़ सही लेकिन यह बात सुनकर भूल गयी। उसका चेहरा कानों तक सुर्ख हो गया। उसने अपनी खुशी को छुपाने की कोशिश भी नहीं की। "भई मेरी उम्र भी क्या है? ज़रा हिसाब तो लगाओ—पंद्रह बरस की उम्र में मेरी शादी हुई......और अब नज्मी ख़ैर से सात महीना ऊपर बारह बरस की है। अब हिसाब लगाओ तो हुई न मैं अट्ठाईस बरस की। पहले तो शादियां भी छोटी-उम्र में हो जाया करती थीं। बेटी अब तेरी उम्र भी ख़ैर सतरह से ऊपर की है। तीन बरस से पहले तेरी शादी क्या होगी? क्या तू समझती है कि शादी के सात-आठ साल बाद तू बूढ़ी भी हो जायेगी?"

बार-बार अपनी शादी का ज़िक्र सुनकर सलमा खुश भी होती थी और झेंपती भी थी। अब फिर बिचारी को थोड़ी देर के लिए ज़मीन की तरफ़ देखना पड़ा......"चची एक बात और भी है। मुझे......मालूम होता है जैसे आपकी तबीयत ठीक नहीं रहती है। आप कुछ ग़म करती रहती हैं।"

"ग़म क्या सलमा! यही छोटी बहन के मरने से मन दुखी रहता है। बिचारी की याद आती है तो फूट-फूट कर रो देती हूं।"

"नहीं चची, यह तो एक महीने की बात है ना? लेकिन मैं क़रीबन ढाई महीने से यूं ही देख रही हूं। आप खोई-खोई सी रहती हैं......अच्छा बताइए, चचा ने आबाई (पैतृक) मकान क्यों बेचा?......मैं कोई ग़ैर तो नहीं हूं। आप छुपाती क्यों हैं?"

"नहीं बेटी! मैं अकेली जान और इस पर इतनी परेशानियां। छोटे-छोटे बच्चे, देवर, बच्चों के अब्बा सभी की देखभाल करनी पड़ती है। घर के बीसियों छोटे-मोटे काम तुझसे छुपे नहीं। हमदर्दी का एक कलमा तक कहने वाला नज़र नहीं आता। अलबत्ता मेरी बेटियां नोचने को सब तैयार हैं। यह गृहस्थी भी जान जोखों का काम है और तो और नौकर तक नहीं कि हाथ ही बटाये । ले देकर वह चुंधी आखों वाला छोकरा है। नौकर हैं कि टिकते ही नहीं कमबख़्त ! फ़ाके करते हैं,चीथड़े लटकाये आते हैं। अच्छा खाने को मिलता है और अच्छा पहनने को। आंखों पर चर्बी चढ़ जाती है, फिर तो ऊंचे उड़ने लगते हैं। कहां याद रहती है उनको अपनी हैसियत?"

"कमबख़्त नौकरों का भी काल पड़ गया। हमारे घर में यही हाल है। तभी तो हमने भैंस बेच डाली। अब कौन करे देखभाल? .....चची आप दोपहर के वक़्त हमारे घर में आ जाया करें। हमारे बंगलों के बीच एक बाड़ी ही तो है, कौन-सा काले कोसों का फ़ासिला है? देखिए ना मैं दिन भर में एक दो चक्कर ज़रूर लगाती हूं..... अगर आप वहां आ जाया करें तो आपका दिल बहला रहेगा। अकेले में आप रोने लगती हैं..... मुफ्त में सेहत बर्बाद होती है।"

"मेरा निकलना भी हो। घर अकेला छोड़कर कहां जाऊं? जब तक बच्चे घर पर रहते हैं, सिर खुजलाने तक की फुर्सत नहीं......ऐ लो आ गया ग़रीब कालेज से। आज सुबह खाना भी नहीं खाकर गया था। उठूं अब दूं कुछ बिचारे को।"

इधर तो सलमा के होने वाले शौहर भूखे मुर्ग़ की तरह चोंच खोले लड़खड़ाते घर में आये उधर उनकी होने वाली बीवी बुर्क़ा झपट बगूले की तरह कमरे से बाहर निकल गयी।

सुबह के हंगामे के बाद शाम का हंगामा शुरू हुआ। रोना-धोना, चीखना-चिल्लाना, मारना-पीटना, खाना-पीना, नाचना-गाना, प्यार-दिलासा......सब कुछ हो चुका तो बच्चे पड़कर सो गये। काली रात......जैनू लम्बी-चौड़ी खिड़की की चौखट पर कुहनी टेके और हथेली पर ठोड़ी रखे थकी-मांदी-सी खड़ी थी। साथ के कमरे से हिलने-जुलने की आवाज़ें आ रही थीं। सबसे परले कमरे में कत्थई रंग के सिमटे हुए पर्दे में से उसे अपना देवर नज़र आ रहा था, जो खाना खाने के बाद बड़े इत्मीनान से सरकंडों की बनी हुई कुर्सी पर बैठा रेडियो सुनने में मगन था......ज़ैनू ने अभी तक खाना न खाया था। वह पति का इंतज़ार कर रही थी।

"अभी-अभी देहली से आप उस्ताद अब्दुर सत्तार से ठुमरी सुन रहे थे। इस वक़्त ग्यारह बजने को हैं। आपका आज का प्रोग्राम ख़त्म होता है। हम कल सुबह आठ बजे तक आपसे रुख़्सत चाहते हैं। आदाब अर्ज़।"

जवाब में 'आदाब अर्ज़' कह कर......उसके देवर ने रेडियो बंद करके रोशनी गुल कर दी और कम्बल लपेट कर सो गया।

यह आखिरी आवाज़ थी...... इसके बाद ख़ामोशी ही ख़ामोशी...... अंधेरा ही अंधेरा...... असीम...... कितना फैला हुआ आसमान...... परे खेतों के सिलसिले...... अंधेरे में ईंटों के टूट-फूटे भट्टे के आसार, उससे भी परे गारे के बने हुए मकानों वाला गांव, तारों की छांव में एक धब्बे की तरह दिखाई देता था।

पदचाप सुनाई दी—वह इस आवाज से परिचित थी। यह उसके पति की पदचाप थी। वह अंदर आया। उसने कुछ फ़ाइलें मेज़ पर पटक दीं और उसके पास चला आया।

खाना वह बाहर ही से खाकर आया था। उसने ज़्यादा बातें न कीं। क्योंकि आज उसे एक दोस्त के यहां ब्रिज खेलने के लिए जाना था। लेकिन इस वक़्त वह था खुश...... बेहद खुश। अतएव जब वह चला गया तो वह खड़ी रही, हरकत करने की सकत बाकी न थी। मन भारी था...... उदासी-सी छायी हुई थी।

खिड़की में से ऊपर को उठी हुई हरी-भरी भंग के पौदों की कोमल-कोमल कोंपलें...... अपने-आप उगे हुए ऊंचे-ऊंचे पौदों के हल्के नीले रंग के फूल...... स्तब्ध, चुपचाप!

ब्रिज??

क्या वाक़ई वह उसको दूध-पीती बच्ची समझते थे? क्या उनका यह ख़याल था कि वह कुछ न समझती थी?

कितना विस्तृत आकाश था...... आंख झपकाते हुए-से तारे कितने धुंधले, गदले, फीके, मटियाले......

कठिन डगरिया

रिखी राम दुकान से वापस आ रहा था। चेहरे से प्रकट होता था कि वह इस समय कोई मज़ेदार बात सोच रहा है। होंटों पर मुस्कुराहट खेल रही थी। चलते-चलते जब उसे सिगरेट जलाने की सूझी तो उसे ध्यान आया कि माचिस तो दुकान पर ही रह गयी है। ख़ैर कोई हर्ज नहीं। अब वह घर के क़रीब पहुंच चुका है। वह अपनी धुन में इतना मगन था कि उसे सिगरेट मुंह से निकालने तक का ध्यान न रहा। किसी राहगीर की नज़र उसके ढीले-ढीले होंटों में फंसे हुए सिगरेट पर जा पड़ती तो वह अनायास मुस्कुरा देता। इस पर तुर्रा यह कि वह खुद-ब-खुद मुस्कुराये जा रहा था। कभी सिर को हरकत देने लगता। कभी होंटों ही होंटों में कुछ कहने लगता। वह बिल्कुल पागलों की-सी हरकतें कर रहा था लेकिन वह पागल नहीं था। चौंतीस-पैंतीस बरस के आसपास उम्र, सूरत भी बुरी नहीं थी। सेहत भी काफ़ी अच्छी थी। तीन बच्चों का बाप था। बड़े पैमाने पर रेडियो की दुकान चला रहा था। ग्यारह बजे दुकान पर जाता। उसका सहायक पहले से ही मौजूद रहता था। एक से दो बजे तक दुकान लंच के लिए बंद कर दी जाती। शाम के पांच बजे के आसपास वह घर चला जाता। अलबत्ता दुकान सात बजे तक खुली रहती। आज कारोबार के सिलसिले में एक व्यक्ति से मिलने के लिए उसे दिल्ली जाना था। उसने अपनी पत्नी शांता को सामान तैयार करने के लिए भी कह दिया था। लेकिन अचानक दुकान पर उसे तार मिला कि कल वह व्यक्ति खुद लाहौर पहुंच रहा है। चलो सफ़र की मुसीबत से जान छूटी। लेकिन आज शाम का प्रोग्राम क्या हो? यह सवाल तुरंत उसके मन में उभरा और वह कुछ क्षणों तक अकारण ही इस सोच में डूबा रहा और फिर दिल की पुकार खुदबखुद उजागर हो गयी कि शाम अपने दोस्त बैजनाथ के यहां गुज़ारी जाये बल्कि रात का खाना भी वहीं खाया जाये।

कुछ दिनों से बैजनाथ की पत्नी कामिनी उसके लिए विशेष आकर्षण का केंद्र बनी हुई थी। यह बात नैतिकता से गिरी हुई ज़रूर थी लेकिन वह दिल के हाथों मजबूर था। जवानी के दिनों में वह हद से ज़्यादा मजबूर बना रहा। जिंदगी का सुनहरा ज़माना किसी से मुहब्बत की पेंगें बढ़ायें बग़ैर गुज़र गया। जब शादी हुई तो कुछ साल तक

वह पत्नी का दीवाना-सा रहा। लेकिन धीरे-धीरे पत्नी में कोई आकर्षण शेष न रहा। जब कभी पत्नी आंखों को भली मालूम होती तो बस हाथ बढ़ाने की देर थी। वह इनकार का सवाल ही पैदा न होता था। धीरे-धीरे अपनी पत्नी नीरस मालूम होने लगी। तब उसने बाज़ार का रुख़ किया। वहां दल्लाल यही कहता कि बस साहब हफ़्ते भर ही से बाज़ार में बैठने लगी है। पहले-पहल तो यह ख़याल ही कुछ कम रूमानी नहीं था लेकिन जब दल्लाल के हथकंडों का पता चला तो तबीयत बुझ गयी। दुनिया का धंधा तो चलता रहा लेकिन मुहब्बत की प्यास के मारे अंदर ही अंदर कांटा-सा खटकने लगा।

पिछले दिनों इतवार के रोज़ वह अपने मकान के सामने चबूतरे पर बैठा अखबार देख रहा था कि उसने बैजनाथ को कामिनी के साथ अपने मकान की तरफ़ आते देखा। दोनों की आंखें चार होने पर बैजनाथ ने कहा, "हम अजनबी हैं। मकान की तलाश कर रहे हैं। क्या आप हमारी मदद कर सकेंगे?"

यह उनकी पहली मुलाकात थी। उसने बड़ी दौड़-धूप के बाद उसे मकान दिलवाया। हालांकि उनके मकानों के बीच तीन-चार मील से कम फ़ासिला नहीं था। इसके बावजूद दोनों घरानों के संबंध गहरे होते गये। एक-दूसरे के यहां आना-जाना, शामिल होना, कभी-कभार तफ़्रीह की ग़रज़ से शहर से बाहर चले जाना उनकी दिनचर्या बन गयी।

ऐसे मौक़ों पर कामिनी उसकी तरफ़ ललचाई आंखों से देख लेती। पहली बार तो उसका कलेजा धक-धक करने लगा। वह समझा उसकी निगाहों ने धोखा खाया है। लेकिन जब दबी-दबी मुस्कुराहटों का आदान-प्रदान होने लगा तो पहले महसूस हुआ कि शायद वे एक दूसरे से प्रेम कर सकेंगे। कभी उसके मन में ग्लानि होती लेकिन वह अपने मन को यह कर ढाढस बंधाता कि पहल कामिनी की तरफ़ से ही हुई है। कभी सोचता, मामूली दिल्लगी ही तो है। ज़रा की ज़रा चुहल हो जाती है। दिल बहला रहता है। इसमें बुराई की कोई बात नहीं। लेकिन ये सब देखने-दिखाने की बातें थीं क्योंकि मन की गहराइयों में वह अच्छी तरह महसूस करने लगा था कि उसे कामिनी से प्रेम हो गया है।

रास्ता चलते-चलते वह कामिनी की बात सोच रहा था। अभी तक उसने उसे छुआ तक नहीं था। शायद आज कोई महत्वपूर्ण घटना घटे। संभव है कि वह इस पहली प्रेमिका के बहुत समीप पहुंच जाये। अब वह अपनी गली में पहुंच चुका था। जया पनवाड़ी की दुकान उसके घर के पास ही थी। दुकान के पास से होकर गुज़रते वक़्त सुलगती हुई रस्सी देखकर उसे सिगरेट सुलगाने का ध्यान आया। अगर कोई दोस्त उसे मिलने के लिए आता तो घर वालों को खबर हो या न हो लेकिन जया ज़रूर इस बात का ध्यान रखता था। अतएव सिगरेट सुलगाकर उसने जया से पूछा, "क्यों बे जये! मुझे कोई व्यक्ति मिलने के लिए तो नहीं आया था?"

इस समय नसवार सूंघ रहा था। छींक आने ही को थी। इसलिए मुंह से जवाब न दे सका। कभी 'हां' में सिर हिलाता, कभी 'न' में। आखिर मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति नहीं आया था। रिखी ने सिगरेट का कश खींचा और घर की तरफ़ बढ़ा। दरवाज़े के आगे जो कुछ सीढ़ियां बनी हुई थीं, उनकी दो ईंटें उखड़ गयी थीं। हरदम उन पर से फिसलने की आशंका रहती थी। उसने कई बार सीढ़ियों की मरम्मत करवाने का सोचा लेकिन लापरवाई के कारण यह काम न हो सका।

घर में प्रवेश किया तो देखा कि शांता बड़े आईने के सामने बैठी बाल बना रही है। मालूम होता था, अभी-अभी नहाकर आयी है। इस समय बड़ी प्यारी लग रही थी। उसके दोस्त कहा करते, "यार तुम्हारी औरत तो बहुत हसीन है, फिर बाजारों में धक्के क्यों खाते हो?"

शांता ने बाल एक हाथ से घुमाकर आगे लाते और उन पर कंघी करते हुए कहा, "जी मैंने आपका सामान तैयार कर दिया।"

"भई आज तो मैं नहीं जाऊंगा।"

"क्यों?" शंता ने आश्चर्य से आंखें फैलाकर पूछा।

"जिस व्यक्ति से मिलना था, वह खुद कल लाहौर आ रहा है। नल बंद तो नहीं हुआ? ज़रा नहा लूं।"

वह ग़ुसलख़ाने में चला गया और वहां 'का करूं तो से उल्फ़त हो गयी......हो गयी' गाता रहा। जब कपड़े पहन चुका तो पत्नी ने पूछा, "अब खाना खाकर ही बाहर जाइएगा।"

"नहीं भई मुझे देर हो रही है। एक व्यक्ति से मिलना है। खाना बाहर ही खाऊंगा। इंतजार में मत बैठी रहना।"

हालांकि उसकी पत्नी को उस पर किसी प्रकार का संदेह नहीं था लेकिन उसने बैजनाथ के घर का नाम जान-बूझ कर नहीं लिया। आख़िर क्या फ़ायदा? औरतें वहमी तो होती ही हैं। आईने के सामने खड़े-खड़े उसने अपनी सूरत निहारी और उसने स्वयं ही निर्णय लिया कि उसकी सूरत बैजनाथ से कहीं बेहतर है। और अगर कामिनी उसे अपने पति पर तरजीह देती है तो इसे उसकी सुरुचि का प्रमाण ही समझना चाहिए।

खूब बन-संवर कर उसने अपने-आप पर आख़िरी निगाह डाली। कोट की ऊपर वाली जेब में रंगीन रूमाल ठिकाने से रखा। गालों पर हाथ फेरकर उनके समतल होने का जायज़ा लिया। टाई की गांठ ठीक की। पतलून की क्रीज पहलू बदल-बदल कर देखी। हैट पर जमी हुई धूल की बारीक तह चुटकी बजा-बजा कर साफ़ की। चांदनी का सिगरेट केस जेब में डालते हुए उसने एक नजर पत्नी की तरफ़ देखा। आज वह वाक़ई हसीन दिखाई दे रही थी। दोनों लड़के नाना के यहां गये हुए थे। उनकी गैर मौजूदगी में पत्नी से प्रेम करने में भी कोई रुकावट नहीं थी। लेकिन वह जल्दी में था।

इसलिए छड़ी घुमाता हुआ घर से बाहर निकला। पल भर के लिए उसे ध्यान आया कि अगर वह सिगरेट केस में 'अब्दुल्ला' के सिगरेट रख लेता तो बेहतर होता। वह 'अब्दुल्ला' सिगरेटों का बड़ा प्रशंसक था और विशेष रूप से उस समय पीता था जब वह खुश हो। अब सिगरेट लेने के लिए वापस जाने में उसने बदशगुनी समझी। इसलिए कू-ए-यार की तरफ़ बढ़ता चला गया।

उसके मन में प्रेम का उन्माद था। क़दम बड़े बांकपन से उठ रहे थे। आस-पास की चीज़ें उजली और नई-सी दिखाई दे रही थीं। जैसे हर चीज़ ने नया जनम लिया हो। उसमें चमक थी और हरकतों से चुलबुलापन टपक रहा था। अपनी पत्नी और घर से दूर वह अपने-आपको आज़ाद पंछी की तरह हल्का-फुल्का महसूस कर रहा था। वह कालेज के उस छोकरे की भांति दिखाई दे रहा था जो घर से पढ़ाई के लिए भेजा गया और अब मां-बाप के रुपये से इश्क़ लड़ा रहा हो। महज़ औरत की हैसियत उसके सामने कुछ नहीं थीं। वह तो प्रेम का भूखा था। प्रेम की टीस का प्यासा था। असली चीज़ तो वह अपनेपन की भावना थी जो कम्मो को लेकर महसूस कर रहा था। वह दिल ही दिल में कामिनी को कम्मो कहा करता था। उसकी एक आकांक्षा थी कि अगर उनके प्रेम संबंध और गहरे बनें..... और दोनों के धड़कते हुए दिल किसी दिन मिल जायें तो वह उसे 'प्यारी कम्मो' कहकर बुलाये। जब वह काल्पनिक दुनिया से बाहर निकलता तो सोचता क्या मालूम उसके भाग्य में कामिनी की सिर्फ़ मुस्कुराहट ही लिखी हो?

आख़िर शाम के धुंधलके में जब बैजनाथ का बिना पलस्तर का ईंटों का बना हुआ मकान नज़र आने लगा तो उसके क़दम डगमगाने लगे। यहां तक वह एक सम्मोहन के भाव से खिंचा हुआ चला आ रहा था। लेकिन अब वह सोचने लगा कि उसके घर में किस ढंग से प्रवेश करना चाहिए? इस समस्या के कई पहलुओं पर सोच-विचार करने के बाद उसने यह निर्णय लिया कि ऐसे मामलों में ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं। हर चेष्टा अनौपचारिक होनी चाहिए। अतएव उसने बहुत सहज होकर उनके घर में प्रवेश किया।

बड़े कमरे से पति-पत्नी के हंसने और बातें करने की आवाजें सुनाई दे रही थीं। रखी दरवाज़े में जा खड़ा हुआ। बैजनाथ मुंह फेरे कुर्सी के बाज़ू पर बैठा था। उसने नये कपड़े पहन रखे थे जिससे जाहिर होता था कि शायद वह बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। कामिनी उसकी कमीज़ में बटन टाँक रही थी। और वह गा रहा था, "अब ज़रा गाना बंद कर दीजिए ना। सुई छाती में चुभ जायेगी। तो फिर न कहिएगा?"

पति मस्ख़रेपन से बोला, "तुम से नहीं कहेंगें तो और किससे कहेंगे माई डार्लिंग। और हमारा कौन है?" और फिर वह निहायत भौंडे ढंग से फटे बांस की-सी आवाज़ में घिसा-पिटा-सा गाना गाने लगा।

'तेरा कौन है?
किसे करता तू प्यार प्यार प्यार
तेरा कौन है...... तेरा कौन...... हां तेरा कौन है।'

इधर पति-पत्नी में ये चुहलें हो रही थीं उधर छः माह का बच्चा पालने में पड़ा रो रहा था। मालूम होता था कि बैजनाथ इस वक़्त बड़े खुशगवार मूड में था। ज्यों-ज्यों पत्नी उसकी हरकतों से चिढ़ती जाती, त्यों-त्यों वह उसे और ज़्यादा परेशान करता। वह झुंझलाकर कहती, "अब मटकना बंद कीजिए, मुन्ना रो रहा है।"

रिखीराम दो क़दम आगे बढ़ा और उसने खांस कर उन्हें अपने आगमन से सूचित किया। बैजनाथ ने सिर उठाकर उसको देखा। पहले तो हैरान रह गया। फिर चिल्लाया, "हलो, हलो यार! मेरा ख़याल थां, अब तुम गाड़ी में बैठे होगे।"

रिख़ी ने मुसाफ़हे के लिए हाथ बढ़ाते हुए जवाब दिया, "नहीं भई, दिल्ली जाने का प्रोगाम रद्द हो गया। किरपाराम से मिलना था। उसका तार आया है कि कल वह खुद ही लाहौर पहुंच रहा है।"

इतने में कामिनी ने भी दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते कर दी, "जी नमस्ते!"

उसने बड़े भोलेपन और शालीनता से जबाव दिया।

मुन्ना रो रहा था। कामिनी उसे प्यार से पालने में उठाकर चुप कराने की कोशिश करने लगी, "मुन्ना क्यों रो रहा है, मुन्ना क्यों रो रहा है? ना ना...... क्यों जी आपकी मुन्नी भी रो रही थी?"

"जी नहीं!" रिखी ने जवाब दिया, "हमारी मुन्नी तो सोयी हुई थी। आजकल हमारे घर में बच्चों का शोर बहुत कम है। गोशी और जीव दोनों नाना के यहां गये हुए हैं। बच्चे हैं ना! नई जगह उनका दिल बहला हुआ है। घर में बिचारी मुन्नी चुपचाप पड़ी रहती है।" "ना जी ना! हमारा मुन्ना भी तो नहीं रोता।" कामिनी ने बच्चे को पुचकारते हुए कहा, "आज तो उसके बाबू जी ने उसे परेशान कर दिया है। मैं उनके बटन टांक रही थी और यह हिल-हिल कर गाये जाते थे। मुन्ना जाग उठा और रोने लगा।"

जब वह बातें कर रही थी तो रखी उसके लचीले होंटों की तरफ देखता रहा। उस समय सिंगार का तो कोई सवाल ही नहीं था लेकिन मामूली घरेलू लिबास में भी वह कितनी हसीन दिखाई दे रही थी और अचानक उसे जो ध्यान आया तो बैजनाथ को संबोधित करके बोला, "यार मालूम होता है कि तुम बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे। मैं तो यूं ही इधर चला आया। किसी काम से जा रहे थे तो चलो।"

"नहीं यार, बैठो बातें करें।"

"नहीं भई, मुझसे यह न होगा।"

कामिनी ने बच्चे को गोद में झुलाते हुए कहा, आज इनकी दावत है कहीं।"

"वाक़ई, भई वाह! तब तो मैं तुम्हारा रास्ता नहीं रोकना चाहता। ज़रूर जाओ। तकल्लुफ़ की ज़रूरत ही क्या है?"

"नहीं अब मैं नहीं जाऊंगा। तुम इतनी दूर से आये हो। अब तो मिल कर बातें करेंगे। और हां जीलानी के यहां खेलने क्यों न चलें?"

लेकिन रिखी को अपनी हरकत बहुत अनुचित लग रही थी, "बैजनाथ अपना प्रोग्राम खराब मत करो। मैं तो यों ही चला आया था। बस अब सैर करते हुए घर चला जाऊंगा। यह ज़रा बदतमीज़ी की बात है कि मेरी वजह से तुम्हारा मेज़बान परेशान हुआ और फिर हम दोनों में तकल्लुफ़ भी तो नहीं होना चाहिए।"

बैजनाथ कुछ क्षणों तक मौन रहा। फिर बोला, "इतनी दूर से आये हो। हम दोनों का वक्त खूब कट सकता है। हां यार, एक और बात सूझी है मुझे, तुम यहीं बैठो और मैं ज़रा खाना खाकर ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटे के अंदर वापस आ जाऊंगा। मेरी वापसी तक तुम खाना भी यहीं खा लोगे और फिर हम जीलानी के यहां चलेंगे। बड़े मज़े का आदमी है। गप भी उड़ेगी और ब्रिज भी खिलेगी।"

रिखी का दिल जैसे उछल कर हलक में आ रहा। एक घंटे के लिए वह और कामिनी अकेले रहेंगे। गोदी का मुन्ना तो सो ही जायेगा। उससे बड़ा चार बर्षीय लड़का भी सुलाया जा सकेगा। उसने तेज़ी से उचटती हुई निगाह कामिनी पर डाली। भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों के जमघट में वह कुछ बोल न सका। बैजनाथ कहता चला गया, "कहो यार कैसी रही? भई कहीं जाना नहीं। तुम्हें मेरे सिर की क़सम! मैं बहुत दूर नहीं जा रहा हूं। यही अपने डॉक्टर शर्मा के यहां तो दावत है। तुम शायद नहीं जानते उन्हें। तुम्हारे रास्ते में ही तो मकान पड़ता है। अच्छा तो वादा करो, तुम नहीं जाओगे। यह न हो कि मैं भागम भाग वापस पहुंचूं और तुम ग़ायब हो जाओ। बस आज शानदार प्रोग्राम रहेगा।"

रिखी चुप खड़ा रहा। भला वह कहां जा सकता था? उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि भाग्य इतना साथ दे सकता है। वह एक धुंधली-सी आशा के बल पर यहां आया था। इधर भगवान ने भक्त की प्रार्थना स्वीकार करके उसके मार्ग का कांटा स्वयं साफ़ कर दिया।

"तो ये रहे सिगरेट और यह रहा वीकली। कम्मो इन्हें रोटी खिला देना। ज़रा ध्यान रखना भाग न जायें कहीं। मैं चुटकी बजाते में आया।"

यह कहकर वह जल्दी-जल्दी पतलून के बटन लगाने लगा। ब्रश से बाल बराबर किये टाई की गांठ ढीली करके अगला पल्लू ऊपर नीचे किया। फिर तेज़-तेज़ क़दम उठाता हुआ बाहर वाले दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। कामिनी पुकार कर बोली, "हाय कैसे भागे जा रहे हैं? घर से बाहर जाना हो तो पांव ज़मीन पर लगते ही नहीं। अब जल्दी लौट आइएगा।"

"हां भई लौट आऊंगा। लोग हमारा ईंधन उठा-उठा कर ले जाते हैं। इसकी फ़िक्र किया करो। ड्योढ़ी का दरवाज़ा बंद कर लो। अच्छा यार मैं चला।"

ड्योढ़ी का दरवाज़ा बंद करके कामिनी खिड़की के समीप आ खड़ी हुई। एक बार फिर पति से आंखें चार हुईं। पति ने हाथ हवा में उठाकर के हिलाया। वह वहां चुप खड़ी उसे गली के नुक्कड़ से ओझल होते हुए देखती रही।

इसी बीच में रिखी भी चुप के से दीवार से लगकर उसके पास खड़ा हो गया था। कुछ देर कामिनी सुनसान गली की तरफ़ देखती रही। फिर उसका हाथ ऊपर उठकर बिजली के बटन की तरफ बढ़ा और दूसरे क्षण बिजली का बल्ब बुझ गया और फर्श पर बिछी हुई दरी पर खिड़की में से आती हुई चांदनी फैल गयी।

रिखी ने हाथ बढ़ाया जो कामिनी की पीठ से होता हुआ उसके मांसल कूल्हे पर जाकर टिक गया। कामिनी की कमर हिली, क्षण भर के कम्पन के बाद स्थिर हो गयी। वह समीप और समीप आकर उसके साथ खड़ा हो गया। उन दोनों की आंखें चार नहीं हुईं। लेकिन कामिनी की कमर ने थोड़े से कम्पन के बाद स्थिर होकर संकेतों में उसके सवाल का जवाब दे दिया।

वह खामोश खड़ी थी। दो-एक बार रिखी के होंटों से निकलती हुई प्रेम की पीर में डूबी हुई बहुत हलकी-सी आवाज़ सुनाई दी, "कम्मो, कम्मो।"

"बीबी जी! बीबी जी! बड़े लड़के की पुकार सुनाई दी।

वह बंद आवाज में बोली, "आई बेटा बैठे रहो वहीं" रिखी की गिरफ्त ढीली पड़ गयी और वह दरवाज़े पर सरक गयी, "सुनो कम्मो सुनो।" उसकी आवाज़ बुरी तरह कांप रही थी।

कामिनी दो क़दम परे दीवार से पीठ लगाये, दोनों हथेलियां दीवार पर टिकाये, सिर नेहोड़ाये, खड़ी थी। कमरे का वातावरण स्वप्निल था। हर तरफ़ सुरमई गुबार-सा छाया मूर्ति की भांति दिखाई दे रही थी। केवल उसकी छातियों के ऊपर-नीचे होने से पता चलता था कि वह निष्प्राण मूर्ति नहीं है, "कम्मो सुनो, मैं तुमसे प्रेम करता हूं।"

"मैं तुमसे प्रेम करता हूं" कैसे घिसे-पिटे शब्द थे? जिन्हें उसने बीसियों बार किताबों में पढ़ा था। फ़िल्म के पर्दे पर सुना था। लेकिन आज वह इस वाक्य को ऐसे बोल रहा है जैसे यह पहली बार उसी के द्वारा प्रयोग में लाया गया हो।

जवाब में कामिनी ने पलकें ऊपर उठा लीं और एक बार फिर भरपूर नज़रों से उसकी तरफ़ देखा और फ़िर समर्पण की मुद्रा में पलकें झुका कर रह गयी। वह बिजली के कौंदें की तरह आगे बढ़ा। उसकी कमर को बाहों में लेकर उसे अपनी तरफ़ खींचा तो यों लगा जैसे उसने फूलों की नाज़ुक डाली पकड़ कर झनझना दी हो। उसका शरीर सिर से पांव तक कामिनी की कोमल देह के स्पर्श से पुलकित हो उठा। क्षणिक भावावेश में उसने न मालूम किस-किस तरह उसे भींचा, चूमा और फिर लड़के की पुकार की

आवाज़ें हथियारों के धमाकों की तरह सुनाई देने लगीं और फिर कामिनी उड़ती हुई खुशबू की तरह आंखों से ओझल हो गयी। वह कमरे में निपट अकेला खड़ा रह गया। खिड़कियों से प्रवेश करने वाली चांदनी में कुर्सियां, तिपाइयां, तस्वीरें, पर्दे और किताबें—ग़रज़ हर चीज़ स्वप्निल दिखाई दे रही थी। सिर्फ उसकी बाहों और टांगों में कम्पन था। सांस तेजी से चल रही थी। अकारण ही उसके होंटों से कुछ अटपटी आवाज़ें निकल गयीं। कुछ देर तक वह शून्य में घूर कर देखता रहा। एक बार अपराध-बोध के कारण कांप भी उठा लेकिन सिर्फ क्षण भर के लिए। फिर उसने रूमाल से मुंह और माथा साफ़ किया। कपड़ों की सलवटें और कोट की झोल खायी आस्तीनें खींचकर बराबर कीं। फिर धीरे-धीरे क़दम उठाता हुआ सेहन में रसोई की तरफ़ बढ़ा। कामिनी चूल्हे के पास बैठी देगची में चम्मच चला रही थी। उसका बड़ा लड़का उसके घुटने के साथ लगा हुआ ऊंघ रहा था। वह चूल्हे लपलपाते हुए अंगारों की रोशनी में उसके दमकते हुए चेहरे की तरफ देखता रहा। आपसी खींचतान में कामिनी के बाल बिखर गये थे, गाल लाल हो गये थे। कमीज़ दो-तीन जगह से मसक गयी थी। यह सब उसके दुस्साहस के कारण हुआ था। इस विचार से वह जीत के अहसास में गुम हो गया।

प्रकट में कामिनी उसके आगमन से उदासीन दिखाई देती थी। वह अपने काम में व्यस्त रही। बच्चे को ऊंघता हुआ देखकर उसने कहा, "चलो तुम्हें सुला दूं।" और उसे सुलाने के लिए अंदर चली गयी।

रिखी चूल्हे के पास एक स्टूल पर बैठ गया। वह दिल ही दिल में हालात का जायज़ा लेने लगा। कामिनी फिर पास आ बैठी। उसकी हरकतों से किसी असाधारण घटना का पता न चलता था। देगची चूल्हे से उतार कर तवा रख दिया और आटा तोड़ कर लोई बनाने लगी और उससे आंखें मिलाये बिना बोली, "आपको सर्दी लग रही होगी। चूल्हे के पास आ जाइए ना।"

"वाकई सर्दी बहुत सख़्त पड़ रही है" यह कह कर उसने स्टूल खिसकाया और चूल्हे के पास आ गया।

रिखी की नज़रें उसकी आंखों और तेज़ी से हिलते हुए होटों और हाथों की हरकतों पर जमी हुई थीं। वह मन में बेचैन प्यास बड़ी तीव्रता से महसूस कर रहा था, जो प्यासे होंटों से शरबत का गिलास परे हट जाने में होने लगती है। कामिनी ने रोटी उलटते हुए कहा, "आप को भूख तो लग रही होगी?"

उसने उठकर कामिनी के गालों पर होंट रख दिये, "नहीं कम्मो, मुझे भूख नहीं लग रही।" यह कहकर वह उसे अपनी बाहों में लेने की कोशिश करने लगा। कामिनी अपने आपको उसकी मर्ज़ी पर छोड़ते हुए कहा, "मुझे रोटी तो पका लेने दीजिए।"

"नहीं जान से प्यारी कम्मो! रोटी फिर पका लेना", यह कहकर उसने हाथ मार कर तवा चूल्हे से गिरा दिया।

वह खुश था और सिर से पैर तक नशे में डूबा हुआ था। वह बैठक में दरी पर लेटा हुआ था। टांगें उठाकर पास ही बिछी कुर्सी पर टिका रखी थीं और बिजली की जगमगाती हुई रोशनी में वीकली का पर्चा पेट पर धरे उसके वरक़ उलट रहा था।

एक बार कामिनी चूल्हे के आगे बैठी उसके लिए पराठे पका रही थी। अब से पहले ज़िंदगी के जो दिन गुज़र चुके थे वे बिलकुल नीरस लगने लगे थे। ऐसी सुखद अनुभूति उसे पहले कभी नहीं हुई थी। मन संतुष्ट था। शरीर हल्का-फुल्का और तरोताजा महसूस हो रहा था। आत्मा अनिर्वचनीय आनंद से ओत-प्रोत थी। आज कामिनी और वह एक हो गये थे।

खाना तैयार हुआ तो उन्होंने एक साथ मिलकर खा लिया। एक-दूसरे के मुंह से मुंह मिलाकर निवाले छीनते रहे। हंसी-मज़ाक़ ही में समय बीत गया और आख़िर दरवाज़े पर दस्तक सुनायी दी।

कामिनी ने दरवाज़ा खोला। बैजनाथ का मासूम चेहरा देखकर रखी के मन में सनक पैदा हो गयी लेकिन कामिनी आड़े आ गई, "आपके दोस्त तो उठ-उठकर भाग रहे थे। बड़ी मुश्किल से बिठाये रखा है मैंने।"

बैजनाथ ने अनौपचारिक होकर उसके कंधे पर हाथ मारते हुए कहा, "यार कमाल करते हो, आख़िर घबराने की क्या बात थी।" दोस्त की सहजता को देखकर रिखी को शर्म-सी महसूस होने लगी और वह कुछ भी न कह सका।

"कहो, खाना खा लिया?"

"हां।"

"आओ तो चलो जीलानी के यहां।"

रास्ते में बैजनाथ दावत की बातें करता रहा। कहने लगा, "डाक्टर शर्मा मेरे बहुत गहरे दोस्तों में से हैं। बड़े प्रेम से बुलाया। वापस आने नहीं देते थे। हज़ार हीलों से जान छुड़ाकर आया हूं।"

जब वे जीलानी के यहां पहुंचे तो मालूम हुआ कि उनके घर कोई फौजी रिश्तेदार बाहर से आये हुए हैं। इसलिए वे ब्रिज न खेल सकेंगे उनका प्रोग्राम चौपट हो गया। खैर, वे कुछ देर इधर-उधर टहलते रहे। फिर बैजनाथ ने कहा, "आओ, घर बैठें।"

"वक़्त बहुत ज़्यादा है।"

"भई अब इजाज़त दो। अब मैं घर वापस जाता हूं। फिर मुलाक़ात होगी।" अतएव हाथ मिलाकर वे एक दूसरे से विदा हो गये।

आज की सुखद घटना से हालांकि उसका मन प्रसन्न था लेकिन दोस्त के साथ इस पाजीपन के कारण उसका अंतःकरण ग्लानि से भी भर जाता और जब वह अपने घर

के समीप पहुंचा तो अपनी नेक और भोली पत्नी की कल्पना से उसका मन और बोझल हो गया। बेचारी शांता ठिठुरी हुई आग के पास बैठी उसका इंतज़ार कर रही होगी।

जब वह जया की दुकान के पास पहुंचा तो हमेशा की तरह उससे पूछा, "क्यों बे जये! कोई आया तो नहीं था हमसे मिलने?"

जया ने सिर ऊपर उठाया, "अजी बाबू बैजनाथ आये थे। सीधे भीतर चले गये। मुझसे तो कुछ बोले नहीं। जब आप नहीं आये तो बिचारे इंतज़ार करके चले गये।"

"बैजनाथ !" उसके हलक़ से चीख़-सी निकल गयी और वह ठिठक कर खड़ा हो गया।

"हां जी! बैजनाथ बाबू।"

दुकान से मकान तक कुछ क़दमों का फ़ासिला उसने बहुत धीरे-धीरे तय किया। जब वह सीढ़ियों पर क़दम रखने लगा तो उसने देखा कि उखड़ी हुई दो ईंटें फिर अपनी जगह से हट गयी हैं। उसने सावधानी से उन्हें टिकाकर रख दिया और क्षण भर के विराम के बाद उसके मुंह से मद्धम-सी हंसी निकल गयी और जब उसने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया तो वहां हर चीज़ जानी पहचानी थी। वातावरण शांत और सुखद प्रतीत हो रहा था।

उसकी पत्नी अंदर वाले दरवाज़े में खड़ी हुई दिखाई दी। वह इस समय अभी-अभी खिले फूल की भांति तरो-ताज़ा और उजली दिखाई दे रही थी। वह फूल जिसका मुंह ओस ने बड़े जतन से धो डाला हो । जिस पर जमी हुई धूल की अनजान तह किसी ने चूम ली हो।

वह बड़े कोच पर बैठ गया। शांता फूलों से लदी डाली की तरह लचकती हुई समीप आयी और उसके पास कोच में धंस गयी। उसने सिर से पांव तक पत्नी को निहारा और मुस्कुराकर बोला, "शन्नो! आज तुम बहुत खुश दिखाई देती हो?"

अपने ख़ास ढंग में बालों पर हाथ फेरते हुए वह लजाकर मुस्कुरा दी। उसके तरो-ताज़ा होंटों के बीच से उजले-उजले दांतों की पंक्ति किसी तरह खिल गयी और उसने बिना कुछ कहे 'हाँ' में सिर हिलाते उसके कंधे पर गाल टिका दिया।

शन्नो की उनींदी पलकें बोझल होकर झुकने लगीं। वह कुछ क्षण तक शन्नो के चेहरे की तरफ़ देखता रहा। फिर उसकी पीठ पर हल्की-हल्की थपकी देकर बोला, "मैं भी बहुत ख़ुश हूं शन्नो! ज़रा इधर लाओ तो अब्दुल्ला सिगरेटों का डिब्बा!"